



तत्त्व ग्राहक पुरुषोने परम हितकारी ग्रंथ  
श्री सुमतिप्रकाश ग्रंथ.

(श्री देवचंद्रजी कृत अनित चोवीशी तथा विहर-  
मान जिन स्तवन वीशी विगेरेनो संग्रह )

॥ दोहरा ॥

ज्व्य ज्रमर जर तृत्तिकर, जिन मुख पद्म पराग ॥  
मोक्षार्थी जिन वचनमां, धारो परम सुराग ॥ १ ॥  
स्याद्वाद शुचि बोविनी, नमुं सरस्वति माय ॥  
गौतम गणधर लब्धिनो, हो जविने सुपसाय ॥ २ ॥

ठपावी प्रसिद्ध कर्ता

“दाहोद” निवासी शा. संतोकचंद माणोकचंद.

आवृत्ति १ वी प्रत १०००

मुम्बई मारुवी रुगरी स्ट्रीट नमर ३५०-५१ मा आवेला “स्वधर्मनिष्ठ”  
नामक मुझायत्र मध्ये दिवेरी गिरिजाशंकर काशीराधे, मुद्रित कर्णे

समत १९६७ सम १९११

किंमत रु०-१-४-०

अमारा तरफथी ठपाई बहार पढेला अमूख्य उपयोगी ग्रंथो

अमारा तरफथी ठपाई बहार पढेला अमूख्य उपयोगी ग्रंथो

तत्त्व ग्राहक पुरुषोने निचे प्रमाणे किंमते मखशे. पोस्टेज  
जुडुं पळुशे.

श्री सुमतिविलास	रु० १-०-०
श्री सुमतिव्यवहार	रु० १-०-०
श्री नवपद पूजादि संग्रह	रु० ०-०-०
श्री सुरातिप्रकाश	रु० १-४-०
श्री ठ कर्मग्रथ मूल	रु० ०-२-०

प्रथम अमे सदरहु ग्रंथो पैकीना ग्रंथो जेत तरिके थापता हता  
पण हवेथी उपर प्रमाणे किंमते वी-पी-थी मोकलवामां थावशे श्री  
सुमतिप्रकाश ग्रंथ शिवाय बाकीना ग्रंथो हमारी पासे जुज रक्षा ठे  
केटखाक छोको मंगावी उपयोग करता नथी माटे जुज किंमत राख-  
वामां थावी ठे; वली ए नाणुं थावे ते ज्ञान वृद्धिमांज वापरवानुं ठे  
ग्रंथो मखवानु ठेकाणु

गाधी कोदरलाळ उगनलाळ

मु० वेजलपुर, स्टेसन खरसाळीथा जीह्या पंचमहाळ.

शा० संतोकचंद माणैकचंद मु० दादोद. जीह्या पंचमहाळ.

अनुक्रमणिका.

विषय.	पृष्ठ.
श्री. देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोवीशी (श्रीमान् मनसुख- लालजी हरिलालजी कृत बालावबोध सहित )	१-१०८
जिनागममा कहेली श्रुतधरने सोल ऊपमा " ढाल वरू "	
( श्रीमान् मनसुखलालजी कृत )	१०९-११६
विषय परिहार " ढाल वरू " (श्रीमान् मनसुखलालजी कृत)	११७-१३३
ममत्व परिहार ' ढाल वरू "	१३३-१५३
सूत्र तत्त्वार्थ सार विचार " ढाल वरू "	१५३-३१५
दर्शनपद अधिकार	१५३
ज्ञानपद अधिकार	१५६
उपशमादि त्रेपन जीव जाव अधिकार	१५९
नरकादि अधिकार	१६३
क्षेत्र विचार अधिकार	१६४
चार निकाय देवाधिकार	१६९
द्रव्यानुयोग ( जीवादिक खद्द्रव्यनुं स्वरूप ) अधिकार	१७३
कर्म बधनना कारण आश्रवणुं स्वरूप वर्णन	१७८
पंच महाव्रत तथा पचाचार विगेरेनु स्वरूप	१८४
देशव्रतादि अधिकार	१८८
फरीथी बध हेतु स्वरूप	१९१
कर्मबंध सूक्ष्म स्वरूप	१९५
समिति गुप्ति आदि संवर अधिकार	१९८

बावीश परिसह स्वरूप	१९८
ह्रमादिक दश यतिधर्म स्वरूप	२०२
अनित्यादि बार जापना स्वरूप ..	२०३
सामाइकादिक पाच चारित्र स्वरूप	२०५
मोक्षाधिकार ..	२०६
धर्मकथानुयोगाधिकार	२०९
कलश ..	२१४
श्रीमान् देवचंद्रजी कृत विहरमान जिन स्तवन वीणी	
(शा सतोकचटजी माणरेचटजी कृत बालावबोध सहित) २१७-३७२	
गाधी दलसुख नाथजी कृत पद	३७३-३७५
प्रसन थयु मनरे ( पद )	३७३
माना मऊदेवाना नद ( रूपज जिन स्तवन )	३७४
अजित जिनेश उपासना ( अजित जिन स्तवन )	३७४
शा वाडीखाल पानाचद कृत पद ( मगन थयु मनरे )	३७५
श्रीमान् मनसुखखालजी हरिखालजी कृत पद	३७६-३८०
द्रव्य सकल सहजे परिणामी ( पद )	३७६
चौदराज गत जीव ठ कायिक ( वंद )	३७७
सोहम गणधरने नमोजी	३७७
जग परम सुखकर डुरित दुखहर ( मगलाचरण )	३७९



प्रस्तावना.

॥ दोहरो ॥

अंतातीत गुणे ज्ञर्या, सिध् अनंतानंत ॥

निर्जय सहज स्वतंत्र शिव, नमो परम जयवंत ॥ १ ॥

आ जगत्त्रयमा वसता सर्वे प्राणीउं जो के दुःख कलेश विगेरेथी मुक्त थवा तथा सुख रूप परम निवृत्तिमां निरंतर रहेवा चाहे ठे, पण अनादि अज्ञानरूप तिमिर रोग वने ज्ञानरूप दिव्य द्रष्टि आढादित होवाथी परम निवृत्तिरूप अनुपम सुखने यथार्थ उलखी शकता नथी, तथा जेम धतुरानो रस पीधेलो पुरुष सुवर्णथी अन्य वस्तुउंने पण सुवर्णरूप जुए ठे, तेम पौद्गलीक जोगो जे वास्तवोक रीते उपाधिना प्रतिकार ठे तेने सुख मानो तल्लीन थई परम निवृत्तिरूप पोताना शुद्धात्म स्वरूपना ज्ञान तथा अनुभवथी दूरवर्ती रहे ठे, अने निरंतर मोहमयवने वेजान थई मोह राजाना संसाररूप महान्जयंकर जेलखानामां वसता पोतानी शक्तिनो दुरुपयोग करता दु सह दुःख समूहने पोताना कोमल शिरपर धरेठे

तता तेमाथी अक्सर पामी केटलाक प्राणीउं सचेत थई पोताना आत्म स्वरूपनु ज्ञान पामी पोतानी आत्मीय शक्तिउंनो दुरुपयोग करवो त्यागां, पोताना सम्यक् प्राक्रमने स्फुरायमान करी, मोह राजाना जेलखानाने तोनी तेमांथी वहार नीकली रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमां विचरता पोतानी अखूट अव्यावाध अनुपम शाश्वत अने निरुपचरित सुख प्रद पोतानी स्वतंत्र आत्मिय ज्ञमिमां विराजमान थई अनत समाधिमय आत्म राज्यना सादिअनंत जागे जोक्ता वनेठे

बावीश परिसह स्वरूप	१९८
दशमादिक दश यतिधर्म स्वरूप	२०२
अनित्यादि बार ज्ञानना स्वरूप ..	२०३
सामाश्रकादिक पाच चारित्र स्वरूप ...	२०५
मोक्षाधिकार	२०६
धर्मकथानुयोगाधिकार	२०९
कलश	२१४
श्रीमान् देवचंद्रजी कृत विहरमान जिन स्तवन वीशी	
(शा सतोकचंदजी माणसेचंदजी कृत बालावबोध सहित) २१७-३७२	
गाधी दलसुख नाथजी कृत पद	३७३-३७५
प्रसन थयु मनरे ( पद )	३७३
माता मरुदेवाना नद ( रुपज्ज जिन स्तवन )	३७४
अजित जिनेश उपासना ( अजित जिन स्तवन )	३७४
शा वाडीलाल पानाचंद कृत पद ( मगन थयु मनरे )	३७५
श्रीमान् मनसुखलालजी हरिलालजी कृत पद	३७६-३८०
द्रव्य सकल सहजे परिणामी ( पद )	३७६
चौदराज गत जीव ठ कायिक ( ठद )	३७७
सोहम गणधरने नमीजी	३७७
जग परम सुखकर डुरित डुखहर ( मगलाचरण )	३७९



प्रस्तावना.

॥ दोहरो ॥

अंतातीत गुणे ज्ञर्या, सिद्ध अनंतानंत ॥

निर्जय सहज स्वतंत्र शिव, नमो परम जयवंत ॥ १ ॥

आ जगत्त्रयमा वसता सर्वे प्राणीं जे के दुःख क्लेश विगेरेथी मुक्त थवा तथा सुख रूप परम निवृत्तिमां निरंतर रहेवा चाहे ठे, पण अनादि अज्ञानरूप तिमिर रोग वके ज्ञानरूप दिव्य द्रष्टि आछादित होवाथी परम निवृत्तिरूप अनुपम सुखने यथार्थ उलखी शकता नथी, तथा जेम धतुरानो रस पीधेलो पुरुष सुवर्णथी अन्य वस्तुंने पण सुवर्णरूप जुए ठे, तेम पौद्गलीक जोगो जे वास्तवाक रीते उपाधिना प्रतिकार ठे तेने सुख मानो तद्धीन थई परम निवृत्तिरूप पोताना शुद्धात्म स्वरूपना ज्ञान तथा अनुभवथी दूरवर्ती रहे ठे, अने निरंतर मोहमद्यवके बेजान थई मोह राजाना संसाररूप महान्जयंकर जेलखानामां वसता पोतानी शक्तिनो दुरुपयोग करता दुःसह दुःख समुहने पोताना कोमल शिरपर धरेठे.

उता तेमाथी अवसर पामी केटलाक प्राणीं सचेत थई पोताना आत्म स्वरूपनु जान पामी पोतानी आत्मीय शक्तिंनो दुरुपयोग करवो त्यागां, पोताना सम्यक् प्राक्रमने स्फुरायमान करी, मोह राजाना जेलखानाने तोकी तेमांथी वहार नीकली रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमां विचरता पोतानी अखूट अव्यावाध अनुपम शाश्वत अने निरुपचरित सुख प्रद पोतानी स्वतंत्र, आत्मिय चूमिमां विराजमान थई अनंत समाधिमय आत्म राज्यना सादिअनंत जागे जोक्ता वनेठे



एवा अत्यंत धीर वीर उदार कर्णानिधान जगत् जीवोना खेदज्ञ सर्वज्ञ वीतराग अने निष्कलक तीर्थंकर गणधरादि परोपकार करवामा अग्रेसर अनेक महान् पुरुषो पोते जे मार्गे परमनिवृत्ति स्थितिने पाम्या ठे ते मार्ग यथार्थ रीते परम करुणावक्ते संसाररूप जेलखानामा वसता दुःखमय प्राणीजने उपदेशे ठे सर्वत्र अने सर्वदा एके अवाजे पुकारे ठे के " हे ज्ञव्य पुरुषो ! जो तमे आ दुःखमय संसाररूप जेलखानामांथी मुक्त थई परमनिवृत्तिमय मोक्षापद पामवा ईछता हो तो स्वपर ज्ञव्य भाव प्राणनी हिंसानो जेमा सर्वथा अज्ञाव ठे एहवा सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप धर्ममां निरतर प्रवृत्तमान थाठ "

संसार। जीवोने ते रत्नत्रयरूप पवित्रधर्म प्राप्त थवाना हेतुए ते परोपकारी महान् पुरुषो स्फटिकमणि समान पोताना अत्यंत निर्मल हृदय कोपमांथी नय निक्षेप पक्ष प्रमाणयुक्त स्याद्वादमय अत्यंत मधुर अने विशद वचनरतोनुं अस्खलित प्रवाहरूपे आ जूमनलमां प्रदान करे ठे, परंतु आ जरतक्षेत्रमा आजे आपना हीण जाग्ये तेवा परोपकारी ( तीर्थंकर गणधर पूर्वधर ) पुरुषोनु दर्शन पण दूर्लभ थई पन्तुं ठे, पण ते पूज्यपुरुषोनी आपणाउपर केटली कर्णणा द्रष्टि के तेउना समागमना अज्ञावे पण आपण तेउनी दिव्य वाणीनो कईक आस्वाद पामी शकीए एवा उदार हेतु वक्ते महान् गंजीर अनेक सूत्रोनी रचना करी पोतानी करुणारस वक्ते जरपूर चडमा समान उज्वल कीर्तीने आ जूमडलमा सर्वत्र फेलावी अमर करी ठे, वली ते गंजीर सूत्रोमा अल्प मतिउडे प्रवेश थवो छुण्कर जाणी श्री जिनजड गणा क्षमा श्रमण, श्रीसिद्धसेन दिवाकर श्रीमदुमास्वाती वाचक, श्री हरिजडसूरि, श्री अजयदेवसूरि, श्री मद्यशोविजयजी, श्री देवचडजी विगरे महान् बुद्धिवान करुण पुरुषोण ते सूत्रोना गूढ जावार्थ आपणी बुद्धि गोचर थई शके एवा उदार हेतुए पोताना अमूह्य ज्ञान तथा

काळने वापरी ते सूत्रांनी पवित्र जक्तिरूप अनेक सुगम्य अने परम हितकारी सरल ग्रंथो रची आपणा उपर असीम उपकार कर्तो, जेनी परंपराए आ पंचमकालमां माहरा जेवा अद्वय मतीने रत्नत्रयना हेतु रूप अमूढ्य वचन रत्नोनी लाज मळे ठे

अरे ! जो ते महोपकारी आचार्यो छारा ते परम कढ्याणकारी तीर्थंकर जगवंतनी दिव्यवाणी आपणा सुधी आवी प्होंची न होत तो आ दुपम कालमा आ जवसमुद्रमां कूबताने कोण शरण थात ? आपणी शी दशा थात ? परंतु कोई आपना जाग्योदये आज सुधी पण ते दिव्य वाणीनो अमृत सार आपणने प्रदान करनारा महान् पुरुषो वर्त्या जाय ठे.

जेना प्रत्युपकार सुधी आपणुं सामर्थ्य प्होंची शक्तु नथी, एम प्रतित थता मात्र परम आदर सहित ते पुरुषोनी पवित्र वाणीनी सेवा करवी, तेनी जक्ति अर्थे तेउनी पवित्र वाणीना प्रसार थवामां सेवा वजाववी ते माहरी शक्तिने लायक समजो माहरा केटलाक धर्मस्नेही सन्मित्रोनी सन्मतिथी नीचे प्रमाणे ग्रंथो प्रसिद्ध करवा अजिलापी थाउ तु

( १ ) “ महोपाध्याय श्री देवचंद्रजी कृत अतित चोवीश जिन स्तवनावली ” ( श्रीमान् मनसुखलालजी हरिलालजी विरचित वालावबोध सहित ) जेमा उव्यानुयोग, न्याय अने संयम विगेरे मुक्तिनां साधनो स्फुट रीते सिद्ध करी दर्शाव्यां ठे

( २ ) “ श्रुतधरने सोख उपमा ” ( ढाल वरु ) उत्तराध्ययन सूत्र उपरथी ( श्रीमान् मनसुखलालजी विरचित. )

( ३ ) “ विषय परिहार ” इंडिय पराजय शतकनो सार ग्रहण करी विषयो तरफ वैराग्य जाव उपजे एवी वैराग्य जनक ढालोनो संग्रह ( श्रीमान्-मनसुखलालजी विरचित. )

- ( ४ ) “ ममत्त्व परिहार ” जे वक्के परडव्य परक्षेत्र परकाल परजाव उपरथी ममत्त्व बुद्धि उठी स्वडव्यादिकमा स्थिति थाय एवो पद्यात्मक ग्रथ ( श्रीमान्-मनसुखलालजी विरचित )
- ( ५ ) “ सूत्र तत्त्वार्थ सार विचार ” ( ढाल वरु ) जेमा तत्त्वार्थ सूत्रना आधारे जीवादि तत्त्वोनु स्वरूप विस्तार पूर्वक वखा षेल ठे, चारे अनुयोगनो जेमा सक्षेपे समावेश ठे, ( श्रीमान्-मनसुखलालजी विरचित )
- ( ६ ) श्रीमान् देवचन्द्रजी कृत विहरमान विंशति जिन स्तवनावली वालावबोध सहित

ए प्रमाणे ठ ग्रथोनो संग्रह करो ते संग्रहित ग्रथने “ श्री सुमति प्रकाश ” एवा सार्थ नाम वडे प्रसिद्ध करु तु

बालक जेम जखमा पडेला चन्द्रविव ग्रहण करवानो मनोरथ करे ठे, तेम में पण थो जिन वचननो जक्तिना उत्तरार्थी माहरी शक्तिनो विचार नहि करता थोमान् महोपाध्याय श्री-देवचन्द्रजी विरचित विहरमान वीश जिन स्तवनावलीनो अर्थ करवानो अति साहसिक अने दुष्कर माहरो मनोरथ श्री गुरुनो कृपा उष्टियो सपूर्ण अयो ठे

स्वपरहित विचारी केटलाक प्राचीन आचार्योंना वचनाधारे माहरी मति प्रमाणे ते अर्थ लरयो ठे, ठता तेमा जे कई माहरी अल्प मतिने लीधे सूत्र विरुद्ध ललायु होय ते हे सुद्ध विद्वद्गरो ! मने अल्प मति जाणी क्षमा करशो, अने सूत्र प्रमाणे जे वचन होय ते हसनी पेठे गुणग्राही बुद्धि वक्के ग्रहण करशो ए आप प्रति माहरो नम्र विनती ठे

आ “ श्री सुमति प्रकाश ” ठपावी प्रसिद्ध करवामा माह्रा धर्म स्नेही बेजलपुर निवासी गाधी कौदरलाल उगनलाले फारमो तपासवा लखवा विचारवा विगेरेनी पुरेपुरी मदद करेल ठे, ते माटे तेमनो हु अतिगय आजारी ठु अने इच्छु तु के तेमना हृदय कमलमां एवी प्रवचन जक्तिरूप लक्ष्मी निरतर वास करो

आ ग्रंथ ठपाववामां यता खर्च पैकी गोधरा निवासी “ वाई-  
रुखमाणी हरिलाल वरजलाल ” ना स्मर्णार्थें तेमना तरफथी तेमना  
जर्जीजा “ शा. मगनलाल मनसुखलाले ” रु. १५० अंके रुपीआ  
वसें पचाश ज्ञानना बहु मानार्थें जेट तरीके अर्पण करेला ठे; तथा  
वीजा जे पुरुषोए पोताना तन मन धन विगेरेथी मदद करेली ठे  
ते सर्वेने कोटीशः धन्यवाद ठे.

आ ग्रंथ ठपाववामां जे कांई द्रष्टि दोषवडे जूलो रहेली, तेमांनी  
जेदली द्रष्टि गोचर थई तेदली माटे शुद्धि पत्र आपेलुं ठे, ठतां जे  
कांई जूलो रही होय तेमाटे सुधारी वांचवा हुं जलामण करुं तुं.

( संपूर्ण )









पिढ्ढर श्रीमान मनसुख लालजी

॥ ॐ श्री सर्वज्ञायनमः ॥

श्रीमान् मनसुखलालजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहरो ॥

॥ सिद्ध समाधि मयी सदा, पूरण परमानंद ॥

शिवदायक वंडं सदा, केवल ज्ञानानंद ॥ १ ॥

“ श्रीमान् मनसुखलालजी ” नो जन्म पंचमहाल जीह्वाना (गोधरा-गौचरा) गोधरा गाममा सवत १७९९ ना माहा वदी २४ नी सवारमां पोताना दादा दोशी अर्धदास दयालजीना घरमां थयो हतो, अने तेमना पिताश्री हरिलाल वरजलाल नामे ग्रहस्थ हता अने तेमनी मातृश्री जयन्ती नामे एतां अने ते हतं । वखतमां आ जहाल पी. ए. पाठान्त पंचमहाल गाममां ख्यात हतो अने एत धी सिद्दीया सरवाना नामा हतो । जीह्वो अमुक वर- जट्टे पो आपनासां आगतो एतां फक्त पोतानी मील- ए ताभंगे गरी जाणता हता एते श्री रैयतने जोइती एदी विगेरे आपनासां आ नी गी निशाखोमां वेपार हे ज्ञान आपनासां आ ए हत, हिसाव तथा वेपार नासुं तथा व्यज एतां एणी पुरी थई तेवुं लोको ता; एपर एद नामा एताथे वेपार अथवा नोकरी थावी पत्रा.

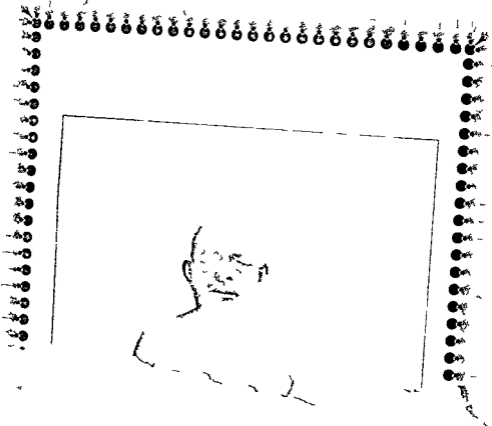
चसां ते वयते दैव  
 ने वखतवा तेजां  
 तात हता.  
 एतां  
 नाममा

जारा नशीवे एक उपाश्रय हतो  
 नेसाधु श्री रामविजयजीना ना-  
 तथा  
 व्यवहारीक  
 जैन बालकोने  
 साधुश्री राम-

१९००

१९००





॥ ॐ श्री सर्वज्ञायनमः ॥

श्रीमान् मनसुखलालजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहरो ॥

॥ सिद्ध समाधि मयी सदा, पूरण परमानन्द ॥

शिवदायक वड्डं सदा, केवल ज्ञानानन्द ॥ १ ॥

“ श्रीमान् मनसुखलालजी ” नो जन्म पंचमहाल जीह्वाना (गोधरा-गौचरा) गोधरा गाममा सवत १७९९ ना माहा वदी २४ नी सवारमां पोताना दादा दोशी अर्द्धदास दयालजीना घरमां थयो हतो, अने तेमना पिताश्री हरिलाल वरजलाल नामे ग्रहस्थ हता अने तेमनी मातुश्री जयती नामे हतां अने ते वंने धर्माष्ट हतां. ते वखतमां आ पंचमहाल जीह्वो पावागढ पंचमहालना नामथी प्रख्यात हतो अने श्रीमंत श्री सिंधीआ सरकारना तावामां हतो. आ जीह्वो अमुक वर-सने माटे पढे आपवामां आवतो हतो. पटादारो फक्त पोतानी मील-कतमां वधारो करी जाणता हता अने तेथी करी रैयतने जोश्टी केलवणी विगेरे आपवामां आवती न हती. खानगी निशालोमां वेपार संवंधी ज्ञान आपवामां आवतुं हत, साधारण हिसाव तथा वेपार संवंधी नामुं तथा व्याज आवडे एटले केलवणी पुरी थई तेवुं लोको समजता; त्यार वाद नाना ठोंकराउने माथे वेपार अथवा नोकरी करवानुं आवी पढतु.

गोधरामां ते वखते जैन बंधुउंना सारा नशीवे एक उपाश्रय हतो अने ते ते वखतना तेमां रहेनार जैनसाधु श्री रामविजयजीना ना मथी प्रख्यात हतो तेउंश्री सस्कृत तथा मागधी तथा व्यवहारीक विद्यामां पूर्ण जाण हता आ साधश्रीना हाथ नीचे जैन बालकोने गुजराती ज्ञापामां केलवणी आपवामां आवती हती. साधुश्री राम-

विजयजी पोताना बाल शिष्योने गुजराती जापानी साथे जैन पुस्त-  
कोनो पण अज्ञ्यास करावता हता अने तेउ पोताना शिष्य श्री विनय  
विजयजीनी मददथी ते बखतना जैन बालकोने सारुं ज्ञान आपता  
हता

श्रीमान् मनखुखबालजीने ते बखते तेमना दादा टोशी. अंध  
ईदास दयालजी जे ते बखते जैन पचना एक आगेवान ग्रहस्थ हता,  
ते हमेशा व्याख्यान साजलवा उपाश्रयमां साथे लई जता हता घण  
नानो उमरमा पण तेउश्री एकाग्र चित्ते व्याख्यान साजलता हता, अने  
नानपणनो केटलोक गदापणानी गीतो बीजा बालकोमा जोवामा आवे  
ठे तेवी तेउश्रीमा जोवामा आवती न हती बाल उयमा जेवी रीते  
नाना ठोकराउ रमतमां पने ठे तेवी रीते तेउश्री रमतमां पडता नहि.  
जन्मनी बखतथो जे जे तेउश्रीना समथमा थतु तेते तेउश्रीना लक्ष्मा  
रहेतु, अने ते बखतयोज जेम पूर्वनु ज्ञान होय तेम साधु असाधुनी  
परीक्षा तेउश्रीना मनमा हता खात्रा पीत्रानी बालकोने जेवी लालसा  
होय ठे तेवी तेमने न हनी रात्रो जोजनमा, वासी खात्रामा, तथा  
कंदमूल खात्रामा दोष ठे, ए आदि जे जे चारे दोषो तेमना साज  
लवामा आव्या हता ते ते तेउश्रीए नानपणथी त्याग कर्या हता  
एटखे सूत्रमा कहेला घणा गुण ग्रहण करवा अने दोषो त्यागवा एवो  
तेउश्रीनो स्वभाव हतो ज्ञान सपादन करे तेवी एटखे आशरे वरस  
वनी उमरना थता तेउश्रीने साधुश्रीए गुजराती केलवणी आपवा  
माडी, तेनी साथे जैनधर्मनो अज्ञ्यास पण बखत जोइ शरु कराववामा  
आव्यो, साधुश्रीने लाग्यु के आ बालकने जैनधर्मनो अज्ञ्यास कराव-  
वाथो एक जैनधर्मनु सारु बीज गेपाशे, बली ते साधुश्री बोखता के  
आ बालक मने तेम कोई पण ग्रथधारी साधुने नमश वादशे नहीं  
पण फक्त साचो निग्रथ मलशे तेनेज नमशे वादशे, एवं लोको समक्ष  
कहेता हता

आशरे वरस नवनी उमरमां तेउंश्रीए जीव विचार, नव तत्व विगेरे साधारण प्रकरणोनो अज्यास कर्यो हतो. ते वखते तेउंश्री ठ आवश्यक क्रिया पण विधि सहित अर्थ पूर्वक सारो रीते करता हता अने ते वखतथी तेउंश्री साधु मात्रने साधुपणाना गुण देख्या विना नमता वादता नहि

तेर वरसनी उमर थई त्यारे तेउंश्रीनुं लग्न शा. मोरारजी कसन-जीनी वोजी ठोकरी साथे थयु. रीवाज मुजव रात्रे पाननी बीडी तथा कसार खवडाववा आग्रह करवामां आव्यो पण तेउंश्रीए ते वात कवूल राखी नहीं, तेम लग्नना दिवसे नातना रीवाज मुजव परणनार वरने माताए लई जई नमावे पूजावेठे, ते प्रमाणे करवा तेउंश्रीने कष्ट पण तेउंश्रीए ते प्रमाणे कर्जुज नहीं.

तेउंश्रीए गुजरातीनो थोको अज्यास कर्या पठी श्री गोवाना आवेला एक मी केवीरु पासे अग्रेजी थर्न रीरु सुधीनो अज्यास कर्यो, आगल ते अज्यास करवानी ईछा हती, तेमज जैन तत्त्व संबंधी सारी-रीते अज्यास करवानी ईछा पण हती पण घर संबंधी केटलाएक कारणोने लीधे ते वंने ईछा पूर्ण थई शकी नहि ते वखते तेउंश्री कोइ स्त्री साथे बोलवा विगेरेनो कोइ पण संबंध मन वचन कायाथी राखता नहीं ए विगेरे केटलाएक नियमो पञ्चखाण लीधा शिवाय पण सत्तर वरसनी उमरसुधी तेउंश्रीए राख्या हता; एम हाल सुधी पञ्चखाण लीधा विना पण व्रती सरखी वर्त्तणुक राख्या करे ठे पञ्चखाण लेवामां पञ्चखाण जागवा संबंधी अथवा ते व्रतना अतिचार संबंधी तेउंश्रीने घणो डर रहेतो हतो उपवासादि करवानी शक्ति तेउंश्रीमां न हती तेथी बीश वरसनी उमर सुधीमां ( ६१ ) एकसठ उपवास तथा ( ७५ ) पंचाशी आंबील तथा ( ५ ) पांच एकासणां कर्या हतां.

संवन १९१७ नी साखमा जीवविचार तथा नव तत्त्वादिकना विचारमा खद्दुव्यना विषयमां वधारे खुलाशो करवानी ईच्छा थई के समकीत शु ? साचो गुरु कोण ? साचो धर्म शु ? तथा धर्मास्तिकायनो लक्षप्रजाय शु ? ए आदि निश्चय करवानो विशेषे लक्ष रह्यो अने तेते शकाउना खुजासा माटे केटलाएक श्री पूज्यो तथा नामीचा जैन साधुउ तथा पफिनोने प्रश्न पूठया कर्षा पण संतोपकारक जवाव देवावालो कोड मढ्यो नहीं तेथो तेउंश्रीए नाममात्र साधुउनो समागम ने वखनथीज वध कर्षो हतो, पठी घणी जरुरना कारणे कोड साधुनी सावे वात करी हशे पण विशेषे परिचय राख्यो न हतो विशेषे तत्त्वनी शोधमा पडवाथो प्रतिक्रमण, वाह्य व्यवहार व्रत क्रिया उपरथी ध्यान उठाव्यु अने सद्गुरुने शोधया उपर तथा समकित निर्मल करवा उपर पूर्ण ध्यान राख्यु तेथो करी जैनधर्मनां पुस्तको वांचवा तथा मनन करवा अज्यास राख्यो, तेमाथी जोईतो सारो सरल मार्ग मढ्यो पण गुरुगमनी जरुर चाकी रही अने तेथो कया साधु सरल मार्ग वतावी शके ठे, तेनी शोधमा केटलोएक वखत काढ्यो दुनियाना चालता नियम प्रमाणे दरेक माणस पोते वहारथी सारा देखाय तथा नजदिकना माणसो पोताना वखाण सारी रीते करे, तेम तेउं टररोज यत्न करे ठे अने तेमा फतेहमद थाय तो तेउं एम समजे ठे के था नवनु सार्थक थयुं, था क्रमने अनुसारे घणो खरो जैन साधु वर्ग पण चाढ्यो जाय ठे तेउं पोते पोताने मखेला वरातनो जोईए तेवो उपयोग करवाने वदले गष्ठ तथा चेला चेलीउनी खोटी खटपटमा पने ठे दुनियादारीमा रहेनार स्त्री पुरुषोने जेम फरजननी सालसा होय ठे तेमज घणा सरा जैन साधुउने पण चेला चेलीउनी थाकाहा होय तेम देखाय ठे, तने लीधे तेउं ज्ञान मेलववानो मखेलां थवसर फोगट गुमावे ठे

जैनधर्मनुं खरुं रहस्य जाण्या वगर घणा । खरा जैनवर्गना मा-  
णसो मत ( श्वेतांबर, मीघंबर ) विगेरेना फदमां पनी आने मार्गे  
चडे ठे अने ते आडे मार्गे चक्राववामां मुख्यत्वे करीने वने पद्दना  
जैन पंढितो अने साधुवर्ग सहायकारी थई पडे ठे एहवुं श्रीमान्  
मनसुखलालजीने सिद्ध थयु. आम करवामा जैनवर्ग तो शुं पण घणा  
खरा अन्य धर्मना लोको पण पोताने मलेली तक फोगट गुमावे ठे  
आ प्रमाणे तपास करतां स्थूल दोष वगरना अने सूत्र प्रमाणे शुद्ध  
बोलनार सद्गुरु मट्या नही तेथी तेउंश्रीनी साधु उपरनी जे आस्ता  
हती ते विलकुज उठी

जैन शास्त्रो वाचवा विचारवामां काल व्यतीत थवानी साथे  
ज्ञाननो पण वधारो थयो अने पूर्वना ज्ञान उदयथी ज्ञानचक्रु खी-  
लवा माड्या अने मनमां निश्चय कर्योके हवे केवलज्ञानी मट्या विना  
माहरा प्रश्नोनी समाधानी थाय तेवो सचव नथी, एम विचारी आ  
काममांथी ध्यान उठावी आजोवीका करवा तरफ लक्ष खेंची वेपार  
अगर नोकरी करवानो विचार राख्यो.

संवत् १९१९ नी शालमां पंचमहालना मुखी गोधरा निवासी  
शेठ इसमालजी गुलामहुसेनजी साहेरवालानो त्यां नोकरीमां जोमाया  
आगरे पाच वरस पठी पोतानी पासे नाणु एकतुं करवुं एवा अति-  
प्रायथी संवत् १९२४ नी सालमा कलकत्ते जवानी उमेद धारी  
व्यापार अर्थे निकट्या, ते श्री वटोदरा गामे जई काश्क व्यापार  
कर्यो तेवामां तिहा दाहोदना महमदअली करीने मोटा वेपारी  
मट्या, ते प्रथमना संबंधवाला हता तेमणे तेउंश्रीने पूठ्यु के तमो  
शा उमेद उपर निकट्या ठो ? तो तेउंश्रीए कष्टु के माहरे कलकत्ते  
नोकरी करवा सारु जवुं ठे त्यारे ते महमदअलीए कष्टु के ते करतां  
हमारी पासे आवो तो नोकरी अने वेपार वने तमोने सारु फायदा-  
कारी थई पडशे. एम सांजली तेउंश्री कलकत्ते जवानो विचार वध

राखी ते महमदअली साथे दाहोद गया, त्यां नोकरी तथा वेपार वनेमां सारी पेदाश थवा छागी तेउंश्रीने वेपार अर्थे दक्षिण, कोंकण, माखवा, सोरठ, काठियावारु विगेरेमां जवानो ज्यारे ज्यारे प्रसंग आवतो त्यारे त्यारे जैनधर्मना साधुउंनी तपास करता पण साचा तत्त्वने बतावनार गुरु कोई मट्या नहि वळी सर्वे अन्य धर्म शास्त्री-उंना तत्त्वोनुं पण शोधन कर्या कर्युं, “वायवल, ऊवूर, तोराइत, किलामेसरीफ” विगेरे शाखो सारी रीते तपास्यां, वळी वेदनु निगम शास्त्र, गीता, पंचकरण आदि ते लोकोनी गुरुगम सहित तेमनी साथे रही सारी रीते तपास्यां, तथा वेदनी श्रुतिउं विगेरेनो घणो तपास कख्यो, वळी घणा वेद वादि, साख्य, वैशेषिक, जैमीनीय, मी-मासक, योग शास्त्रवाद्या तथा मुसलमानो तथा खीस्तीउं साथे वाद-विवाद चर्चा कख्या करी पण कोई साथे ऊघको टंटो कख्यो नथी तेम तेउंनु मन पण डुखव्युं नथी पण सखाह तरीके वात चर्चा करता के जेथी ते लोको फरीधी वात करवा खुशी रहेता पोताने जैननो अथवा डीघंवर श्वेतावर विगेरे कोईपण मतनो इठवाद के पक्षपात नहोतो पण न्यायनी वात जे पोताने निश्चय थाय तेज ध्यानमां राखता

सवत् १९१५ नी सालमा पंचमहाल जिह्वाणा कालोळ ताळुकाना गुसर गामनी नजदीक एक गुफानी अंदर जैनमुनि “श्री हुकुम-मुनिजी” महाराज आवी पधार्या, अने त्या तेउंश्री आशरे दश वार-दिवस ध्यान करवा रख्या ते वावतनी वेजलपुर निवासी जैन गृहस्थोने खबर पडवाथी ते गृहस्थो तथा खस प्रसंगे वेजलपुर आवेला गोध-राना जैन गृहस्थो मळी हर्ष सहित वधते आनदे घणा आग्रह पूर्वक महाराजश्रीने तेन्वा माटे गया महाराजश्री तेउंना घणा आग्रहथी वेजलपुर पधार्या, सघना आग्रहे केटलाक दिवस वेजलपुरमा रख्या त्यां

ते साधुश्री पोताना स्वाभाविक गुणे धर्मोपदेश करता अनेक जव्य जनोने प्रतिबोधता ज्ञान दर्शन चारित्र वडे कर्म क्य करता अने ग्रंथो पण रचता हता, घणा अन्य दर्शनीयो पण महाराजश्रीनी देशना साजलवा आवता हता अने पोताना प्रश्नो खुलासो पामी घणा खुशी थता, तेमज महाराजश्रीना घणां वखाण करता हता. गोधरा तथा वेजलपुरना गृहस्थोने ते महाराजश्रीनी देशना अति चमत्कारोक अने आश्चर्य उपजावनारी लागी.

श्रीमान् मनसुखलालजीना मित्र गोधरा निवासी शा मनसुखलाल देवचंदे श्रीमान् मनसुखलालजीने पत्रद्वाराए सूचव्यु के श्री हुकुममुनीजी नामना एक साधु हालमां वेजलपुर आवी पधारेला ठे अने ते अभ्यात्म ज्ञानी तथा ध्यान अचयासी ठे तेथी ते महाराजश्री तमारा प्रश्नो उत्तर आपसे, एहवुं अमारा धारवामां ठे माटे तमो आ पत्रथी तुरत अतरे आवजो ने कागल तेउंश्रीने मलतां तेना उत्तरमा तेउंश्रीए पोताना मित्र मनसुखलाल लपर लख्युं के तमे पोते समजी लेजो, मने तो एहवा घणाए मढ्या ठे, केमके घणा साधुउने मलवार्थी प्रथमथीज तेउंश्रीनुं चित्त नाउमेद थयेलुं इतुं, इहा लगी के हमणां जैन तत्त्वनो साचो उत्तर आपी शके एहवो कोई जणातो नथी तो फोगट श्रम शा वास्ते करवो ? त्यार पठी वे चार पत्रना जुवाव सवाल तेउंश्रीने पोताना मित्र साथे थया, आखर तेउंश्रीना मित्र मनसुखलाले लख्युं के तमारा मुख्य वे चार प्रश्नो लखजो एटले अमो महाराजश्रीने पृठीने तेनो उत्तर तमोने लखीशुं पठी तमाक मन माने तो आवजो. त्यारे तेउंश्रीए पत्रद्वाराए प्रश्न लखी मोकढ्यां ते नीचे प्रमाणे—

१ गुणगणां एटले शुं ?

२ धर्म शुं ? अने ते रुपी के अरूपी ? अने ते आत्माथी जिन

के अजिन ए आदि ?



इ धर्मास्तिकायनो सधर्पाय ते शु ?

उपर प्रमाणेना प्रश्नो लखी तेउश्रीए तेमना मित्र मनसुखलाल  
उपर मोकल्या एटले ते पत्र लेई ते मनसुखलाल महाराजश्री  
पासे गया अने उपरना प्रश्नो पूठ्या तेनो महाराजश्रीए उत्तर  
आप्या के कोई रात दिन वे वरस सुधी माहरी पासे वेसे  
पण ए प्रश्नो नो पुरो उत्तर लखी शकाशे नहि माटे तेमने  
समजवु हशे तो आवशे ठेवट महाराजश्रीए ते कागल पोताना  
हायमा लई वाचा जोयो तो तेमां लरयुं हतुं के आ प्रश्नो नो  
पुरो उत्तर तमे समजी लेजो अने सक्षेपे मने लखी जणावजो,  
आ घीना वाची महाराजश्रीए सक्षेपे उत्तर लखाव्यो ते  
कागल तेउश्रीने पहोंघतांज मनमां आव्युं के अहिंथां कांई सारो  
दुखासावध उत्तर मखे तेम जणाय ठे, मुनि पण ज्ञानी अने सम-  
जापी होय एम जणाय ठे, माटे नोकरी विगेरेनु गमे तेम थाय पण  
जाते जई महाराजश्रीने मखवु जोईए एम विचारी शेठनी रजा लई  
तुरतज श्री दाहोदथी नीकली बीजे दिवसे सांजना चार वागतां  
गोधरे आव्या, अने तुरतज तेवातनी खबर परता गोधरावाला तेमना  
मित्र मनसुखलाल विगेरे दश वार थावकोए तेमनी पासे आवी कहुं  
के अत्यारेज वेजलपुर जवु जोईए केमके ए मुनि कोईना प्रतिवधमा  
नथो, घडीमां विहार करे तो आपणो उमेद अटके, एम कहेवार्थी  
तेज दिवसे गोधराथी नीकली कहेवा आवेला थावको साथे रातना  
आठ नय वागताना सुमारमा वेजलपुर जई पहोच्या अने वांठित  
प्रश्नो महाराजश्रीने पुठता केवलज्ञार्नीनी पेठे उत्तर मख्यो ते सा-  
जली तुरतज बहु जय, ताप, अने क्लेश उतरी गयो, अने मनमा  
आव्यु के शु आ केवली ठे ? ए विगेरे मनमां विचारो आव्या अने  
सर्वे प्रश्नोना उत्तरथी नि शक समाधि थई कोनो मण चार जेम  
माया ऊपरथी उतरी जाय तेथी जे हलवा पणुं लागे अने अंगमां

जेम वीर्यं फुरे तेम ज्ञानानंद वीर्यनी स्फुरणा थई. एज तरण तारण, एज साचा गुरु, एज माहरा धर्माचार्य ठे, ए समान में कोईने आजसुंधी गुरु जाण्या नथी एम तेउश्रीना मनमां निर्धार कयो. त्यारवाद गोधरावाला श्रावको आग्रह करी महाराजश्रीने गोधरे तेकी छाव्या, त्यां महाराजश्री पासे आठ दिवस सुधी श्रीमान् मनसुखलालजी रह्या. वली विविध प्रकारे रहस्यो सहित प्रश्नो पुठ्यां अने महाराजश्रीनी शुद्ध नयनी देशना साजह्या करी. आखर दाहोद जवा साक रजा मागो अने कहुं के आजथी माहरे तमारुं शरण ठे अने मने शो हूकम फरमावो ठो ? त्यारे महाराजश्रीए कहुं के “ एज एधीज सर्वे कार्य तथा समाधानी थशे” एम रजा मखवाथी उपाश्रयथी बहार निकह्या पठी पांच सात डगलां घर तरफ वलता मनमां आव्यु के “एज एटले पोतानी निर्मल ज्ञायकतामां उपयोग देवो तथा तिहांज थिरता वधारवो अने परद्रव्यना भमत्वे अगर राग द्वेषादिके उपयोग चूकवो नहि अने एज वदले पुद्गल विषयादिनो राग तजी उपयोग थिरता अर्थे शुद्ध नये सिद्धांत अच्यास कर्या करवो” ए विचार आवता अज्ञेदध्यान नहि पण अज्ञेदध्यान जेवो एक मोटो परम उह्लास आव्यो के ज्ञायकतामां उपयोग थिर राखवो एमां धर्म सवंधीना असंख्याता योगो समाय ठे झांत्यादि दश धर्म, पंच महाव्रत, पंचाचार, खट् आवश्यक, पूजा, शील, तप, संयमादि सर्वे धर्मानुष्ठानोनो जाव एमां समाय ठे माटे हवे ज्ञान दर्शन धरण वीर्यादि आत्म स्वजाव पर्याय जे कर्म योगे मलिन थया ठे ते सर्वे कर्मयोग वर्जी स्वजाव योगे थिर रमण करवाथी सर्वे शुद्धात्म स्वजाव निर्मल थशे एम आनंदनो उजरो वारवार हृदयमां आव्या कयो. रस्ते चालतां आरुं अखलं ध्यान गयुं नहि, घेर जई घरना कामथी परवारी दाहोद जता सुधी आनंद शिवाय वीजू कांइ मनमां आव्युं नहि त्यारवाद पण आनंदनो उठालो मटी धीरे धीरे आनंद

जमाव थयो, हरेक कार्य करतां बारवार स्वजाव रमण थावतुं रहु  
अने ध्यानदमां वृद्धि यती रही.

सवत १९३९ मा नोकरी ठोडी दाहोदमांज पोताना नामनी पेढी  
खुल्ली करी आरुत विगेरे रोजगार शरु कयों, पोते अने वे वाणोतर  
मली पेढीनु काम चलाव्यु ते वखतमा श्री देवचंद्रजी महाराज कृत  
“नयचक्रसार, आगमसार” विगेरे ग्रंथो वाचवामां आव्य, वली ते  
शिवाय कुदकुंदमुनि कृत “समयसार, पंचाम्तिकाय, प्रवचनसार,  
अष्ट पाहुड आदि” तथा श्री यशोविजयजी कृत “द्रव्य गुण पर्या-  
यनो रान, अध्यात्मसार” विगेरे ग्रंथो वांचवा अने उपदेश देवानो  
शरु ययो, कोई कोई वखत गोधरा, बेजलपुर आवता त्यारे पण  
उपदेश करता रहेता.

आशरे सवत १९३९ नी सालमां दाहोदनी दुकाननुं काम वडा  
पुत्र मगनलालने सोंपी व्यापार माटे रतलाम गया, तिहा वे त्रण  
वरस सुधी काई उपदेशनी वात करी नहि पण आखरे स्वजाव  
तुप्यो रह्यो नहि पटले केटलाक तिहाना निवासी तेरापथी गृहस्थो  
जेठमलजी, हीराचदजी, ताराचदजी, निहालचंदजी, विगेरेने शरु  
तत्त्वनी श्रद्धा प्रतित करानी वली तेरापंथीउंना साधु दीपचदजी,  
डाखचदजी विगेरे तथा साधवी जूराजी विगेरे केटलाकने तथा  
केटलाक मंदिर मार्गीउंने शरु तत्त्वनी प्रतित करावी तेउंश्री पोतानु  
ध्यान निर्मल राखवा गाम बहार हवा खावा जता आवतां अने  
पाठवी राते अग्र जे जे वखते पोताना मनने अवकाश मलतो ते  
ते वखते उपयोगनी थिरता शरुता वधारता रहेता दाहोदनी दुका-  
ननु काम तेउंश्रीना वरु पुत्र मगनलालचाऽ चलावता हता तैथी  
तेउंश्रीने ते तरफनी फिकर विलकुल हती नहि

सवत १९५० ना आसो मासमा तेउंश्री दाहोद आवी रह्या अने  
त्या पण तत्त्वनो अच्यास तथा उपदेश चालु राख्यो अने ग्रंथो रचवा

उपर ध्यान लाग्युं पण तुटा ग्रंथो शिवाय अंग उपांगो पुरेपुरां पोताना सांजलवासां आव्यां नहोतां, ते करुके करुके मंगावी वांचवा मांड्यां एटलांमां दरदथो आंख वगमवा मांफी त्यारे तेठ घणी मुश्केलीथी प्रोते वांचता हता पण ग्रथो पहेला वांच्या निरधार्या हता ते उपरथी उपदेशनी रुचि थया करनी हती पण अंगो उपांगो पुरेपुरां सांजलवा न मढ्यां तेथी घणी नाउमेदी थई

'संवत १९५३ नी सालमां तेठश्रीना मनमां आव्युं के में सूत्रो सांजलवा नथी अने मात्र ग्रथो सांजली वांचिने उपदेश' करु तुं ते सारी वात नथी अने जगवती सूत्र विगेरे कोई कोई सूत्रो वालपणामा सांजलवा पण हता पण तेनी पुरेपुरी स्मृति विना अने नयज्ञाने निश्चय कर्या विना वालजीवने उपदेश देवो तेमां उतसूत्रनो मोटो जय ठे केमके उतसूत्र वोलवा जेवुं कोई मोटुं पाप नथी. एम विचारी उपदेश करवो बंध राख्यो अने शुद्धात्म तत्त्वनुं ध्यान करवु एज पोताने माटे श्रेय ठे एम जाणी ध्यान करवानो तथा मात्र पोतेज वांची समजवानो विचार राख्यो. पण दिने दिने आंखे कांईक दरद वधवाथी आखनी शक्ति मंद पडी गई त्यारे सगा अने मित्रो पासे जाचना करी के कोई मने सूत्रो वांची संजलावे तो तेनो हुं मोटो आचारी थईश वखते कोईए कांई वांचा आप्यु पण अखंरुधारा श्रुतज्ञाननो अंगर श्रुतश्रवणनो स्वाद मढ्यो नहि. तेथी चित्तमां घणो खेद थयो, पूर्वकृत पापनो घणो पश्चाताप आव्यां कर्यो, मने दीन अनाथने सूत्र वांची आपनार कोण मले ? एम चित्तमा तेठश्रीने घणो खेद उपज्यो स्कूलोमां जणेला ठोकराठने पण पगार आपी आपीने केटलीक वखत केटलाक मास सुधी वंचाव्युं पण काई प्रसन्न पर्युं नहि. एम आशरे संवत १९५५ नी साल सुधो सूत्रो सांजलवा न मढ्यां ते वावतनुं मनमा घणु दुःख वेद्यु आखर एज

संवत् १९५५ ना चर्शतर मासमां पूर्व महत्त्व पुण्य योगे " कस्तुरां " नामनी एक बाई तेउंश्रीने त्यां आवी तेने तेउंश्रीए पुठुं के हे बाई। तुं शा कामे आवी ठे? ते बाईए कहुं के माहरे दवा विगरे काई पण संसारी काम नथी पण हु सहजे आवी दुं, मने काई तत्वनी वात समजावो. त्यारे ते बाईने तेउंश्रीए कहुं के में उपदेश देवो बंध कयो ठे तेवामां तेणीनी वेहेन " हमीरा " ते पण तिहा आवो, ते वंने वेहे-नोए उपदेश माटे घणी खेंच करी अने तेउं बोली के हमो खरा मघ्याने खरा ताप वखते उपदेश सांजलवा आबोशु के जेथी तमोए उपदेश बंध फेरलाठे अने अमने समजावो तेनी कोईने खबर परुशे नहि के जेथी तेउंने मातुं पण लागशे नहि ए प्रमाणे तेउंनी वधारे खेंचथी शुरू तत्त्व अने शुरू उपयोगनो उपदेश शुरुआनयीज करवा मांडयो. ते बाईउं तीर्थकरोनां शुरू स्याछाद वचनो अमृत पेठे गट गट पीवा लागी अने पोताना आत्म अगे प्रगमाववा लागी पठीथी उपदेश वध करवानी वात करी पण ते चाइउंए ते वात कबुल करी नहि अने तेउं बोली के हमे ता ढररोज तत्त्वोपदेश सांजलवा आबीशु त्यारे तेउंश्रीए कहुं के हे चाइउं। "माहरे सत्रो सांजलवानो उमेद ठे पण उपदेश देवानो उमेद नथी " त्यारे ते वे वेहेनोमाथी कस्तुरा बोलीके तमारे जे जे सूत्रो सांजलवानो अजिप्राय होय ते ते सूत्रो हु तमोने वाची सज लावीश अने तेनो अर्थ समजाववा पण तमो रोकाशो नहि, पण तमो सूत्रो सांजलव्या पहेला अने पठो जे जे तत्त्व सगधी हुं तमोने प्रश्नो पूठु ते ते मने कफ़णा करी समजावता रहेजो पठी ते कस्तुरा याइए अरुड पाच पांच ठ ठ कलाक सुधी खेद आलस उध नाउ-मेदी विना आशरे पदर सूत्र तेउंश्रीने चार पाच वरस सुधीमा वाची सजलाव्या वली पाच सात सूत्र वेजलपुर निवासी "गाधी-दखसुख नाथजीए" पण तेउंश्रीने वांची संजलाव्या ए शिवाय वाकीना सूत्रो कोइ कोइ वाची आपनार मद्या ते सूत्रोनी विगत-

“आचारांगादि अर्गाश्चर अंग, जीवाजिगम, पन्नवणा, उववाइ  
सूत्र, रायपश्रेणी, महानिशीथ, नंदीसूत्र, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन,  
दश पयन्ना मांहेथी आशरे ठ सात पयन्ना, दश वैकालिक”

कुल ठवीश सूत्र तथा ए शिवाय पण केटलांक सूत्रोमांनो कोई  
कोई जाग तेउंश्रीए सांजदयो. ए शिवाय “सुमतितर्क, पंचवस्तु,  
खददर्शन समुच्चय, विशेषावश्यक, स्याद्वादमंजरी, स्याद्वाद रत्ना-  
करावतारिका, तत्त्वार्थ टिका” ए आदि केटलाक ग्रंथो महान्  
पंडितोना करेला तेउंश्रीने कोई कोई वांची संजलावनार मढ्या,  
पण मुख्य “कस्तुरां वाईनी” तेउंश्रीने पूर्ण मदद हती तेथी  
तेउंश्री ते कस्तुरां वाईनो महान् उपकार मानता रह्या अने ते  
वाईने शुद्धात्म जावमां उढ करवाने माटे विशेषे करी उपदेश  
देता रह्या. तेउंश्री उपदेश देवाने उत्सूत्रना जयथी करता हता  
अने घणी वखत उपदेश देवो वंद्य करता हता पण ते वाईना  
आग्रहथी आजसुधी उपदेश देवो चालु वर्त्ते ठे

ते वाई पाठलथी पोताना पती “शा.संतोकचंदजी माणैकचंदजी”ने  
पण तेउंश्री पासे लावी अने ते पण उपदेश सांजली थोडाज वखतमा  
शुद्ध तत्त्वना जाण थया. जेणे “श्रीदेवचंद्रजी कृत वीशी” नो वालाव-  
बोध कर्यो ठे, ते वांचवाथी पंक्तितोने तेमनी पंक्तिाई तथा ज्ञान के रुचि  
समजाशे. ए शिवाय ते “संतोकचंदजीए” केटलाक अध्यात्मिक पदो  
विगेरे रच्या ठे. ते सर्वे आ नीचे लखेला ग्रंथोमां सामेल ठे.ते जोएथी  
तेमनी विद्वता प्रगट जणाइ आवशे. आज पण श्रीमान् मनसुखला-  
लजीनी शैलीमा सर्वेथी संतोकचंदजी घणी चढती पायरीमां ठे अने  
तेउंश्री एमनी सलाहथीज बर्यां करे ठे ए संतोकचंदजी तथा चंपा-  
लाल, जेचंद, गीरधरलाल, ठोटालाल मनसुखलाल विगेरे दाहोदमा  
केटलाक चाईउं तथा केटलीक वेहेनो केई दरजो तत्त्वज्ञान पामेलाठे

अने एमने लीधे दाहोदना दीगवरी लोकोमा पण केटलो सुधारो यतो आढ्यो ठे शिवाय केटलाक ब्राह्मणो अने मुसलमानो, विगेरे पण तेउंश्रीना बोधने चहाय ठे

संवत् १९५९ नी सालथी तेउंश्रीए ग्रंथ रचवा. शक्य कर्या तेमा तेउंश्रीने मूरय पणे समजाव उपर ध्यान बधारे होवाथी " सामायक सिध्युपाय " नामनो पहेलो ग्रथ कर्यो, त्यार बाद शुद्ध उपयोग, उपर ध्यान तेथी " शुद्धोपयोग प्रवेशिका " नामे ग्रथ कर्यो, वली कस्तुरा वाश्नो महत् उपकार पोताना मनमा हतो अने ते वाई गाम " राणापुर " गएला हता, त्यां तेमनो बोध डढ रहेवा माटे " आत्मबोध पत्रिका " नामे ग्रंथ रची ते वाई उपर लखी मोकलाव्यो तथा अनुभवमा प्रेम हतो तेथी " अनुभव प्रवेशिका " नामनो ग्रथ रच्यो, तथा ड्रव्यानुयोग विना जे अध्यात्मनो उपदेश ते कूटस्थ एकांत जेवो थड जाय ठे माटे " सम्यक् न्याय सुधारस " नामे ड्रव्यानुयोगनो ग्रथ रच्यो, एम ए पाच ग्रंथो संवत् १९६२ सुधीमा पुरा कर्या ते संवत् १९६३ नी सालमा " श्री सुमति विलास " नामना पुस्तकमा उपरना पाच ग्रंथोनो समावेग करी दाहोदनिवासी " शा सतोरुचदजी माणिकचंदजी " विगेरेए उपावी प्रसिद्ध करेला ठे

त्यार पठी शुद्ध व्यवहार सहित निश्चयमां ध्यान राखवा माटे " श्री सुमति व्यवहार " नामनो ग्रंथ तेउंश्रीए संवत् १९६३ नी साल सुधीमा तैयार कर्यो ते ग्रथ संवत् १९६४ नी सालमा दाहोदनिवासी शा सतोरुचदजी माणिकचंदजी विगेरेए उपावी प्रसिद्ध कर्यो ठे एमा उत्तराध्ययनना मोक्षमार्ग नामा अष्टावीशमा अध्ययनना सारनी ढालो, तथा सम्यक्प्राक्रम नामना उगणतीसमा अध्ययनना सारनी ढालो, तथा अनाथी मुनीनी सद्द्वैयाय, वली श्री केशी स्वामी

तथा श्री गौतम स्वामीना प्रश्नोत्तरनी ढालो, तथा तेर क्रियानी सङ्ज्ञायनी ढालो, तथा उत्तराध्ययन मांहेला कोई कोई विषयनी ढालो, तथा सद्बोध अष्टोत्तरी, तथा घहुंलीठ, तथा परचुरण स्तवनो, तथा पदो, सङ्ज्ञायो, तथा रुपजादि चोवीश जिनोनी स्तवन चोवीशी अर्थ सहित, तथा चैत्यवदन चोवीशी अर्थ सहित, तथा चोवीश जिननी थोयो, तथा नवपदनी नव थोयो, तथा सुबोध प्रकाशक ठंद के जेमां नव तत्त्वनुं स्वरुप तथा क्रोधादिक कषायोना दुर्गुणो तथा तेने जीतवाना उपायो दर्शाव्या ठे ए आदि विषयो ठे

त्यार वाद नवपद ध्यान अर्थे “नवपद पूजादि संग्रह” नामनो त्रीजो ग्रंथ तेठश्रीए संवत १९६५ नी साल सुधीमां तैयार कयों ते ग्रंथ “संतोकचंदजी” विगेरे संवत १९६५ नी सालमां ठपावी प्रसिद्ध कयों ठे जेमां नवपद पूजा मूल तथा अर्थ सहित, तथा जिनवाणी ठद वावनी, तथा परचुरण घहुंलीठ, स्तवनो, पदो, तथा महोपाध्याय श्री देवचंडजी कृत प्रचंजनानी सङ्ज्ञाय मूल, तथा अष्ट प्रवचन मातानी सङ्ज्ञाय पोताना करेला अर्थ सहित, तथा साधुनी पच जावना पोताना करेला अर्थ सहित, तथा “संतोकचंदजी माणकचंदजी” कृत चैत्यवंदनो, ठंदो, पद विगेरे, तथा “वेहेन कस्तुरां कृत” ठंद, स्तवन विगेरे तथा पूर्वाचार्य श्री विजयचंद्र सूरिनो करेलो गौतम स्वामीनो रासपोताना करेला अर्थ सहित ए आदि विषयो ठे.

त्यारवाद द्रव्यानुयोगना विशेष जाणपणा माटे “श्रीसुमति प्रकाश” ए नामनो चोथो ग्रंथ तेठश्रीए संवत १९६६ नी साल सुधीमां तैयार कयों ते संवत १९६६ नी सालमां दाहोद निवासी “शा. संतोकचंदजी माणकचंदजीए ठपावी प्रसिद्ध कयों ठे. जेमां महोपाध्याय श्री देवचंडजी कृत अतीत स्तवन चोवीशी पोताना करेला अर्थ सहित, तथा श्री देवचंडजी कृत विहरमान स्तवन वीशी संतोकचंदजी माणकचं-



दजीना करेला, अर्थ सहित, तथा श्रुतधरने सोख उपमानो ढालो, तथा त्रिपय परिहारनो ढालो, तथा ममत परिहारनी ढालो, तथा सूत्र तत्त्वार्थ सार विगेरे त्रिपय ठे.

संवत् १९५६ नी सालमा दुकाल पढ्यो ते वखते दाहोदमां कुवा विगेरेमा पाणी खूटयु अने डोहोखु पाणी वापरमां खेवुं पन्तु हतुं, तेवामा गोधरा गामे एक बोहोरानी मटगी मटानवा सारु ते बोहोराए तेउंश्रीने तेडाव्या, तेथी तेउंश्रीने गोधरे जवु पड्युं अने केटलाक दिवस तिहा रहेवुं पड्यु. एटले तिहांना निवासी श्रावक खोफो तत्त्वनो उर-देश साजलवा आववा मांड्या अने गोधरे पाणी तथा दूध चोख्खु मखतु इतु तेथी तिहा तेउंश्रीए वधारे दिवस मुकाम राखवो निश्चय कर्यो जाईउं तथा वेहेनो मखी आशरे त्रीश चाखीश जण उपदेश सांजलवा आवता हता, तेमा "समरत अमीचद" नामे एक वाईने शुद्धात्म तत्त्व आराधवा बदले अने ड्रव्य चावदया आदरवा चित्तमां चोट लागी—उपदेश लाग्यो त्रणमास रहीने त्यारवाइ तेउंश्री दाहोद गया अने ते "समरत अमीचदे" एक बोजाने वात करवाथी गोधरा नजीकना वेजलपुर गाम निवासी पण केटलाक श्रावको उपदेश साज-लवाना वधारे रागी थया. केमके ते वेजलपुरना श्रावको पण गोधरे आवता त्यारे तेउंश्रीनो उपदेश साजलवा प्रथमीज आवता हता तेमा गाधी कोदरखाल उगनखाल, तथा दखखुल नाथजी, तथा मणीखाल खेमचद विगेरे विशेष रुची वाला थया संवत् १९५९ नी सालमां वाई-समरते वेजलपुर जई उपदेश फेलाव्यो तेथी केटलाक जाईउं तथा वेहेनो रुची वाला वप्या ते वेजलपुर वालानी रुचि अने आग्रहथी संवत् १९६० ना अरसामां तेउंश्री पण आशरे एक मास रहेवु धारी श्री वेजलपुर गया त्यारे सतोकचदजी तथा कस्तुरा वाई तथा समरत विगेरे सर्वे साथेज इता घणा दिवस उपदेश चालवाथी वेजलपुरना

श्रावकोमां घणा जीवो रुचिवाला थया, त्यार पठी दरसाल थोमा थोडा दिन वेजलपुर तेउंश्रो श्रावता अने उपदेश आपता रखा. एम संवत १९६५ नी साल सुधी वन्यु; पठीथो वृद्धावस्थाने लीधे तथा नावी श्रांखें उपदेश देतां वधारे 'दरद थवा लाग्यु तेथी संवत १९६६ नी सालमां तेउंश्रो वेजलपुर जई शक्या नहोता पण संवत १९६० नी सालथीज वेजलपुरमां शाख वांचवा, सांजलवा, जणवा, विचारवानो अच्यास दिने दिने वधतो रहो अने जणनारनो, जणावनारनो टाईम नियम सारी रीते बंधायो, तेथी शाख अच्यासनुं काम सारी रीते धमधोकार चाट्यु अने तत्त्वनी डढ रुचि, प्रतिभ, वधवा लागी वेजलपुरना रुचिबंत श्रावको वार मासमा पांच सात वखत उपदेश सांजलवा तेउंश्री पासे दाहोद जावन आवड करता रखा. तेउंश्रीना करेला ग्रंथोनो जथो अने अच्यास वधयो, तेम श्री देवचंद्रजी कृत, श्री यशोविजयजी कृत, श्री हरिजद्र सूरु कृत, श्री कुंदकुंदमुनि कृत, ए विगेरे महान् पंक्तितोना रचेला ग्रंथो तथा पिसतालीश आगम मांहेला घणा सूत्रो मंगावी मगावी दाहोद, गोधरा, तथा वेजलपुर निवासी सर्वे संघ वांचता, तपासता, विचारता, अच्यास वधारता रखा गोधरामां "शा सामलदास गीरधरलाल" विगेरे केटलाक जार्ड तथा वेहेनो वधती रुचिवाळां थयां.

हालमा तेउंश्रीनुं शरीर अशक्त रहेते तेथी ग्रंथो रचवानुं काम बंध ते तेम उपदेश पण उठोज चालेते कदापी शरीर सुधरी शक्ति सारी आवशे तो पाठुं पूर्व प्रमाणे कार्य वनतु रद्देशे.

तेउंश्रीना ग्रंथो वांचवाथी वांचनारने एहवो ज्ञान थायठे के आ ग्रंथो जैनधर्मनां घणांज पुस्तको वाच्या पठी रचाया हशे. व्याकरण अने पिंगलनो अच्यास कर्या वगर तेमज संस्कृत अने मागधी जापाना ज्ञान वगर जैनधर्मनां पुस्तको वांचवामां घणीज अडचणो पडे ठे तो

सखवा अने रचवामा आधी वधारे अरुचणो पडे ए साधारण अक-  
खनो माणस पण समजी शके तेम ठे.

श्री मान् मनसुखलालजी पोते जे जे ग्रथो रची शक्या ठे ते हाखना  
अन्यासथी नही पण पूर्वना ज्ञानना वखथी रची शक्या ठे एम कहीए  
तो तेमा अतिशयोक्ति नथी तेउंश्रीना वनावेला ग्रंथोनो साधारण  
माणस पण केटलेक दरजे अर्थ समजी शके तेम ठे केमके जापा  
घणी सरख ठे, पण जे वखते तेउंश्री पोते पोताना अथवा तो पूर्वाचा-  
र्योना करेला ग्रथोनो अर्थ समजावे त्यारे घणी न्याय युक्तिथी सम-  
जावे ठे तेथो साजलनारने स्पष्ट रीते अर्थ समजाय ठे, ज्ञान फेलेठे.  
अने जेम ज्ञान समुद्रनी लहेरो खेता होईए एम सांजलनारने लागेठे  
एमना कहेवामा सर्वे विद्याउंमा आत्मविद्या एज परमात्कृष्ट स्वतंत्र  
परमानंद प्राप्तिनु कारण ठे

केटलाक लोको एवुं धारेठे के एमनी पासे मत्रो अने मत्रोनी कला  
विशेष ठे तेथी जे तेउंश्री पासे जाय ठे ते वश थई जाय ठे अने  
तेउंश्रीनी वातने काई नामजूर करी शकतो नथी, एम लोको बोले ठे  
पण मत्र अथवा जत्र तेउंश्री जाणता नथी अने करता पण नथी.  
माणसनुं मन ज्यारे छुनियादारीनी दरेक वावतोमाथी स्वस्थ होयठे  
अने तेमने वर्तमान तथा जिविण्यनी फिकर करवानु कारण ज्यारे  
होतु नथी तथा जूतकाल संबंधी पण कई कडपना होती नथी, त्यारे  
तेउं पोताना चित्तने ज्ञान रुपी दोरीथो एकज मरख मार्गे दोरवी  
शकेठे, अने आधी करीने पोतानी नजरथी दूर शु अने ठे ते तेउं जाणी  
कही शकेठे आ जाणवानी क्रियाने केटलाक लोको मत्र कहेठे श्रीमान्  
मनसुखलालजीमा आ वावत डढ होवाथो केटलाक लोको एम कहे  
ठे के तेउंश्रीने मत्र आवने ठे

जेम दूरना माणसना गुणो मनमा आवेठे तेम नजीकना माणसना  
गुणो मनमा आवता नथी दरेक माणस पूर्ण ज्ञानथी जरेखो नथी

अने जो ते प्रमाणे पूर्ण ज्ञाने चरेलो होय तो ते श्री केवलज्ञानीज ठे एम जाणवुं दरेकमां उंठा वधता प्रमाणमां ज्ञान होय ठे, जेम जेम वधारे ज्ञान होय ठे तेम तेम ते वधारे ज्ञानवान कहेवाय ठे वस्तुने जेम तोलवा अने मापवा माटे माप ठे तेम ज्ञानने मापवा तोलवा माटे देखीतुं माप नथी पण ज्ञान तथा अज्ञान ए बंनेनुं प्रमाण करनार एकलु निर्मल ज्ञानज ठे.

जे पोते पोताना आत्माने आ दुःखजल संसारथी तारवा चाहाय ते पोतेज निरपक्व थई ज्ञानद्रष्टिमां उंडोउतरी विचारशे तो तेहने खरो रस्तो हाथ लागशे अने जोलपण राखी हरेक अर्थीउंना कद्या प्रमाणे दोरायां करशे तेने साचुं तत्व नजरे पमवानुं नथी.

आ उपरथी माहरी मतलब एहवी नथी के तेउंश्रीना जेवो, आ दुनियामां बीजो कोई नथी, अथवा तो ज्ञान आपनार बीजो, कोई मखी, शकशे नहि पण माहरा अनुभव उपरथी हुं जाहेर करुं तुं के मने सरल अने सारो मार्ग, बतावनार एज उत्तममां उत्तम मळ्या ठे.

श्रीमान् मनसुखलालजी हालमां पंचमहाल जिह्वाना दोहद गामे एक जैनज्ञानीने जोईए तैवी रीते रहे ठे, पोते ससारमां रद्या उतां संसारी नथी; तेउंश्रीने बे पुत्रो ठे पण ते बे पुत्रो उपर तेउंश्री पोतानो आधार राखता नथी, तेउंश्रीना पुत्रो तेमज तेमना जाई बेहेन विगेरे कोई तेउंश्रीने मोक्ष मार्ग साधतां आडे आव्या नथी. तेउं बीजा जनसमूह उपर पण आधार राखता नथी बंने पुत्रो पैकी तेउंश्रीना वरु पुत्र "मगनलाल" दोहदमां आडत अने सराफी दुकान चलावे ठे अने तेउंश्रीनी मददथी जैनधर्मनो अच्यास पण करे ठे तथा लघु पुत्र "महासुखलाल" बीपनी परिक्षामां पास थई पंचमहालमां रेवन्यु खातामां जोमायला ठे.

घणा पुरुषो हरेक ग्रंथ एकवार वाचीने एम समजे ठे के आ ग्रंथनी  
 बीना हुं समजी गयो पण तेज पुरुषधीजी, त्रीजी; चौथी; पांचमी, ठठी,  
 सातमी वार तेज ग्रंथ वाचे त्यारे ते एम समजे के आ ग्रंथमार्थी हुं  
 काईक समज्यो अने बहूज वार ज्यारे वाचे त्यारे एम समजे के आ  
 ग्रंथ समुद्र जेवो ठे अने तेमांथी हुं तो एक बिंदु मात्र समज्यो तु  
 जावार्थ के जेम जेम ग्रंथ विशेष वाचे अने विशेष विचार करे तेम  
 तेम ते ग्रंथना जाव विशेष जणाता जाय अने जाणे के पहेला  
 हुं बराबर समज्यो नहोतो अने हवे काई समज्यो मने घोनाउपर  
 वेसतां आवे ठे एवु कहेनार घणा माणसो आपणी नजरे पडे ठे  
 पण ज्यारे घोडो लागी उजो राखवामा आवे ठे अने वेसवानी  
 दरेक क्रिया अजमाववामा आवे ठे त्यारे दर सो माणसे जाग्येज वे  
 ग्रंथ माणस पूर्ण फतेह पामे ठे आ दृष्टांत शाखो वाची हु तेना पर-  
 मार्थने समजुं हुं एम कहेनारने लागु पडे ठे अमुक पुस्तको अ वांच्यां  
 ठे एवुं कहेनार घणा माणसो जोवामां आवे ठे पण साधारण वांचवामां  
 अने समजवामा फेर ठे गुजराती त्रीजी चोपडीनो अचपासी गुजराती  
 सातमी चोपडी वाची शके ठे पण तेमा शुमतखब समाई ठे ते समजवी  
 समजाववी घणी मुश्केल ठे. तेवीज रीते ज्यांसुधी तेमना जाणपणानी  
 तपास करनार मदयो नयी त्यांसुधी हुं जाण तुं एवो पोतानो जर्म  
 जागतो नधी पण साचो परिक्रक ज्यारे मळे ठे त्यारे खरुं शुं ठे ते  
 पोतानेज माखूम पडे ठे अने जे काई पोताने आवे ठे ते समुद्रना  
 एक जखबिंदु समान जासे ठे.

श्रीमान् मनसुखलाखजी माटे तेठना रचेख पुस्तको 'वाहार पाढ्या  
 पठी सामान्य जनसमूह तथा साधुसमूह' ('श्रेश्ठावर एकलाज नहि  
 पण अन्य साधुठ') नो शो मत ठे ते तेठना उपर तेठश्रीना तथा साध-  
 मीठ उपर आवेला पत्रो जेमाना थोनाकमांनी टुक हकीकत नमुना

माटे आ नीचे लखवामां आवेली ठे। ते उपरथी मालूम पने ठे के तेउना रचेल पुस्तको जे हाल सुधीमां प्रसिद्ध करवामां आव्यां ठे ते सर्वे ज्ञान न्याय तथा दयाथी जरपूर ठे तथा शब्दे शब्दे मोक्ष मार्ग वतावता होय तेवुं साफ मालूम पडेते.

ता० ११-१-१९०० वोरसद-कृमा मुनि-तेमारा तरफथी आवेलो सुमति विलास ग्रंथ श्रमोए पूर्ण वाच्यो ठे, वांचो अति आनंद उल-स्योठे, आ पुस्तक वाची माहरु चित्त निर्मल थयुं ठे काईक अनुभव प्राप्त थशे एम लागे ठे पुस्तक अति अमूह्य ठे.

ता० ८-४-१९०० वढवाण-धेलाजाई लवजीजाई-आपे परिश्रम खईने ज्ञाननी वृद्धि सद्विचारना प्रवल आख्याननुं सुमतिविलास नामनुं पुस्तक ठपाव्युं ते घणुं रसिक, मनोवृत्ति निर्मल थवानुं, मोक्ष मार्गनुं पगथीऊं कहीए तो चाले. शात वैराग्यनुं पुष्ट कारण ठे अने तेथ्री उत्तमचंदजी स्वामीने माटे एक प्रत मोकलावशो. तमो मोकलेथी ज्ञाननी वृद्धि अने सद्विवेक वैराग्यनुं सदन ठें तो महाराज साहेव वांचेथी तेज तत्त्व विचारनु ज्ञान अने तेमा जावार्थ निस्पृही ठे एइवी हकीकत हमोने एक पासेथी ग्रंथ होवेथी मंगावी त्यारे स्पष्ट जणायुं ठे माटे ज्ञाननी वृद्धि अर्थे तस्दी लई मोकलावशो. साधु महात्मा वांचशे तो ज्ञाननो फेलावो थशे वली पोते ग्रहण करीने बीजा जव्यजीवोने सद्विज्ञाननो बोध आपशे ए श्रेय ठे सुमतिविलास ग्रंथना नाम प्रमाणेज गुण ठे माटे ते पुस्तक मुमुक्षु वैराग्यने खरेखर कौस्तुभ-मणि समान ठे पण मूर्ख कदाग्रहीने कामनी नथी माटे साधु मुनिउनेज ते जेट आप-वाथी ज्ञानवृद्धिनुं कारण ठे

ता० १४-५-१९०० वढवाणकांप-वेहेचरदास नथुजाई आपना तरफथी ठपाएल सुमतिविलास वांचता आत्मानंद थयोठे अने आथी करीने हृदयमंदिरमां सकल जनो उपर करुणा बुद्धिनी स्फुरणा रहे ए काई उबो लाज नथी. कर्मानुसार आत्माने स्थानांतर थवुं पडे ठे तेनो

विचार करी स्थिर धनुं कर्त्तव्य ठे. आशा ठे के आ प्रमाणे आत्मोदय थाय. आ पुस्तक कोई मुमुक्षु तरफयी वाचवा मलेल ठे ते वखतसर तेने पावुं आपवुं जोईए तो कदाच आपनी ईशानुकुस होय तो एक प्रत प्रेट तरीके मोकलशो.

ता० ५-६-१९०८ आटकोट-दलपतराम वनमालीदास-तमारा मोकलेला सुमतिविखास नामना ग्रथ नं १) पोहोंच्या ठे. महाराजश्रीने हाथोहाथ पोहोंचाड्या ठे ते महाराजश्री बोढ्याके आ ग्रंथो वाचवाथो अंतरात्माघणोज आनद उत्पन्न थयो ठे. आ ग्रथ वांचनार जनोने घणोज सहायकारी ठे आपे जे आ पुस्तकनुं नाम राख्युं ठे ते जेवु नाम तेवोज गुण ठे " यथा नामा तथा गुणा " ए पुस्तकनो धीजो जाग ठपाई रझो होय तो मोकलावशो.

ता० १६-६-१९०८ वांसावाडे-बोरा-जाईचंद भावजी-अतरे विराजमान मुनि महाराज श्री लक्ष्मीचंदजी स्वामी तथा मुनिराज श्री अमरचंदजी स्वामी आदे ठाणां वे सुखसातामां धिराजे ठे आपना तरफयी आवेला सुमतिविखास ग्रथ नं २) तेउश्रीने पोहोंचाड्या ठे तेउश्री कहेठे के अहो सुझ श्रावकजी ! आ ग्रंथ वांचवाथी अमारा अतरात्माने अत्यानद प्राप्त थयो ठे. आप जे ज्ञान उत्तेजन आपो ठे तेथी आपनो मोटो उपकार मानुं तु सर्वोत्तम-श्रेष्ठदान ते ज्ञानदान ठे आ ग्रंथ ते तंमाम मुमुक्षु जीवोने हितार्थ रस्तो वतावनार थवाना ठे तमाम वाक्यो मनन करवा योग्य ठे आ ग्रंथनो धीजो जाग ठपां-पथी मोकलावी आपशो.

अशाढवदी ३ सने १९६६-माडल-मणीयार. वाडीछाल पंचायतीजी राधनपुरवाळा-अधने अकस्मात् नेत्र प्राप्तिथी यता आनद तुल्य आपनो कृपापत्र मदयो, वांचता अमृत रस प्राप्त यता अतृप्तिज रझां करेठे. आपनो अमृत तुल्य उपदेश वाचता यतो आनंद दर्शावी शकवा कोपनो दुष्काल पड्यो ठे. अर्थात् यतो आनंद दर्शाववा कलम चाली

शकती नथी.अपूर्व आनंद थयो. आपनी पासे वारंवार अहर्निश प्रार्थना ठे के अमृत उपदेश जल सिंचन करी आ लघु सेवकने कृतार्थ करी आचारी करशोजी, अवकाश अजाव हाल घणो ठे. अवकाशे आपना ग्रंथोनुं मनन करवानोज विचार चालुज ठे. आपना समागमे अमृत देशनानो लाज लेवानो उत्साह अकथनीय ठे. परंतु डाहू पाकवाना अक्सरे जेम कागने मुख रोग थाय ठे तेवुं थाय ठे, अर्थात् हु गमे तेम करी आपना दर्शन अने अमृतगीरानो लाज लेवा शक्तिमान् थात परंतु अमारा शेटजीने कार्यवशात् आजे बहार जवुं पडे ठे; डुकाने बीजो माणस नथी एटखे आवी शकवा कमनशीव रह्यो लुं. ते माटे थतो खेद लखी शकतो नथी आपे आरंक सेवकने मात्र पत्रनीज लख-खाणथो आपनो अमूढ्य वखत रोकनीने पण उपकारनी बुद्धिथी पत्र लखी तेमाव्यो पण रांरुने रत्नप्राप्ति न होय तेवु थयुं ठे ते माटे खेद थाय ठे, ते दर्शावी शकुं तेम नथी आपनो पत्र वारवार वांचवानी अजिलापा थाय ठे, वारंवार एज प्रार्थना ठे के हितोपदेश पत्र द्वारा लखावी आ रंकने उपकार करशो पत्र बंध करवानी अनेठा ठता मतिमदता अने अवकाशना अजावे वधुनथी लखी शकतो, ठेवट एट-लीज प्रार्थना ईष्ट देव प्रते ठे के आपथ्री जैन धर्मनो विजय जगत्मां प्रवर्त्ताववा दीर्घायुषी थई अमारा जेवा रंकने स्याद्वाद अमृतनुं पान करावा जाग्यशाली थारुं

आवण वदी १४ सन १९६६-पत्री-मुनिश्री नागचड्डी-आपना तरफथी मोकसावेला सुमतिविश्वास, सुमति व्यवहार, आदि त्रण ग्रंथो मने सखता प्रेम पूर्वक स्विकारेल ठे. श्रीमान् पणितवर्य मनसुखलालजी हरिलालजीनी विद्वता अपूर्व जणाय ठे, तेमनां वचनो नि.पक्षपाती, रसीक अने वेधक ठे, माणसोने असर थाय तेवी तेमनी वाणी मिष्ट अने ईष्ट ठे. आपे जे पुस्तको प्रगट करेला ठे तेवां उत्तम पुस्तको जैन प्रजामां घणां थोरुंज प्रगट थाय ठे. खरेखर



हालानी प्रजाने एवाज पुस्तकोनी जरु ठे जैन प्रजामां हाल आत्मिकज्ञान लय पोम्या जेवु थई गयुं ठे साधु वर्गमां पण जवलेज एवा कोई हशे श्रीमान् मनसुखलाखजीने हु कोटीशः धन्यवाद आणुं तुं के जेमणे अपूर्वज्ञान भेलवी घणा माहरा जेवा उपर दया लावी शुद्ध अंत करणथी स्याछाद जैन वाणीनुं रहस्य समजाववा प्रयास कर्यो हे शासनदेव । एहवा नररत्न जो ठेर ठेर होत तो आजे जैनीउंनी केवी जाहोजलाखी प्रगटेपण सधूर । सिंहना काई टोला न होय, वने वने चटन न होय, यत " शैले शैले न माणिक्य " पंडितवर्य श्री देवचंद्रजी महाराजनी चोवीशी अर्थवाली आपे ठपाववा उत्तम प्रयास करेल ठे ते ज्यारे पूर्ण ठपाई रहे त्यारे एक प्रत मोकलशो.

आसोवदरगुरु—१९६६—पत्री—मुनि नागचंद्रजी—आप तरफनो हालमां पत्रनथी अत्र आनद मूर्ती स्वस्वरूपमा रमण करनार महात्माउंनी कृपावडे आनंद ठे प्रजातना जगवतीजी सुत्र अने उपर सुमतिव्यवहार ग्रथ वचाय ठे, नवीन ग्रंथ अने रसीक होवाथी श्रोताजनोने बहु रसिक लागे ठे ग्रथना प्रयोजक घणा विद्वान अने नि पक्षपाती होवाथी वचनो बहु अमूढ्य नीकलेला ठे, जेथी दरेक लोकोने दाय आवे ए वनवा जोग ठे वपोरना रामरस उपर सामायकसिद्धयुपाय एक कलाक चाले ठे ते साजलवाथी घणा चाईउं तथा बाईयोनी सामायक करवानी रोती सुधरेल ठे, तेम सामायकनु स्वरूप पण समजता थया ठे, ए वधो उपगार मनसुखचाईनोजसमजवो हवे देवचंद्रजीकृत अतितचोवीशो विगेरे सार्थ जो ठपाई गएल होय तो एक नकल मोकलावशो अने एक नकल पूजा संग्रहनी पण साथे मोकलावशो कार्तिक पूर्णिमा पहला आवे तो सारुं पूजा संग्रहनी नकल फरीथी मगाववानुं कारण जे आपे प्रथम मोकलावेल नकल एक मुमुक्षुने पाच जावनाउं सार्थ शोखवानी होवाथी ते लई गएल ठे अने माहरे अष्ट प्रवचननी हालो

शीखवी ठे माटे बीजी नकल आपनी पासे मंगारी ठे. एज वलतो पत्र पाठवशो.

ता० ३३-१०-१९१०

गोधरा. पंचमहाल. वी० शा० महासुखलाल मनसुखलाल.

॥ जिनश्राणा सेवा स्तवन ॥ ॥ स्वामी श्री मंदरा ॥ ए राह ॥

मेव अरिहंतनी आदरो प्रविजना, हाण जीव सुखनी तजि रहो थिर मना; पाप अमदश थकी जीव सुख हाण ठे, पाप अमदश तजे सुपद निरवाण ठे ॥ १ ॥ अचल उपयोगमां सिद्धि सुख साधिण, सुनय युत शुद्ध जिन वचन आराधिण; ज्ञानसुख हाणि ठे राग ने रोषथी, त्यागि विकल्प सकल दुर रहो दोषथी ॥ २ ॥ ज्ञायक जावमां जे सदा थिर रहे, तेह निर्दोष निर्जयपणे शिव लहे, दरशसुख हाणि मिथ्या वचन जल्पथी, तजत मिथ्यात तस कोइ प्रवचनय नथी ॥ ३ ॥ काय संचलनथी चरणसुख किम रहे, काय थिर करत निज रम्यमां रमि रहे; जव्य ने जाव इम प्राण वे विधि तणा, जीवने सुखना हेतु सदगुरु प्रणया ॥ ४ ॥ जव्य जावे स्वपर प्राणनी जे दया, तेह संजम विमल साधि मुनि शिव गया: जेदि मिथ्यातमल मोह ऊठेदिण, पूजि जिनराज निज संपदा वेदिण ॥ ५ ॥ जिनवर पूजना तेह आतम दया, परिहरो विरुद्ध सहु जीवनुं धरि मया, आठ वर पूष्यथी पूजिण जिन धणी, निरखि हरिज्ज कृत पूजा अष्टक जणी ॥ ६ ॥ वर दया प्रथम ठे पुष्प चंगेरिनुं, सत्य वच कुंद छःख हरण प्रव

फेरिनु, तृतीय अस्तेय वर प्राग चंपक जलुं, शुद्ध सुव्रह्म सरस  
 केतकी निरमलुं ॥ ७ ॥ सहज असंगता जाइनुं फूल ठे,  
 सद्गुरु जक्ति महावेलि सुख मूल ठे. तप महा मोलसिरि  
 चव दवानख हरे, ज्ञान वर पद्मनु पुष्प शिवसुख करे ॥ ८ ॥  
 एह अरु पुष्पथी जिन चरण पूजिए, परम उत्साह शुद्धात्म  
 रस धरि हिये, पंच आचार वर पुष्प पचरगिए, पूजता जीवने  
 होय शिव संगि ते ॥ ९ ॥ ममत परिहार ते वास मृगमद  
 तणी, ध्यान शुद्ध धूप शीखा मुनिवर जणी, अष्ट मद त्याग  
 घनसार अति महमहे, न्यागि परजाव निज जाव कुकुम  
 ग्रहे ॥ १० ॥ त्यागि त्रय जोग सावधमय सेवना, शुद्ध  
 निरवद्य चदन रसे अनुदिना, जावमेवा तणुं कारण मत्य जे,  
 त्यागि प्रमादने आदरो नित्य ते ॥ ११ ॥ प्राण सुखहाणि  
 ए न्याय नवि संजवे, प्राणहाणि तजे सहज सुख ऊद्धवे,  
 प्राण रक्षायी सजम कह्यु जिनवरे, जाणि बुध न्याय शुद्ध  
 सजम आदरे ॥ १२ ॥ जाणि सावधना हेतु सवि जवि  
 तजो, आण जिनदेवनी सेवना नित जजो; सहज शुद्ध जावमां  
 धारि जड रगता, त्यागि परजाव एक सेवो नि संगता ॥ १३ ॥  
 नमन वदन जिनराज प्रतिमा प्रते, गल्य त्यागी स्वगुण  
 ध्यान जावना ठेते, ज्यसेवा एम शुद्धमती आदरे, मित्र अन्नाण  
 कपायथो निस्तरें ॥ १४ ॥ एह जिनराजनी आण सजाखिए,  
 जतु सुख राखि प्रजु सेवमा चाखिए. "सनसुख" जिन-  
 पद पूजगे ते नरा, सहज शिव संपदा पामगे अति त्वरा ॥ १५ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ श्री वेजलपुर पौषधशाला स्थापी ते विषे ॥ हरिगीत बंद ॥

परम पंच परमेष्टि वंदि सुमन रंग उमंगमां, जल जरी  
 आपो कुंज अमृत आण जिन जवि संगमां ॥ १ ॥ आत्म  
 जवने आज आपो कुंज ज्ञानामृत तणो, ते पान करतां प्रगट  
 होवे अचल वीरज आपणो ॥ २ ॥ वर कटपतरु शुध चरण  
 मूले सींचीए अमृत सदा. फले चरण शिवफल चाखता होय  
 सहज आनंद रस सुदा ॥ ३ ॥ जग ज्ञान चरण सुवीर्य आदिक  
 गुण अनंता ऊपजे, नहि रोग शोग वियोग जिहां वलि  
 छविध संपति संपजे ॥ ४ ॥ सादि अनंतानद प्रगटे आत्म-  
 जूमि रयण जरी, स्वतंत्र संग सुरंग शिवत्रिय जोगवे मन-  
 सुख करी ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥





पृष्ठांक लिटी

अशुद्ध

शुद्ध

१	ए	वारमा अने तेरमा	वारमा अने तेरमा गुणस्थान वासी
१४	२२	ज्ञायक जाव महंत	ज्ञायक ज्ञान ( जाव ) महंत
१७	१०	कच्युं	कर्युं
१८	१३	वसंतमा	वसतमां
२०	१२	नाहिं	नाही
२९	६	करयां	कर्यां
३७	२	निज	जिन
४१	७	वधायेलाने	बंधायेलाने
४३	१२	तम	तेम
५६	४	पूरा	पूरो
५९	२१	प्रदेशमा	प्रदेशमां
६४	२५	पयाय	पर्याय
७३	४	साध्यादि	स्याद्यादी
७३	७	साध्य आदि	स्याद्याद् अनेकांत
८१	१६	करणवीर्य वके घाधकनाए	करणवीर्य
८२	८	क्रौर	कीर
८९	१२	डव्यमा	डव्यमां
९०	११	समय ठे	समय ठे ते प्रति समयव्यक्ति पणे युगपदे प्रवर्त्यां करे ठे
९४	२२	धाती	धाती
९९	१९	मुण्येव्वे	मुण्येव्वो
१०१	८	महाव्रत	महाव्रत
१०४	२२	काई	काई
११२	१२	सुदर्शन चक्रहो ॥	सुदर्शन चक्रहो ॥ हेजी चारित्र शुद्ध गदी धरु, हेजी चित्त विजाव न वक्रहो,

पृष्ठांक	खंड	शुद्धि
११७	३ मनसुखाल	मनसुखलाल
११८	१२ चाह	चाहे
११९	११ लही	लहु
१२३	८ नसाय	वचाय
१२४	२४ होष्ट	ओष्ट
१२६	८ रत्नो थकी पणी	रत्न थकी पण
१३५	२३ यागेथी	योगथी
१३८	१२ ते	तो
१३९	१४ सेवता	सेवतां
१५६	८ बीजां	बीजे
१५७	२७ हेयमान	हीयमान
१५८	२१ होय मई ॥	होय ॥ मई
१६६	१३ दे	देव
१६६	१५ बीजा	बीजा
१७२	१२ विमाननां	विमानमां
१७६	२ माह	मांह
१७७	१४ जेहना	जेहना
१७९	१८ त्रिय	त्रय
१८३	१३ डुगछना	डुगछना
१८८	८ राख सजम	राखे सजम
२००	२० निशक	नि.संग
२२३	२२ नारायनी	नारायणी
२२८	१८ ए कारका	ये कारका
२३१	३ सरुव	सरुव
२३१	३ समदिधि	सम्मदिधि
२३५	२५ तय	नय

पृष्ठांक	लिटी	अशुद्ध	शुद्ध
२३०	१ए	लुख्व	लुख्वे
२३ए	०	पञ्जायइंजं	पञ्जायाइंजा
२४७	१२	बंध थाय	बंध थाय ( रोकाय )
२४०	७	जोग	जाग
२४०	११	थतां	थता
२५३	२१	॥ ५ ॥	॥ ६ ॥
२५४	२३	॥ ५ ॥	॥ ६ ॥
२५६	२३	स्वरूपी	स्वरूपीरे ॥ मन० ॥
२७०	१४	मामतां पहेला	मांडता पहेलां
२७६	ए	वीर्यांतरना	वीर्यांतरायनां
२७ए	२२	झेपादि	झेपादि
३०५	१	एकादश	एकादशम
३०७	१	एकादश	एकादशम
३००	२	छादश	छादशम
३०ए	१	छादश	छादशम
३१०	५	पूर्ण	पूर्ण
३११	१	छादश	छादशम
३१२	ए	बुझादि	बुझादि
३१७	११	बुध्य	बुद्ध्य
३१ए	१४	कारण	कारणो
३१३	१५	सेवन थाय	सेव न थाय
३१३	२१	देवचड्र	देवचड्र
३४०	१३	तमा	तेमा
३४०	२५	बंध	बंध
३६१	२	रवजावने	स्वजावने
३७७	२३	प्राणी निज ॥	प्राणी निज





॥ ॐ परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंज्जी कृत अतित स्तवन  
चोविशी वाखावबोध सहित लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

जिन गुण कोर्त्तन करि करो, आतम कीर्त्ती अनंत ॥

शुद्धातमता ध्यावता, लहो निज पद सुमहंत ॥ १ ॥

अतित समयमां जे हुवा, तीर्थपती चोवीश ॥

तस गुण स्तवि जविजन लहो, सहजातम सुजगीश ॥ २ ॥

शुद्ध ध्येय ध्यातां लहे, धर्म शुक्ल शुद्ध ध्यान ॥

परमातम पूजी वरो, जवि निज सिद्धि विधान ॥ ३ ॥

विघन हरण मंगल करण, जस अतिशय चउतीश ॥

तस पद सेवी जवि रहो, धर्म मग्न निशदीश ॥ ४ ॥

अक्षय आतम संपदा, आतम वीर्य अनत ॥

सहज स्वतंत प्रयास विण, प्रगटे शांति अत्यंत ॥ ५ ॥

॥ अथ प्रथम तीर्थंकर श्री केवलज्ञानी जिन स्तवन ॥

नामे गाजे परम आल्हाद, प्रगटे अनुभव रस आस्वाद ॥

तेथी थाये मति सुप्रसाद, सुणता जाजेरे काँई विषय

विषादरे, जिणंदा ताहरा नामथी मन चीनो ॥ १ ॥

अर्थ.—जेना नामथी जवि जीवोना हृदयमां परम आल्हाद गाजी

रहे ठे, त्रणे नुवनना जीवो सिद्ध समान पोतानुं शुद्ध स्वरूप अण-

जाणता सरुण, परुण, विध्वंसण धर्मी अपवित्र देहमां पोतापणुं जाणी

मानी जन्म, जरा, मरणादि आधि व्याधि अहंपणे जोगवता अने

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय वशे कर्मबंध करताने प्रजुजी सिद्ध

## २ श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी

समान निर्मल ज्ञान दर्शन चरण वीर्यमय स्वतत्र अजर अमर अक्षय  
 अनत आनदमय शुद्धात्म स्वरूप वतावे, तेज आत्म अनात्म लक्षण  
 जिन समजता, रुची प्रतित थता, जविजीवोना हृदयमां परमानंद  
 प्राप्ति थाय ठे वली रागादि दोषो मटी निर्मल शाश्वत ज्ञान दर्शन  
 चरण वीर्यादि पोतानी अनंत शुरु शक्तिनो अनुभव आस्वाद स्वतंत्र  
 पणे प्रगटे ठे एज परम आह्लाद गाजे ठे ताह्रा वचन साजलता  
 विषय अने कपायोनी विषाद ताप डुर जागे अने प्रशमतानो  
 आनद आवे अगीआरमा वारमा अने तेरमा सामान्य जिनोमा ईद्र  
 सरखा शासन नायक तमारा नामथी माहरूं मन आश्चर्य पामे ठे,  
 माहरूं मन प्रजुना स्याद्वाढामृत वचन रसे जिनुं ठे ॥ १ ॥

क्षेत्र असंख्य प्रदेश, अनंत पर्याय निवेश ॥ जाणग  
 शक्ति अगेप, तेहथी जाणेगे काई सकल विगेपरो॥जि०॥२ ॥

अर्थ.—आत्म द्रव्यना प्रदेश लोकाकाशना असंख्याता प्रदेशमा  
 विस्तरी शके ठे ते स्वप्रति प्रदेशे ज्ञानादि अनत गुणोना ठति पर्यायो  
 अनंतानता तिरो जावे रह्या ठे ते परिणामिक धर्म वडे खद् गुण  
 हाणिवृत्तिपणे पर्यायो ढर समये सामर्थ्यपणे परिणमि आप आपणा  
 कार्यपणे उरुताप आवी परिणमे ठे तेमा आवीर्जावपणे थया जे  
 ज्ञान पर्यायो ते वने रूपी अरूपी सकल ज्ञेयनी त्रिकालवर्ती दूर  
 निकटनी सकल प्रवृत्तिना जाण ठो माटे

अर्थः—सकल प्रमेय प्रमाण के० पंचास्ति द्रव्य ठे तेमां धर्मास्ति अधर्मास्ति अने आकाश ए एक एक द्रव्य ठे अने जीव पुद्गल अनंतानंत द्रव्य ठे अने त्रिकालना समय अनंता ठे तेमांथी कोई द्रव्य वधे नहीं तेम घटे पण नहीं एटले नवो उपजे नहीं, पूर्वलो नाश थाय नहीं वली जे द्रव्यमां जे गुणो ठे तेमांथी कोई गुण पूर्वलो नाश थाय नहीं तेम नवो उपजे पण नहीं अने जे द्रव्यमां जेटला ठति पर्याय ठे ते पर्यायोमांथी कोई पर्याय वधे नहीं तेम घटे पण नहीं, पर्याय उत्पाद् व्ययपणे परिणमे पण सत्ताण जेटलां गुणो अने जेटला पर्यायो ठे तेटलाज रहे. जीव द्रव्यना गुण पर्याय जीव कार्य करे अने पुद्गल द्रव्यना गुण पर्याय पुद्गल कार्य करे पण कोई द्रव्य अन्य द्रव्यना कार्यने करे नहीं, जे वस्तुनो जे स्वभाव होय तेमां जे पर्यायनी व्यक्ति जे समये आववानी होय तेज समये आवे, पर्यायो पोतानो क्रम ठेके नहीं वली जेमां जे ऋवितव्यता होय अगरे जेने जेनो योग थवानो होय तेने ते योग थाय, ए आदि द्रव्य गुण पर्याय आप आपणी मर्यादा ठेके नहीं तेने प्रमेय कहीए एम सकल प्रमेयतुं प्रमाण करनार प्रजुजीतुं प्रधान केवलज्ञान ठे. तेथीज प्रजुजी तमारुं केवलनाणी एवुं नाम ठे. जेने प्रधान मुनिठ सदा मन वचन कायाना जोगो थिर राखी ध्यानमां ध्याय ठे एटले तमारा शुद्ध गुणो वार वार संजाली ध्यानाग्नि धमी तुम सरखा गुणो आत्म अगमां अज्ञेदपणे ध्याई कर्मरूपी काष्टने प्रजाले ठे ॥ ३ ॥

ध्रुव परिणति ठति जास, परिणति परिणमे त्रिक राश ॥  
करता पद प्रवृत्ति प्रकाश, अस्ति नास्तरे कांई सर्वनो  
जासरे ॥ जि० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते केवलज्ञानी अतितकालना प्रथम तीर्थंकरने ध्रुव परिणति अस्तिपणे ठे तेज परिणति उत्पाद् व्यय ध्रुव ए त्रण राशि

पणें सर्वें समय परिणमे ठे एटले सर्वें समय पूर्व पर्यायनो व्यय, उत्तर पर्यायनो उत्पाद् अने सकल सत्तानु ध्रुवपणुं सर्वें ड्रव्यमा होय. जो सर्वें समय ड्रव्यमाहे उत्पाद् व्यय ध्रुवता न मानीए तो ड्रव्य पोताना कार्यनी क्रीया करे नहीं तो शुन्यपणु थाय कह्युं ठे के-

“ अर्थ क्रिया कारित्वं ड्रव्यं तथा उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्त सत् लक्षण ड्रव्यं ” एटले ड्रव्य आप आपणुं कार्य करवानी क्रिया एटले पर्याय प्रवृत्ति न करे तो ड्रव्यनुं ड्रव्यत्वपणुं रहे नहीं अने सर्वें समय उत्पाद् व्यय न होय तो ड्रव्यनुं सत् लक्षण पण रहे नहीं माटे उत्पाद् व्यय ध्रुवपणुं सर्वें समय मानवुं. तेथी प्रचुजी पोताना शुद्धात्म पदनी प्रवृत्तिना प्रकाश करवावाला ठे वली सर्वें ड्रव्य पोत पोताना ड्रव्य क्षेत्र काल अने जावपणे सदा अस्ति एटले ठता ठे अने परड्रव्यना ड्रव्यादिक पणे कोई ड्रव्य थाय नहीं. पर ड्रव्यादिक रूपे न थवुं एवो स्वजाव पण पोतामां अस्तिपणे रह्यो ठे तेनेज नास्ति स्वजाव कहीए. एम अस्ति नास्ति आदि वस्तुना अनेत स्वजाव समकाल सर्वें समय तमारी ज्ञायकतामां जासे ठे ॥ ४ ॥

सामान्य स्वजावनो बोध, केवल दर्शन शोध ॥ सहकार अज्ञावे रोध, समयतर रे काई बोध प्रबोधरे ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थ.-सर्वें ड्रव्यना अस्तित्व वस्तुत्व आदि सामान्य स्वजावनु जाणवुं तेने दर्शन गुण कहीए ते दर्शन गुण तमारे परम प्रगट शुद्ध थयो ठे सामान्यपणे वस्तुनी ठनी जाणवामा ईंद्रिउ तथा चंद्र सूर्यादिनी सहाय जोईती नथी अने अरोध के० ते दर्शन गुण रूपी अरूपी अनेत ड्रव्य जाणवामां कोई ठेकाणे रोकातो रूपातो नथी एटले अखलित केवलदर्शन गुण प्रगट थयो ठे एटले सामान्य विशेष बोध समयातरे थयो ठे पण अखरु समय केवलज्ञान अने केवलदर्शन उपयोग वसें ठे ॥ ५ ॥

कारक चक्र समग्ग, ते ज्ञायक जाव विदग्ग ॥ परमजाव संसग्ग, एक रीतेरे कांई थयो गुण वग्गरे ॥ जि० ॥ ६ ॥

अर्थः—जीवमां अनन्ता गुणो ठे, ते सर्वे समय अनन्त कार्य करे ठे, ते दरेक कार्यनां कारक चक्र जिन्न जिन्न ठे, ते सर्वे कारक चक्र ज्ञान कारक चक्र संबंधे बलगेलां ठे. ज्ञानकारकचक्र फरे तेम दर्शनादि सर्वे आत्म कार्यनां कारकचक्र फरे ते ज्ञान कार्यनां कारक नीचे प्रमाणे जाणवांः—

- ( १ ) कर्त्ता कारक—ते ज्ञान कार्यनो कर्त्ता पोते आत्मा.
- ( २ ) कार्य कारक—स्वपर स्वरूप त्रिकाल जावनु जाणवुं ते ज्ञान कार्य.
- ( ३ ) करण कारक—ज्ञान कार्यनुं उपादान कारण असंख्य प्रदेशे रहेला ज्ञानना अनन्ता ठति पर्याय. अने ज्ञान कार्यनु निमित्त ज्ञेय
- ( ४ ) संप्रदान कारक—ठति पर्याय सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी पो-तेज पोताने अनन्त बोधनुं दान आपे ते स्वसंपदा देवा रूप संप्रदान.
- ( ५ ) अपादान कारक—तेज ठति पर्यायो सामर्थ्यपणे प्रवर्त्तावी अबोधनो नाश करवो ते अपादान
- ( ६ ) अधिकरण कारक—स्वआत्म प्रदेशमां स्वकाल प्रवृत्ति ते अधिकरण.

एम अनन्त गुणोनां अनन्त कारकचक्र ज्ञानाश्रित समकाले प्रवर्त्ते ठे तेथी अनन्त गुणोनो वर्ग एक रीते थयो एटले परम जावने ससर्गे सर्वे गुणो प्रवर्त्ते ॥ ६ ॥

इम सालंबन जिन ध्यान, ऋवि साधे तत्त्व विधान ॥

खहे पूर्णानद अमान, तेहथी थायेरे कांई शीव इशानरे ॥ जि० ७ ॥

६ श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविंशो.

अर्थ - एम प्रभुना अखलं वने जे जिवि शुद्धात्म ध्यान राखी तत्त्व विधान साधे एटले प्रभुजीए अनंत गुणोना कारकचक्रो पोतानाज कार्यमा प्रवर्त्तावी पूर्ण आत्म सिद्धि करी तेम माहरे पण आत्म सिद्धि रूप कार्य करवुं अगर एज प्रमाणे आत्म सिद्धि करवा माटे प्रभुजीए कहु तो माहरे सर्वे गुणो निजात्म शुद्ध कार्यमां प्रवर्त्ताववा एज प्रभुनु आलवन जाणवुं प्रभु आलंवन विना अनादि अविद्या वटे पुद्गल द्रव्य गुणपर्यायमा कार्य मानी ज्ञान गुण तेमां प्रवर्त्तावे ठे एटले पुद्गल कार्यमा रोके ठे त्याज अवराय ठे पण शुद्धात्म उपयोगमा प्रवर्त्तावतो नथी तेमज दर्शन गुण पण पुद्गलीक कार्यमा प्रवर्त्तावी शुजाशुभ अशुद्ध निश्चयमा रोके ठे तेमज चरण गुण पण पुद्गलना अनंत गुणोमा ( विषयोमा ) प्रवर्त्तावे ठे, कपायोमां मुझाय ठे ( मोह पामे ठे. ) वीर्यगुण पण पुद्गलना गुणपर्यायोमां फोरवी चल मलिन अने परतत्र करे ठे एम पोताना अनंत गुणो परसगे चल मलिन करी ससार त्रमण करता दु ख पामे ठे पण ज्यारे जीव प्रभु आलवनी थाय त्यारे सकल कारक शुद्ध स्वभाव धर्ममा प्रवर्त्तावी सकल दु खथी निवर्त्ति परमानंद प्रगट करे ठे. एम पूरो जेनो माप नहीं एहवो अत्यतीक आनंद प्रगट थाय ठे एटले आत्मा उपद्रव रहित परम निर्वाण पदनो जरूर स्वामी थाय ठे ॥ ७ ॥

दास विज्ञाव अपाय, नासे प्रभु सुपसाय ॥ जे तन्मयताए भ्याय, सही तेहनेरे देवचंद्र पद थाय रे ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ - हु प्रभुनो दास ते प्रभुना आलं वने नथी वत्यो त्यासुधी परद्रव्यनी ममता आदि विज्ञाव अनेक प्रकारन दे आलवने सकल विज्ञाव दु ख दोष नाश थाय जाणवो प्रभुने तन्मयताए के० प्रभु जेम राग स्वजावाचरणमा धिर थया तेम जे ज्ञानि

जानंद स्वप्नावमां थिर थइ एटले तन्मय थइ ध्याय ते जरूर सकल  
देवोमां चंद्रमा समान शुद्ध सिरूपद पामे ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ द्वितीय श्री निर्वाणी प्रभुनुं स्तवन ॥

वीरजी प्याराहो वीरजी प्यारा ॥ ए राग ॥

प्रणमुं चरण परमगुरु जिनना, हंस ते मुनि जन मनना ॥

वासी अनुभव नंदन वनना, जोगी आनंद धनना ॥ १ ॥

मोरा स्वामी हो तोरो ध्यान धरीजे, ध्यान धरीजे हो सिद्धि

वरीजे, अनुभव अमृत पीजे । मोरा स्वामी हो तोरो ०

॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—घनघाती रूप कर्म शत्रुने जीत्या अने केवलज्ञानादि चार  
अनतां जेणे प्रगट कर्या एहवा निर्वाणी प्रभु अतित चोवीशीना बीजा  
तीर्थकर परमगुरुना चरणकमलने अगूर शुद्ध स्वप्नावचरणने बहु  
सन्माने प्रणमुं हुं जेने मुनिजनो पोताना मनरुप मानसरोवरमां हंस  
रुपे रमावे ठे हंस जेम दुधथी पाणी चिन्न करी दुध पीए ठे तेम  
प्रभु अनात्म जावनां लक्षण चिन्न जाणी दर्शावी मुनिअोने पण  
अनात्म लक्षणोनी आदर तजावी शुद्धात्म लक्षणमय शुद्धात्म ल  
ह्यनो अनुभव करावे ठे वली प्रभु आत्माना अन्त शुद्ध शक्तिरुप  
नंदनवनमां वसे ठे, अनंत गुणोनी सुवासनामां मग्न तृप्त थई रह्या ठे,  
एम अन्त स्वगुण आनंद समकाले जोगवे ठे तेथी आनंदघन जोगी  
एहवा माहरा नाथ विज्ञाविक दुःखथी ठोडावनार अने परम निवृत्ति  
स्थानक आनंदपुरीमां ( शिव नगरीमां ) निरवाण पद (निश्चल पद)  
ना दातार तमारुज ध्यान धरीए जगवासी जीव पुद्गल ध्याने, अ-  
शुद्ध अध्यवसाये, अशुद्ध लेश्याए, अशुद्ध चेष्टाए विज्ञावमां प्रीति  
करवे ज्ञानावरणादि कर्म बाधी दीन दु खी परतत्र थई रह्या ठे ते. देखी



हु जवजयथी उद्विग्न थयो प्रचुनुज ध्यान करुं एटले प्रचुनी आणा समय मात्र पण चूक नही ए जिज्ञासा ठे तमारुज ध्यान धरीए तो सिद्धि वरीए माटे शुद्धात्म गुणमा उपयोग धिर राखवा अने थिरता वधारवा रूप अनुभव अमृत पीए ॥ १ ॥

सकल प्रदेश समा गुण धारी, निज निज कारज कारी ॥  
निराकार अवगाह उदारी, शक्ति सर्व विस्तारी ॥मोराण॥ ९॥

अर्थ - प्रचुजीने असंख्यात प्रदेशे ज्ञानादि अनंत स्वगुणो सरखा ठे कोई प्रदेशे कोई गुण पण अश मात्र उठो अधिको नथी जेम सोनाने सर्वे प्रदेशे जारे पीलाश चीकाशादि सर्वे गुणो सरखा ठे तेम शुद्ध डव्यने सर्वे प्रदेशे गुणो सरखा होय ठे. ते दरेक गुणो आप थापणु कार्य सर्वे समय निरंतर करे ठे कोई गुणनी प्रवृत्ति कोई समय पण रोकाती नथी तेम अन्यद्रव्य कोई द्रव्यना गुणपर्याय प्रवाहने अटकावी रोकी शकतो नथी जेम वर्ण गुण गंध आदि गुणनुं कार्य करतो नथी पण वर्ण गुण वर्ण पर्याय प्रवृत्ति रूपज कार्य करे ठे तेम ज्ञान गुण दर्शन गुण आदि अन्य गुणनु कार्य करतो नथी अर्थात् सर्वे गुणो सर्वे समय आप थापणु कार्य करे ठे पण स्वजाति अन्य गुण के विजाती अन्य गुणनुं कार्य कोई गुण कोइ समय पण करतो नथी एम परिणामीकता धर्म जाणवो प्रचुनुं अंग निराकार ज्ञायक रूप ठे पुद्गलो पेठे वर्णादि वीश गुण रूपे अथवा ते माहेला कोई रूपे पण नथी तेथी कल्याणकारी निराकार अवगाहना ठे अवगाहना तो आकाश प्रदेशने रोके तेने कहीए प्रचुनो अवगाहना व्यवहारथी आकाश प्रदेशमा कहेवाय पण निश्चयथी तो प्रचु स्वक्षेत्री ठे परक्षेत्री नथी. जे प्रदेशमा सिद्धनी अवगाहना ठे तेज प्रदेशमा अजीव पुद्गल खधो तथा निगोद राशी शरीर विगेरे अनेक द्रव्यो ठे पण सिद्धनी अवगाहनाथी ते क्षेत्र रोकातु नथी

पण व्यवहार नयथी व्यवहार द्रष्टिने समजवा वदले अवगाहना कही पण परमनये जीव अनवगाही ठे. " उक्तंच आचारांगे पांचमा अध्यायने उद्देशे ठठे कहुं ठे—से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंमले, न किएहे, न नीले, न लोहिए, न हालिदे, न सुकिद्वे, न सुरजि गंधे, न डुरजि गंधे, न तित्ते, न कमुवे, न कपाये, न आंविळे, न महुरे, न करकमे, न भउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए, न जएहे, न निन्दे, न लुक्खे, न काठ, न रूहे, न सग, न ईधिय, न पुरिसे, न अन्नहा परिन्ने, सन्नेउवमा निविद्दये, अरुवि सत्ता अपयस्स पय नथि" एम ठे तो साकार अवगाहना केम कहेवाय ? आत्मामां अनंत गुणोनी अनंत शक्ति ठे ते सर्व शक्ति संसारीक जीवोनी परजाव अनुयायीपणे रोकाइ ठे पण प्रचुजीए तो सकल परजावनो नाश करी गुण गुणना अनंतानंत पर्यायनी शक्ति प्रगट करी स्वतंत्रपणे विस्तारी ठे ॥ २ ॥

गुण गुण प्रति पर्याय अनंता, ते अजिलाप्य स्वतंता ॥  
अनंत गुणानजिलापी संता, कार्य व्यापार करंता ॥मोरा०॥३

अर्थ—प्रचुजीने अनता गुणो ठे ते गुणगुण प्रते अनंत पर्याय पोताने स्वतंत्र ठे तेमांथी अनता पर्यायो अथवा धर्मो वचन आलापमा आवी शके एवा ठे तेने अजिलाप्य धर्म कहिए अने तेथी अनंतगुणा वचन आलापमां न आवी शके एहवा अणजिलाप्य धर्म ठे. ते अजिलाप्य अने अणजिलाप्य सर्वे धर्मो आप आपणुं कार्य दर समय करे ठे व्यापार के० ने सर्वे पर्यायो कार्य करवामा प्रवर्ते ठे. एज प्रमाणे पचास्तिकायमा अजिलाप्य धर्म अनता अने तेथी अणजिलाप्य धर्म अनंतगुणा जाणवा ॥ ३ ॥

वति अविजागी पर्यय व्यक्ते, कारज शक्ति प्रवर्ते ॥ ते विशेष सामर्थ्य प्रशक्ते, गुण परिणाम अजिठयक्ते ॥मोरा०॥

पुष्ट निमित्तालंबन ध्याने, सालंबन लय ठाने ॥ देवचंद्र  
गुणने एक ताने, पहोचे पूरण थाने ॥ मोरा० ॥७॥

अर्थ-प्रभुजी तमे मोक्षाजिखाषीने पुष्ट आलंबन ठे एटले जेम  
प्रभुए ज्ञानदर्शन चरण वीर्यादि आत्मगुणो पुद्गलीक कार्यमांधी  
पाठा वाली सहजात्म कार्यमा जोड्या थने जव्य जीवोने सर्वे शक्ति  
सहजात्मकार्यमा प्रयुजवी दर्शावीए वझे प्रकारे प्रभुनु आलंबन लेई  
जे वत्ते ते आखर निरालंबता पामे एटले ते जीवने कोई समय पण  
पुद्गलीक आलंबन लेवुं पडे नहीं, पर आलंबन लय थाय. चारनि-  
कायना देवोमा चंद्रमा समान निर्वाणी प्रभुना व्यक्त ज्ञानादि शुद्ध  
गुणोमा एकतापणे उपयोग अखंरु करे एटले शुद्ध गुणीना गुण बहु  
माने पूर्णानंद स्थानके पहोचे ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ श्री तृतीय सागर प्रभु जिन स्तवन ॥

॥ चतुर्मासी पारणुं आवे ॥ ए राग ॥

गुण आगर सागर स्वामी, मुनि जाव जिवन नि कामी ॥

गुण करणे कर्तुं प्रयोगी, प्राग्जावी सत्ता जोगी ॥ १ ॥

सुद्धकर जव्य ए जिन गावो, जिम पूरण पदवी पावो ॥

॥ सुद्धकर० ॥ ए आकणी ॥

अर्थ-श्री सागर स्वामी ज्ञान दर्शन वीर्यादि अनन उत्तम  
गुणोना आगर के० निधान ठे, मुनिनुं मुनिपणु कायन राखवा मुनि-  
ओना जाव जिवन ठे थने मुनि लोकोने शुद्धात्म तत्वमा विशेषे  
विधाम आपवावाला ठे वली सागर स्वामी सकल परजव्यनी  
कामना रहित ठे, ज्ञान दर्शनादि स्वजाविक अनंत कार्य सकल समय

सहज स्वज्ञावे करे ठे अने ते कार्यगुण प्रगटपणे थयो ते ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनंत कार्यगुण समुदायना समकाले अनंत आनंद जोगी ठो आत्माना प्रति प्रदेशमां निज कार्य करवाना ठति पर्यायो अनंता ठे जेम जाणवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, देखवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, आचरण रमण रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता, वीर्य अचल राखवा रूप कार्य करवाना ठती पर्यायो अनंता तेम ए आदि अनंत कार्य करवाना अनंत गुणना ठती पर्याय प्रति प्रदेशे अनंतानंता ठे ते ठती पर्याय रूप गुण करण प्रयोगे विना प्रयासे दर समय अनंत स्वस्वकार्य थयां करे ठे ते कार्यनी व्यक्ति अने शक्तिना पण जोगी ठो. हे जिवि जीवो ! एवा सुख करवावाला परम समाधिना दातार जिनेश्वरने सेवो-तेमना गुण गावो जेथी पोतानी सहज पूर्ण परमानंद पदवी पामो ॥ १ ॥

सामान्य स्वज्ञाव स्वपरना, ज्व्यादि चतुष्टय घरना ॥  
देखे दरशन रचनाये, निज वीर्य अनंत सहाये ॥ सु० ॥ २ ॥

अर्थः—अस्तित्वादि स्वपर ज्व्यना सामान्य स्वज्ञावने अने ज्व्य क्षेत्र काल ज्ञाव एहवा निजात्म स्वज्ञावने निज अनंत वीर्य सहाय वडे दर्शन गुणे करी सकल समय पूरण पदे देखो ठो ॥ २ ॥

तेहने ते जाणे नाण, ए धर्म विशेष पहाण ॥ सावय वीकारज शक्ते, अविजागी पर्यय व्यक्ते ॥ सु० ॥ ३ ॥

अर्थः—एमज स्वपर सामान्य विशेष स्वज्ञावने अने स्वपर ज्व्या-दिकने विशेष प्रधान ज्ञान गुणे करीने पूर्ण पर्याये सकल समय जाणो ठो एटले निर्मल केवलज्ञान रूप ठो. प्रति प्रदेशे सर्वे कार्य करवाना करणपणे ठती पर्यायो अनंतानंत रहा ठे ते सावयव के० एक समय प्रवर्त्तीमां आवीर्जावे उपजे अने तीरोजावे विणसे वली बीजा समये आवीर्जावे थएला पर्यायो आवीर्जावथी विणसी तीरोजावे

जाय (उपजे) एम दर समये जूदा जूदां कार्य करवाने माटे तेज पर्यायो आवीर्जावे तिरोजावे उपज्या विणस्या करे तेथी ते पर्यायाने सावयव पण कहीये अने समय समय जूदा कार्य करे तेने वीकारज शक्ति कहीए पण ते सर्वे ठती पर्यायो अविजागी ठे अने कार्य प्रयोजने एटले उर्द्धताए सामर्थ्यपणे आवे पण ते सर्वे ठती प्रजायो सत्तापणे सदा ध्रुव ठे नवे नवे समये झेयोनी नवी नवी वर्तना थाय ते अनंतानती वर्तनाने जाणे माटे जूदा जूदा कार्यने जाणे ते वीकारज शक्ति कहीये वीजा रीते सावयव के० अविजागी जिन जिन पर्याय माटे आत्म अंगना अवयवो पण कहीये ॥३॥

जे कारण कारज जावे, वरते पर्याय प्रजावे ॥ प्रति समये व्यय उत्पादि, झेयादिक अनुगत सादि ॥ सु० ॥ ४ ॥

अर्थ.—ठती पर्यायो प्रवर्ते तेने कारण कहीए अने कारण होय ते अवश्य कार्य करे अने प्रजाय पोताना प्रजावे वर्ते तेथी प्रति समय व्यय उत्पाद् एटले कारणपणेथी कार्यपणे उपजे अने कार्य करी पाठा कारण पणे उपजे नेथी दर समय व्यय उत्पाद् थया करे अने नवा नवा झेयने जाणनाथी तेनी सादि पण कहीए उक्तच —“परिगमन पज्जाओ” एटले प्रजायो एक कार्य रुढी रीते करी वीजा कार्यमां जाय, एक कार्यपणे उपजेला त्याथी विणसी वीजा कार्यपणे उपजे तेमज दर समय प्रजाय प्रजाह जाणने ॥ ४ ॥

अविजागी पर्याय जेह, समवायी कार्यना गेह ॥ जे नित्य त्रिकाली अनत, तसु झायक जाव महंत ॥ सु० ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रति प्रदेशे अविजागी जे ठती पर्याय रहा ठे ते आत्माथी अचेदपणे समवाय संबंधे ठे अनादि संबंधे पण कहीए अने ते प्रजायाने सर्वसमय कार्य समवाय एटले कार्य संबंध ठे एटले ते कार्यना घर ठे ते अविजागी पर्यायो नित्य ठे, त्रिकाली ठे, अखंड ठे, तेमाथी

एक पर्याय पण कोई काले घटे वधे नहीं तेथी अक्षय ठे, स्वतंत्र ठे. अप्रयासे कार्यकारी ठे एटखे विना प्रयासे पण सहज स्वभाविक कार्य थयां करे. तेमाना ज्ञानना अनंत पर्यायोमां परम ज्ञायकजाव रह्यो ठे ते पर्यायो वरु पोते पोताने अने अन्य ड्रव्यना गुण पर्यायोने जाणवानी महत शक्ति रही ठे ते शक्ति प्रभुजीने तो व्यक्ति पणे धई तेथी ते ज्ञानादिक अनंत गुणोना ज्ञाता जोक्ता ठे ॥ ५ ॥

जे नित्य अनित्य स्वभाव, ते देखे दर्शन जाव ॥ सामान्य विशेषनो पिरु, ड्रव्यार्थिक वस्तु प्रचरु ॥ सु० ॥ ६ ॥

अर्थः—वस्तुना जे नित्यानित्य स्वभाव तेने प्रभुजी दर्शनजावे करी देखे ठे तेथी प्रभु सामान्य अने विशेष लक्षणना एकत्व पिरु आत्म ड्रव्य ठे ते ड्रव्यपणे सदा ठतीवंत ठे अने प्रचरु के० महा-वीर्यवंत ( बलवंत ) वस्तु ठे ॥ ६ ॥

ईम केवल दरशन नाण, सामान्य विशेषनो जाण ॥ द्वीगुण आतम श्रद्धाए, चरणादिक तसु व्यवसाए ॥ सु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एम प्रभुजी केवलदर्शन अने केवलज्ञानवंत ठो एटले वस्तुना सामान्य विशेष जाव प्रकाश करवावाला सूर्य ठो. उपयोगमयी आत्मा ठे अने ते उपयोग सामान्य विशेष वे प्रकारे ठे उक्तंच “उव-ओगमओ अप्पा, उवओगो दुविअप्पो ” एटले आत्मा दर्शन ज्ञान-मयी ठे अने चरणादिक तसु व्यवसाए के० ज्ञान उपयोग अने दर्शन उपयोगमां थिरताए रमण तेनुंज नाम चारित्र कहिए वली ज्ञान दर्शनना अनंत पर्यायमां थिरताए उपयोग रमे तिहा रागादि विजावनो श्रवकाश नथी माटे परम वीतरागताए शुद्धात्मजावमां थिरता तेनेज चारित्र कहिए अने आदि शब्दे उपयोगमां आत्म अग अने आत्म गुणपर्याय अबाधितपणे रहे तेने अव्यावाध गुण कहिए, उपयोगने थिर अडोल अकंप राखवावाली निज शक्तिने

अचल अनत वीर्य कहीए, शुद्ध उपयोगमा थिर रहेलो आत्मा परम समाधि जोगवे ठे माटे तेने परम समाधि कहिए, कोई प्रकारनो जय आवे नहीं माटे निर्जय कहिए वली कोई प्रकारे आकुलता आवे नहीं माटे निराकुल कहीए, उपयोगमा अन्य प्रवृत्ति नथी माटे परम निवृत्ति कहीए, शुद्धोपयोगवतने परतत्रता नथी माटे परम स्वतंत्रता कहीए, शुद्धोपयोगी आत्म गुणमाहे परम तृप्तिवत ठे माटे परम तप कहीए, थिर उपयोगवत स्वपरद्रव्य चाव प्राणनी हाणी करतो नथी तेथी परम क्षमा कहीए वली सर्वे जीवोनी सत्ता समान जाणे ठे कोईने हीण अधिक जाणतो नथी माटे परममार्दव कहीए, अर्हीआ स्वपर जीवने वचनुं उगवुं नथी वक्रता नथी माटे परम आर्यव कहीए, अर्हीआ परद्रव्यनी कामना इष्टा मूर्ता ग्राहकता व्यापकता रक्षकता स्पृहा नथी माटे परम मुक्ति कहीए एम सहज शुद्धात्म अनंत गुणो उपयोगमाज जासे ठे ए प्रमाणे व्यवसाय केण ज्ञानदर्शन शुद्धोपयोग व्यापारमा चरणादिक अनंत गुणो आव्या जाणवा ॥ ७ ॥

द्रव्य जेह विशेष परिणामी, ते कहीए पञ्जव नामी ॥  
ठती सामर्थ्य जेदे, पर्याय विशेष निवेदे ॥ सु० ॥ ८ ॥

अर्थ - द्रव्य पोते सामान्य ठता विशेष परिणामी ठे एटले एक द्रव्यमा अनत स्वपर्याय अने अनंत स्वपर्यायमा एक द्रव्यपणु माटे पर्यायनामी कहीए उक्तंच - " ॥ गुणाणामासठं दवं, एक दवसिया गुणा ॥ लखण पञ्जवाणतु, उजठं निस्सिहिया जवे " ॥ एटले अनत पर्याय लक्षणवत द्रव्य जाणवो ते पर्यायो ठती अने सामर्थ्य एम जे जेदे ठे, ठती पर्याय क्षेत्र विस्तारपणे सर्वे प्रदेशमा अनंतानता रखा ठे अने ते स्वकाले सामर्थ्य पणे उर्द्धताए आवी कार्य करे ठे एटले तिर्यक् क्षेत्र विस्तारपणे जे रखा ते ठती पर्याय कहीए अने स्वकाले उर्द्धताए आवी आप आपणु कार्य करे ते सामर्थ्य पर्याय

कहीए एम विशेष पर्यायने निवेदे के० विशेषे जोगवे ठे ॥ ७ ॥

तसु रमणे जोगनो वृन्द, अप्रयासी पूर्णानन्द ॥ प्रगटी  
जस शक्ति अनंती, निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥ ९ ॥

अर्थ:—ते अनंत स्व शुद्ध रम्य पर्यायमां रमण तेथी ठरेक समय  
समकाले अनंतानदनो जोग ठे. अने ते पर्याय प्रयुंजवामा अने जोग  
जोगववामां कोई प्रकारे कोई बखत पण प्रयास करवो पडतो नथी  
पण सहेजे पर्याय प्रवर्त्ते ठे अने सहेजे जोग आनन्द उपजे ठे एवी  
जेने अनंती शक्ति स्वतंत्र प्रगट थई ठे तेथी सकल गुणोनी आप  
आपणा कार्योनी प्रवर्त्ती सहज स्वजावे स्वतंत्रपणे थाय ठे ॥ ९ ॥

गुण डव्य सामान्य स्वजावी, तीरथपती त्यक्त विजावी ।  
प्रभु आणा नक्ते लीन, तिणे देवचंद्र पद कीन ॥ सु० ॥ १० ॥

अर्थ:—प्रभु, गुणे अने डव्ये सामान्य स्वजावी ठे चतुर्विधि संघने  
तारवानो मार्ग स्थापन करवावाला तेथी तीर्थपती. जेणे सकल विजाव  
तड्यो ठे एम ठतां पण उदय प्रजावे नवि जीवोने देशना आपी तारे  
ठे पण तेनुं ममत्व करता नथी जे जीव प्रभुजीनी आणा सेववामां  
लयलीन थयो तेणे देवमां चंद्रमा समान एवुं पोतानु सिद्धि पद  
प्रगट कयुं, करे ठे अने करशे ॥ १० ॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आत्म प्रदेश रंगधल अनुपम, सम्यकदर्शन रगरे, निज  
सुखके सधैया ॥ तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥  
पर परिणति चिता तजी निजमें, ज्ञान सुखाके संभरे ॥ नि० ॥ १

अर्थ.—आत्माना असंख्याता प्रदेशमां रहेली ज्ञानदर्शन चरण  
वीर्यादि अनंत आत्म शक्ति ते अनंत आनन्द आपवावाली ठे माटे



रंग स्थानक तेनेज कहीए के ज्यां अनंत आनद आवे अने जे विप-  
 र्शनो आनंद ते तो अधिर परतंत्र बहु रोगो अने कर्मबंधनुं कारण ठे  
 तेमा विपररोग वशे अज्ञानीने जोगबुद्धिए आनंद मालूम पके  
 ठे पण आत्म सत्ताज्ञमिमा रहेलो आत्मीक आनद तेने एहवा उपच-  
 रीत आनदनी उपमा लागी शके नहीं एवो अनुपम निरुपचरीत  
 परम आणंद ठे पण ज्यारे जीव मिथ्यात्व बुद्धिए थयेली विपर्यास  
 वासना तजे अने सम्यक्दर्शन प्रगट थाय तोज ते आणद छई  
 शके तो सम्यक्दर्शने करी रंग आवे माटे सम्यक्दर्शन सहित  
 आत्म सिद्धि सुखना दातार श्री महाजस जिनेश्वर महाजस-  
 वंतने आत्म सिद्धि सुखना साधक जव्यजीवो सेवो-ध्यावो हे शा-  
 श्वतसुख अजिलापी। जेमा अनत पर्यायनो वास ठे एहवा आत्मगुण  
 रूप वसतमा निरतर खेलो पुद्गल परिणतिथी कोई काले पण सुख  
 होय नहीं केमके ते अनत वर्गणाथी निपजेली माटे विनाशीक अने  
 आपणी छाप रहे नहीं, आपणी छाप वचें नहीं एम ठता पण मूढ  
 जीव ए माहे त्रमथी लुप्त मानी उलटो प्रयास करी फोगट श्रम  
 खेद जोगवे ठे एमा उमेद करवाथी नाउमेदपणु थाय, ए माहे  
 सुखनी आशा राखवाथी निराशपणु आवे माटे पर परिणतिनी  
 आशा तजी शुद्ध दर्शन ज्ञान चरणमय निजात्म परिणतिमा खेलो  
 परपरिणतिनु चिंतवन तेक्लेश मात्र ठे माटे ते तजी ज्ञानमित्र साथे  
 अरुढ स्वतंत्र शुद्धात्म परिणतिमा खेलो तेथीज एकातीक अत्यतीक  
 आनद उपजे अहिंआ काई क्लेश के परतंत्रता ठे नहीं ॥ १ ॥

वास वरास सुरुचि केशर घन, ठाटो परम प्रमोद रे ॥नि०  
 आतम रमण गुलाबकी लाली, साधक शक्ति विनोदरे ॥  
 निज० ॥ ७ ॥

अर्थ -शुद्धात्म परिणतिमा उपयोगनो वास करवो ते रूप वरासनी  
 शितल सुवासना ह्यो अने शुद्धात्म गुण समुदायमा रूकी परम रूचि

रूप, जथाबंध केशर परमानंदे निज अंगे ठांटो अने रम्य आत्म गुणमां रमण रींझ रक्त परिणाम रूप गुलाबनी लाली आत्म अंगे षडे तेथी साधक जीवने आपणी अंत स्वतंत्र शक्तिनो विशेष प्रमोद हर्ष उपजे ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनता, भोजन सहज स्वभोगरे ॥  
॥ निज ० ॥ रिंऊ एकत्वता तानमें वाजे, वाजित्र सनमुख योगरे ॥ निज ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-देहिक कार्यप्रवृत्तिथी मन वचन कायाना जोगने निवारी निवृत्ति लेई उपयोगने एक शुद्धात्म ध्येयमां लाववो, थिर अडोल अकंप करवो तेनुं नाम ध्यान कहीए. ते ध्यान रूप अमृत पानथी मग्न थवुं ते परम मग्नता जाणवी अने आत्म गुणोना सहज सुभोग रूप भोजन जाणवु. परमानंद स्वगुण परिणतिमां रींऊ तथा आत्म गुणना अंत पर्यायमां एकता रूप अखंड धाराए तान लागुं ते तान कहीए अने मन वचन काय योगनी प्रवृत्ती अन्य कार्यथी तूटी संजम कार्य सन्मुख लागी ते योग सन्मुख रूप वाजित्र कहीए ॥ ३ ॥

शुक्लध्यान होरीकी ज्वाला, जाले कर्म कठोररे ॥ निज ०  
शेष प्रकृति दल खिरण निर्जरा, जस्म खेल अति जोररे ॥  
निज ० ॥ ४ ॥

अर्थ:-सकल ड्रव्यना ड्रव्य गुण पर्याय लक्षण जिन जिन विचारी जे जेना ते तेनामां समावी पर लक्षणथी परम उदासिन्न थवुं ते पृथक्त्ववितर्क म्वपर विचार नामा शुक्लध्याननो पहेलो पायो अने आपणा अंत पर्यायो गुणोमां अने गुणो ड्रव्यमा संक्रमावी अज्ञेद निर्विकल्प उज्वल समयानंतर अखंड ध्यानरूप शुक्लध्यानना एकत्ववितर्क अपर विचार नामा बीजा पायानी ज्वालह्य ज्योति रूप होलीनी ज्वालामा कर्मरूप कठोर काष्ठ वाली जस्म करी

२० श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविंशी.

स्वात् उभावी चौदमां गुणगणानो अंते शेष वार तेर प्रकृति बल  
खेरववा रुप निर्झरा ते व्युत्क्रियया निवृत्तिरुप जस्मखेल अति  
जोरे करी संकल कर्म पापमल धोई शुद्ध ब्रह्मरुप परम सिद्धि पामे ॥४॥

देव महाजस गुण अवलंबन, निर्जय परिणति व्यक्तिये ॥  
निज० ॥ ज्ञाने ध्याने अति बहुमाने, साधे मुनि निज  
शक्तिरे ॥ निज० ॥ ५ ॥

अर्थः—श्री महाजस देवना पूर्ण निर्मल गुण जाणी तेज अवलंब-  
वने अने गुणध्याने अने अति सन्माने जिवि जीवो निर्जयपणे  
आत्मगुणनी आत्म परिणतिनी पूर्ण प्रगटता पामे मुनिश्रो एम निज  
शुद्धात्म शक्ति साधे ॥ ५ ॥

सकल अजोग अलेस असंगत, नाहिं होवे सिद्ध रे ॥  
निज० ॥ देवचंद्र आणामें खेले, उत्तम थुंहिं प्रसिद्ध रे ॥ निज० ॥

अर्थः—अने मन वचन काया तथा अन्य सर्वे पुद्गल योग रहित  
तथा लेश्या रहित अने पर संग रहित होय एटखे जोगादिकधी नाही  
धोई सिद्ध थई शिव महेशमा शिववधु संगे सादि अनंत स्वतंत्र  
आनंद जोगवे देवचंद्र मुनि कहे ठे के जे जिनेश्वरनी शुद्ध स्याद्याद  
आणामा खेलेवु तेज उत्तम सिद्धि सुख पामवानुं उत्तम प्रसिद्ध  
साधन ठे ॥ ६ ॥



॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग-कंडखो ॥

धन्य ! तुं धन्य तुं ! धन्य ! जिनराज तुं, धन्य ! तुज शक्ति  
व्यक्ति सनूरी ॥ कार्य कारण दशा सहज उपगारता, शुद्ध  
कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥

अर्थ:-हे । श्री विमलनाथ स्वामी तुं धन्य ! केमोहादिक सकल  
कर्म शत्रुने जीती आत्म सत्ताचूमि पोताने तावे करी अखड राज्य  
जोगवो ठो वली ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादिक ताहरूं धन ठे वली  
धन्य ! तमने के हमारा सरखा रक जीवोने सहज आत्म शुद्धतारूप  
धन दर्शावी धनवंत करो ठो ए आदि अनेक प्रकारे तमने धन्य ! ठे  
धन्य ! तमारी शक्ति के जे महा तेजवंत व्यक्त ( प्रगट ) थर्ड ठे  
ज्ञानादिक सकल गुणकार्यरूप कार्यदशा तथा ते कार्यना कारण  
रूप ठती पर्यायनी प्रवृत्ती एम कार्य कारण दशा ए वन्ने तमारी  
तमारामां अचेदपणे ठे वली हमारा पण आत्म सिद्धि कार्यना परम  
कारण तमेज ठो वली प्रजुजी कारण विना सहज स्वजावे ज्ञान  
जीवोने उपकार करे ठे ज्ञानादि अनेक कार्यनी कर्तृती पूर्ण पर्याये  
अने पूर्ण परिणामे करो ठो एटले परपरिणामीकता टाळी शुद्ध सह-  
जाव परिणामे आत्मीक अनत कार्य करो ठो ॥ १ ॥

आत्म प्रजाव प्रतिज्ञास कारज दशा, ज्ञान अविज्ञागि  
परजय प्रवृत्ते ॥ एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट, ज्ञेय  
दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥ २ ॥

अर्थ:-हे प्रजुजी ! तमने पोतानाज प्रजावथी स्वसिद्धि रूप कार्य  
सिद्ध करवुं चास्युं तेथी ज्ञानादिकना ठती अविज्ञागि पर्यायो कार्य  
सन्मुख प्रवर्त्या एटले समस्त गुणोना ठती अविज्ञागी पर्यायो आप

आपणा कार्य सन्मुख प्रवर्त्या तेथी प्रगटपणे कार्य सिद्ध थयुं अने  
 हेयनुं जाणवु तथा देखवुं ते निमित्त कारण मात्र ठे पण उपादान  
 पणे तो पोताना ठती पर्यायो सकल स्वस्वकार्यमां प्रवर्त्तवाधी कार्य  
 सिद्धि थाय ठे एम हमारा पण ठती पर्यायो पर प्रवर्त्तीमा जोनायेला  
 ठे त्याथी तोडी हमारा ज्ञानादि आत्म कार्य सन्मुख प्रवर्त्तावीशुं तो  
 हमारू पण कार्य सिद्ध थशे एमा कइ शंका नथी ॥ १ ॥

दास बहु मान नासन रमण एकता, प्रभु गुणालंबनी  
 शुद्ध थाये ॥ बंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी, तेह साधक  
 अवस्था उपाये ॥ धन्य तु ॥ ३ ॥

अर्थ - ताहरी आज्ञा सेववावाला ताहारा दासने ताहारा गुणोनो  
 परम आदर बहु सन्मान आववाधी ताहारा गुणो यथार्थ नासे अने  
 रमण पण तमारा शुद्ध गुणोमां थाय अने साधकना परिणाम विषया-  
 दिक पुद्गल गुणोमां जोनायला ते त्यांथी तुटी ताहारा शुद्ध गुणोमां  
 एकत्वपणे रमे ते साधक प्रभु गुण आलवनी थई पोताना ज्ञानादिक  
 गुणो राग रहित करी शुद्ध थाय अने कर्मबंधना हेतु रागादि तथा  
 मन ईद्रियो आदि पर गुण रसी हता ते प्रभु गुण रसी थई पोतानी  
 शुद्ध सिद्धिनी साधक दशा उपजावे एटले बंध हेतुता टळी मोक्ष  
 हेतु थाय ॥ ३ ॥

कर्म जंजाल युजनकरण योग जे, स्वामी जक्ति रम्या धिर  
 समाधि ॥ दान तप शील व्रत नाथ आणा विना, थईय बाधक  
 करे जव उपाधि ॥ धन्य ० ॥ ४ ॥

अर्थ - पंच ईद्रियो अने मनवचन कायाना योग परद्रव्यमा रक्त  
 थई कर्म जंजाल निपजावे ठे ज्यामुधी प्रभुनी आज्ञा जाणी आदरी  
 नथी त्यांमुधी आत्मा कर्मचेतनापणे अने कर्मफलचेतनापणे परि-  
 णम्या थको पुद्गल क्रियाथी सुख थाय एटले पुद्गल त्याग ग्रहण

प्रवर्तिथी सुख थाय ठे एम जाणी त्रणे योगो अने पंचे इंद्रिउं पुद्गल क्रियामां प्रयुजे ते वडे आठे कर्मनी जाल गुंथो पोतेज तेमां फसायो वंधायो रहे पण ज्यारे प्रजुनी आझा जाणे सन्माने आदरे त्यारे ते पंचेंद्रियो अने त्रणे योग धिर समाधिमां रमे अने प्रजुनी आझा वहारनु दान शील तप व्रतादि जावधर्म विना एकांते इहलोक आहारादि अर्थे, परलोक देवादि अर्थे, अपमान टालवा अने मान मेलववा अर्थे जे जे अनुष्ठानो आदरे ते ते कर्मबंधनां कारण थई जव उपाधिने वधारनार थाय ॥ ४ ॥

सकल परदेश समकाल सवि कार्यता, करण सहकार कर्तृत्व जावो ॥ डव्य परदेश पर्याय आगमपणे, अचल असहाय अक्रिय दावो ॥ धन्य० ॥ ५ ॥

अर्थ:- प्रजुने सर्वे समय समकाले सर्वे कार्यनी कारणताना करण रुपे ठती अविजागी पर्याय अनता ठे ते ठतीपर्यायरुप करणनी प्रवर्ति रुप कारणनी सहाये सर्वे कार्य समकाले थया करे ठे पण डव्यना प्रदेशरुप पर्याय आगममां कह्या प्रमाणे अचल असहाय अने अक्रियपणे ठे एटले प्रदेश काई कार्य करता नथी पण प्रदेशने आधारे ठती अविजागी पर्यायो रह्या तेज कार्य करवाना कारणपणे प्रवर्त्ते ठे ॥ ५ ॥

उत्पत्ति नाश ध्रुव सर्वदा सर्वनी, षट्गुणी हानीवृद्धि अन्यूनो ॥ अस्ति नास्तित्व सत्ता अनादि थको, परिणमन जावथी नहीं अजूनो ॥ धन्य० ॥ ६ ॥

अर्थ:-ते ठती पर्यायो सर्वे सर्वदा कार्यपणे उपजे अने कारण पणेशी विणसे वली कार्यपणेशी विणसी कारणपणे उपजे वली आवीर्जावपणे उपजे अने तीरोजावपणेशी विणसे वली तीरो जावपणे उपजे अने आवीर्जावपणेशी विणसे वली षट्गुणी वृद्धि हाणी पणे उपजे विणसे तेनी विगत.-

ठती पर्यायमाथी जे प्रदेशे सामर्थ्यजावे अनंत पर्यायो  
 आल्या ठे तेथी अन्य प्रदेशे तेज समये अनंतगुणा पर्याय सामर्थ्यपणे  
 आवे वली तेथी अन्य प्रदेशे तेज समये असंख्यातगुणा पर्यायो साम-  
 र्थ्यपणे आवे—उपजे वली तेज समये तेथी अन्य प्रदेशे सख्यातगुणा  
 पर्याय सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समये अन्य प्रदेशे अनंतमे जागे  
 पर्याय सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समये अन्य प्रदेशे असंख्यातमे  
 जागे पर्यायो सामर्थ्यपणे उपजे वली तेज समय अन्य प्रदेशे संख्या-  
 तमे जागे पर्यायो सामर्थ्यपणे उपजे एज प्रमाणे ठए जेदे सामर्थ्य  
 पणेथी विणसे अने तीरोजावे उपजे एम खट्गुणी हाणी अने वृद्धिनो  
 उत्पाद् अने व्यय एक समय समकाले थाय ज्या हाणीनो व्यय  
 त्या वृद्धिनो उत्पाद् अने ज्या वृद्धिनो व्यय त्यां हाणीनो उत्पाद् एम  
 प्रदेश आश्रित तिर्जकताए हाणी वृद्धि समजवी हवे समय आश्रित  
 उर्द्धताए खट्गुण हाणीवृद्धि कहीए ठीए तेनी विगत—

प्रथम समय जे प्रदेशे अनंता पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् हतो  
 अने तीरोपणानो व्यय हतो तेज प्रदेशे अन्य समये तेथी अनंतगुणा  
 पर्यायनो सामर्थ्यपणानो उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य  
 समये तेज प्रदेशे तेथी असंख्यातगुणा पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद्  
 अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी सख्यात  
 गुणा पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य  
 समये तेज प्रदेशे तेथी अनंतमे जागे पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद्  
 अने तीरोपणे व्यय वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी अस-  
 र्यातमे जागे पर्यायनो सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय  
 वली तेथी अन्य समये तेज प्रदेशे तेथी सख्यातमे जागे पर्यायनो  
 सामर्थ्यपणे उत्पाद् अने तीरोपणे व्यय थाय एम समय आश्रित  
 पण खट्गुण हाणीवृद्धि जाणवी ते उर्द्धताए हाणीवृद्धि कहीए  
 एम सिद्धातमा विविध प्रकारे हाणीवृद्धि कही ठे ते सिद्धातोर्थ

समजी लेवी. ग्रंथ गौरव माटे अहिंश्यां विशेष लख्युं नथी अहिंश्यां खद्गुण हाणीवृद्धि कही ते समासथी समजवी पण अनंताना अनंत, असंख्याताना असंख्यात अने संख्याताना संख्यात चेद ठे ते सर्वे मलीने अनंतगुण हाणिवृद्धि समजवी.

ए खद्गुण हाणिवृद्धि रूप परिणमन कहुं तेम सर्वे समय अस्ति अस्तिरूप परिणमे, नास्ति नास्तिरूप परिणमे, ज्ञानपर्याय ज्ञानपणे, दर्शनपर्याय दर्शनपणे, वर्णपर्याय वर्णपणे, गंधपर्याय गंधपणे ए आदि जे जे ड्रव्यमा जे जे सामान्य विज्ञेप स्वजाव होय ते ते सर्वे समय ते ते रूपेज परिणमे. एम परिणमन धर्म अनादिथी सर्व ड्रव्यमांठे कांई नवो थतो नथी अने जूनो मटतो नथी पण नवि नवि स्वगुण परिण-तिण परिणमे. यतः जगवई अंगेः—“ अत्थि ते अत्थितं परिणमयी नत्थि ते नत्थितं परिणमयी ” एटले कोई ड्रव्य स्वस्वरूप अजर स्वस्वजाव ठोडे नहीं अने अन्यस्वजावने ग्रहे नहीं पण मिथ्यात्वी वहिरात्मा जीवनी ड्रष्टी आत्मस्वजाव बाहिर वर्त्ते ठे तेथी पोताना शुद्ध परिणमन तरफ ड्रष्टी विना ते शुद्ध जावने जाणी आदरी शकतो नथी एटलेज पुद्गल परिणतिमां पोतानुं कार्य मानी ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि गुणोने पुद्गल परिणतिमां रोके ठे तेथी स्वगुणो अवरायी चल अने मलिन थई शुद्ध स्वगुण कार्य करी शकता नथी तेथी शुद्ध स्वतंत्र परमाणदनो जोग केम लेई शकाय ? अर्थात् नज लेई शकाय माटे विमल जिनेश्वरनां विमल वचनो हृदयमां धारी परम सन्माने प्रजु आलंवने वर्त्ते ते सकल दुःखथी निवृत्ति परमाणंद प्राप्त करे वली सर्वे ड्रव्यने खद्गुण हाणी वृद्धिमां कोई समय पण न्यून-पणुं के अधिकापणुं थतुं नथी. ड्रव्यमां अगुरुलघुनुं एक अखंड चक्र ठे ते सर्वे समय परिणमे—फरे प्रदेश गते हाणी वृद्धि कहेवाय पण ड्रव्य स्वजावे तो गुरु लघु थतो नथी तेथी अगुरुलघु नामे ए गुण जाणवो. पंचास्ति ड्रव्यने स्वड्रव्ये स्वक्षेत्रे स्वकाले अने स्वजावे



अस्तिपणुं ठे अने परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परजाव रूप थवानी सत्ता स्वद्रव्यादिकमां नथी एटले परद्रव्य परक्षेत्र परकाल अने परजाव रूप न थवा देवानी सत्ता द्रव्यमा ठे तेनेज नास्तिस्वजाव कहीए एम सदा स्वद्रव्यादिके रहेवु ते अस्तिस्वजाव अने परद्रव्यादिके थवानो स्वजाव पोतामा नहीं ते नास्तिस्वजाव कहीए. ते नास्तिस्वजाव पण द्रव्यमा ठतो ठे अस्तिस्वजाव सर्वे समय स्वद्रव्यादिकने ठतीपणे राखे अने नास्तिस्वजाव ते परद्रव्यादिकपणे न थवा दे ए वने स्वजाव द्रव्यना द्रव्यथी अचेदपणे जाणवा. एम नित्य स्वजाव, अनित्यस्वजाव, जेदस्वजाव, अजेदस्वजाव, जव्यस्वजाव, अजव्यस्वजाव, एम द्रव्यना सामान्य विशेषादि अनेक स्वजाव द्रव्यमा द्रव्यथी अचेदपणे ठे तेमाथी मूरयपणे कोई कोई ठेकाणे श्रोठा अधिका मुख्य स्वजाव दर्शाव्या ठे पण द्रव्य अनंत स्वजावी ठे ते सर्वे स्वजावना परिणमन जाव सहित द्रव्य अनादिनो ठे पण नवो परिणमन जावी थयो नथी सर्वे समय आप आपणी परिणामीकताने कोई द्रव्य के कोई गुणो के कोई पर्यायो चूके नहीं, कोईनी परिणामीकता कोईथी रोकाय नहीं माटे शुद्धात्म परिणामीकता अखंड जाणी निर्जय निराकुलपणे स्व ठती पर्यायना अनत स्वतंत्र आनदमा मग रहेवु ज्यासुधी आत्म शुद्धतानु ज्ञान नथी त्यासुधी जीव विज्ञावतामा रमी दुःखी रहे ठे पण शुद्धात्म ज्ञान थया आदर्या पठी विज्ञावतानो अश रहे नहीं तो दु ख शाने होय ? माटे आत्मा पूर्ण स्वगुण पर्यायने जाणी परमानंद जोगी थाय माटे अवसर पामी प्रमाद ठोनी शुद्ध सदागम सेवी परमानंद जोगी थवु एज उपदेश ठे ॥ ६ ॥

ईणी परे विमल जिनराजनी विमलता, ध्यान मन मंदिरे जेह ध्यावे ॥ ध्यान पृथक्त्व सविकल्पता रंगथी, ध्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ७ ॥

अर्थ:-ए प्रमाणे विमल जिनेश्वरनी पूर्ण विमलता उलखी मन मंदिरमां विमलतानुं ध्यान ध्याय ते प्रत्येक ड्रव्यना जिन जिन गुण पर्यायोना जिन जिन विचार रूप पृथक्त्ववितर्क नामा सविकल्प ध्यान रंगे करी करे तेज पुरुष स्वगुण पर्याय स्वड्रव्यथी अज्ञेदपणे जाणे अने तेनेज एकत्वपणे विकल्प रहित शुद्ध शुक्लध्यान आवे पण जिन आझाथी जे विमुख ठे ते सूत्रना अज्ञिप्राय जाएथा विना ध्येय केवो अने ध्यान विधि केवी तेने ते शुजाणे ? अर्थात् नज जाणे. माटे सद्गुरु सगे रहि शुद्ध ध्येय अने शुद्धध्यान विधि जाणी शुक्ल-ध्यान माटे उद्यम परिणामी थवुं एटलेज घनघाती कर्मनो नाश करी शकाय ॥ ७ ॥

उक्तंच “ जो जाणइ अरिहंते, द्रव्य गुण पञ्जवंतेहिं ॥  
सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाहि तस्स लयं ”  
वीतरागी असंगी अनंगी प्रज्जु, नाण अप्रयास अविनाश  
धारी ॥ देवचंद्र शुद्ध सत्ता रसी सेवतां, संपदा आत्म शोभा  
वधारी ॥ धन्य० ॥ ८ ॥

अर्थ:-प्रज्जुने राग सर्वांशे नाश थयो ठे अने पर ड्रव्यादिकनो सग नथी तथा औदारिकादि पुद्गलीक विनाशीक अंग पण नथी तेथी ज्ञान दर्शन चरण अने वीर्यादि अनंत गुणो परम निर्मल अने थिर थया ठे अने अंग रहित तथा पर संग रहित थया माटे ते गुणो मलिन थवाने निमित्त पण नथी अने जेना ज्ञानादि गुणो, विना-प्रयासे सहज स्वतंत्रपणे सकल समय पूर्ण पर्याये प्रगटपणे वत्ते ठे अने पोतानुं आत्म अंग अने आत्मिक रिद्धि अनंतकालसुधी अक्षय अविनाशीपणे प्रगट सिद्धता पाम्या ठे एहवा चारे निकायना देवोमां चंद्रमा समान शुद्ध सत्ता रसी प्रज्जुजिने शुद्ध सत्ता रसीं थई सेवे ते स्वजावीक आत्मीक संपदा धारी थाय ॥ ८ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री सर्वानुभूति जिन स्तवन ॥

॥ जगजीवन जगवालहो ॥ ए देशी ॥

जग तारक प्रभु वीतवुं, विनतमी अवधाररे ॥ तुज  
दरशन विण हुं जन्म्यो, काल अनत अपाररे ॥ जग० ॥२॥

अर्थ:-शुद्धात्म अनत गुण पर्यायनो सकल समय जेने अनुभव  
विलास ठे एवा सर्वानुभूति नामा ठछा तीर्थकर जग जीवोना तारक  
तमारा आगल हु अरज करू तुते माहरी अरज अवधारो तमारा सरखा  
उपकारीनी आणा अणजाणतो तमारा दर्शावैला जीवादिक नव  
पदार्थना जाव मने दर्श्या नहीं त्यांसुधी देहादिकनी ममताए ज्ञाना-  
वरणादिक आठ कर्म बाधी जव वनमा चूलो जटकी अनादि अनत  
अपार काल आज सुधी में बहु दु ख सखां ॥ २ ॥

सुहम निगोद जवे वस्यो, पुद्गल परिअष्ट अनंतरे ॥

अव्यवहारपणे जन्म्यो, दुह्लक जव अत्यंतरे ॥जग० ॥ ३॥

अर्थ -सूक्ष्म निगोदमां अनंत पुद्गलपरावर्तन कस्या अने अनत  
कालसुधी व्यवहार राशीमा पण आव्यो नहीं. बलवंत पुरुषना एक  
आसोआसमां अठार बखत जन्म्यो अने सत्तर बखत मरण कखुं  
एम दुह्लक जव अतरहित करया वली कपाय अने मरणानिक समुद्र-  
घातनी वेदना वारवार सही विश्राम न पास्यो ॥ ३ ॥

व्यवहारे पण तिरिव गते, ईग वण खंम असन्नीरे ॥

असंख्य परावर्तन अया, जमियो जीव अधन्नरे ॥ जग० ॥३॥

अर्थ -व्यवहार राशीमा आव्या पठी पण तिर्यच गनिमा एकें-  
द्रिय वनस्पति अने असङ्गीपणामां असख्याता पुद्गलपरावर्तन  
करया एम मारा ज्ञान दर्शनादि निज धन विना अधन्न एहवो हुं  
नीचपणामा जन्म्यो ॥ ३ ॥

सूक्ष्म थावर चारमें, कालह चक्र असंख्यरे ॥ जन्म  
मरण बहुलां कस्यां, पुद्गल जोगनी कं:खरे ॥ जग० ॥ ४ ॥

अर्थ:—वली पृथ्वी, अप, तेज अने वायु ए चार सूक्ष्म स्थावरमा  
असंख्याता कालचक्रसुधी उपज्यो मख्यो. एम पुद्गल जोगनी  
आकांक्षाए तथा आहारादि चार सज्ञा वशे अथाग जन्म मरण कस्यां ॥४

उंघे वादर जावमें, वादर तरु पण ईमरे ॥ पुद्गल अढी  
लागट वस्यो, नाम निगोदे प्रेमरे ॥ जग० ॥ ५ ॥

अर्थ:—उंघे वादर जावमां एटले वादर निगोद साधारण अनंत  
काय वनस्पतिमां पण सरवाले अढी पुद्गलपरावर्त्तन सुधी लागलो  
जम्यो ॥ ५ ॥

स्थावर थूल परितमें, सीत्तर कोनाकोडिरे ॥ आयर जम्यो  
प्रचु नवि मिथ्या, मिथ्या अविरती जोडिरे ॥ जग० ॥ ६ ॥

अर्थ—वादर प्रत्येक पंचे थावरमां सीत्तर कोनाकोडी सागरोपम  
जम्यो पण तुम समान तारक दीनदयाल मख्यो नही तेथी मिथ्यात्व  
अने अविरती संगे रह्यो ॥ ६ ॥

विगलपणे लागट वस्यो, सखिज वास हजाररे ॥ वादर  
पज्ज वणस्सई, नू जल वायु मजाररे ॥ जग० ॥ ७ ॥

अनल विगल पज्जतमें, तस जव आयु प्रमाणरे ॥ शु-६  
तत्त्व प्राप्ति विना, जटक्यो नव नव ठाणरे ॥ जग० ॥ ७ ॥

अर्थ.—अपर्याप्ता विकलेन्द्रियपणे लागलो संख्याता हजार वरस  
सुधी जम्यो अने वादर प्रत्येक पर्याप्ता वनस्पति तथा पृथ्वी अप अने  
वायुमां तथा अग्नि तथा पर्याप्ता विकलेन्द्रियमां ते ते जवना आयु  
प्रमाणमां शुद्ध देव, शुद्ध गुरू, शुद्ध धर्मनी प्राप्ति विना नवे नवे  
स्थानके जटक्यो ॥ ७ ॥

साधिक सागर सहस दो, जोगवीयो तस जावेरे ॥ एक  
सहस साधिक दधी, पचेद्रि पद दावेरे ॥ जग० ॥ ए ॥

अर्थ -सरवाळे वे हजार सागरोपमथी काईक अधिक ते जावने  
जोगव्यो एक हजार सागरोपमथी काईक अधिक पंचेंद्रियपणामां जन्म्यो  
पर परिणति रागीपणे, पर रस रगे रक्ते ॥ पर ग्राहक  
रक्षकपणे, पर जोगे आशक्ते ॥ जग० ॥ १० ॥

अर्थ -पुद्गल परिणतिना रागीपणे, पुद्गल परिणति रस रंझे  
रक्त थईने, पुद्गल परिणति ग्रहणताए तथा परपरिणति रक्षण प्रवृत्तिए,  
परपरिणति जोग जोगवानी आशक्ती लोळुपताए शुद्धात्म तत्त्व दर्शुं  
नहीं तेथी एवा ज्ञमण कख्यां ॥ १० ॥

शुद्ध स्वजाति तत्त्वने, बहुमाने तद्धीनरे ॥ ते विजाती  
रसता तजी, स्वस्वरूप रस पीनरे ॥ जग० ॥ ११ ॥

अर्थ -जे पुरुष शुद्ध स्वजाती तत्त्व के० आत्म जातीथी उपन्या जे  
शुद्ध ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादिक सार तत्त्व तेनो रसीठ थई  
तत्त्वबहुमाने तत्त्वमां लीन थयो ते विजाती के० पुद्गलथी उपन्या  
वर्ण गंध रस स्पर्श आकार शब्द उद्योत कान्ती ठायी प्रजा लोही  
मांस वीर्य त्वचा रत्न मणि माणिक सुवर्ण रूपुं देव देवी नर नारी  
तिर्यंच सतान कुटुब औदारिकशक्ति वैक्रियशक्ति आहारकशक्ति  
तैजसशक्ति कर्मणशक्ति ए आदि जे जे पुद्गलथी उपजे ठे ते सर्वे  
पुद्गल जाती एटले आत्माने ए विजाती ठे ते सकल विजातीना  
रस आस्वादाने तजे ते पोताना ज्ञान वीर्यादि शुद्ध स्वस्वरूप रसे पुष्ट  
थाय एटले सकल कर्म अरि नाश करवानी उत्कृष्ट शक्ति पामे अने  
ज्ञानादि स्वगुणोमा अचल वीर्य रूप परम स्थिरता पामे ॥ ११ ॥

श्री सर्वानुभूति जिनेश्वरू, तारक लायक देवरे ॥ तुज  
चरणे शरणे रह्यो, टले अनादि कुटेव रे ॥ जग० ॥ १२ ॥

अर्थः—श्री सर्वानुचूति जिनेश्वर तेज ज्ञवि जीवोने तारवा लायक देव ठे. जे ज्ञव्य तमारुं चरण शरण आदरे—स्वज्ञावाचरणमां रहे तेने अनादि कर्मबंधनी माठी टेव टले ॥ १२ ॥

सवला साहिव उलगे, आतम सवलो थायरे ॥ बाधक परिणति सवि टले, साधक सिद्धि कहायरे ॥ जग० ॥ १३ ॥

अर्थः—बलवंत साहेवने अरज करवार्थी अने बलवंत साहेवनी महेरथी आत्मा पण कर्म नाश करवा अने आत्म सत्ताचूमि कवजे करी आत्मीक राज जोगववाने बलवंत थाय एम प्रभु आश्रित वत्ते तेने बाधकतानी एटले कर्मबंधनी उत्तर प्रकृति एकसो वीश बाधवानी टेव ठे ते टेव टले एटले साधकता पामी सिद्धि पामे ॥ १३ ॥

कारणथी कारण हुवे, ए परतित अनादिरे ॥ माहरा आतम सिद्धिना, निमित्त हेतु प्रभु सादिरे ॥ जग० ॥ १४ ॥

अर्थः—जे कार्यनुं जे कारण होय ते कारण वडेज ते कार्य थाय ए अनादिनी निःशंक रीत ठे माहरा आत्म सिद्धिना निमित्त कारण आजथी प्रभुजी तमेज ठे ॥ १४ ॥

अविसंवादन हेतुनी, द्रढ सेवा अन्यासरे ॥ देवचंद्र पद निपजे, पूर्णानंद विलासरे ॥ जग० ॥ १५ ॥

अर्थः—ज्ञव्यने संसारथी तारनार प्रभुजी अविसंवाद हेतु ठे. जे ज्ञव्य तेमनी द्रढ सेवा के० आझा द्रढ परिणामे सेववानो अन्यास राखे ते देवमां चंद्रमा समान पूर्णानंद पदवीनो विलास पामे ॥ १५ ॥

संपूर्ण.

॥ अथ श्री सप्तम श्रीधरजिन स्तवन ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

से मुख मुख प्रचुने न मली शक्यो, तो सी बात कहाया ॥  
 ॥ जिणंदजी ॥ निज पर वीतक बात लहो सहु, पण मने  
 किम पतित आय ॥ जिणदजी ॥ से मुख ० ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीवंत श्रीधरस्वामीने हु पोते मुखे मुख मली शक्यो नहीं  
 तो सी बात कहिये? जो मुखे मुख हु मढ्यो होत तो मनमान्या प्रश्नो  
 करी कंखा मोहनीनो उतावलो नाश करतो पोताने अने अनंत अन्य  
 जीवोने वीती वीते ठे अने वीतशे ते सर्वे तमे जाणो ठो तोपण मने  
 केम पतित आय के प्रचुजीशे माहरी अरज स्वीकारी ? ॥ १ ॥

ज्वय अज्वय परित्त अनंत तो, कृष्ण शुक्लपद्म धार ॥  
 ॥ जि ० ॥ आराधक विराधक रीतनो, पूठि करत निरधार ॥  
 ॥ जि ० ॥ से मुख ० ॥ २ ॥

अर्थ—ज्वयजीवो अने अज्वयजीवो ए वने अनंता अनंता ठे तेमा  
 हु ज्वय तुके अज्वय तु ? वली कृष्णपद्मी अने शुक्लपद्मी जीवो तेपण  
 अनंता ठे अटले जे चरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्त्ते ठे ते शुक्लपद्मी जा-  
 णवा अने जे अचरमपुद्गलपरावर्त्तने वर्त्ते ठे ते कृष्णपद्मी कहीए,  
 तेमा हु शुक्लपद्मी तुं के कृष्णपद्मी तुं ? वली जे जिनेश्वरनी आज्ञामा  
 वर्त्ते ठे ते मोक्षमार्गना तथा आत्मशुद्धताना आराधक ठे अने जे  
 तीर्थकरोनी आज्ञा बाहिर वर्त्ते ठे ते प्रचुआणाना, मोक्षमार्गना अने  
 आत्मशुद्धताना विराधक ठे तेमा हु आराधक तुंके विराधक तुं ? ए  
 आदि प्रश्नो पूठी निरधार करत ॥ २ ॥

किण काले कारण केद्वे मळे, थासे मुजने हो सिद्धि ॥

॥ जि ० ॥ आतम तत्त्व रुची निज रिद्धिनी, लद्धिशुं सर्व  
 समृद्धि ॥ जि ० ॥ से मुख ० ॥ ३ ॥

अर्थः—माहरे कए काले अने कोण कारण मलवार्थी सिद्धि थशे ?  
वली क्यारे हुं आत्मतत्त्व रुचीवत थइ समजाव आदरी सहजे  
आत्मिक सकल साची रिद्धि पामीश ? ॥ २ ॥

एक वचन जिन आगमनो लही, निपाव्यां निज काम ॥  
॥ जि० ॥ इतले आगम कारण संपजे, ढील थई किम  
आम ॥ जि० ॥ से० ॥ ४ ॥

अर्थः—कोईक पुरुषोए एकज वचन जिनागमनुं पामी जाणी  
आदरीने आत्मसिद्धिरूप कार्य निपजाव्युं अने माहरा सरखाने एटलां  
वधां आगम वचन जाण्या ठतां पण सिद्धि माटे आम केम  
ढिल थइ ? ॥ ४ ॥

श्रीधर जिन नामे बहु निस्तख्या, अटप प्रयासे हो जेइ ॥  
॥ जि० ॥ मुज सरिखो एतले कारण लहे, न तरे कहे किम  
तेह ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—श्रीधरस्वामीना नामथी (वचनथी) अटपप्रयासे पण बहु  
जीवो संसार निस्तार पाम्या एटले ससारसमुद्रनो सहजे पार पाम्या.  
जेम अखाडमुनि नाटकणीने घेर रखा अने नाटक करता ठता पण  
एकत्व अनित्यजावनाए शुद्धात्मतत्त्व विचार करता एटले अटप  
प्रयासे केवलज्ञान पाम्या एम जरतादिक अनेक जीवो अटप प्रयासे  
केवलज्ञान पामी सिद्धि वस्था ठे अने माहरा सरखाने केटलांक  
वधां कारण मढ्यां अने प्रयास करे ठे तो पण तरता नथी तेनुं शुं  
कारण ? ॥ ५ ॥

कारण जोगे साधे तत्त्वने, नवि समख्यो ऊपादान ॥ जि० ॥  
श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते, तेहनो कोण निदान ॥  
॥ जि० ॥ से० ॥ ६ ॥



अर्थ.—केटलाक मात्र एकांत कारण जोगप्रवृत्तिपर तत्त्व साधना  
 छे ठे पण उपादान संज्ञालता सुधारता नथी. जेम कोई घट कर-  
 वानो अर्थी दडवडे चक्र फेरव्या करे एवी कारण प्रवृत्तिनी अनेक  
 क्रिया क्रोडाक्रोमी वरससुधी करवा करे पण घटनु उपादान जे मृ-  
 तिका ते माहे पिट थास कोस पृथु घुघ्न ग्रीवादि घटपर्यायना यथा-  
 योग्य जेवा घाट ठे तेवा मृतिका पिरुमां काढे नहीं अने मात्र वाह्य  
 कारणप्रवृत्ति क्रोडाक्रोडीथी पण अधिककालसुधी करवा करे तोपण  
 ते घट नियमा धवानो नथी तेम कोई जीव आत्मसिद्धि अर्थे एकाते  
 कारणप्रवृत्तिनी क्रिया अनंतकालसुधी करे अने उत्सर्ग आत्मअं-  
 गमा सम्यक्, विरती, अप्रमादता, अकपायता, अथिरता आदि  
 जे जे पर्यायो सिद्धमा ठे ते ते पर्यायानुं आत्मअंगमा सपादान करे  
 नहीं तो कोईकाले पण आत्मसिद्धि थाय नहीं पण सिद्ध जग-  
 वतमा शुरू द्रव्यपर्याय अने शुरू गुणपर्यायादिनु जेवुं स्वरूप ठे  
 तेवु स्वरूप आत्मअंगमा सपादान करे एटले आत्मा आत्म परिणाम  
 वने आत्म संपदा दान आत्माने एटले पोते पोताने आपे तोज सिद्धि  
 रूप कार्य थाय. ते तो प्रचु वाणीना अजाणने एकांततानो जावरोग  
 सत्तामा रह्यो ठे तेथी ते कार्यसिद्धि केस करी शके ? तो हे जिनराज !  
 मने वतावो के एकांतता रूप जावरोगनुं मूल निदान शुं ठे ? ॥ ६ ॥

जाव रोगना वैद्य जिनेश्वरु, जावौषध तुज ऋक्ति ॥ जि०  
 देवचंद्रने श्री अरिहंतनो, ठे आधार ए व्यक्ति ॥ जि० ॥ से० ॥ ७

अर्थ—हं तीर्थकरोनाज वचनथी जाणु तु के एकांतता रूप जावरोग नाश  
 करवा माटे वैद्य ते तो जिनेश्वर ठे अने जिनेश्वरनी आज्ञाए वर्तवा  
 रूप जिनऋक्ति तेज जावरोग नाश करवानो उत्तम ईलाज ठे माटे  
 देवचंद्र मुनि कहे ठे के माहरे तो अरिहंत देवनोज आधार ठे के  
 एमना वचन आश्रित हूं मारा जावरोगने दूर करी आत्मसिद्धि वरुं  
 ए प्रगट ठे ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम श्रीदत्तप्रभु स्तवन ॥

॥ राग धमाल ॥

जिन सेवनथें पाईये हो, शुश्रूषतम मकरंद ॥ ए आंकणी ॥  
तत्त्व प्रतित वसंत ऋतु प्रगटी, गई सिसिर कुप्रतीत ॥  
॥ ललना ॥ दुरमति रजनी लघु नई हो, सदबोध दिवस  
वर्दीत ॥ ललना ॥ जिन ० ॥ १ ॥

अर्थः—जिनेश्वरनी आज्ञा सेववाथी आत्म शुद्धता सुवास रसस्वाद  
पामीए जेम जमरो सुगंधी फूलोमांथी रस खेंची सुवास युक्त  
स्वाद ले वे तेम आत्मांमं भोगीपणु वे पण ज्यासुधी पोतानुं शुद्ध  
स्वरूप जाण्युं नथी त्यांसुधी पुद्गलोमां आपापणुं मानी पुद्गल  
स्वाद लेतो चउगति कंतारमां परतंत्रताए अनंत दुःख भोगवतो रहे  
वे पण तेज आत्मा ज्यारे जिनेश्वरनी आज्ञा सेववावालो थाय त्यारेज  
शुद्धात्म मकरंद के ० आत्म शुद्धतानो उत्तम सुवास रस स्वाद लेई  
शके. ज्यारे जिनेश्वरे प्ररूपेला नवे तत्त्वोनी डव्य जाव प्रतित सद्वहणा  
रूची उपजे तथा तत्त्वोमा संशय, विभ्रम, विमोह रहे नहि त्यारेज  
जीव सम्यक्दर्शन पामे षटले निःशकतादि आठ गुणो प्रगट थाय  
ए प्रमाणे तत्त्व प्रतित थवाथी आत्म उपयोग आत्म शुद्धतामां वसवा  
लाग्यो ते रूप वसंत ऋतु प्रगटी त्यारे तत्त्वोनी अप्रतित रूप शीत  
काल दूर थयो अने आत्म अनात्म अजर जीवादि नव तत्त्वना  
जावनी प्रतित थवाथी मिथ्यात्व अधकारवाली रात्रि पण घटी गई  
अने सदबोध रूप उद्योतवालो दिवस पण वृद्धि पाम्यो ॥ १ ॥

साध्य रुचि सुसखा मिलीहो, निज गुण चरचा खेल ॥ ल ०  
वाधक जावकी नंदना हो, बुध मुख गारिको मेल ॥ ल ० ॥  
जि ० ॥ २ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म साध्य साधवानी रुचीरुप तथा खाति मृदुता  
 ऋजुता निस्पृहता आदि आप आपणी रुनी सखीओ मली तथा  
 सम सवेग निर्वेद आस्ता अनुकपादि अनेक मित्रो मल्या अने  
 ते सर्वे शुद्धात्मगुण चर्चारुप खेल खेलवा लाग्या अने होली उपर  
 जेम लोको उघाडी गालो बोले ठे तेम बुरू पुरुषो बाधक जावनी  
 निदारुप उघाडी गालो बोलत्रा लाग्या ॥ २ ॥

प्रभु गुण गान सुठदशुं हो, वाजित्र अतिशय तान ॥ ल०  
 शु० तत्त्व बहुमानता हो, खेलत प्रभु गुण ध्यान ॥  
 ल० ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ -तीर्थकरोना ज्ञानादिक व्यक्तगुणो निर्जय सुठंदपणे गावा  
 लाग्या अने अपायापगमन अतिशय, वचनातिशय, ज्ञानातिशय अने  
 पूजातिशयरुप वाजित्रमा अद्भूत तान लाग्यु शुरुतत्त्वना बहुमानपणे  
 प्रभुगुण ध्यानमा एटले शुरु सिरु गुण ध्यानमां खेलवा लाग्या  
 एटले अन्य ध्येयमां जतुं चित्त वाली शुरु ध्येयमां थिरतापरमण  
 कस्यु ॥ ३ ॥

गुण बहुमान गुलालसो हो, लाल जए जवि जीव ॥ ल०  
 राग प्रगस्तकी धूममें हो, विजाव विडारे अतीव ॥ ल० ॥  
 जिन० ॥ ४ ॥

अर्थ -केवलज्ञानीओना गुणबहुमानरुप गुलालनी वाली सम्य-  
 क्दर्शनीओना अगे चढी एटले प्रगस्त रागनी धूम मची तेथी अ-  
 तिशय विजाव ठेववा लाग्या एटले ज्ञान दर्शन चरणादि गुणोनी  
 उज्वलता अने थिरता वधवा मानी ॥ ४ ॥

जिन गुण खेलमे खेलते हो, प्रगट्यो निज गुण खेल ॥  
 ल० ॥ आत्म घर आत्म रमे हो, समता सुमति के मेल  
 ल० ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम् ज्ञव्यने, निज गुण ख्याल खेलतां शुद्धात्मगुण खेले प्रगट थयो त्यारे आत्मा पुद्गल परिणतिरूप परधर बोनी स्वसत्ता जूमिरूप निज धरमां शुद्धात्म परिणतिरूप सुमती साथे सुमतावंत आत्मानो मेलाप थयो ॥ ५ ॥

तत्त्व प्रतित प्याले जरे हो, जिन वाणी रसपान ॥ ल०  
निर्मल जक्ति दाळी जगी हो, रिंझे एकत्त्वता तान ॥ ल० ॥  
जिन० ॥ ६ ॥

अर्थः—त्यारे पूर्ण तत्त्व प्रतितरूप प्यालामां जिनवाणीरूप अमृतरस पान जखुं अने सुमता समिति आदि सर्वे परिवारे पीधुं एटले जिनेश्वरनी आज्ञा सेववा परम वीर्यरूप दाळी आत्मअंगे प्रगट थई पठी शुद्धात्म स्वरूपमां अखड रीझरूप एकतानुं तान लाग्युं ॥६  
जव वैराग अविरंशुं हो, चरण रमण सुमहंत ॥ ल० ॥  
समिति गुपति वनिता रमे हो, खेले हो शुद्ध वसन ॥ ल० ॥  
जि० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली जवजोग वैरागता रूप अवीर उडाव्युं एटले आत्मा सुमतिसंगे परम रुद्रा स्वज्ञावाचरणमां लाग्यो ते वेला विनयवती पंच समिति अने त्रण गुति पोताना स्वामी स्वज्ञावाचरणी आत्मापासे खेलेवा—रमवा लागी एम् सहदमां एटले आत्म स्वप्रदेश हदमां शुद्ध वसंत ख्याल खेले ॥ ७ ॥

चाचर गुण रसीया लिये हो, निज साधक परिणाम ॥ ल०  
कर्म प्रकृति अरति गई हो, उदसीत अघित उदाम ॥ ल० ॥ जि० ॥ ८ ॥

अर्थ—ते देखी जवि जीवरूप चाचर शुद्धात्मगुण रसी थई आत्म सिद्धि साधवाना परिणामी थया एटले मिथ्यात्वादिक हेतु प्रवृत्तिए निपजाव्यां जे ज्ञानावरणादिक कर्म तेथी अज्ञान मिथ्यात्व कपाय

आदिकनी अरति थई हती ते गई अने ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि  
निज शुद्ध गुण रूप अमृत प्रगट थयुं-उर्द्धताए आव्यु एटले उलस्यु  
उद्वास थयु, विज्ञाव सबधे वंधायलु आत्मवीर्य मिथ्यात्वादिकथी वृटी  
उर्द्धताए आव्युं वधथी वृटी उपर आववुं तेनु नाम उद्दाम कहिए ॥

धिर उपयोग साधन मुखे हो, पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥

उपगम रस जरी गटता हो, गई तताई अपार ॥ ल० ॥

जि० ॥ ए ॥

अर्थ -आत्म शुद्धता मूख्य साधनरूप मूखमा उपयोगनी धिरता  
रूप पीचकारीनी सुवासिन धार समझवी मिथ्यात्व कपायादिना  
उपशमरूप अमृत रस गांठवे करीने प्रथम जे मिथ्यात्व कपायादिनी  
तताई के० असह्य तप्ती हती ते अपार तपि समी गई अने सम-  
जावनी शीतल समाधि शांती प्रगट थई ॥ ए ॥

गुण पर्याय विचारतां हो, शक्तिव्यक्ति अनुभूति ॥ ल० ॥

द्रव्यास्तिक अवलंबता हो, ध्यान एकत्त्व प्रसूति ॥ ललना० ॥

॥ जि० ॥ १० ॥

अर्थ -स्वपर द्रव्यना गुणपर्याय विचारतां स्वगुण पर्याय स्वद्र-  
व्यादिकथी जिन नथी अने परगुण पर्याय पर द्रव्यादिकथी जिन  
नथी कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यमा जतो आवतो नथी,  
कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने निश्चय नथी गुण दोष  
करी शकतो नथी, कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यनो नथी  
एम जे जेनुं ते तेनु जाणता ममतानो अश रहेतो नथी अने  
कोई द्रव्यनो गुणपर्याय कोई अन्य द्रव्यने काममा आवतो  
नथी एम जाणवाथी रागाश रहेतो नथी अने कोई द्रव्यनो  
गुण पर्याय कोई अन्य द्रव्यने हाणी के दोष करी शकतो नथी  
एम जाणवाथी द्वेषांश पण नाश पामे ठे माटे स्वपर द्रव्य

गुण पर्यायने चित्र विचारतां पोतानी सर्वे शक्ति परतत्रता विना पोतामांज व्यक्ति एटले प्रगटपणे जणाय ठे प्रगटपणे पोतानी ज्ञानादि शक्ति स्वतंत्रताए जणार्ई एटले तेनो अनुभव आनंद आवे ठे एटले विज्ञानरूप विन्ती प्रगट थाय ठे. आत्म ड्रव्यना अनत गुणो आत्मांमां अज्ञेदपणे ठतीरूप ठे ए अवलवन लेतां पर ड्रव्यादिकनु कांई काम नथी तो परड्रव्यादिकनो विचार शा माटे रहे ? अर्थात् नज रहे एम एकत्वपणे आत्म शुरुतामां ध्यान धिर थाय ठे एटले शुरु ध्यान उपजे ठे-जन्मे ठे एम जाणवुं ॥ १० ॥

राग प्रशस्त प्रजावनाहो, निमित्त कारण उपजेद ॥ ल० ॥  
निरविकल्प सुसमाधिमें हो, जये हे त्रिगुण अज्ञेद ॥  
॥ ल० ॥ जि० ॥ ११ ॥

अर्थ:-प्रशस्त राग बडे पर जीवने जिन आज्ञामां रूची उपजाववी ते निमित्त कारणनो एक जेद ठे. दशमा गुणठाणे सज्वलननो राग रहे त्यांसुधी प्रवचननी जक्तिए प्रेस्यो जीव पर जीवने जिन शासनमां लाववानो परिणामी होय ठे ते परिणाम पण निमित्तनो एक जेद ठे. अने पठी सकल विकल्पो ठोडी ज्ञान दर्शन चरणमय एक अज्ञेद आत्म जावमां थीरता पामे ठे. एज प्रमाणे साधक जीवोना ज्ञान दर्शन चणादि गुणो आत्माथी अज्ञेदपणे थया ठे एटले निर्विकल्प शुरु समाधि पाम्या ठे ॥ ११ ॥

ईम श्रीदत्त प्रभु गुणे हो, फाग रमे मतिवंत ॥ ल० ॥  
पर परिणति रज धोयके हो, निरमल सिद्धि वसंत ॥ ल० ॥  
॥ जि० ॥ १२ ॥

अर्थ:-एम मतिवंत पुरुषो श्रीदत्त स्वामीना शुरु गुणोमां चित्त रमाववा रूप फाग रमे तेथी अनादिनो परपरिणतिरूप जे मेल लाग्यो

वे ते शुद्ध स्वरूप रमण रूप संवर नीरमां जीवतां कर्म रज रूपं मेल  
धोई निर्मल सिद्ध थई शिवपुरीमां वसे ॥ १५ ॥

कारणथें कारज सधे हो, एह अनादकी चाल ॥ ल० ॥  
देवचद्र पद पाईये हो, करत निज जाव सजाल ॥ ल० ॥  
॥ जि० ॥ १३ ॥

अर्थ-शुद्ध कारण आदर्यां कार्य सिद्ध थाय वे ए अनादिनी  
रीत ठे. तो श्रीरुच स्वामीना वचन रूप कारण पामी शुद्धात्म जाव  
संतालीए आदरीए तो देवमा चद्रमा समान परमात्म पद नीपजे १३

॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥

॥ मोरा साहेव हो श्री शीतल नाथके ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीते हो करि धिर उपयोग के, दामोदर जिन वंदीये ।  
अनादिनी हो जे मिथ्या आंतिके, तेह सर्वथा ठेदीये ॥ अवि-  
रती हो जे परिणति छट्ट के, टाळी धिरता साधीए । कषायनी  
हो कसमलता कापी के, वर समता आराधीए ॥ १ ॥

अर्थ-नवमा श्री दामोदर स्वामीना शुद्ध स्याद्वादामृत रस जख्यां  
वचन साजखी आत्म अनात्म आदि अनत तत्त्वोनी रूनी प्रतित  
करो उपयोग धीर करी दामोदर स्वामीने परमआदरे वंदीये एटले  
तेमना वचन अने गुणो अति सन्मानि आदरिये जीवने अनादिथी  
विप्रयास वासना रूप मिथ्या आंति ठे तेनी विगत -

जीवमा अजीव बुद्धि, अजीव गुणपर्यायमा जीव बुद्धि, शुद्धात्म  
स्वजावधर्ममा अधर्मबुद्धि, अने पुद्गल क्रिया प्रवृत्तिरूप अधर्ममा धर्म  
बुद्धि, शुद्ध तत्त्वना जाण समजापी गुरु उपर कुगुरु बुद्धि अने जैन

तत्त्वना अजाण उत्सृज्ज्ञापी स्वठंदताए चालवावाला जैन ज्ञेखंधारी,  
 अथवा अन्य ज्ञेखंधारी उपर सुगुरु बुद्धि, केवलज्ञान केवलदर्शन  
 परमथिरता अचल अनंत वीर्यवंत देव उपर अदेव बुद्धि, मिथ्याज्ञान  
 मिथ्यादर्शन चपलतावंत लब्धिवीर्य हीण उपर देव बुद्धि, अष्टकर्मयी  
 मुक्त थयेलाने अमुक्त जाणवा अने अष्टकर्म वधन युक्त रागद्वेष-  
 वंतने अथवा स्नेहपासमा वधयेलाने मुक्त जाणवा, ए पंचेने विपरित  
 अथवा सरखा जाणवा तथा स्त्री पुरूप कुटुवादि विषयो दातारने  
 मित्र जाणवा अने सम्यक्ज्ञान दर्शन चरणात्म वीर्यना दातारने  
 शत्रु प्राय जाणवा, विषय रोगना उपचारने सुख जाणवुं अने शुद्धात्म  
 संयममांहे दुःख जाणवुं, कारणने कार्य जाणवु अने कार्यने कारण  
 जाणवु, अपवादने उत्सर्ग तथा उत्सर्गने अपवाद जाणवो, पुण्य  
 पापरूप शुजाशुज परिणामने धर्मरूप शुद्ध परिणाम जाणवो तथा शुद्ध  
 जावधर्मने पुण्य पापरूप शुजाशुज परिणाम जाणवो, उन्मार्गने मार्ग अने  
 शुद्धमार्गने उन्मार्ग, आश्रवने संवर अने संवरने आश्रव, बंधने  
 अवध अने अवंधने वंध, अकर्त्ताने कर्त्ता अने कर्त्ताने अकर्त्ता, अका-  
 रणने कारण अने कारणने अकारण, अकार्यने कार्य अने कार्यने  
 अकार्य, अकारकने कारक तथा कारकने अकारक, अप्रमाणने प्रमाण  
 तथा प्रमाणने अप्रमाण, कुनयने सुनय अने सुनयने कुनय, कुवचनने  
 सुवचन अने सुवचनने कुवचन, समजापीने विषमजापी तथा वक्र-  
 जापिने समजापी, उलटजावने सुलटजाव तथा सुलटजावने उलट-  
 जाव ए आदि विपर्यास वासनाना असंख्यात अध्यवसाय ( अज्ञि-  
 प्राय ) ठे ते सर्वे जडमूलथी उठेदिए मन वचन काया ए त्रणे  
 जोगो सदा अव्रत अने विषय कपायमां प्रवर्त्ते ठे एटले ते रातदिने  
 सर्वे समय पंचविषय, पंचअव्रत तथा चारकपायथी निवर्त्तता नथी  
 एवी दुष्ट एटले आत्माने अनंत दुःख आपनारी अविरति



परिणति अनादिथी लागेली ठे ते डुष्ट परिणति टाळ  
 विषयो अत्रतादिकधी निवृत्ति लेश शुद्धात्मजावमां परमस्थिर  
 साधीए मूल चार कपाय अने कपायना कारणरूपनव नोकपाय ते  
 आत्मधंग अने आत्मगुणो कपाय ठे एटले गोपाय ठे ते कपा  
 मेलधी उपजती कसमलताके कलुपता कापीने वरप्रधान निज आत्  
 डव्य क्षेत्र काल जावमा परमशाति अने परमसमाधि अने परमसंत  
 पक्ष समता सेविए एटले परडव्यादिकमा अनादिथी आपाप  
 मानेलु ठे ते स्वडव्य क्षेत्र काल जावमांज आपापणानी बुद्धि थ  
 त्यारेज परम स्वतंत्र शुद्ध शांति तुष्टि थाय ॥ १ ॥

। जंवूने हो चरते जिनराज के, नवमा अतित चौवीशीये  
 जस नामे हो प्रगटे गुण रासि के, ध्याने शिव सुख विलसीये  
 अपराधी हो जे तुजधी दूर के, चूरि च्रमण दुःखना धणी  
 ते माटे हो तुज सेवा रंग के, होजो ए इवा घणी ॥ २ ॥

अर्थ.—आ जवुद्धीपना दक्षिण चरतमां अतित चौवीशीमा नव  
 दामोदर स्वामी नामे तीर्थकर अया जेनुं नाम साजलतां अने जे  
 वचन हृदयमां धारता ज्ञानादिक क्रांत्यादिक अनंत शुद्धात्मगुण ज  
 प्रगट थाय अने जेना ध्यानधी एटले दामोदर स्वामीए जे ध्य  
 कस्यु अने जे ध्यान शिवसुख माटे वताच्युं ते ध्यान आदरिये  
 उपडव रहित शाश्वत सहज परमानठ सुखविलास पामीए ता  
 आझाथी जे वेगला रहे ठे ने तमारा तथा आत्मशुद्धताना अने  
 कर्मार्गना अपराधी अइ नवच्रमण करता चारे अने वेरा दुःख च  
 ववाना धणी जाणवा ते माटे महारे तो तमारी अखड आझा सेवव  
 रंग रहेजो एज माहरी परम जिज्ञासा ठे ॥ २ ॥

मरुधरमें हो जिम सुरतरु लुवके, सागरमें प्रवहण स

॥ ऋवृजमतां हो ऋविजन आधार के, प्रभु दर्शन सुख अनुपमो ॥ आतमनी हो जे शक्ति अनंतके, तेह स्वरूप पदे धर्या ॥ परिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के, स्वस्वकार्यपणे वर्या ॥ ३ ॥

अर्थः—मारवाड देशमां कद्वपतरुनी लुंवो के० आम्रवृक्षानां झूमखां मलवां दूर्लभ तेम आ दुपमकाल पांचमा आरामां ताहरां अनंत ज्ञान अनंत न्याय अने परम ठ्यामयी वचन पर्यायोनी लुंवो मलवी घणा लोकोने दूर्लभ जाणवी अने हमने प्रभुत्व पुण्य पसाए प्रभुवचननो लाज थयो ते आश्चर्य जेवु जाणी चित्तमां आनद अने उद्वास पामिए ठिए एटले चरसमुद्रमां झोलां खाताने जेम डढ प्रवहण आवी मले तम हमे पण संसार समुद्रमा रूवकीओ खाताने ताहरा स्याद्वाद वचनरूप डढ जहाज आवी मल्युं ते पण परमानंदनुंज कारण ठे. ऋवृजमण करता ऋवि जीवोने ताहरोज आधार ठे अथवा ताहरां प्ररूपेलां शुद्ध वचन प्ररूपकनो आधार ठे पण ताहरी जे आज्ञार्थी उलटा दुर्मतीओना वचन आधारे वसें ठे तेने तो जेमां मिव्यात अज्ञान अने कपाय रूप खारं पाणी जखुं ठे एहवा नवसमुद्रमा प्रत्यक्षपणे रूवता देखीए ठीए ताहरी आज्ञामा रहेवुं एज ताहरं दर्शन तेथी जे सुख पामिए तेने संसारीक उपचरित सुखनी उपमा लागी शके नहीं. प्रभुजी तमे आत्मानी अनंत शक्ति पूर्ण पर्याये स्वस्वरूपपदे धारण करी अने तमे ज्ञानादिक निज आत्म अनंत धर्मना परिणामी थया एटले कारकचक्र जे उलटुं फरतु हतुं ते पलटी सुलटुं एटले ज्ञान दर्शन चरणादिक आत्मीक अनंत गुणो सहज स्वतंत्रताए अन्य कारण विना अने प्रयास विना सर्वे समय धमधोकार आप आपणा कार्यमां लाग्या एटले पर परिणामीकतानो अंश मात्र क्यां रहे? अर्थात् नज रहे ॥ ३ ॥

अविनाशी हो जे आत्मानदके, पूर्ण अखर स्वप्नावनो ॥  
निज गुणनो हो जे वर्तन धर्मके, सहज विलासी दावनो ॥  
तस जोगी हो तुं जिनवर देवके, त्यागी सर्व विज्ञावनो ॥  
श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्वके, महिमा तूज प्रज्ञावनो ॥४

अर्थ.—प्रभुजी अविनाशी अत्यन्तैक स्वतन्त्रिक परम अने पूर्ण  
अखर आत्मीक स्वभावे मग तो तमारा सर्वे स्वगुणो आप आपणा कार्य-  
मासकल समय वर्त्ते ठेते सहज स्वभाव विलासनो ठाव तमारे आव्यो  
ठे ते शुरु भावनाज तमे जोगी ठो अने सवे विज्ञावना त्यागी ठो  
आठे कर्मने जीती वरप्रधान ज्ञान दर्शन गुणे देदिप्यमान ठो. पूर्ण  
श्रुतज्ञानी पण तमारा गुणादि प्रज्ञावनो महिमा कहि शके नहीं ॥ ४ ॥

नि कामी हो निकपाई नाथके, साथ होजो नित तुम  
तणो ॥ तुम आणा हो आगधन शुद्धके, साधुं हुं साधकपणो ॥  
वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके, तेहीज जवजय वारणो ॥  
जिनचरनी हो जे जक्ति एकत्वके, देवचंद्र पद कारणो ॥ ५

अर्थ—प्रभुजी कोईपण पुद्गल वस्तुना कामी नहीं एटले कपाय  
तो जानो होय ? अर्थात् नज होय प्रभुजीनो साथ एटले प्रभुजी  
प्रमाणे हमे पण परगुण कामना रहित अने कपाय रहित  
सदा रहिए एहवा सदा हमारे साथ होजो अथवा सिद्धदेवमां  
हमारे तमारे नित्य स्थिर साथ होजो हमने शिवमार्गमा प्रेरनारा  
माटे अमारा नाथ अने प्रभुजी हमने कही गया के शुरु सिद्धमा  
आवो तेज तमारा वचन सफल थजो ए माटे तमारी शुरु आणा  
आराधी शुरु साधकपणो साथी आत्मसिद्धता पामु वीतराग देवथी  
इहलोकादि इच्छा रहित विशुद्ध राग तेज जवजयथी ठोभावनारो ठे  
एहवा सामान्यजिनोमा चंद्रमा समान तीर्थकर देवनी जक्तिमा  
एकत्वपणुं तेज देवमा चंद्रमा समान सिद्धिपदनु कारण जाणवुं ॥ ५ ॥

॥ अथ दशम श्री सुतेज जिन स्तवन ॥

अति रुमीरे (२) जिनजीनी धिरता अति रुमी ॥ ए आंकणो ॥

सकल प्रदेश अनती, गुण पर्याय शक्ति महंती लाल ॥  
अ० ॥ तसु रमणे अनुभववती, पर रमणे जे न रमती लाल  
॥ अति० ॥ १ ॥

अर्थ:-दशमा श्री सुतेज स्वामीनी शुद्धात्म स्वभावमां स्वतंत्रताए अकंपना निश्चलता निराकुलता रूप परम धिरता अति रूडी सोहामणी ठे सर्वे प्रदेशे सर्व गुणोना पूर्ण पर्यायनी अनंत महंत सत्ता परम अचल वीर्यपणे सर्वे समकाले सकल स्वकार्यपणे वर्तवा ठतां पण धिरथोच ठे. ते ज्ञानादिक स्वगुण अनत पर्यायमां प्रजुजीनुं रमण तेथी अनुभववती के० ते सर्वे शक्ति सकल समय अनुभव युक्त ठे पण पुद्गलादिक परगुणने अनुभवती जोगवती नथी एटले परगुणमां रमती नथी केमके चेतनामां स्वगुण जोग स्वप्रदेशे अस्ति-त्वपणे ठे अने अन्यक्षेत्री परगुण जोगनो स्वप्रदेशे अभाव तेथी स्वप्रदेशे परगुण जोगनुं नास्तित्व ठे ॥ १ ॥

उत्पाद व्यये पलटती, ध्रुव शक्ति त्रीपदी संती लाल ॥  
॥ अ० ॥ उत्पादे उत्पतमंती, पूरव परिणति व्ययपंती  
लाल ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थ.-शक्ति उत्पाद् व्ययपणे पलटे ठे ते ठतां पण ध्रुव ठे शक्ति ते उत्पाद् व्यय ध्रुव एम त्रीपदी सहित होय जो उत्पाद् न होय तो नवा नवा समय नवा नवा पर्याय उरूताए आवे तेनुं जाणवा आचर-वादि कार्य धाय नही, अने व्यय न होय तो अतितकाल प्रवृत्तिनुं जाणवा देखवादि कार्य वर्तमानपणे जणाय पण अतिनपणे न जणाय वली जो ध्रुव न होय तो पर्यायनो उत्पाद् व्यय थतां अव्यना ठती

पर्यायनी सत्तानो नाश थाय पण डव्यना ठती पर्यायनोज आवी-  
 नावपणे अने तिरोजावपणे तथा ठतीपणे अने सामर्थ्यपणे तथा अगुरु  
 लघुनी हाणीवृद्धिपणे ए आदि अनेक प्रकारे उत्पाद् व्यय थया  
 करे ठे पण सत्ता तो सदा सद्जावपणे ध्रुव ग्हे ठे तेज माटे प्रथोमा  
 कह्युं ठे के -“उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्त सत् लक्षण डव्य ” एटले  
 उत्पाद् व्यय अने ध्रुव तेज डव्यनु सत् लक्षण ठे. सत् लक्षण विना  
 डव्यनी सत्ता शाने कहिये ? जेम सोनानी सत्ता वडे मुगट आदि कार्य  
 पर्यायनो उत्पाद् थाय ठे अने कुडळ आदि पूर्व पर्यायनो व्यय थाय  
 ठे अने मुगट कुडळ आदि अनेक पर्याय रूप कार्य थवानी सत्ता  
 सुवर्ण डव्यमा ध्रुवपणे रहे ठे ए प्रमाणे उत्पाद् व्यय ध्रुव  
 जाणवो जो एम न होय तो डव्यनु डव्यपणु रहे नहीं ठती  
 पर्यायोना जनक डव्य ठे एटले ठती पर्यायोने आवीभावपणे डव्य  
 जन्म थापे ठे ( उपजावे ठे ) एटले एक समयनुं कार्य करी तेज  
 ठती पर्यायोने पोतामा तिरोजावपणे समावे ठे ( डवे ठे ) एटले  
 पर्यायोने आवीभाव अने तिरोजावपणे उपजावतुं अने राखवु तेज  
 डव्यनु डव्यस्वपणुं ठे ताहरी थिरता नवे पर्याये उत्पत्तीवत ठे अने  
 पूर्व पर्याये व्यययंत ठे एटले परिणतिमा परावर्त्तन धर्म ठे तेथी पूर्व  
 पूर्व परिणति व्यय थई नवा नवा समय नवि नवि परिणतिए परि-  
 णम्या करे एमज सर्वे समय सत्ता उत्पाद् व्यय ध्रुव थया करे एटले  
 कोई समय उत्पाद्नो पण नाश नथी व्ययनो पण नाश नथी अने  
 ध्रुवतानो पण नाश नथी माटे त्रणे प्रकारे पण स्वजाव चलायमान  
 नथी पण थिर ठे एटले थिरताज पूर्व परिणति रूपथी पलटी नवि  
 परिणति रूप उपजे ठे अने सत्ताए ध्रुवज ठे माटे थिरतानो उत्पाद्  
 व्यय ध्रुव जाणवो एम तमारुं स्वरूप महा आश्चर्यकारी ठे ॥ ३ ॥

नव नव उपयोगे नवली, गुण ठतिथी ते नित अचली

लाल ॥ अ० ॥ परब्रह्म जे नवि गमणी, क्षेत्रांतरमांहि न  
रमणी लाल ॥ अ० ॥ ३ ॥

अर्थ.—एज थिरता नवे समये नवा उपयोगे थाय अथवा नवि  
परिणतिए परिणमे माटे नवि कहीए पण एज सत्ता गुणवतीपणे  
नित्य अने अचल कहीए एज थिर सत्ता कोई काले पण स्वक्षेत्र  
ठोनीने परक्षेत्रे कदापी जाय नहीं अने परक्षेत्रे जई परगुण पर्या-  
यमां रमे नहीं पण स्थिरपणे स्वक्षेत्रे रहि स्वकाले स्वचावीक अनंत  
पर्यायमां रमे जेम लुणनी खाराश लुणना स्वप्रदेश ठोनीने अन्य ब्रह्म  
क्षेत्रे जाय नहि तेम जाणवुं ॥ ३ ॥

अतिशय योगे नवि दीपे, परचाव चणी नवि ठीपे लाल ॥  
अ० ॥ निज तत्त्व रसे जे लीनी, बीजे किणही नवि कीनी  
लाल ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थ:—साहरी शुरु अने थिर सत्ता ते स्वप्रजावेज देदिप्यमान  
ठे एटले दीपती दीपावती ठे पण अतिशय योगे एटले कांई पुद्गल  
अतिशय रूप पर योगे दीपती नथी. वली पर जावना योगे ठानी  
पण रहेती नथी जेम शाकमां घणी जातनो मसालो नांखीए तेमां  
लुणनी खाराश पर योगे ठानी रहेती नथी पण पोतानी व्यक्ति  
देखानेज ठे तेम प्रजुजीनी थिर सत्ता परयोगे पण ठुपी  
रहेती नथी ते सत्ता शुद्धात्म तत्त्वमां लयलीन ठे शुद्धात्म तत्त्वथी  
सदा अज्ञेद ठे जूदी पन्ती नथी. चेतनादिक ब्रह्मना अनंत  
लक्षणनी स्थिरता कोई अन्य पुरुष ब्रह्मादिकनी करेली नथी  
तेम कोई शंकरादिक अन्य पुरुष विनाश करवा समर्थ नथी वली  
विष्णु आदि अन्य पुरुष तमारी सत्ताने राखी शके तेम नथी पण  
तमारी थिर सत्ताना रक्षक ग्राहक व्यापक अने कर्ता जोक्तादि तमे  
पोतेज ठे एटले कोईनी सत्ताना कोई अन्य ब्रह्म ग्राहक व्यापक

रक्षक कर्ता चोक्तादि नयी एम सम्यक् प्रकारे सत्तानी स्थिरता जाणवी ॥ ४ ॥

सग्रह नययी जे अनादि, पण एवंचूते सादि लाल ॥  
अ० ॥ जेहने बहुमाने प्राणी, पामे निज गुण सहनाणी  
लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥

अर्थ—सग्रह नययी सत्ता अनादियी शुद्ध अने थीर ठे पण  
ज्यारे शुद्ध थीरता प्रगट थई त्यारे ते एवंचूतनययी सादि कहीए. ते  
थीर शुद्ध सत्तानुं बहुमान जे नवि करे ते पोतानी थीर अने शुद्ध  
सत्तानुं अहिवाण (स्थानक) पामे एटले प्रचुजीनी शुद्ध सत्ता  
घ्यातो नवि पोतानी शुद्ध सत्ता स्थानक पामे ॥ ५ ॥

थिरतायी थिरता वाधे, साधक निज प्रचुता साधे ॥  
॥ लाल ॥ अ० ॥ प्रचु गुणने रगे रमता, ते पामे अविचल  
समता ॥ लाल ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः—शुद्ध सत्तामां अंतरमुहूर्त्त मात्र उपयोग थीर करीए तो ते  
सादिअनंत शुद्ध सत्तामा थीरतानु कारण थाय ठे जेम घहुंना  
बीजयी घहुंनी वृद्धि थाय वली अग्नि अशयी महा अग्नि प्रगट  
थाय तेम कर्मबीजयी कर्मनी वृद्धि अने राग बीजयी रागनी वृद्धि,  
ज्ञान अशयी ज्ञाननी वृद्धि अने दर्शन अंशयी दर्शन वृद्धि अने  
तेमज थिरताए थीरता अश वधारवायी परम थीरता पामोए माटे  
आत्मशक्ति वडे अशुद्धताना अंश नाश करवा अने शुद्धताना अंशयी  
पूर्ण शुद्धता वधारी परम शुद्ध थीरता प्रगट करी परम थीरताना  
अनंत परमानंद विलासी थचु ए उपदेश ठे. एमज मोक्षाजिलायी  
जीव साधकपणुं आवरी पोतानी परम शुद्ध थीरतानी प्रचुता साधे  
एम जिनेश्वरना परम शुद्ध थीर गुणोमा पोतानी परिणति रमाव-  
वावालो अविचल शुद्ध थीर समता पामी परम सिद्धता पामे ॥ ६ ॥

निज तेजे जेह सुतेजा, जे सेवे धरि बहु हेजा लाल ॥  
॥ अ० ॥ शुश्रूलंबन जे प्रज्जु ध्यावे, ते देवचंद्र पद पावे  
लाल ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—प्रज्जुजी, पोताने तेजे करी परम तेजवंत ठे एहवा प्रज्जुने जे  
बहु हितधारी पूर्ण प्रेम प्रतिते सेवे अने शुद्ध आलंबन प्रज्जुने जे  
ध्याय ते देवमां चंद्रमा समान परमात्म पद पावे ॥ ॥ ७ ॥

॥ अथ एकादशम श्री स्वामीप्रज्ञोजिन स्तवन ॥

रहो रहो रहो रहो वालहा ॥ ए देशी ॥

नमि नमि नमि नमि वीनवुं, सुगुणा स्वामी जिणंद  
नाथरे ॥ ज्ञेय सकल जाणग तुमे, प्रज्जुजी ज्ञान दिणंद  
नाथरे ॥ नमि० ॥ १ ॥

अर्थः—हूं निज शुद्ध गुण विरह आतुरताए मोक्षाजिलाषी थई  
वारंवार श्री सुगुणवान् स्वामीप्रज्जु नामा अगीआरमा तीर्थकरने नाम  
स्थापना ड्रव्य अने जाव एम चारे निक्षेपे तथा ड्रव्य क्षेत्र काल  
अने जाव तथा मन वचनकाया अने शुद्ध उपयोग परिणामे नमस्कार  
करीने एटले पर ड्रव्यमां अहंपणानुं तथा माहरी बुद्धिनुं अजिमान  
ठोकी अरज करुं तुं के प्रज्जुजी तमे तो अनंत शुद्धात्म गुण पर्यायना  
स्वामी ठो तेथी परम पुरुष ठो अने स्वपर त्रीकालवर्ती अनंत ज्ञेयना  
जाणग पासग ठो तेथी ज्ञान दर्शन रूप सूर्य ठो ॥ १ ॥

वर्तमान ए जीवनी, एहवी परिणति केम नाथरे ॥ जाणु  
हेय विज्ञावने, पिण नवि बूटे प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ २ ॥

अर्थः—हे नाथ! वर्तमान माहरा सरखा जीवोनी एहवी परिणति  
केम? हु जाणु तुं के विज्ञाव महा अपाय, दुःखदाता, जवत्रमण अने  
परतंत्रता वधारनार अने ज्ञान दर्शनादि अनंत आत्म गुणोनी हाणी



करनार माटे हेय-तजवा लायक ठे छतां पण ए उपरथी प्रेम केम वृत्तो नथी ? ॥ १ ॥

पर परिणति रस रंगता, पर ग्राहकता जाव नाथरे ॥  
पर करता परजोगता, श्यो थयो एह स्वजाव नाथरे ॥  
॥ नमि० ॥ ३ ॥

अर्थ-अथिर परतत्र अने जगत् जीवोनी एंठ आपणी ईच्छाए वत्ते पण नही, आपणी ईच्छाए रहे पण नहीं वली अनेक प्रकारे चपलता करावनारी एहवी निढवा लायक पुद्गल परिणतिमा चित्त रींजे ठे-रस लागे ठे वली ते परपरिणतिने ग्रहण करवानो वली ते माहे चित्तने व्यापवानो तथा तेने संग्रह करवानो तथा तेने जोगववानो तथा तेने निपजाववा आदि हमारो जाव केम ययो अने केम थाय ठे ? ॥३

विषय कषाय अशुद्धता, न घटे ए निरधार नाथरे । तो पण वंटू तेदने, किम तरिए संसार नाथरे ॥ नमि० ॥ ४ ॥

अर्थ-वली विषयो अने कषायो आत्म अंगने, आत्म गुणोने अशुद्ध करवावाला ते माहरे अंशमात्र आदरवा न घटे तो शुं सुख जाणी आदरीए ? वली कषारे ए दु ख देता नथी के आदरीए ? तो ए आदरवा न घटे ए निरधार ठे तो पण माहुरा सरखा तेने ईंठे ठे तो संसारथी केम तरीए ? ॥ ४ ॥

मिथ्या अविरति प्रमूखने, नियमा जाणुं दोष नाथरे ॥  
नदू गरहूं वली वली, पण ते पामे संतोष नाथरे ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ-वली अज्ञान मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय अने पुद्गल योग ते निश्चय दोष के० दु खदाता जाणु तु तेथी तेने नदू तुं अने वली गुरू समके विशेषे नदू तु एम उता पण एहवा दु खदाई परिणामो राखी सतोष मानु तु ए केवी चूख ठे ? ॥ ५ ॥

अंतरंग पर रमणता, टलश्ये किश्ये उपाय नाथरे ॥ आणा  
आराधन विना, किम गुण सिद्धि आय नाथ रे ॥ नमि० ॥ ६

अर्थः—ए आदि अनेक प्रकारनुं अतरंग पर रमण ते कया प्रकारे  
टलशे ? अने ए अंतरंग पर रमण जे न ठोडे ते ताहरी आझा अने  
मोक्षमार्गनो आराधक न थाय अने आणा आराधन विना ज्ञा-  
नादिक शुद्धात्म गुणोनी सिद्धि केम थाय ? ॥६॥

ह्वे जिन वचन प्रसगथी, जाणी साधक नीति नाथ रे ॥  
शुद्ध साध्य रुचीपणे, करिए साधन रीति नाथ रे ॥ न० ॥ ७

अर्थः—ह्वे प्रजुवचन प्रसंग थयो तेथी साधकता नीति के० न्याय  
जाण्यो तेथी शुद्ध साध्य रुचिपणे साधनरीतिए प्रवर्तिए एटले  
ज्ञान गुणे करीने शुद्ध साध्य जाणीए, दर्शनगुणे करीने शुद्ध साध्य  
निश्चय करिए—देखीए, चरणगुणे करी शुद्ध साध्य आचरण सेवीए  
अने वीर्यगुणे करीने शुद्ध साधकतामां वल फोरवीए, प्रीती  
शुद्ध साध्यमां अने शुद्ध साध्य दर्शावनारमा करीए, सकल पर  
कामना तजी शुद्ध साध्य सिद्ध करवाना कामी थईए, सुखनी  
आशा अने विश्वास शुद्ध साध्य सिद्धिमांज राखीए, शुद्ध  
साध्य सिद्धि विना सुख नथी एम प्रतित करीए, शुद्ध साध्य  
शिवाय अन्य वस्तुथी प्रेम ठोकी शुद्ध साध्यमांज प्रेम राखीए,  
बुद्ध मन वचन काया ए सर्वे शुद्ध साध्य सिद्ध करवामां राखीए-  
वापरीए एम अंतरंग अनेक परपद रमण ठे ते ठोकी शुद्ध साध्य  
मांहे रंगे चित्त रमावीए तोज ए अनादि कालनो दुष्ट विज्ञाव शत्रु  
नाश पामे काचे जरोसे सहज शत्रु पण पाठो हवतो नथी तो अ-  
नादि कालनो मोह शत्रु सहजे केम पाठो हवे ? तो विज्ञाव  
नाश करवामा पूरे पूरुं पुरुष पराक्रम फोरवीए पण पोतानुं पराक्रम  
शत्रुओना तावे करीए नही अने विज्ञाव नाश करवामांज वापरिए  
तो कर्मशत्रुथी जय वरिए ॥ ७ ॥

जावन रमण प्रभू गुणे, योग गुणी आधीन नाथरे ॥ राग  
ते जिन गुण रंगमें, प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥ नमि० ॥ ८ ॥

अर्थ:- परब्रह्मणी जावना ठोडी प्रभुना शुद्ध ज्ञानादि गुणनी जावना  
राखीए, पर परिणति रमण ठोनी प्रभुना शुद्धात्म गुण परिणतिमां  
रमण करीए वली मन वचन काय योग पुद्गल कार्यथी रोकती प्रभु  
आधिन करीए एटले प्रभुजीए संयम कार्यादिमां योग वापरवा  
कहा त्यांज वापरिए. राग पण पुद्गल परिणतिनो ठोनी जिन गुण  
रंगे करिए अने पुद्गलीक विषयोमां अज्ञान वशे रति मानीए  
विये ते अज्ञान ठोनी प्रभु दिठा पुष्ट रति करीए ॥ ८ ॥

हेतू पलटावी सवे, जोड्या गुणि गुण जक्ति नाथरे ॥ तेह  
प्रशस्तपणे रम्या, साधे आत्म शक्ति नाथरे ॥ नमि० ॥ ९ ॥

अर्थ:- ईद्रियो मन वचन काया अने रागादि कर्मवधना हेतु  
पलटावीने व्यक्त गुणी अरिहंत देवना चरणकमलमां जोडीए केण  
स्वजावाचरणमां जोडीए एटले अरिहंतनी आज्ञा सेववी ते गुणजक्तिज  
ठे ते मन वचन बुद्धि रागादि आत्माने अप्रशस्तकेण अहितकारी पणे  
हता ते पलटावीने अरिहंतनी आज्ञा सेववामा गुणी गुण जक्तिपणे  
जोड्या एटले ते सर्वे आत्म हितकारीपणे-प्रशस्तपणे रम्या तेज  
शुद्धात्म शक्ति साधे ॥ ९ ॥

धन तनु मन वचना सवे, जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥  
बाधक कारण वारतां, साधन कारण थाय नाथरे ॥ न० ॥ १० ॥

अर्थ:- धन तन मन वचन बुद्धि आदि सर्वेशक्ति स्वामिना चरण  
कमलमां अर्पण करीए सोंपीए एटले स्वामीए वतावेला स्वजावा  
चरणमां जोडीए एम जे जे बाधकताना कारण हता ते वारवाथी  
साधकताना कारण थाय उक्तच आचारामे " जे आसवा ते परि-  
सवा जे परिसवा ते आसवा " एटले कर्ताने अशुद्ध कार्य परिणामे

जे जे आश्रवनां कारण हतां ते शुद्ध कार्य परिणामी थये संवरनां कारण थाय अने शुद्ध कार्य परिणामे जे जे संवरनां कारण हतां ते अशुद्ध कार्य परिणामी थये आश्रवनां कारण थाय माटे कारण पद कर्त्ताना चशमां ठे एम जाणी शुद्ध साध्य सिद्धि कार्य परिणामी थइ आश्रवनां कारण पलटावी संवरनां कारणो करवां ए उत्तम मार्गे ठे १०

आत्मता पलटावतां, प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥ स्वस्वरूप रसी करे, 'पुरणानंद अनूप नाथरे ॥ नमि० ॥ १२ ॥

अर्थः—पर परिणतिमां आत्मता मानी ठे ते जेदज्ञाने स्वपर लक्षण जिन जाणी स्वद्रव्यादिकमां आत्मता मानीए. स्वद्रव्यादिकमां कारण कारक कार्य जाणवे मानवे आदरवे आश्रव नाश थई संवर रूप प्रगटे. जे जीव शुद्ध सिद्ध सम स्वरूप रसीथो थयो ते स्वरूप रसी पूर्ण अनत अनुपम आनंद प्रगट करे ॥ ११ ॥

विषय कषाय हर टखे, अमृत थाये एम नाथरे ॥ जे प्रसिद्ध रूची हुवे, तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥ नमि० १२

अर्थः—एम विषय कषाय रूप हर के० जेर टळी अमृत थाय अथवा विषय कषाय रूप हर के० लत—टेव टळी संवर रूप अमृत प्रगट थाय. जे प्रसिद्धपणे शुद्ध साध्य सिद्ध करवा रूचिवंत होय ते तीर्थकरोनी आज्ञा सेवामां प्रेम प्रतित राखे ॥ १२ ॥

कारण रंगी कार्यने, साधे अवसर पामि नाथरे ॥ देवचंद्र जिनराजनी, सेवा शिवसुख धाम नाथरे ॥ नमि० ॥ १३ ॥

अर्थः—आत्म सिद्धनां कारण परमेश्वरना वचनमां जेने रंग लाग्यो ते अवसर पामी अवश्य कार्य सिद्ध करे देवोमां चंद्रमा समान देवाधिदेव स्वामीप्रभुनी आणानु सेवन ते शिवसुखनु स्थानक ठे ॥ १३ ॥

सपूर्ण.

॥ अथ द्वादशम श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवन ॥

॥ नमणी खमणी ने मन गमणी ॥ ए देशी ॥

द्विगे दरिशाण श्री प्रचुजीनो, साचे रागे मनसुं चीनो  
जसु रागे निरागी थाये, तेहनी जक्ति कोने न सुहाये ॥ १ ॥

अर्थ - केवलज्ञान दर्शनादि अतत लक्ष्मीवंत अनंत शुद्ध प्रचु-  
ताना धणी मुनिसुव्रत स्वामी नामा बारमा तीर्थकरनुं दर्शन दिवुकेण  
प्रचुए जीवादि नव पदार्थादि अनेक शुद्ध तत्वो दर्शाव्या ठे ते जेने  
ददर्या रूच्या प्रतित थइ तेने दर्शन थयुं कहीए ए दर्शन जेने थयुं  
ते प्रचु गुणोमा साचा रागे मनथी चीनो जेने रागे वीतराग पद  
पामीए तेनी जक्ति कोने न गमे ? अलवत् सुइ पुरुषोने तो प्रचु  
आणा जक्ति गमेज पण प्रचु आज्ञाना फलथी जे अजाण ठे ते तो  
मूढपणामाज मुंजाई रह्या ठे यत. “ नाणाईसु गुणसु, अरिहताईसु  
धम्म रूपेसु ॥ धम्मोवगरण साहम्मी, एसु धम्मठ जो थ गुण रागो ॥  
सो सुपसठो रागो, धम्म संयोग कारणो गुणदो ॥ पढम कायवो सो,  
पत्त गुणे खवई त सब ” ॥ १ ॥

पुद्गल आशा रागी अनेरा, तसु पासे कुण खाये फेरा ॥  
जसु जगते निर्जय पद लहिए, तेहनी सेवामां थिर रहिये ॥ २ ॥

अर्थ - जे देवपणा विना देव अने गुरूपणा विना गुरू कहेवाय ठे  
अने पुद्गल परिणतिना जीखारी एवा अन्य जीवोनी अने पुद्गल  
परिणतिनी आशा राखे ठे तो ते जीखारी पासे जीख मागनारा तेनी  
पासे हमे शा वास्ते ? कयुसुख ? अने कयो गुण लेवा फेरा खाईए ? जेनी  
जक्ति निर्जय निराकुल शुद्ध स्वतंत्र शिवपद पामीए तेज वीत  
रागनी आज्ञा सेवामा थिर रहिए तेमनी आज्ञा अने सेवार्थी  
चसायमान थई वहिरात्म जावमा न जईए ॥ २ ॥

रागी सेवकंथी जे राचे, बाह्य ऋक्ति देखीने माचे ॥ जसुं  
गुण दाजे तृष्णा आंचे, तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥३॥

अर्थः—रागी ठता देव तथा गुरु कहेवाता एहवा देव तथा गुरु पोताना  
सेवकोनी बाह्य ऋक्ति देखीने तेउं उपर खुशी थाय ठे, माचे ठे, मझ  
थाय ठे पण ते कहेवाता देव तथा गुरूना ज्ञानादि द्वांत्यादि गुण  
रूप धन ते जोग तृष्णाआंचे दाझे ठे तेनो जस चतुर पुरुषो केम  
वोले ? जे पोतेज आत्म धन हीण ठे ते वीजा जव्य पुरुषोने आत्म धने  
धनवंत केम करी शके ? अर्थात् नज करी शके माटे माहरे तो  
आचित्य आत्मीक धननो दातार प्रचु तुंज एक तु ॥ ३ ॥

पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी, दर्शन ज्ञान चरण रस कदी  
सकल विज्ञाव प्रसंग अफंदी, तेह देव समरस नकरदी ॥४॥

अर्थः—प्रचु अठार हजार जेदे अब्रह्म तजो पूर्ण शुद्ध ब्रह्म रूप  
सिद्ध पढ पाम्या छो तेथी अनंत स्वतंत्र पर्याये परम पूर्ण आनंद  
जोगी ठो अने दर्शन ज्ञान चरणानंद स्वादना मूल ठो अने सकल  
विज्ञाव प्रसंगथी फंड रहित अफंदी ठो माटे हे देव । तमेज पूर्ण  
समज्ञाव वडे ज्ञानादि स्वगुणनो रस स्वाद लेवावाला ठो ॥ ४ ॥

तेहनी ऋक्ति जवजय जजे, निगुण पिण गुणशक्ति गाजे  
दास जाव प्रचुताने आपे, अंतरंग कदिमल सवि कापे ॥५॥

अर्थः—एहवा देवनी ऋक्ति जव जयनी कापवावाली ठे निश्चयथी  
प्रचु कोई अन्य डव्यने गुण दोष करता नथी पण व्यवहार नयथी  
शुद्ध नये देशना आपी अनेक जवि जीवोने संसार समुद्रथी पार  
उतारे ठे अने सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आपे ठे एम अनेक  
जविने गुण करे ठे तेथी गुण करवानो शक्तिए करी गाजे ठे एहवा  
प्रचुनी आज्ञा सेववा रूप दास जाव जे आदरे ते स्वतंत्र आत्म  
शुद्धता रूप अनंत प्रचुता पामे अने अंतरगमां रह्यो जे कखुपता

उपजावनार अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादि विजावता रूप मेळ तेने कोपे ॥ ५ ॥

अध्यात्म सुख कारण पूरा, स्वस्वजाव अनुभूति सनूरो।  
तसु गुण वलगी चेतना कीजे, परम महोदय शुद्ध लहीजे ॥ ६ ॥

अर्थ—श्री मुनिसुव्रत स्वामी आत्म अधिकार राज्य सुख प्राप्तिसु पूर्ण पुष्ट कारण ठे शुद्ध आत्म स्वरूप अणजाणता जीव पोतानो आत्मिक अधिकार जाणे नहीं तेथी पुद्गल इव्य पर्यायने पोते अने पोताना जाणी मानी तेना अधिकारी पोते थई अधिर अने परतंत्र पुद्गलनु कर्ता चोक्ता ग्राहक व्यापक रक्षकपणुं पोतामां मानी वेठा ठे ते पुद्गलो आपणा राख्या रहे नहीं, कख्या थाय नहीं वली पर क्षेत्री पदार्थों जोगवी शकाय नहीं वली खेवाय नहीं एम अणहोलु थाय नहि तेथी तेमां खेद करी करी तेना विनाशे पोतानो विनाश आदि विपर्यास वासना थई रहि ठे तेथी जन्म मरणादिक अनंत दुःख जोगवे ठे पण ज्यारे प्रभु वचने आत्मा पोतानो आत्मिक अधिकार जाणे न्यारेज सकल क्लेशथी मुक्त थाय अने आत्म-अधिकारनुं अत्यंतीक स्वतंत्र सहज सुख पामे. तो ते अध्यात्मीक सुखना दातार तो प्रभु अने प्रभु आणाना शुद्ध प्रेरक ठे ते सिवाय अन्य कोई नथी माटे परम अने पूर्ण उपकारी प्रभुजी तमेज ठे जेम कोई पुरुष परघर परवस्तु पर स्त्री आदिकनो अधिकारी नथी अने परघर स्त्री वस्तु आदिकनो अधिकारी पोताने मानी ते परवस्तुने आदरे तो ते सुखी थाय नहीं अने दुःखी थाय पण ज्यारे पोतानी घर स्त्री आदि वस्तुनो अधिकारी पोताने जाणे माने आदरे न्यारेज दुःख मटे अने सुख थाय तेम आत्मा अन्य वस्तुनो अधिकारी नहीं ठता पोताने अन्य वस्तुनो अधिकारी जाणी मानी आदरे तो ते दुःखी रहे पण सुखी थाय नहीं ज्यारे पोतानो अधिकार जेवो ठे तेहूषो जाणी मानी आदरे तोज सकल दुःखथी निवर्त्ती अने परमा-

नंदनी प्राप्ति थाय अने प्रचुजी तो निज ज्ञानादि रिद्धिना अनुभव  
जोगमां सदा तृप्त-मग्न ठो महा तेजवंत ठो. आपणी चेतना प्रचुना  
ज्ञानादिक निर्मल गुणे वलगी राखीए एटले ज्ञानचेतना प्रगट थाय.  
चेतना अनादिधी कर्मफलचेतनापणे अने कर्मचेतनापणे परिणमेली  
वलगेली ठे. ज्यांसुधी चेतना कर्मफलचेतनापणे एटले उदय आ-  
वेला शुजाशुज कर्म फलमा राग द्वेषपणे परिणमे ठे तथा योग क्रिया  
प्रवर्त्तीथीज सुख उपजे ठे एम जाणी क्रिया परिणाममां कर्मचेतना  
पणे वत्ते ठे त्यांसुधी स्वरूप ज्ञानमां लागती वलगती नथी पण  
ज्यारे प्रचुना परम निर्मल ज्ञानादि गुणे वलगे त्यारे शुद्धात्म स्वजा-  
वमां आनंद जाणी शुद्धात्म स्वभावमां थिर रहेवा ज्ञानचेतनापणे  
परिणमे. माटे आपणी चेतना प्रचु गुणे रसीली करीए एटलेज शुद्ध  
स्वगुण रसी थाय एम परम महोदय के० केवलज्ञानादि अनंत स्वगुण  
निर्मल पूर्ण व्यक्ति पामीए ॥ ६ ॥

मुनिसुव्रत प्रचु प्रचुता लीना, आतम सपत्ति जासन  
पीना ॥ आणा रगे चित्त धरीजे, देवचंद्र पद शीघ्र वरीजे ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जीव मुनिसुव्रत स्वामीनी पूर्ण प्रचुता जाणी आश्चर्य  
पाम्या के अहो ! प्रचुजीनुं परमज्ञान परमदर्शन परम थिरताए शुद्ध  
स्वपर्याय रम्यमांहे रमण अने परम अचल स्वतंत्र अबाधित वीर्य.  
एम अनंत गुणोनी शुद्धतानो परमानंद जाणी चित्त लीन थयुं  
तेनेज निजात्म शुद्ध संपदानुं पुष्ट जासन थयुं. ए माटे तीर्थकरोनी  
आज्ञामां रगे चित्त थिर करीए तोज देवचंद्र मुनि कहे ठे के  
शुद्धात्मपद उतावसु पामीए ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कान्हेयालाल ए देशी ॥

प्रचुस्युं इस्युं विनवुरे लाल, मुज विजाव दुःख रीतरे



साहवियालाल । तिन कालना ज्ञेयनीरे लाल, जाणो गो सहु  
नीतिरे साहवियालाल ॥ प्रज्जु० ॥ २ ॥

अर्थ—तेरमा श्री सुमति जिन प्रज्जुथी हुं एवी अरज करु हुं के  
में ताहरां वचन जाण्या आदखा पहेला पुद्गलोमा आपापणु मानी  
महा विज्ञाव डढ परिणाम वांध्या ते परिणामनो वेग ताहरां वचन  
जाण्या ठता आजसुधी मटतो नथी अने तेथी अज्ञान मिथ्यात्व  
अने कपायादिधी परतत्रता विगेरे बहु दु ख जोगवुं तु ने माहरोज  
आदरेलो विज्ञाव दु ख त्रास आप्यां करे ठे अने हे साहेव । तमे तो  
सकल ड्रव्यनी त्रिकाल परिणतिनी नीति जाणो गो एटले पंचास्ति-  
काय अने काल सकलज्ञेयनी नीति अने रीति जाणो गो ॥ २ ॥

ज्ञेय ज्ञानस्य नवि मिलेरे लाल, ज्ञान न जाये ए  
तथ्यरे ॥ सा० ॥ प्राप्त अप्राप्तमेयनेरे लाल, जाणो जे जिम  
जथ्यरे ॥ सा० ॥ प्रज्जु० ॥ ३ ॥

अर्थ—जे जे ड्रव्यना जे जे स्वज्ञाव अने जेटला जेटला गुणपर्याय  
होय ते तेमज रहे वली पर्याय क्रमवर्तीए उर्द्धताए आवे वली तेनुं  
अवितव्य जेम होय तेम थाय अने उद्यम पण अवितव्य प्रमाणे  
वने अने जे जे काले जे जे योग संभव ठे ते तेम वने एम पंच  
समवाय मद्या कार्य थाय एमा काई शका नथी एमार्थी काई पण  
एकातता ते मिथ्यात ठे ज्ञेय ज्ञान साये मली एकमेक थाय नहीं,  
ज्ञान ज्ञेय क्षेत्रे जाय नहीं अने ज्ञेयपण ज्ञान क्षेत्रे आवे  
नहीं जेम दर्पणमा जे पदार्थो जासे ठे ते पदार्थो दर्पण  
साये एकमेक थई जता नथी, दर्पण दर्पण रूपे अने पदार्थ  
पदार्थ रूपे रहे ठे तेम ज्ञान ज्ञान रूपे अने ज्ञेय ज्ञेय रूपे रहे ठे ए  
मर्यादा ठे प्रज्जुजी तमे दूर आकाश क्षेत्रे रक्षा अप्राप्तमेय ज्ञेयने  
अने एक आकाश क्षेत्रे रक्षा स्वपर प्राप्तमेय ज्ञेयने तथा वर्तमान

काले वर्त्तता प्राप्त अप्राप्तमेय ज्ञेयने अने अतित अनागते वर्त्तता  
अप्राप्तमेय ज्ञेयने क्षेत्रथी अने कालथी दूर अने निकट एटले अ-  
प्राप्त अने प्राप्तमेय ज्ञेयने जे जेम ठे ते तेम समकाले अशेषपणे  
जाणो ठो एटले कोई पण ज्ञेय एहवो नथी के तमारी ज्ञायकतामां  
न जासे ॥ २ ॥

वृत्ति परजाय जे ज्ञाननारे लाळ, ते तो नवि पळटायरे ॥  
सा० ॥ ज्ञेयनी नवनव वर्त्तनारे लाळ, सवि जाणे असहायरे  
॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥

अर्थ.-ज्ञानना अविज्ञागी ठती पर्यायमांथी कोई पर्याय कोई  
काले पण नाश थाय नही अने तेज अविज्ञागी ठती पर्यायो ठतीपणे  
रहिने सामर्थ्यपणे आवे ठे पण अठतीपणे थता नथी एटले ठती-  
पणानो नाश नथी, मात्र तिरो अने आवीर्त्तवे थया जाय. ज्ञेयोनी  
नवे नवे समय नवि नवि वर्त्तना थाय ते अन्य ड्रव्यनी सहाय विना  
अने प्रयासविना जणाय देखाय ॥ ३ ॥

धर्मादिक सहु ड्रव्यनारे लाळ, प्राप्त जणी सहकार रे ॥  
साहि० ॥ रसनादिक गुण वर्त्ततारे लाळ, निज क्षेत्रे ते धाररे  
॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥

अर्थ.-धर्मादिक अजीव ड्रव्य प्राप्त थयाने सहायकारी ठे एटले  
धर्मास्तिकायना जे प्रदेशमां गति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त  
थाय तेनेज ते गतिसहाय आपे, अधर्मास्तिकायना जे प्रदेशमां  
स्थिति परिणामी जीव पुद्गल आवी प्राप्त थाय तेनेज  
ते स्थिर सहाय आपे, आकाशना जे प्रदेशमां जीव पुद्गल  
आवी प्राप्त थाय मळे तेनेज ते अवकाशदान आपे पण  
अन्य प्रदेशे रक्षाने आपे नही, वली चार अंश स्निग्ध के  
रुद्र व्यक्तिमां जे पुद्गल परमाण् होय ते तेज क्षेत्रमां तेथी वे

अंश न्यून के अधिक स्निग्ध रुक् गुण व्यक्तिवाला अन्य पुद्गल परमाणु आवी प्राप्त थाय तो तेनी साथे ते मले पण अन्य आकाश क्षेत्रे रहेला स्निग्ध के रुक् वे अंश न्यून अधिक व्यक्तिवाला पुद्गल परमाणु अगर खध साथे मले नहि अने कार्मणादि वर्गणा जीव प्रयोगे परिणमेली जे आकाश क्षेत्रमा होय तेने आकाश प्रदेशमां रहेली अन्य वर्गणा साथे मले ए प्रमाणे धर्मास्तिकायादि चारे अजीव ड्रव्यने अन्य प्रदेशे रहेलाने चलाववु, थीर राखवु, अवकाश आपवुं के मलवु थतुं नथी. चक्षु तथा मन विना रसनादिक चार ईन्द्रियोने व्यजनावग्रह ठे एटले स्वादवाली वस्तु जीव प्रदेशने मले अने स्पर्शवाली वस्तु त्वचाने मले अने गंधना पुद्गल नाशीका अंदर घ्राणईन्द्रियने मले-स्पर्श अने शब्दना पुद्गल श्रोतईन्द्रियरुप पडदाने मले-स्पर्श तोज तेनो बोध थाय ए पाचे ईन्द्रियों दूर क्षेत्र विषयो कही ठे पण रसनादिक चार ईन्द्रियोने तो ते विषयोना पुद्गल स्वक्षेत्रमा आवी मले तेनेज स्पर्श ठे अने चक्षु ईन्द्रियने तो पुद्गल पदार्थ उपर पफेसु सूर्यादिनुं उद्योत किरण परावर्त्तन थई चक्षुमां आवेत्यारे बोध थाय ठे तेथी तेने व्यंजनावग्रह कह्यो नथी पण उद्योत किरण वस्तु उपर पनी परावर्त्तन थई आखमां आव्या विना तेनो बोध थतो नथी अने प्रचुजोना केवलज्ञानमां तो क्षेत्रे काले दूर निकटना पण रूपी अरूपी सर्वे पदार्थनो समकाले बोध थाय ठे ॥ ४ ॥

जाणग अजिलापी नहिरे लाल, नवि प्रतिविवे ज्ञेयरे  
॥ सा० ॥ कारक शक्ते जाणवुंरे लाल, जाव अनंत  
अमेयरे ॥ सा० ॥ प्रचु० ॥ ५ ॥

अर्थ - प्रचु परड्रव्यने जाणवाना अजिलापी नथी अने अन्य ज्ञेयोनुं प्रतिविव पण पोतानी ज्ञायकतामा पडतु नथी पण जीवमां अनंत गुणोना कारक चक्र आप आपणा कार्यपणे दर समय फरे ठे

तेमां ज्ञान कारक चक्रमां नवा नवा समयनी नवि नवि ज्ञेय प्रवर्त्ती  
 ज्ञायकतानुं संप्रदान अने पूर्व ज्ञेय प्रवर्त्ती ज्ञायकतानुं अपादान सहज  
 स्वभावे थयां करे अथवा पूर्व ज्ञेय ज्ञायकतानुं अतित ज्ञानपणे  
 परिणमवुं अने वर्त्तमान ज्ञेयनुं वर्त्तमान ज्ञानपणे परिणमवुं तेथी  
 सकल ज्ञेयोनी परिणति वर्त्ती वर्त्ते ठे अने वर्त्तशे एम जासे ठे तथा  
 ज्ञेयोमा आप आपणा गुण प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवुं अने जीव अव्यमां ज्ञान  
 दर्शन उपयोग प्रवर्त्तीनुं परावर्त्तन थवु एम सर्वे अव्योनुं अगुरुलघु चक्र  
 समकाले फरे ठे तेथी जाणग पासगपणुं सकल समय नवि नवि परिण-  
 ति ए परिणमे ठे अने जाणग पासगपणुं नवि नवि परिणतिनुं थाय तो  
 रमण पण नवा नवा पर्यायनुं थाय अने वीर्य पण नवि नवि पर्याय  
 प्रवर्त्ती ए थयुं तेथी वीर्य पण नवुं उपज्युं कहेवाय एम अनंता गुणो  
 नवि नवि परिणति ए परिणमे ठे तेथी जाणवुं पण कारक शक्ति वने  
 अनंत जावनुं अमेयपणे ( अमाप ) पणे ठे जेम सूर्यने एहवो अजि-  
 प्राय नथी के पृथ्वीना पदार्थो जेम प्रवर्त्ते तेम हु प्रकाश करुं  
 पण सूर्यना उद्योतमा पृथ्वीना सर्वे पदार्थो जेम जेम प्रवर्त्ते तेम तेम  
 जासे ठे ते विपे सूर्यने पण प्रयास के अजिलाप नथी पण सहज  
 स्वभावे प्रवर्त्ते ठे तेम प्रचुजीना ज्ञानादि गुणो विनाअजिलापे अने  
 विनाप्रयासे प्रवर्त्ते ठे ॥ ५ ॥

तेह ज्ञान सत्ता थकेरे लाल, न जणाये निज तत्त्वरे ॥  
 ॥ सा० ॥ रुचि पण तेहवि नवि वधेरे लाल, ए अम मोह  
 महत्वरे ॥ सा० ॥ प्रचु० ॥ ५ ॥

अर्थः—एहवाज ज्ञानादिक अनंत गुणो हमारी सत्तामां ठे तो पण  
 हमारुं शुरू तत्त्व जणातुं नथी अने ते तत्त्व जाणवा माटे पूर्ण रुचि  
 पण वधती नथी ए हमारे मोह अने ममतानु महात्म्य ठे ॥ ६ ॥

मुज ज्ञायकता पर रसीरे लाल, पर तणाए तप्परे

६२ श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी

साहिवि० ॥ ते समता रस अनुचवेरे लाल, सुमति सेवन  
व्याप्तरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ७ ॥

अर्थ—माहरी ज्ञायकता अनादि कालची पुद्गल परिणतिनी  
रसीली बघली ठे अने ते पुद्गल परिणति अथिर परतत्र विनाशीक  
तेथी तेनी तृष्णाए तपी रहेली ठे अने पुद्गल परिणतिमाज तत्र  
सार मानेलो ठे पण माहरी ज्ञायकता माह्रा डव्य क्षेत्र काल अने  
नावमा तत्र जाणी सतोप अने तृप्ती वाली थाय तो ते समता रस  
अनुचवे ते तो सुमति जिन स्वामीए सुमति सेववा आदरवानी  
घतावी तेमा व्यापे तोज वने ॥ ७ ॥

बाधकता पलटाववारे लाल, नाथ प्रक्ति आधाररे ॥ सा० ॥  
प्रभु गुण रंगी चेतनारे लाल, एहीज जीवन साररे ॥ सा० ॥  
॥ प्र० ॥ ८ ॥

अर्थ—हमारी अनादिनी बाधक जावे परिणमेली आत्म परिण-  
तिने पलटावी साधक जावमां लाववा तुम सगखा प्रभुतावंतनी आणा  
सेववी एज हमारे परम पुष्ट आधार ठे ए माटे चेतना प्रभु गुण रंगी  
करवी एज आ वातनु जीवन अने सार ठे ॥ ८ ॥

अमृतानुष्ठाने रह्यारे लाल, अमृत क्रियाने उपायरे ॥  
॥ सा० ॥ देवचंद्र रंगे रमेरे लाल, ते सुमति देव पसायरे  
॥ सा० ॥ प्र० ॥ ९ ॥

अर्थ—अमृत अनुष्ठानने आश्रये अमृत उपजे देवचंद्र मुनि कहे  
ठे के जव्य जीवो शुद्धात्म तत्रमा रमे ते सुमति देवनोज पसाय  
जाणवो ॥ ९ ॥

संपूर्ण

॥ अथ चउदशम श्री शिवगति जिन स्तवन ॥

आंरा मेहेला उपर मेह झबुके वीझली हो लाल ॥ ए देशी ॥

शिवगति जिनवर देव सेव आ दोहिली हो लाल ॥

॥से० ॥ पर परिणति परित्याग करे तसु सोहिली हो लाल ॥

॥करे० ॥ आश्रव सर्व निवारि जेह संवर वरेहो लाल ॥जेह०

जे जिन आणा लीन पीन सेवन करे हो लाल ॥पीन० ॥ १

अर्थः—शिवगति नामा चौदमा तीर्थकरनी सेवा ते अति दोहिली ठे. हमो संसारी जीव मिथ्यात्व अवरिति प्रमाद कपाय जोगचपलता वशे जे जे मार्गे चालीए बिये ते अशिव मार्ग ठे एटले कट्याणकारी मार्ग नथी जे अशिव मार्गे प्रवर्त्ते ते वंठित सुख पामे नहि अने दुःखी रहे पण जेने शिवगती के० शिव चाल ठे एहवा जिनवर देवनी आज्ञा सेववी ते परम दूर्लभ ठे पण पर परिणतिने जे रूडी रीते त्यागे—दूर करे तेने ए सेवा सुलभ ठे. जे जीव सत्तावन प्रकारे अथवा तो अनेक प्रकारे आश्रव तर्जी संवरवंत थाय तेज पुरुष जिन आज्ञामां परम लीन थई पुष्टपणे जिन आज्ञा सेवे अनेक प्रकारे आश्रव कह्यो पण ते परवस्तुना राग रूप एक अशुद्ध उपयोगमांज समाय ठे अने द्वेष ते तो राग होय तोज उपजे. उक्तंच “ पर दव्व रठं वझ्झई, विरठं मुंचेई अठ कम्मोहि, एसो जिण उदएसो, समासठं वध मोखवस्स ” ॥ १ ॥

वीतराग गुण राग जक्ति रुची नैगमे होलाल ॥ ज० ॥

यथाप्रवृत्ति जव्य जीव नय संग्रह रमे हो लाल० ॥ नय ॥

अमृत क्रिया विधि युक्त वचन आचारथी होलाल ॥

॥ वचन० ॥ मोहार्थी जिन जक्ति करे व्यवहारथी होलाल०

॥ करे० ॥ २ ॥

अर्थ—मोक्षार्थी जीव जिन जक्ति तथा साधन व्यवहार सात नये करी करे ते कहिये त्रिये

( १ ) वीतरागना गुणोनी राग अने वीतरागनी आझा सेवानी रूचि ते नैगम नये जक्ति कहीए.

( २ ) ज्यारे जव्य जीव ठेळु यथाप्रवृत्तिकरण करे त्यारे संग्रह नये जक्ति कहीए ए करणमां सत्तापणे जिन प्ररूपित तत्त्वनी अजिलापी जीव ठे.

( ३ ) जिन वचनमा जे आचार क्रिया अनुष्ठान सेववानुं कह्युं ते विप गरल अने अन्योन्य अनुष्ठान त्यागी मोक्षार्थी जीव जेद-ज्ञानादि श्रुत वाचना, पृच्छना, परिच्छटना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा तथा विनय वैधावच्चादि आत्म शुद्धताने तद्देतु क्रिया अने शुक्लघ्यान रूप अमृत क्रिया विधिने सेवे ते व्यवहार नये जक्ति कहीए ॥ २ ॥

गुण प्राग्जावी कार्य तणे कारणपणे हो लाल ॥ तणे० ॥  
रत्नत्रयि परिणाम ते रुजुसूत्रे जणे हो लाल ॥ ते रुजु० ॥  
जे गुण प्रगट थयो निज निज कारज करे हो लाल के ॥  
निज० ॥ साधक जावे युक्त शब्द नये ते धरे हो लाल ॥  
॥ शब्द० ॥ ६ ॥

अर्थ—( ४ ) ज्ञानादि अनंत आत्म गुणो शुद्ध प्रगट करवा रूप कार्यनी परिणामी थयो जीव तेसूख्य शुद्ध ज्ञान दर्शन चरणादिना परिणाम करे ते रुजुसूत्र नये जक्ति कहीए ( ५ ) ज्ञानादिक शुद्धात्म गुण जे जे अशे प्रगट थई आप आपणुं कार्य शुद्ध प्रगटपणे करवा लागे अने सर्वे गुणो पूर्ण प्रगट करवानो साधक जाव आदरे ते शब्द नये सेवा जक्ति कहीए ॥ ३-॥

पोते गुण पयाय प्रगटपणे कार्यता हो लाल ॥ प्र० ॥

उणे आए जाव ताव संजिरूढता हो लाल ॥ ताव० ॥  
 संपुरण निज जाव स्वकारय कीजते हो लाल ॥ स्व० ॥  
 शुध्दातम निज रूप तणे रस लीजते हो लाल ॥ त० ॥ ४ ॥

अर्थ—(६) केवलज्ञान केवलदर्शन यथाऋणात्चारित्र्य अने परम  
 अचल वीर्यगुणो अने पर्यायो प्रगटपणे आपआपणं कार्य करे ठे  
 त्यांथीज ज्यांसुधी अव्यावाध अक्षयस्थिति अटलअवगाहना अने  
 अगुरुलघु ए चार गुणोना अंशो अघाती कर्म वशे ज्यांसुधी पूर्ण  
 प्रगट कऱ्या नथी त्यांसुधी समजिरूढ नये सेवा कहिए (७) शैलेसी  
 करणना ठेह्या समय आठे गुणोना सर्व अंश प्रगट निर्मल कऱ्या अने  
 ते मुख्य आठ गुण शिवाय अनंता गुणोना पूर्ण अंश प्रगट थया  
 अने ते सर्वे गुणो आपआपणं कार्य पूर्ण पर्याये पूर्ण पदे करवा  
 लाग्या त्यारे एवंभूत नये सेवा थई एटले चौदमा गुणगणाना चरम  
 समये एवंभूतनये सेवा जाणवी. ए स्थानके पूर्ण आत्म शुद्ध पर्यायनो  
 लाज ले ठे त्यां एवंभूतनये सेवा थई जाणवी सेवानुं फल सेवा साथे मलेज  
 ठे पण कालांतरनो बायदो नथी कोई कहेके—सेवानुं फल तो ते जे  
 अथवा जत्रांतरे पण फले ठे तेने कहीए के शुज उपयोगवने शुज कर्म-  
 दल बंधाय ते अनुक्रमे उदय आवे पण अहीआं तो शुद्धतानी वात ठे  
 अने शुद्धतामां आत्मगुण प्रगट थयानो आनंद ते तो तरतकाल  
 आवे ठे अने उंचा गुणगणानुं कारण थाय ठे जेम सूर्य  
 उग्यो के तेज वखते अंधकार नाठो अने उद्योत थयो तेनो आनंद  
 तेज वखत आव्यो तेम अहीआं अशुद्धता नाठी अने शुद्धता प्रगट  
 थई ते अशुद्धतानुं दुःख गयुं अने शुद्धतानो आनंद आव्यो एसाहे  
 कालक्रमनुं जोर नथी ॥ ४ ॥

उत्सर्गे 'एवंभूत' ते फलने नीपने हो लाल ॥ ते० ॥  
 निसंगी परमातम रंगथी ते वने हो लाल के ॥ रं० ॥



सहज अनत अत्यत महंत सुखे ज्ञेया हो लाल ॥ म० ॥

अविनाशी अतिकार अपार गुणे वस्था हो लाल ॥ अ० ॥ ५

अर्थ - चौदमा गुणठाणाना अते पूर्ण गुणपर्याय प्रगट कस्था अने तेनुं फल लीधुं ते उत्सर्गे एवञ्चूतनये सेवा थई एवा निसंगी परमात्म जावमा रंग राखवाथी ए सेवा वने प्रचुजी सहज स्वजावी अंत रहित अनत सुखे जरपूर महंत ठो वली विनाश रहित विकार रहित अथाह गुण वस्था ठो ॥ ५ ॥

जे प्रवृत्ति जव मूल वेद उपाय जे हो लाल ॥ ठे० ॥

प्रचु गुण रागे रक्त थाय शिवदाय ते हो लाल ॥ था० ॥

अग थकी सरवश विशुद्धपणु ठवे हो लाल ॥ वि० ॥

शुंकल बीज शशि रेह तेह पूरण हुवे हो लाल ॥ तेह० ॥ ६

अर्थ - आत्म स्वरूपना अज्ञान अने मिथ्यात्व रागादिकवने जे प्रवृत्ति ते जवत्रमणनुं मूल ठे अने प्रचुना शुद्ध गुणोर्मा रागे रक्त धनु तेज जव त्रमणनु मूल वेदवानो मुख्य उपाय ठे तथा सकल उपद्रवना नाग करनार आखर शिवदायी थाय ठे एटले प्रचु गुण राग रूप शुज रुपयोग ते शुद्ध उपयोगनु परम कारण ठे अने शुद्ध उपयोगे मुक्ति ठे अंश थकी सर्वांश विशुद्धता प्रगटे एटले नैगमनयथी जे वीतरागनी आहा सेववानी रुची कही ते विशुद्धताना अंश ठे अने विशुद्धतामा गर्जित शुद्धता ठे ते विशुद्धता साथे गर्जित शुद्धता वधते वधते एवञ्चूतनये पूर्ण शुद्धता प्रगटे जेम बीजनो चंद्रमा जग्या पठी दिने दिने कला वधते वधते पूनमे पूर्ण सोले कलाए प्रगट थाय तेम नैगम सेवाथी विशुद्धता अने गर्जित शुद्धता शरु थई ते ते वधते वधते चौदमे गुणठाणे एवञ्चूतनये पूर्ण शुद्धता प्रगटे ॥ ६ ॥

तिम प्रचुथी शुचि राग करे वीतरागता हो लाल ॥ करे० ॥

गुण एकत्वे आय स्वगुण प्राग्भावता हो लाल ॥ स्वगुण ॥

देवचंद्र जिनचंद्र सेवा मांही रहो हो लाल ॥ सेवा ॥

अव्याबाध अगाध आत्म सुख संग्रहो हो लाल ॥ आ ॥ ७

अर्थ:-तेम प्रजुथी पवित्र राग ते आखर पूर्ण वीतरागता प्रगट करे. प्रजुना निर्मल गुणनुं एकत्व ध्यान करवाथी परिणति आत्म गुणथी एकता पामी पूर्ण गुण प्रगटे. एम देवोमां चद्रमा समान एवा शिवगति सोहेवनी सेवामा रही आत्मिक अनत अव्याबाध अगाध सुखने सादिअनंतकाल सुधी जोगवो-राखो ॥ ७ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्तागजिन स्तवन ॥

॥ मन मोहुं अमारुं प्रजु गुणे ॥ ए देशी ॥

करो साचा रंग जिनेश्वरू, संसार विरंग सहू अन्धरे ॥  
सुरपति नरपति संपदा, ते तो दुरगंधी कदन्नरे ॥ करो ॥ १

अर्थ:-हे ! शाश्वत सुख अजिलाषी ज्यो ! तमो आस्ताग स्वामीना वचने अने आस्ताग स्वामीना गुणोमां साचो रंग करो. संसार विरंग के संसारना अनेक प्रकारना जे धन विषय सन्मान आयुष्य कुंटुवादि तेमा मिथ्या दशाए संग लागे ते पण ते सर्वे विपरित रंग ते अने आत्मक्षेत्रथी न्यारो विनाशीक जय जरेलो परंतत्र पूर्वापर क्लेश युक्त ते देवोना पति ईडो अने मनुष्योना पति चक्री राजाळ आदिनी संपदा जे अश्व गज स्त्री आदि ते तो जगत् जीवनी एंठ, दुर्गंधीक अने सडेलों अनाज जेवी, विव्हलता करावनार, पापकारी दीनता युक्त ते पण तेमां मोह मदिरानी ठाके अंध धुंध थया जीवोने सुख जणाय ते पण परमार्थे ते रोग अने रोगना उपचार ते ॥ १

जिन आस्ताग गुण रस रमी, चद्र विषय विकार विरूप रे ॥  
विण समकित मते अजिलखे, जिणे चारुयो शुद्ध स्वरूपरे ॥

६० श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

॥ क० ॥ १ ॥ निज गुण चिंतन रस रम्या, तसु क्रोध अन-  
लनो ताप रे ॥ नवि व्यापे कापे जवस्थिती, जिम शीतने  
अर्क प्रतापरे ॥ क० ॥ ३ ॥

अर्थ—श्री आस्ताग जिन पोताना ज्ञानादिक अनंत शुद्ध गुणमां  
रसीआ अने अखंड समय स्वतंत्रपणे रमण करवावाळा ठे चढायमान  
विषय विकार ते आस्ताग स्वामीना गुणथी उलटो दुःख अने क्लेश  
रूप ठे ज्यासुधी सम्यक्ज्ञान नथी त्यासुधी मूढ जीव एहवा  
विषयरूप दुर्गुणोनो अजिलापी होय पण जेणे शुद्ध गुण स्वरूपनो  
स्वाद चाख्यो ते तो निज शुद्धात्म गुण चिंतन रस जलमा रम्या, तेने  
क्रोधादिक कषाय अशिनो ताप कदापि व्यापे नहि पण ते जवस्थि-  
तीने कापे जेम सूर्यनो प्रताप शीत कापे ठे तेम जाणवु ॥ १ ॥ ३ ॥

जिन गुण रंगी चेतना, नवि बांधे अजिनव कर्मरे ॥ गुण  
रमणे निज गुण उलसे, ते आस्वादे निज धर्मरे ॥ क० ॥ ४

अर्थ—जे जीव जिन गुणोमां रंगी थयो ते नवा कर्म बंध करे  
नहीं. जिन गुण रमणे पोताना आत्मिक शुद्ध गुण उद्वास पामे—प्रगट  
थाय तेज पोताना ज्ञान दर्शन चरणादिक धर्मनो स्वतंत्र आनंद लेष

पर त्यागी सगुण एकत्त्वता, रमता ज्ञानादिक जावरे ॥  
स्वस्वरूप ध्याता थई, पामे शुचि खायक जावरे ॥ करो० ॥ ५

अर्थ—जे पुरुष पुद्गल परिणतिनु कर्त्तापणुं जोक्तापणुं रक्षकपणुं  
ग्राहकपणुं व्यापकपणुं तथा राग द्वेष अने ममता त्यागी स्वस्वरूप  
ध्याने एकत्व रही ज्ञानादिक रम्य करे ते पूर्ण स्वस्व-  
रूपनो ध्याता थई पवित्र अक्षय ॥ ५ ॥

गुण करणे गुण  
संक्रमणे उद.

थीती वेद रे ॥

॥ ६ ॥

अर्थः—ज्ञानगुणना अविज्ञागी ठती पर्याय रूप करणे वधतो वधतो अने नवो नवो ज्ञान गुण निर्मल प्रगट थाय तेम दर्शन चरणादि सर्वे गुणोना ठती पर्याय रूप करणे दर्शन चरणादिक गुणो पूर्ण पर्याये निर्मल प्रगटे अने सत्तागते ज्ञानावरण दर्शनावरण अने मोहनीय आदिना रस ( अनुज्ञाग ) अने स्थिति दल सहित छेदे अने प्रदेश उदयथी संक्रमण करी निर्झरा करे अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय तथा जन्म मरण त्रय शोकादिनो खेद टाळे ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी, आए पूर्णानंद विलासरे ॥  
देवचंद्र जिनराजनी, करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो ० ॥ ७ ॥

अर्थः—सहज शुद्धात्म स्वरूप प्रकाश थवाथी स्वतंत्र अत्यंतिक पूर्णानंद विलास प्रगट थाय माटे देवचंद्र मुनि कहे ठे जिनराजनी सेवामां रही शुद्ध आत्म सत्ताजूमिमां स्वतंत्र सुखे वास करज्यो ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षोडशम श्री नमिश्चर स्वामी जिन स्तवन ॥

॥ हो पीठ पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्चर स्वामजो, तुज मुख दीठे  
नाठी जूल अनादिनीरे लो ॥ जाग्यो सम्यग ज्ञान सुधारस  
धामजो, गंभी दुर्जय मिथ्यानींद प्रमादनीरे लो ॥ ज० ॥ १

अर्थः—जगत्मा ज्ञानरूप दिवाकर, अज्ञान अने मिथ्यात्व रूप अंधकार नाश करवावाला तथा सकल डव्यनी शुद्ध सत्ता प्रकाश-वावाला श्री नमिश्चर स्वामी तमारुं मुख दीठे एटले तमारा वदन कमलमांथी मेघ ध्वनी पेठे गजारिव करती शुद्ध स्याद्वाद नयनी देशना सांजलवाथी हमारी अनादिनी जूल नाठी अने सम्यक्ज्ञान रूप अमृतनुं घर लघडपुं—जणायुं. के जेमांथी अनंत प्रकारनुं अमृत

हमे पीए एटले हमारा अनादिना मिथ्यात्वादि असाध्य रोगो जाय

अने ज्ञान अने अचल स्वतंत्र वीर्यादिनी परम पुष्टि थाय अने तेथी  
हमारी दु खे तजाय एवी मिथ्यात्व अने प्रमादनी निंदा इती ते  
हमे ठोडी ॥ २ ॥

सहजे प्रगट्यो निज पर जाव विवेक जो, अंतर आतिम  
उदख्यो साधन साधवेरे लो ॥ साध्यालंबी थई ज्ञायकता ठेक  
जो, निज शुध परिणति थिर निज धर्म रसे ठवेरे लो ॥ ज० ७ ॥

अर्थ - शुद्ध नये अमृत समान तमारी वाणी जाणी आत्म लक्षण  
अनात्म लक्षण जिन जिन जाणी सहजे निज परजाव विवेक प्रगट  
ययो अने वध मार्ग मोक्ष मार्ग संवर मार्ग अने आश्रव मार्ग ए  
प्रादि मार्ग साक्षात् जाण्या हे प्रचुजी । तमारा वचनथी उलटा  
अने दूर रहेवावाला कुमतिपणे चालनार अने चलावनारना जव जमण  
रतां केवा हवाल थशे ? ते विचारतां चित्तमा धुजारो आवे ठे वली  
कुमतिउ, उपकारीना हितकारी वचनोथी दूर रहे अने मोक्ष  
गमा प्रेरता उलटा कोप करे ठे तेने शुं करीए ? पण हमारो  
तर आत्मा तमारा परम ज्ञान परम न्याय परम दया जख्या वचन  
जली शुरू साध्य जाणी साधन साधवामा ठेख्यो ए प्रचुनो परम  
कार ठे हमारी ज्ञायकता परालवन तजी शुरू साध्य आलंबने  
वलगी एटले प्रचुनी आणा आलंबनमा पण टकी तेथी निज  
गति निज ज्ञानादिक शुरू स्वजाविक आनंदमा मग थई-रमवा  
रही ॥ २ ॥

यागीने सवि पर परिणति रस रीझ जो, जागी ठे " निज  
म अनुभव ईष्टतारे लो ॥ सहजे बुटी आश्रव जावनी  
जो, जालम ए प्रगटी संवर शिष्टतारे लो ॥ ज० ॥ ३ ॥

अर्थः—सकल पुद्गल परिणति रस रीज त्यागीने आत्म गुण अनुभव अन्यासमां ईष्टपणु जाग्युं तेथी सहजे अनादिनी आश्रव जावनी चाल-टेव हती ते वुटी एवी महा जोरावर संवर जावनी शिष्टता के० उत्तम चाल प्रगट थई ॥ ३ ॥

बंधना हेतु जे ठे पाप स्थानजो, ते प्रभु जगते पाम्या पुष्ट प्रशस्ततारे लोल ॥ ध्येय गुणे वलंग्यो पूरण उपयोग जो, तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लोल ॥ ज० ॥ ४ ॥

अर्थः—बंध हेतु जे जे पापनां स्थानक हतां ते प्रभु जक्ति पलटी शुद्धात्म पुष्ट प्रशस्तपणे थया ते नीचे प्रमाणे—

( १ ) प्राणातिपातपणे जे परिणाम हतो ते पलटी ड्रव्य जाव दया परिणामे परिणम्यो.

( २ ) अनृत वचन परिणाम हतो ते सत्य अमृषा परिणामे परिणम्यो

( ३ ) अदत्त ग्रहणपणे परिणाम ते शुद्धात्म तत्त्व ग्राहकपणे परिणम्यो

( ४ ) पुद्गल ड्रव्य गुण पर्याय मथन रूप कुशल परिणाम ते स्वगुण पर्याय समाधि कामी सहजानंद रमणी थयो.

( ५ ) पर ग्रहण रूप परिग्रह परिणाम ते शुद्ध स्वगुण पर्याय ग्राही थयो.

( ६ ) क्रोध परिणाम पलटी परम क्लमा रूप थयो.

( ७ ) मान परिणाम मृडुता रूप थयो.

( ८ ) माया परिणाम आर्यव रूप थयो

( ९ ) लोच परिणाम मुक्ति संतोष रूप थयो.

( १० ) राग परिणाम वीतरागता रूप थयो

( ११ ) द्वेष परिणाम अद्वेष रूप थयो.

- ( १२ ) क्लेश परिणाम अकल्प्य समाधि रूप थयो.
- ( १३ ) अन्यायान परिणाम सुजापित थयो.
- ( १४ ) पैशुन्य परिणाम मिथ्यात्वादिक दूर्गुणाना त्रिद्र मर्म जाणवा देखामवावालो थयो.
- ( १५ ) परपरिणतिमां रति अरति परिणाम हतो ते विरति निवृत्ति रूप थयो.
- ( १६ ) पर जीवना अपवाद बोलवा रूप परिणाम हतो ते विजाव अपवाद बोलवा रूप परिणाम थयो.
- ( १७ ) माया मृषा परिणाम—ते अमाय सत्य रूप थयो.
- ( १८ ) मिथ्यात्व शब्द परिणाम हतो—ते सम्यक्त्व नि.शब्द परिणाम थयो

एम अदारे पाप स्थानक पलटो निस्पाप अवधस्थानी थयां. अशुद्ध उपयोग निर्मल थई अनत गुण पञ्जवमयी सहज शुद्धात्म ध्येयमा पूर्ण अखरूपदे लाग्यो—धिर थयो तेथी ध्याता ध्येयनी पूर्ण समाधि पाम्यो ॥ ४ ॥

जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो, ते गोपद सम कीधो प्रजु अवलंबनेरे लोल ॥ जिन आलवनी निरालंबता पामे जो; तेणे हम रमशुं निज गुण शुध नंदनवनेरे लोल ॥ ज० ॥ ५ ॥

अर्थ—सत्तार समुद्र तरवो अति दुस्तर हतो ते जेम गायना प्रगलाधी पृथ्वी उपर पकेला खाडमां जरायेलु पाणी सहजे उलघी जवाय तेम ते जवसमुद्र प्रजु आलंबने तरवो अति सुगम थयो एम प्रजुना आलवने जे वत्ते ते निरालंबपणुं पामे घटके ते पुरुषने कोई अन्य पुरुष के अन्य वस्तुनुं आलबन खेवानी कदापी जरूर रहे

नहीं. ते माटे हमे प्रचु अखलं वने निरालंबता पामी ण  
नदनवनमां आनंदे रमीशुं ॥ ५ ॥

साध्यादि निज प्रचुताने एकत्त्वजो, क्षयिकभावेथाए  
निज रत्नत्रयीरे लोल ॥ प्रत्याहारी धारे धारणाशुद्धजो,  
तत्त्वानंदी पूर्ण समाधि लये मईरे लोल ॥ ज० ॥ ६ ॥

अर्थ:-शुद्ध साध्य आदि निज प्रचुतामां एकत्व परिणामे रमे  
एटले शुद्ध साध्य जाणी सिद्धि करवामां शुद्ध साधनाए निज प्रचुता  
के० निज शक्तिमां एकत्वपणे थिर उपयोगे प्रवर्त्ते तेने पोताना  
केवलज्ञान, केवलदर्शन अने केवल चरणरमण क्षायकभावे थाय.  
परजावथी परिणाम पाठो वाळी एटले प्रत्याहार करी शुद्ध ध्येयमां  
धैर्यपणे धारणा राखे, वीर्य अचल राखी अमोल रहे ते तत्त्वानंदी  
जोकि-पूर्ण समाधिमां लयलीन थाय एटले विकल्पे व्यापेलो उपयोग  
शुद्ध अचल निज रूपमां लय पामी परम अचल समाधिमय रहे ॥ ६

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो, कर्ता चोक्ता जावे  
रमणपणे धेरेरे लोल ॥ सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो,  
देवचंद्र एकत्त्वे सेवनथी वरेरे लोल ॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अनंता गुणो अव्याबाधपणे राखवानी एज पूर्ण रीत ठे के  
स्वगुण कर्ता चोक्तापणामां पोताना परिणामनुं रमण अखंड समय  
एकत्वपणे धारे-राखे एटले देवमां चंद्रमा समान नमिश्चर स्वामीनी  
सेवामां परिणाम एकत्वपणे राखवथीज सहज स्वभाविक निर्मल  
अनुपचरित ज्ञानानंद पामीए ॥ ७ ॥

॥ समाप्त ॥



- ॥ ॐ पद्मदशम श्री अनीलजिन स्तवन ॥

देखो गति दैवनीरे ॥ ए देशी ॥

स्वारथ खिन उपगारतारे, अद्भुत अतिगय रिधि ॥  
आत्म स्वरूप प्रकागता रे, पूरण सहज समृद्धि ॥ अनील  
जिन सेवीएरे ॥ नाथ तुमारी जोफिन को त्रिहु लोकमेंरे,  
प्रभुजी परम आधार अठो जवि थोकनेरे ॥ १ ॥

अर्थ—हे अनीलनाथ स्वामी ! सत्तरमा तीर्थपति तमे पोतानो  
स्वार्थ तो सिद्ध कस्यो ठे हवे हमाराथी तमारे काई पण स्वार्थ नथी  
ते ठतां पण तमे हमारा सरखा जव्य जीवो उपर परोपकार करो, ठे  
वली अद्भुत अतिशयवत ठे. एटले तमारा अपायापगमन  
अतिशय बने हमारा पाप डुरित डु ख नाश थाय ठे वली तमारा  
वचनातिशय बडे हमे हमारी जापामां तमारां वचन सहजे समजीए  
ठिये वली तमारा परम ज्ञानातिशय पसाये हमोने अनात्मथी जिन  
शुद्धात्म स्वरूपनु ज्ञान थाय ठे वली तमारा पूजातिशय पसाये हमे  
हमारा पूज्य परमपदने पामीए एवी तमारी अतिशयादिक तथा  
अष्ट महा प्रातिहार्यादि तथा अतरग केवलज्ञान दर्शनादिकनी  
जाव खदमी ठे वली तमे शुद्धात्म स्वरूपना प्रकाश करवावाला पूर्ण  
सहज समृद्धिवत ठे माटे हमे अनील प्रभु तमोने सेवीए तमे  
हमोने नसार डु खथी ठोडाववावाला हमारा नाथ ठे त्रिलोकमा त्रण  
काले तमारी जोमीनो कोई अन्य हेतु के० उपगारी नथी तेथी  
प्रभुजी तमे थोक वध जवि जीवोने परम आधार ठे ॥ १ ॥

परकारज करता नहिरे, सेव्या पार न हेत ॥ जे सेवे तन-  
मय थईरे, ते लहे जीव सकेत ॥ अ० ॥ १ ॥

अर्थ—प्रभुजी तमे परजीव तथा पर पुद्गल कार्यना कर्त्ता नथी

अने तमने सेवनार ऋविने निश्चयथी तमे पालवावाला के राखवावाला के पार पमाडवावाला नथी पण तमने जे तन्मय थई सेवे ठे तेने तमे जाणे समझ्या बंध सलाहबंध शिव आपो एम जणाय ठे पण तेनी सेवानुं तेज पुरुष शिवसुख फल पामे ठे एमा काई शंका नथी ॥ २ ॥

करता निज गुण वृत्तितारे, गुण परिणति उपजोग ॥  
निप्रयास गुण वर्त्तितारे, नित्य सकल उपयोग ॥ अनील० ३

अर्थ.—प्रभुजी तमे तो सकल समय विना प्रयासे निज गुण प्रवृत्तिना कर्ता ठो अने तमारे स्वगुण परिणतिनोज सकल समय उपजोग ठे, नि प्रयासे सहजे गुण वर्त्ते ठे अने तेनो उपयोग पण तमारे सकल समय अखंड ठे ॥ ३ ॥

सेव ऋक्ति जोगी नहीरे, न करे परनो सहाय ॥ तुज गुण रंगी ऋक्तनारे, सहजे कारज थाय ॥ अनील० ॥ ४ ॥

अर्थ.—तमारी आज्ञा सेववावाला तमारी सेवा ऋक्ति करे तेना तमे जोगी नथी अने तमे परनी सहाय करवावाला पण नथी पण ताहूरा ज्ञानादिक गुणोमां रंगी थई तमारी आज्ञा सेवे ते ऋक्तोनां सहजे कार्य थाय ॥ ४ ॥

किरिया कारण कार्यतारे, एक समय स्वाधीन ॥ वर्त्ते प्रति गुण सर्वदारे, तसु अनुभव लयलीन ॥ अनील० ॥ ५

अर्थ.—तमारे अनेक गुणोना कार्यनी क्रिया कारण अने कार्यपणुं प्रति गुणोनुं दरेक समयमां समकाले तमारे पोताने स्वाधीन ठे ते अनुभव रस स्वादमा तमे लयलीन ठो ॥ ५ ॥

ज्ञायक लोकालोकनारे, अनील प्रभु जिनराय ॥ नित्या-  
नंद मयी सदारे, देवचंद्र सुखदाय ॥ अनील० ॥ ६ ॥

अर्थ:—देवचंद्र मुनि कहे ठे के अनील प्रभु अगीआरमा धारमा अने तेरमा गुणठाणाना सामान्य जिनोमां राजा अने लोक

शुं ? पोताना दाम रूप फलनु दासपणुं कखुं एटखे स्वामीनुं दासपणुं न रखुं माटे कामना रहित सेवा करवी ॥ १ ॥

जक्ति नहि ते तो जाडायत, जे सेवा फल जाचे ॥ दास तिके जे धन जरि निरखी, केकईनी परे माचे ॥ सेवा ० ॥ २

अर्थ -जे सेवाना फलने ईच्छी सेवा करे ते नक्तिवत नथी पण ज्ञानायत ठे दास तेनेज कहीए जे सदा स्वामीना हित समुदायमां राजी रहे-वत्ते, स्वामीने गुण थाय एम जूए वली स्वामीनी ईच्छाए वत्ते जेम केकई राणी पोताना दशरथ स्वामीनी जक्तिमा अत्यंत रची मची रहेती हती तेम फलकामना रहिन प्रजुनी आझाए वत्ते ते साचो सेवक जाणवो ॥ २ ॥

सारी विधि सेवा सारंतां, आण न कांइ जाजे ॥ हूकम हाजर खिजमति करतां, सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा ० ॥ ३

अर्थ -सकळ प्रकारे रूढी विधिए आणा सेवीए अने कांइ पण आणा तिराधीए नहीं वली प्रजुना हूकममा हाजर रही खिजमत करीए तो सहजे स्वामीनी मेहेरवानी फले ॥ ३ ॥

साहिव जाणो ठो सहु वाते, शु कहीए तुम आगे ॥ साहिव सनमुख अमे मागणनि, वात कारमी लागे ॥ सेवा ० ॥ ४

अर्थ -साहेव पोते केवलज्ञाने करीने सर्वे जाणो ठो के जे सेवामा हाजर ठे ते परमानंदना कामी ठे तो हमे तुम आगे शु कहीए ? पण साहेव सन्मुख हमे मागण कांइ मागवा रूप वात करीए तो ते वात असोहामणी लागे माटे जाणीए त्रिये के जे प्रजुनी अखरु आणा सेवशे ते अयम अचित्य फल पामशे ॥ ४ ॥

स्वामि कृतारथ तो पण तुमथी, आश सहुको राखे ॥ नाथ विना सेवकनी चिंता, कोण करे विणु दाखे ॥ सेवा ० ॥ ५ ॥

अर्थ -शुज क्रियानो स्वामी ते शुज फल पामे अने शुद्ध स्वजाव

प्रवर्त्तीनो स्वामी शुक्लात्म संपदा पामे ए निश्चय ठे पण प्रजुजी जेवा परम दयालनी आशा तो सर्वे राखे. माहुरा जेवा रंक पुरुपोने मोक्ष मार्गमां प्रेरवावाला नाथ विना हमारी चिंता कोण मिटावे ? एटले हमारूं चितित देखाड्या विना कोण हमारी चिता करे ? वखी हमारूं चितित प्रजुजी तमे जाणोज ठे पण वालकनी पेठे महारेथी वोड्या विना न रहेवाय तेथी कहुं तुं ॥ ५ ॥

तुज सेवा फल माग्यो देतां, देवपणो थाये काचो ॥ विण माग्यां वंठित फल आपे, तिणे देवचंद्र पद साचो ॥ से० ॥ ६

अर्थ.—जेणे तमने सेव्या तेनुं फल तमे तेने माग्युं आपो तो तमे सेवाना अर्थी अथवा रागी कहेवाउं तेथी तमारूं देवपणुं काचुं गणाय पण माग्या विना वंठित फल आपो ठे तेथी तमारूं देवमा चंद्रमा समान परम देवपद साचुंज ठे ॥ ६ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशतिम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन ॥

॥ अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां ॥ ए देशी ॥ राग प्रजाती ॥

हुं तो प्रजु वारि तुं तुम मुखनी, हुं तो जिन वखिहारी तुम मुखनी ॥ समता अमृतमय सुप्रसननी, तरेय नही राग रूखनी ॥ हुं० ॥ १ ॥

अर्थ—हे जिनेश्वर ! तमारा मुखनी हु वारी जाउ—वखिहारो जाउ तु एटले हे जिनेश्वर ! तमारा मुख कमलनी जे वाणी वरसे ठे ते सकल जीवोना पाप मेलने धोवावाळी ठे. जीवो स्वपर ड्रव्य अने जाव प्राणनी हाणी करी व्यवहार अने निश्चयथी स्वपर सुखनो हाणी करे ठे पण प्रजुजी माहणतानो उपदेश करी सकल जीवना ड्रव्य जाव प्राणनी हाणी थती अटकावे ठे ते ड्रव्य प्राण—इंद्रियो

(५) बल (३) श्वासोश्वास (१) आयुष्य (१) एम  
मूल चार ठे अने तेना उत्तर जेद दश ठे अने जाव प्राण ज्ञान  
दर्शन चरण अने वीर्य ए मूल्य चार ठे तेना उत्तर जेद अनेक अथवा  
अनत पण ठे डव्यप्राणे करीने जीव व्यवहारीक सुख जोगवे ठे अने  
ते डव्य प्राणनी हाणी करवाथी वे प्रकारनुं दुःख थाय ठे जेम स्पर्श  
इंद्रियनी हाणी करवाथी ते स्पर्श इंद्रियनु वेदन जेदन थाय तेनुं  
दुःख उपजे ठे अने स्पर्श इंद्रिय वडे जे जे सुख लेतो जोगवतो होय  
ते सुख जाय तेनु दुःख पण जीव जोगवे ठे तेमज रसना इंद्रियने  
ठेदवाथी ते ठेदन जेदननु दुःख उपजे ठे अने रसनाए करीने विविध  
प्रकारना स्वाद लेतो होय ते जाय तेनुं दुःख उपजे ठे एमज पाचे  
इंद्रियोमा पण जाणवु वली कायबलनो नाश करवाथी दुःख उपजे ठे  
अने कायबल वरे जे सुख लेतो होय ते जाय तेनुं दुःख थाय ठे  
एम वचनबलमा अने मनबलमा पण जाणवुं वली श्वासोश्वासनी  
हाणी करवाथी श्वासोश्वास रोक्यानु दुःख उपजे ठे अने श्वासो-  
श्वास वडे जे सुख लेतो हतो ते सुख जाय तेनु दुःख थाय ठे  
अने आयुष्यनी हाणी करवाथी आयुष्य हाणीनु दुःख उपजे ठे  
अने आयुष्य वरे जे सुख लेतो हतो ते सुख जाय तेनु दुःख उत्पन्न  
थाय ठे एम ए दशे डव्य प्राणनी हाणीथी वेदना, जय, शोक, कपा-  
यादि दुःख उपजे ठे अने अवेदना निर्जय अशोक अकपायनु सुख  
नाश थाय ते दुःख उपजे ठे वली ए डव्यप्राणनी हाणी करता  
जीव एक एकथी वैर विरोध बांधी वैर विरोधनी परंपरा बधारी प्राये  
अनतकाल सुधी दुःखी थाय ठे वली ए डव्यप्राणनी हाणी ते  
स्वपर जावप्राणनी हाणीनु कारण पण थाय ठे तेथी ज्ञानावरणादिक  
आठे कर्म पोते वाथी अने बीजाने पण कर्मबंधना कारण थई अनंत  
काल संसारमां रूळे रूखावे ठे हवे जावप्राणमा अज्ञान आदरी

अज्ञान पमाडी जूठा विकल्पो करी करावी पोताना निश्चय ज्ञान  
 आनदनी हाणी करे ठे अने बीजा जीवोना पण निश्चय ज्ञानानंदनी  
 हाणी करावे ठे एम ज्ञानानंद निश्चय सुखनो नाश करवो अने  
 अज्ञान दु.ख खडु करवु ए पण वंने प्रकारे दु ख जाणवुं वली अशुद्ध  
 निश्चय करी पोते मिथ्यात्व आदरीए अने बीजाने मिथ्यात्वनो आदर  
 करावीए तेथी सम्यक्ज्ञाव निश्चय सुखनो नाश अने मिथ्यात्व  
 जाव दु खनी उत्पत्ति ए पण वंने प्रकारनुं दु ख जाणवुं वली विषय  
 कपायाचरणे शुद्ध स्वज्ञावाचरण धिरता रूप निश्चय सुखनो नाश करीए  
 अने एम अन्य जीवने पण विषय कपायाचरण करावी शुद्ध  
 स्वज्ञावाचरण निश्चय सुखनो नाश करावीए तो शुद्ध स्वज्ञावाचरण  
 निश्चय सुखनो नाश अने विषय कपायाचरता दु ख अज्ञानुं उपजवुं  
 थाय ठे ए पण वने प्रकारे दु ख जाणवुं वली ज्ञावलब्धि आत्म  
 वीर्य चलायमान करी करण ईंद्रियोमां वीर्य वाल बाधक जावे  
 फोरवी अने बीजा पासे फोरवाववाथी ज्ञावलब्धि निश्चय सुखनो  
 नाश अने करण वीर्य वने बाधकताए प्रवर्त्ताव्ये दुःखनुं उपजवुं थाय  
 ठे ए पण वंने प्रकारे दु.ख जाणवुं एम स्वपर डव्य ज्ञाव प्राणनी  
 हाणी ते स्वपर जीवने अनेक सुख नागनुं अने अनेक दुःख उत्पत्तिनुं  
 कारण ठे वली स्वपर जीवने दु ख उपजाववुं ते ज्ञान नहि अने  
 स्वपर सुखनी हाणी करवी वुंढवु ते न्याय पण नथी अने दया पण  
 नथी एम जाणी अनंत ज्ञान न्याय अने दयावंत प्रचुजी तसे माहण-  
 तानो उपदेश कख्यो तेथी तमारा मुखकमलनी वलिहारी ठे तमारा  
 शिवाय वोख साख्यादि अन्य अनेक अशुद्ध अचिप्रायवाला तेनाज  
 कहेला शास्त्रोथी ते पोते ज्ञान न्याय दया रहित जणाय छे माटे हे  
 प्रचुजी । तमारा वचननी शोभा आगल सकल कुमतिउनुं वल हारी  
 थाकी जाय ठे. आ भाव अहिआं सक्षेपथी लख्यो ठे पण सिद्धांतोमां

७२ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

ए विषे षणो अधिकार ठे ते सुज्ञ पुरुषो विशेषथी विचारी लेशे,  
तमारी वाणी समता रूप अमृत रसे जरेली ठे वली चित्तने तथा  
आत्माने सुप्रसन्न करवावाली अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अक्षिने  
बुजाववावाली अने शांति आपवावाली ठे वली रागादि विजावना पद्द  
रहित ठे अने विजावना पद्दथी पाठी वाजवावाली ठे पण विजाव  
सन्मुख जवावाली नथी ॥ १ ॥

त्रमर अधर सिम धनु हर कमल दल, कीर हीर पुन्यम  
शशीनी ॥ शोजा तुठ प्रचु देखत याकी, कायर हाथे जिम  
असिनी ॥ हुं० ॥ २ ॥

अर्थ:-प्रचुना त्रमर आदिकनी शोजा देखता कमल दल कीर  
हीर पूनम शशि आदिकनी सर्वे शोजा ते तुच्छ देखाय ठे उपमेय  
आगल जे जे उपमा कही ते सर्वे कायर हाथे तरवार सरखी जाणवी  
एटले प्रचुना रूपने अन्य उपमा संजवेज नहीं माटे अनुपम रूप ठे ॥११

मन मोहन तुम सनमुख निरखत, आंख न तृपति  
अम्हची ॥ मोह तिमिर रवि हरख चंद्र ठवी, मुरत ए  
उपसमची ॥ हुं० ॥ ३ ॥

अर्थ -हे मनने प्रमोद आपवावाला ! तमारा सन्मुख जोता हमारी  
आख नृती पामती नथी एटले वेगली खसवा चाहाती नथी वली  
प्रचुनी ठवी मोहतिमिरने हरवा सूर्य समान अने हरख उपजाववाने  
पूनमना चंद्रमा सरखी उपशम रसे जरी उपशम रस वरसावती  
आनंद आपनारी ठे ॥ ३ ॥

मननी चित्ता मटी प्रचु ध्यावत, मुख देखतां तुम जिनजी ॥  
ईंदि तृपा गई जिनेश्वर सेवता, गुण गाता वचननी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—प्रचुना निर्मल ज्ञानादिक गुण घ्यातां अने प्रचु मुखयी शुद्ध नय स्याद्वाद अमृत मय वचन सांजली प्रचु रूप देखतां हमारुं रूप सिद्ध समान जाणी मननी चिंता मटी गई जिनेश्वर सेवतां अने वचने करी प्रचु गुण गातां ईद्रिय विषयोनी तृष्णा समी गई ॥४

मीन चकोर मोर मतंगज, जल शशी घन नीचनयी ॥  
तिममो प्रति साद्वि सुरतयी, ओर न चाहुं मनयी ॥हुं०॥५

अर्थ—मत्स्य जेम पाणीयी, चकोरपंखी चक्रमा देखीने, मोर भेष देखीने अने हायी तलाव आदि नीखाळी उंडाण जग्यायी जेम मग्न रहे ठे तेम मने साहेबनी सूरत देखी परम आहृद्लाद उपजे ठे तेयी प्रचुनी प्रचुता शिवाय हु अन्य पदार्थों कुदेव कुवचनादि चाहातो नयी ॥ ५ ॥

ज्ञानानंदन जाया नंदन, आस दास नीयतनी ॥ देवचंद्र  
सेवनमें अहनिश, रमज्यो परिणति चित्तनी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थः—हे. ज्ञानानंद दातार । जाया माताना, नंदन, जाया माताने आनंद आपनार, दासनी निश्चय शुद्ध स्वरूपनी आशा पूरो देवचंद्र मुनि कहे ठे के हमारु चित्तनी परिणति प्रचु आज्ञा सेवामां अह निश रमज्यो ॥ ६ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकविंशतिम श्री शुद्धमती जिन स्तवन ॥

श्री जिन प्रतिमा हो जिन सरखी कही ॥ ए देशी ॥

श्री शुद्ध मति हो जिनवर पूरवो, एह मनोरथ माल ॥  
सेवक जाणी हो महेरवानी करी, चव संकटयी टाल ॥श्री०॥१



अर्थ—श्री शुद्धमती जिनेश्वर हमारी मनोरथ माला पूरी करो मने तमारो सेवक जाणी महेश्वानी करी जव संकटथी उगारो ॥१॥

पतित उधारण हो तारण वळुं, करे अपणायत एह ॥  
नित्य निरागी हो निस्पृह ज्ञाननी, शुद्ध अवस्था देह ॥श्री०॥२

अर्थ—जेने ताहारा वचननी सम्यक् प्रकारे रुचि पतित ठे तेने तु सत्तार समुद्रथी उद्धारवावालो अने वात्सल्यता राखी तारवावालो छु तो हमने पोताना जाणी अपणायत कर. प्रभु तु नित्य निरागी पर जन परवस्तुनी स्पृहा रहित ज्ञानमय शुद्ध अवस्थावत तुं अने ताहरो शुद्ध ज्ञायक ठेह ठे ॥ २ ॥

परमानदि हो तुं परमात्मा, अविनाशी तुज रीत ॥ ए  
गुण जाणी हो तुम वाणी थकी, ठहराणी मुज प्रीत ॥श्री०॥३

अर्थ—प्रभु उत्कृष्ट आनंदवत परमात्मा ठो आत्मा तो जीव मात्र कहेवाय ठे पण ते पोते पोताना परमचाव जोगी नथी पण प्रभु अखेर समय परम स्वतंत्र चाव जोगी माटे परमात्मा ठो. तमे जे स्वचाव आणद खेवानी रीत ग्रही ते ताहरी रीत अविनाशी ठे ए गुण तमारी वाणीथी में जाणी अन्यथी प्रीत तोडी तुमथी प्रीत जोडी ठे ॥ ३ ॥

शुद्ध स्वरूपी हो ज्ञानानंदनी, अव्याबाध स्वरूप ॥ जव-  
जल निधि हो तारक जिनेश्वर, परम महोदय रूप ॥श्री०॥४

अर्थ—प्रभु स्वद्रव्य क्षेत्र काल अने जावे पूर्ण शुद्ध स्वरूपी ज्ञानानंदमय ज्ञानानंदी ठो, सकल समय अव्याबाधमयी ठो, हे, जिनेश्वर । तमे जवदरिथेथी जव्यने तारवावाला ठो अने पूर्ण सिद्धि पद रूप परम महोदय पदवीना राजा ठो ॥ ४ ॥

निरमम निसंगी हो निरजय अविकारता, निरमल सहज  
समृद्धि ॥ अष्ट करम हो वन दाहथी, प्रगटी अन्वय रिद्धि ॥ ५

अर्थः—तमारे कोई परद्रव्य गुणपर्यायन्तु ममत्व नथी तेम तेनो संग पण नथी तेथी जय अने कोई प्रकारनो विकार पण नथी अने तमारे सत्ताम्य राजरिद्धि अनंती सहज स्वतंत्र निर्मल ठे अष्टकर्मरूप वन ध्यानाग्नि धमी प्रजाव्युं तेथो तमारे ज्ञानादि अखूट निर्मल रिद्धि प्रगट थई ठे ते अनंत कालसुधी खरच्यां पण खूटे नहिण

आज अनादिनी हो अनत अक्षता, अक्षर अनक्षर रूप ॥ अचल अकल हो अमल अगमनुं, चिदानंद चिदुप ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः—प्रभुजो आज तमारे अनादिनी सत्तागते अक्षयपणे रहेली अनंत रिद्धि अने शक्ति व्यक्त थई छे ते अक्षर अने अनक्षर रूप के० वचन अक्षरपणे अनंती कही शकाय एवी अक्षर रिद्धि अने तेथी अनंत गुणी वचन आलापमां न आवे एवी अनक्षर रिद्धि स्वतंत्र प्रगट थई ठे तेथी तमे अचल तथा अगम के० उद्मस्थ जीवोने तमारा स्वरूपनी उद्मस्थज्ञाने पूर्ण गमन पडे तथा उद्मस्थ मतिए करी तमारू रूप रिद्धि अने आनंद कली शकाय नहि तथा तमारू रूप रिद्धि पुद्गलीक अन्य पदार्थो जेगुं मली जाय नहीं तेथी तमे अमल एवा ज्ञानानंदमय ज्ञान रूप ठे ॥ ६ ॥

अनंत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी, अनाकारी अविरूढ ॥ लोकालोक हो ज्ञायक सुहंकरू, अनाहारी स्वयं बुद्ध ॥ श्री० ७

अर्थः—तमे अनंत ज्ञानी अने अनत दर्शनवंत ठे तथा आकार रहित स्वपर जीवथी अविरूढ लोकालोकना ज्ञाता द्रष्टा सकल जीवोने सुखना कारण ठे तमारे काई पण आहारनी जरूर रहेती नथी तेथी अनाहारी ठे पोते पोताथीज बोध पामेला माटे स्वयंबुद्ध ठे ॥ ७ ॥

जे निज पासे हो ते गुं मागीए, देवचंद्र जिनराय ॥ तो  
पण मुजने हो शिवपुर साधता, होजो सदा सुसहाय ॥ श्री०८

अर्थ:-ज्ञानानंदादि अनंत कार्योंनी सत्ता हमारी हमारा पासेज  
ठे तो प्रभुजी पासे गुं मागीए ? पण देवोमा चंद्रमा समान हे जिन-  
राज ! हमने मोक्षमार्ग साधता सदाए तमे सुसहाय थजो ॥ ८ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ द्वाविंशतिम श्री शिवकर जिन स्तवन ॥

शिवकर जिनवर देव, सेव मनमा रमे हो लाल सेव मनमां  
रमे ॥ तन्मयताए ध्याय, तेह जव जय वमे हो लाल तेह ० ॥

त्रिपदी प्ररूपी सार, जगत जन तारवा हो लाल जगत ० ॥  
ज्वय अनंत प्रजाय, प्रमेय विचारवा हो लाल प्रमेय ० ॥ १ ॥

अर्थ -सकल अशिव दूर करी सर्वे प्रकारे शिव करवावाला एहवा  
शिवकर नामे गत चोविशीमां वाविशमा तीर्थपति केवलज्ञान  
दर्शनादि गुणे देदिप्यमान देवनी आणानु सेववुं ते माहरा मनमा  
रमेठे अथवा जविजीवोना मनमा रमोके जेनी आणा सेववाथी आत्मा  
शिवपद पामेठे पण ए प्रभुनी सेवा तन्मयताए ध्यायके० प्रभुजी जेम  
राग द्वेष ठोनी शुरू थिर सम परिणामे ज्ञान दर्शन चरणादि आत्म-  
गुणोमा रम्या तेज प्रमाणे जविजीव पणराग द्वेष ठोनी सम परिणामी  
थई मूरय दर्शन ज्ञान चरणमय आत्म स्वभावमां थिर योगे रमे तो  
सकल जवजय वमे एटले जव करवानो जय तेने रहे नहि अने  
निर्वाणपद पामे करुणा जंकार जिनेश्वरे जगत् जीवोने तारवा माटे  
प्रथम सार त्रिपदी प्ररूपी अने सर्वे तीर्थकरो अनादिथी प्रथम  
त्रिपदीज प्ररूपे ठे के जेथी जवि जीव आत्म अनात्म स्वरूप जिज्ञ

जाणी पोतानो उपयोग आत्म शुद्धतामां धिर करी शके ठे ज्यांसुधी शुद्धात्म स्वरुपनुं ज्ञान न होय त्यांसुधी पुद्गलादि परद्रव्यनी ममता अने मिथ्यात्व अविरति आदि कर्मबंधनां कारणे शरु रही आठे प्रकारे कर्मबंध थया करे ठे पण ज्यारे जिन जिन द्रव्यनी उत्पाद् व्यय अने ध्रुवतारुप परिणति जिन जिन जाणे त्यारे परद्रव्य उपर ममता शानी रहे ? अने परद्रव्यमां आपणुं कार्य केम मनाय ? अने परद्रव्यमा आपणु कार्य मनाय नहि त्यारे राग द्वेष अने शुजाशुज संकल्पो पण उपजे नहि एटले जीव शुक्लध्यान पामी प्रथम घाली कमेनो नाश करी आखर सिद्धि पामे. त्रिपदी एटले पचास्ति द्रव्य सकल समय आप आपणा पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद् अने सत्तानुं ध्रुव राखवु करे ठे एटले नवे नवे समय नवि नवि परिणति करे ठे अने मूल गुणे ध्रुव रहे ठे कोई द्रव्य कोई अन्य द्रव्यना पूर्व पर्यायनो व्यय, नौतन पर्यायनो उत्पाद् अने तेनी सत्तानुं ध्रुव राखनुं करी शकतो नथी तेथी सर्वे द्रव्यनी सामान्य विशेष शक्ति साक्षात्कार जिन जणाय ठे त्यारे नवि जीवने ममता टली जाय ठे अने ममताविना राग द्वेष रहेता नथी एटले सुखे संजम साधी सिद्धि पामे ठे. द्रव्य विषे जगवंते कहुं " उपनेवा, विगमेवा, ध्रुवेवा " एटला उपरथी गणधरो एक मूहूर्त्तमां द्वादशांगनी रचना करे ठे अने द्वादश अंगवने जगत्मां बोधनो विस्तार कराय ठे आपणे पण वस्तुनी त्रिपदी संजालीए तो परद्रव्यनुं ममत्व टली उपयोग आत्म शुद्धतामां धिर थाय ठे माटे त्रिपदीनो अर्थ विचारी परद्रव्यथी जिन आत्म शुद्धता जाणी आत्म शुद्धताना कामी थई सिद्धि सुख साधनुं प्रजुजीए तीर्थकर नामकर्मना उदयवके जवि जीवने तारवा त्रिपदी प्ररुपी तो आपणे तेमनो परम उपकार सन्मानी तेमनी आणा समय मात्र पण न चूकतां सेववी त्रिपदीनो पूर्ण जावार्थ तो केवली पोताना केवलज्ञानमां जाणे ठे अने आदेश

वगे श्रुतज्ञानी पण पूर्ण जावार्थ श्रद्धा गोचर जाणे ठे अने डव्य थकी डष्टिवाद अगमा कह्या प्रमाणे अर्थ ठे पण अहिआं. संक्षेपथी लखीए त्रिये के पंचास्ति डव्यना प्रति प्रदेशे स्वस्व कार्य करवाना करण रुपे अस्तिपणे ठति पर्याय तीरोजावे ( गुप्तपणे ) अनंता अनता, ठे जेम जीव डव्यना असरघाता प्रदेश ठे ते दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवाना ठति पर्याय अनंता, देखवा रूप कार्य करवाना ठति पर्याय अनंता, आचरण रमण रूप कार्य करवाना ठति पर्याय अनंता, वीर्य अचल राखवा रूप कार्य करवाना ठति पर्याय अनता तेम दान देवा रूप, लाज लेवा रूप, जोग उपजोग जोगववा रूप सुख आनदादि अनंत कार्य धर्मना ठति पर्यायो प्रति प्रदेशे अनंता अनता अस्तिपणे ठे ते ठति पर्यायोमाथी समय पामीने अनंता पर्यायो स्वकार्य करवाने आवीर्जावे उपजे अने प्रथम समय जे पर्यायो आवीर्जावे आवेला होय ते आवीर्जावथी विणसी तीरोजावे जाय अने तीरोजावे रहेला पर्यायोमांथी केटला आवीर्जावे उपजी कार्य करे. उक्तच “ उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्तं सत् लक्षणं डव्यं ” एटले नवा पर्यायनु जवन अने पूर्व पर्यायना व्यय विना कोई पण कार्य थई शकतुं नथो उत्पाद् व्यय थई कार्यनु करवुं एज डव्यनी सत्ता ठे पण पर पर्यायनु जवन, व्यय कोई अन्य डव्य करी शकतो नथी एम जाण्या पठी आपणुं कार्य पर डव्यमां जासे नहि तो पर डव्य उपर राग रोप पण रहे नहि, ए उत्पाद् व्यय खद् गुणी हाणीवृद्धिपणे थाय ठे ते बीजा ग्रथोथी जाणी लेजो त्रिपदी वडेज अनत डव्यना अनंत पर्यायना प्रमेयनो बोध थाय ठे मोटे परम उपकारी प्रजुजीए त्रिपदी प्ररूपी ए समान बीजो उपकार नथो ॥ १ ॥

जगमा डव्य अनत, उत्पती व्यय ध्रुव रहे हो लाल  
उत्त ॥ जे जे जेहना ते तेहना, तेह माही लहे हो लाल

तेह ० ॥ जाणी जेदे विज्ञाव, अनंतने जे नरा हो लाल  
अनंत ० ॥ पामे पूर्णानंद, आत्म संपत्ति धरा हो लाल  
आत्म ० ॥ २ ॥

अर्थः—जगत्मां एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश, अनंता  
जीव तथा अनंत पुद्गल ए पंच प्रकारे अनंत अस्ति द्रव्ये अने काल  
ते पंचास्तिनो वर्तना पर्याय रूप अनंत द्रव्य उपचारथी ठे अने धर्मा-  
स्ति कायादि पंचे अस्ति द्रव्य सर्वे समय आप आपणा उत्पाद् व्यय  
ध्रुव सहित रहे ठे.

जेना अंदर उत्पाद् व्यय ध्रुव समकाले होय तेने सत्य द्रव्य कहीए.  
पोत पोतानु उत्पाद् व्यय ध्रुवपणु पोतामां सकल समय रहे पण ए उत्पाद्  
व्यय ध्रुवपणुं कोई समय अन्य द्रव्यमा जाय आवे नहि एम जेनो उत्पाद्  
व्यय तेनो तेनामां समकित द्रष्टि जाणे. कोई द्रव्यनो उत्पाद् व्यय  
अने ध्रुवपणुं कोई अन्य द्रव्यमां जतुं आवतुं नथी एम जाणी सम-  
कित्ती जीव अनंत विज्ञाव जेदे ते पुरुष केवलज्ञानादि आत्म संप-  
दानी धरा के० सत्ताचूमिने जाणी पूर्णानंद पामे ॥ २ ॥

उत्पत्ति व्यय ध्रुव धर्म, अनंता द्रव्यना हो लाल अनंता ० ॥  
लखे त्रिकालीक ज्ञाव, टले मति जर्मना हो लाल टले ० ॥  
इविध लह्यो उत्पाद् प्रयोगज विश्रसा हो लाल प्रयोगज ० ॥  
गइ ममता तस दूर, लही आत्म रसा हो लाल लही ० ॥ ३

अर्थः—जे जीव पंचास्ति द्रव्यना उत्पत्ति व्यय अने ध्रुव धर्म  
जाणे तेणे अनंता द्रव्यना त्रिकालीक ज्ञाव जाण्या अने तेने कोई  
प्रकारनी मिथ्या ज्ञाव रूप मतिजर्मना रहे नहि. प्रयोगसा अने  
विश्रसा एम वे प्रकारे उत्पाद् व्यय ठे जीव-प्रयोगे पुद्गलोमां जे जे  
उत्पाद् व्यय थाय ते प्रयोगसा उत्पाद् व्यय कहीए अने पंचास्तिमां

स्वयं स्वज्ञावे जे जे उत्पाद् व्यय थाय ते विश्रसा उत्पाद् व्यय कहिए जे जीवने पर उत्पाद् व्ययनी ममता गइ ते ज्ञान दर्शन चरणादि अतत स्वगुणनु स्थानक एवी आत्म शुद्धता चूमि पाम्यो, पामे ठे अने पामशे ॥ ३ ॥

उत्पत्ति व्यय ध्रुव शक्ति, सर्वमा सहु समे हो लाल सर्वमा ॥ जे जन जाणे शुद्ध, मिथ्यामती ते वमे हो लाल मिथ्या ० ॥ अस्तिपणे ठे पच, ज्व्य जग शाश्वता हो लाल ज्व्य ० ॥ निज निज धर्मे अस्ति, रहे पर नास्तिता हो लाल रहे ० ॥ ४ ॥

अर्थ—सवे ज्व्यमा उत्पत्ति व्यय ध्रुव शक्ति सकल समय ठे एम जे शुद्ध रीते नि शकपणे जाणे अने जे जेनी ते तेनामा माने तेने मिथ्यामति रहे नहि अने परिणामथी मिथ्यात्व गया पठी सत्तामा पण रहेला मिथ्यातनां दलीआ ते पण क्षय जाय जगत्मां पचास्ति ज्व्य स्वज्व्य क्षेत्र काल जाव अस्तिपणे शाश्वता ठे तेमा पर ज्व्यादिक रूपे न थवानो स्वज्ञाव पण अस्तिपणे ठे तेने नास्ति स्वज्ञाव कहीए एटले स्वधर्मे ठता रहे पण परधर्म रूपे थाय नहि ए ज्व्यनुं अस्तिपणुं ते प्रथम सामान्य स्वज्ञाव जाणवो ॥ ४ ॥

निज निज वस्तु स्वज्ञाव, न ठेमे को कदा हो लाल न ठेमे ० ॥  
दवे निज पर्याय, रुके नहि को कदा हो लाल रुके ० ॥  
सहज प्रमेय प्रमाण, सदा सहु परिणामे हो लाल सदा ० ॥  
अगुरुलघु परजाय, स्वकार्यमा सहु समे हो लाल स्वकार्यमा ० ॥ ५ ॥

अर्थ—(१) सर्वे ज्व्य आप आपणो वस्तु स्वज्ञाव कोई पण कदापी ठोडे नहि ते वस्तुत्व कहीए

(३) ज्व्य माही जनक स्वज्ञाव ठे ते सकल समय ठती

पर्यायोने सामर्थ्यपणे उपजावे अने सामर्थ्य पर्यायने पोतामांज तीरो-  
जावे दर्वे ( समावे ) एम ठती अने सामर्थ्य वे जेदेपर्यायनी उत्पत्ति  
व्यय प्रवृत्ति कोई समय पण कोई रीते रोकाय नहि ते ड्रव्यत्व  
स्वजाव कहीए

( ४ ) ड्रव्यना सर्वे स्वजावो सर्वे समय आप आपणा प्रमेय  
प्रमाणे परिणमे ठे कोई ड्रव्यनो एक स्वगुण ते वीजा स्वगुणनुं कार्य  
करे नहि अने पर ड्रव्यना कोई गुणनुं कार्य पण करे नहि ने स्वकार्य  
विना कोई समये खाली पण रहे नहि आप आपणी मर्यादा मूके  
नहि तेथीज सकल ड्रव्य गुण पर्यायनुं प्रमाण ज्ञान वडे करी शकाय  
ठे ए प्रमेयत्व स्वजाव जाणवो

( ५ ) गुणोना ठती पर्यायो प्रदेशे प्रदेशे अनंता अनंता ठे ते खट्ट  
गुण हाणीवृद्धि पणे आवीर्जावे तीरोजावे सर्वे प्रदेशे सर्वे समय  
थयां करे ठे तेथी कोई ड्रव्य हलको अगार जारे थाय नहि एहवो,  
अगुरुलघुत्व स्वजाव जाणवो.

विगमे पुरव प्रजाय, नऊतन उपजे हो लाल नऊतन ॥  
पण ध्रुव शक्ति सदाय, सत्त्व लक्षण जजे हो लाल सत्त्व ॥

ए सामान्य स्वजाव, ते जेहना तेहमां हो लाल ते जेहना ॥ वलि  
विशेष स्वजाव, ते जेहना जेहमां हो लाल ते जेहना ॥ ६

अर्थ—(६) पूर्व पर्याय विणसतां अने नवा पर्याय उपजता ड्रव्य आप  
आपणुं कार्य करता ठतां पण सत्ताने ठोमतो नथी ते सत्त्व लक्षण ठे.  
यत—“ अर्थ क्रिया कारित्व ड्रव्यं ” जो ड्रव्य सर्वे समय आप  
आपणुं कार्य न करे तो सत्त्व लक्षण केम रहे ?

एम सर्वे ड्रव्यना ठ मूल सामान्य स्वजाव तथा उत्तर सामान्य  
स्वजाव तथा अनंत विशेष स्वजाव जे जेना ते तेनामां जाणवा  
मानवा. कोई ड्रव्यनो सामान्य अथवा विशेष स्वजाव कोई अन्य



ए२ श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

द्रव्यमा जाय आवे नहि एम जाणवाथी निर्विकल्प बोध प्रगट  
थाय ठे ॥ ६ ॥

लक्षण लक्ष्य अज्ञेद, त्रिकालपणे रहे हो लाल त्रिकाल ०  
॥ एम जाणी नर बुधने ममता नवि रहे हो लाल ने  
ममता ० ॥ आत्म ज्ञान विण ममत, ममतथी मिथ्यात ठे हो  
लाल ममतथी ० ॥ एहथी अविरति होय, प्रमाद कषाय ठे हो  
लाल प्रमाद ० ॥ ७ ॥

अर्थ.—सद्व्य के० द्रव्य अने तेना अनत पर्याय रूप लक्षणो ते  
द्रव्यथी त्रिकाले अज्ञेदपणे होय एम जे पडित जाणे तेने परद्रव्य  
गुण पर्यायनी ममता रहे नहि एटले तेने परद्रव्यादिनो राग व्यतीत  
थाय ज्यासुधी आत्म शुभतानु ज्ञान नथी त्यासुधी परद्रव्यादिनी  
ममता रहे अने ममता होय त्यासुधी मिथ्यात्व रहे अने तेथी  
अविरति प्रमाद कषायादि दोषो उपजे ज्यारे आत्म शुरुतानुं ज्ञान  
थाय त्यारे ममता अने मिथ्यात्व टले त्यार पठी अविरति प्रमाद  
कषायादि सर्वे दोषो नाश पामे माटे आत्म सिद्धतानु मूल आत्म  
शुरुतानु ज्ञान ठे ए विना एकाते साध्य शून्य क्रिया विटवना  
रूप छे ॥ ७ ॥

जोग चपलता करि निज, वीरज चल करे हो लालके वीरज  
० ॥ वधे आठे कर्म, गहन जव वन फरे हो लाल गहन ० ॥  
वाल बाधक अयु वीर्य, साभकता नवि लही हो लाल  
साधकता ० ॥ शिवकर देव हृदयमां, करुणा लह लही हो  
लालके करुणा ० ॥ ८ ॥

अर्थ—अविरति प्रमाद कषायादिके जोग चपलता थाय ठे अने  
जोग चपलता वगे आत्मगीर्घ पण बलायमान थई ज्ञानावरणादि

आठे कर्मनो बंध करी जीव ग्हेरा जव वनमां फरतो स्वतंत्रता विना असह्य दुःख जोगवे ठे उक्तंच-जगवई अंगे “चलई फंदई” आत्म शुद्धतानुं पूर्ण ज्ञान थयापठी जीवने परद्वयनी स्पृहा इच्छा कामना मनोरथ यतो नथी माटे त्रणे योग पूर्ण धिरता पामे ठे आत्मवीर्य अचल थाय ठे जे जे अशे आत्मवीर्यनुं चलपणुं ते ते अशे कर्मबंध ठे जे जे अंशे आत्मवीर्यनुं अचलपणुं थयु ते ते अंशे पूर्व कर्मबंध विलय जाय अने नविन बंध करे नहि, आत्मवीर्यनी पूर्ण स्थिगता वडे पूर्ण सिद्धि प्राप्त थाय माटे शुद्धात्म ज्ञानमां लयलीन थवुं एज श्रेय ठे कोई कहेशे के हुं आत्मज्ञानी तुं पण ते राग द्वेषमा वर्ततो होय तो तेने पूर्ण आत्मज्ञानी जाणवो नहि पण जे जे अंशे राग गयो ते ते अशे आत्मशुद्धता प्रगट थाय ठे अने तेतलुज आत्मज्ञान जाणवुं अने ज्या आत्मशुद्धता पूर्ण प्रगट थई त्यां रागनो अश मात्र रहेतो नथी. पूर्ण द्वायक वितरागता प्रगट थई एटले मोहनीय कर्मनो नाश थयो अने बारमा गुणगणाना ठेवला वे समयमां ज्ञानावरण दर्शना-वरण अने अंतरायनो नाश थाय ठे अने बाकीनां चार अघातीकर्म रहां ते स्थितिए नाश थाय ठे एम जीवने परमानंद प्राप्त थाय ठे माटे ज्ञाने करी आत्मशुद्धता धधारवी एज मोक्ष मार्ग ठे. आत्माना ज्ञान दर्शन चरणादि आत्माथी अज्ञेदपणे रहेला गुणोने निर्मल करवा ते आत्म शुद्धता कहीए अने तेज मोक्षमार्ग ठे. जे जे अंशथी राग द्वेषनी उपाधि गई ते ते अंशे ज्ञान दर्शन चरणरूप आत्मगुणना अंशो प्रगट थया एम जाणवुं आत्मज्ञान विना परद्वयनी ममताए आत्मवीर्य वाल बाधकजावने पास्यु करणवीर्यपणे प्रवर्त्यु साधकता जाणी नहि अने साध्य जाणयो नहि. साध्य जाण्या विना शु साधे? साधकता जाण्या विना केवी रीते साधना करे? मात्र साध्य शून्य क्रिया करी शुजाशुज परिणामे जव ज्रमण करे. एम जाणी शिवकर

९४ श्री महोपाध्याय देवचन्द्रजी कृत अतित स्तवन चोविशी.

देवना हृदयमा करुणारस उचरायो तेथी जविजीवोने तारवा अर्थे  
त्रिपदी प्ररूपी ॥ ७ ॥

शुरू अखंफित धार, अमृत घन वरसता हो लाल अमृत ० ॥

प्रचुजी मेघ समान, जव्य जग दरसता हो लाल जव्य ० ॥

पूजो श्री प्रचु अग, सुरंगे ऊमही हो लाल सुरंगे ० ॥

दरशन ज्ञान चारित्र, सवीर्य मयी सही हो लाल सवीर्य ० ॥ ए

अर्थ—मेघरूप प्रचुजी शुरू स्याद्वादनी देशनारूप अखंम अमृत  
तघन धारा वरसावता जवि जीवोना अज्ञान मिथ्यात्व कपायादि  
जवदव ताप समावता शुरूत्म जावमा थिरता करावता जवि सम-  
कृतीनी इष्टिमा अमृत मेघ सरखा देखाय ठे प्रचुजीनु अग पूजो  
एटखे ज्ञान दर्शन चरण वीर्यादि अनत शुरू गुणमय प्रचुजीना  
अरूपी अंगने परम आदरे मनने सुरंगे ए सम शुरू ध्येय जाणी  
आनद सहिन पूजो तथा देशनानुं कारण एहवा प्रचुजीना औदा-  
रिक अग—(१) चरणागुष्ट (२) जानु (३) कर (४) नूजाखध (५) शिर (६)  
जाख स्थल (७) कंठ (८) हृदय (९) नाचि एम नव मुख्य तथा  
ते सिगाय नयण वदनादिक प्रचुनां सर्वे अग सुगधी इव्ये पूजवा  
सायक ठे एम जाणवु ए अंगवमेज देश विदेश फरी शुक्लध्यान  
करी केवलज्ञान उपजावी आपणने शुरू साध्यनी देशना आपे ठे  
माटे प्रचुना सर्वे अग बहु सन्माने बहु विधे पूजवा सायक ठे ॥ ए ॥

जाणे त्रीपदी शुरू ते ध्यान शुक्ल लहे हो लाल ते ० ॥

धाती करम ह्य जाय अनत चतुक लहे हो लाल अनंत ० ॥

ए विण धर्म न शुक्ल लहे नहि नर कदा हो लाल लहे ० ॥

ते माटे लहि त्रीपदी सुशिव साधो मुदा हो लाख सु ० ॥ १० ॥

अर्थ—जे जवि शुरू रीते त्रिपदीना जाव जाणे तेज शुक्लध्यान

पामे अने शुक्लध्याननो बीजो पायो ध्याता चारे घनघाती कर्मनो नाश करे अने अनत चतुष्क पामे. एम ड्रव्यना उत्पाद् व्यय ध्रुवादि त्रिपदीना जाव जाण्याविना जीव धर्मध्यान अने शुक्लध्यान कदापी पामे नहि ते माटे सिद्धांतमाथी त्रिपदीना मुख्य जाव जाणी सदाए आनंद सहित कर्मथकी मूकावा रूप क्को मोक्षमार्ग साधवो ॥ १० ॥

अंग पूजा करि एम, आणा आराधीए हो लाल आणा० ॥  
 लहि निज शुद्ध स्वरूप, मोक्षमग साधीए होलाल मोक्ष० ॥  
 महागोप महामाहण, शिव सथ्यवाद् ठो हो लाल शिव० ॥  
 निर्यामिकमहावैद्य, परम जग नाद् ठो हो लाल परम० ॥ २१ ॥

अर्थ.—उपर प्रमाणे जिनेश्वरना दुविध अंगनी विविध प्रकारे पूजा सन्मान करी आज्ञा आराधीए अने पोतानुं शुद्धात्म स्वरूप जाणी पुरुषार्थ पराक्रम करी वीर्य अचल राखी मोक्षमार्ग साधीए हे प्रजुजी ! तमे जवि जीव रूपी गायोने सम्यक्त बोधरूपसंजीवनी चारो चरावी आत्म जीवनमां सचेत करी निर्विघ्नपणे मुक्ति रूप नगरे पहुँचावो ठो माटे महागोप ठो वली तमे खट्कायाना जीवोने कोईपण जीव कोई प्रकारे हाणी करे नहि अने तेमना ड्रव्य प्राण तथा जाव प्राणनुं रखोपुं करे एहवो माहणतानो उपदेश करो ठो अने गणधर आचार्यादि मारफते पण माहणताना उपदेशनी प्रेरणा करावो ठो माटे तमे पोतेज महामाहण ठो वली तमे उपद्रव रहित शिव स्थानके पहुँचाववा माटे शिवमार्ग के० मार्गमां क्रोध मोहादिक घोरटा कांई हरकत करी शके नहि अने कुगुरु आदि दुष्ट जनो उन्मार्गमा पाकी शके नहि एहवा उपद्रव रहित मार्गे स्याद्वादमय शुरुनये शुद्धात्म स्वरूप जणावी निर्विघ्नपणे लई जाउं ठो माटे मोक्ष नगरना सार्थवाह ठो वली तमे ज्यां राग द्वेष मिथ्यात्व अज्ञान रूप

खारं कन्युं जेरी जल जरेलुं ठे अने कपायो रूप श्वापदोनु चारे  
 जोर ठे तथा ज्या अथाह विकल्पोना कदलोको उठली रहा ठे तथा  
 ज्या काम बनवानल लागी रह्यो ठे एहवा जब दरियामां बूनेला  
 जीवोने शुद्ध संजम जहाजमा लई आत्म सत्ताथल आनंदपुरी नग-  
 रीमां पढोचानो ठो माटे निर्यामक ठो वली जगवासी जीवोने लागेला  
 अज्ञान मिथ्यात्व अचिरति आदि दु साध्य रागोने नाश करवा ज्ञान  
 दर्शन चरण रमण मिश्रित उदसिन्नता रूप मृगांक पुकीनु सेवन  
 करावी उतावळे ते रोगोने मटावो ठे माटे अमोघ परमवैद्य ठो वली  
 अशरण अनाथ जन्मार्गे परेला एहवा जगवासी जीवोने सारण  
 वारण चोयणा पडिचोयणा करी करावी निर्जेय सुख स्थानमा लावो  
 ठो माटे तमे जगत्ना नाथ ठो ॥ ११ ॥

चरण वदन कर नयण, परम जिनराजनां हो लाल परम ० १ ॥  
 जवि जनने होय साज, आतम सुख काजमां हो लाल आतम ० ॥  
 नाथ कृपाल विशाल, महा शुद्ध बोधथी हो लाल महा ० ॥  
 जवि जन पामे सिद्धि, तत्त्व निज शोधथी हो लाल तत्त्व ० १ ॥

अर्थ - प्रजुजी तमारा परम चरणवडे देश विदेश विहार करी जविजी-  
 वोने सम्यक्ज्ञान चारित्र रूप फल आपो ठो तेथी तमे जगम कल्पवृक्ष  
 समान ठो वली तमे तमारा वदन कमल वडे द्वादशांगनी देशना आपी शुद्ध  
 साध्य साधन वतावी उपकार करो ठो वली तमारा परम कर कमले करी  
 दिक्षा शिक्षा आपी उपकार करो ठो वली तमारा परम नयण कमल  
 वने जवि जीवो उपर अमृतमय द्रष्टि देखी जविजीवोनी द्रष्टि  
 शुद्धात्म सन्मूल करावो ठो एम तमारां सर्वे अंग अने सर्वे पुण्य  
 अतिशय जविजीवोने परम उपकार परम समाधिना कारण ठे  
 वली तमारा अतरंग आत्मिक गुणो अने अगमा रहेला पुण्य  
 अतिशयना गुणो आगल मणिमय मुगट कुंडलादिकनी शोचानुं

तो हमें शुं वखाण करीए ? मणि रत्न आदिना मुगट कुंडलादि  
आचूषणो तो ससारी विषयो चक्रवर्ती ईडादि घणा पेहेरे ठे तो  
एहवा अजीव अने अथिर पदार्थनी शी शोचा ? एटले तमारा  
अंतरंग अने बाह्य सर्वे उत्तम लक्षणो ऋविजीवोने आत्म सुख  
काजमां पुष्ट सहायकारी कारणो ठे. नाथनुं महाविशाल कृपालपणुं  
शुरू बोधथी हमने जणाय ठे पण जे ऋवि जीव तमारा परम शुरू  
बोधने अति सन्माने-आदरे अने तन्मय थई आत्म तत्त्वनी शुरूता  
करे ते सिद्धि पामे ॥ १२ ॥

पामे आत्म ज्ञान दोष दुःख सहु टले हो लाल दोष ॥

सीझे आत्म काज अचल कमला मले हो लाल अचल ॥

पूज्यनी पूजा आपे शिवधर वासने हो लालके शिव ॥

देवचंद्रमूनि मनसुख सहज विलासने हो लालके सहज ॥ १३

अर्थ:-तमारी आज्ञा सेवी जे जीव आत्म बोध पामे तेना सर्वे  
दोषो अने दुःखो टले अने आत्म कार्य सिद्धि थाय वली केवल-  
ज्ञानादि अक्षय अचल लक्ष्मी मले एहवा त्रिजुवन पूज्य शिवकर  
स्वामिनी सेवा शिवधर वास आपवावाली ठे देवमा चंद्रमा समान  
शिवकर स्वामी मुनिर्तना राजाने मनसुख उमंगे करी सेवतां सहज  
आत्मिक विलास पामे ॥ १३ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोविंशतिम श्री स्यंदन जिन स्तवन ॥

॥ शांति जिनेश्वर केसर अर्चित जग धणीरे अ० ॥ ए देशी ॥

स्यंदन जिनवर परम दयाल कृपालुओरे ॥ जग सोहन  
ऋवि बोहन देव मयालुओरे ॥ दे० ॥ ए आंकणी ॥ परपद  
ग्रहणे जगजन बांधे कर्मनेरे, अथिर पदारथ ध्यातां किम लहे

ધર્મનેરે કિ૦ ॥ જનચલ જગની ઇઠ ઠે પુદ્ગલ પરિણતિરે,  
ધ્યાતાં વીરજ કંપે આપ લહે ન સગુણ રતીરે ॥ લહે૦ ॥૨॥

અર્થ - ગત ચોવિશીના તેવિશમ્મ તીર્થકર શ્રી સ્યંદન જિનેશ્વર પરમદયાલ અને પરમકૃપાલ ઠે. જગત્મા જે જે લોકો શુદ્ધમાર્ગના અજાણ દયા અને કૃપા કરે ઠે તેદયા થોડા દિનને માટે અને આખર આયુ પર્યંત કોઈકને બાહ્ય હિતકારી પણ થઈ શકે ઠે પણ આખરે તે દયાનુ હિત વિણસી જાય ઠે કેમકે પુદ્ગલીક દયા અધિર ઠે અને ઇકાતિક સુખનુ કારણ નથી વલી તે પુદ્ગલીક સુખ જય કરેલુ ઠે અને સ્યંદન સ્વામીની દયાથી જે આત્મિક ગુણો અને આત્મિક સ્વતંત્ર સુખ પ્રગટ થાય તે તો સાદિઅનતકાલસુધી નિર્જય નિરાકુલ અચલ પરમ સ્વતંત્ર સુખનુ કારણ ઠે માટે પ્રત્નુ પરમ કૃપાલ ઠે પ્રત્નુજી ત્રણે જગત્મા શોજા પામેલા ઠે કે પાતાલ મનુષ્ય અને સ્વર્ગોમા જુવનપતિઓ મનુષ્યો વ્યત્તરો વિદ્યાધરો ગણધરો મુનિઝં વૈમાનિકો અને નરનારીઝના થોક જેના ગુણોની સ્તવના શોજા હમેશા કસ્યા કરે ઠે જીવિજીવોને શુદ્ધ વોધના દાતાર ઠે, કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શને કરો દેદિપ્યમાન દેવ સર્વે જીવોના સેદઙ્ગ પરમ મયાજુ ઠે સસારી જીવો પુદ્ગલ ગુણ પર્યાયરૂપ પરપદ ગ્રહણ કરવાથી ઇટલે પરિગ્રહ વશે કર્મ વાંધે ઠે તે પરિગ્રહ તો નિશ્ચયથી પરવસ્તુને અહપણે ગ્રહવુ તે ઇક અન્નેદપણે જાણવો અને વ્યવહારથી બાહ્ય પરિગ્રહ નવવિધે તથા અતર પરિગ્રહ ચૌદ વિધે ઠે પુદ્ગલિક અધિર પદાર્થને ધ્યાતાં ચિત્ત ચિરતા પામતું નથી અને ચલચિત્તવાલો, સુધિર આત્મિક ધર્મને પામી શકતો નથી પુદ્ગલ પરિણતિ પોતે જનુ ઇટલે અચેતન ઠે અને ચલકે૦ ડરકૃષ્ટિ અસંપ્યાત સમપથી વધારે સ્થિતિવાલી નથી વલી અનતા જીવો ઇ અનંતા પુદ્ગલ ડ્રવ્યને અનંતો વાર લીધા અને વિષ્ટા મૂત્ર રસ રુધિર માસ મેદ અસ્થિ મજ્જા વીર્યાદિકપણે પરિણમાલ્યા અને વારવાર મૃતકપણે ઠે

ड्या तो एवी अथिर परिणतिना पाठल जे जीवो लाग्या ते केम थि-  
रता पामे ? अने तेनुं मन वचन काया निवृत्ति पामे नहि तो ते आ-  
त्मधर्म अने ते धर्मनुं निवृत्तिरूप सुख केम पामे ? एवी अथिर पुद्-  
गल परिणति पाठल जे लागे तेनुं वीर्य कंपायमान थाय अने शुद्धा-  
त्म गुणमां रति थिरता समाधि पामे नहि ॥ १ ॥

निरमल दर्शन ज्ञान चरणमय आतमारे ॥ निजपद रमणे  
प्रगटे पद परमातमारे ॥ पद० ॥ मोहादिकमां तद्धीन तन्मय  
ते कह्योरे ॥ शुद्ध ब्रह्ममां तद्धीन तिण शिवपद लह्योरे  
॥ तिण० ॥ २ ॥

अर्थ:-जो आत्मा पुद्गल ड्रव्यनी ममता ठोकी पोतानुं स्वरूप जूवे  
तो निर्मल ज्ञान दर्शन चरणमय पोतेज ठे, एम जाणी पररमण ठोकी  
शुद्ध स्वरूप रमण करे तो पोतानुं परमात्मपद प्रगट थाय. जे जीव  
मोहादिक जे जे विज्ञाव अगर स्वज्ञावमा जे समय तद्धीन ठे ते स-  
मय तन्मयके० ते मय तेने कहीए जेम क्रोधमां तद्धीन थएलो क्रोध-  
मय कहीए, काममा तद्धीन थएलो कामी-काममय कहीए अने  
शुद्ध धर्ममा तद्धीन थएलो शुद्ध धर्ममय कहीए यत्.-“परिणमदि  
जेण दध, तक्रालं तम्मयत्ति पप्पत्त, तह्मा धम्मं परिणदो, आ-  
दा धम्मो मुणोयध्वे ” ते माटे शुद्धात्म ब्रह्म स्वरूपमां तद्धीन  
थएलो आत्मा शुद्ध ब्रह्मरूप थाय एटले तेज आत्मा शिवपद  
पाम्यो कहीए ॥ २ ॥

पुद्गल परिणति जिन आत्मथी जे सदारे ॥ गोमी तास  
विकल्प रहो निजगुण मुदारे ॥ रहो० ॥ तप संजम मय  
सहज ज्ञाव निज ध्याईए रे ॥ निर्मल ज्ञानानंद परम पद  
पाईए रे परम० ॥ ३ ॥



अर्थ.—पुद्गल परिणति सर्वे काले आत्माथी चिन्नज ठे आत्मानां  
अने पुद्गल परिणतिनां चिन्न लक्षण जाणी पुद्गल परिणति  
सर्वधीनो शुजाशुच विकल्प तथा तेना शुजाशुचपणाना आलाप  
तथा ते अर्थे शुजाशुच क्रिया ठोनी निजात्म गुणमाहे प्रमोदित  
रहो आत्मा निर्मल निज स्वरूप जाणी पुद्गल ममता ठोडे तो  
पुद्गल जोगोनी ईच्छा न थाय अने पोताना ज्ञान दर्शन चरणमय  
स्वरूपमा तृप्त रहे तो ते आत्मा तप रूपज ठे अने पोताना शुरु  
म्यरूपने सदा अखंड उपयोगमा राखे तो आत्मा पोतेज सजम रूप  
ठे एहवो तप संजममय उपाधि रहित आत्मिक सहज जाव अखंड  
समय ध्याईए तेथी निर्मल ज्ञानानंदमय पोतानुं स्वतंत्र परम पद  
पामीए ॥ ३ ॥

स्याद्वादमय शुरु प्रभु मुख देशनारे ॥ सन्माने ते करे  
विज्ञाव प्रवेश ना रे ॥ विज्ञाव० ॥ जिनवाणी सन्मान विना  
जव वास ठे रे ॥ पर परिणति सन्मान कर्म अरु पास  
ठे रे ॥ कर्म० ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रभु मुखनी स्याद्वादमय शुरु देशना ठे के जेथी शुरु  
साध्य अने साधना साक्षात्कार जणाई शके ठे ते आज्ञाने जे जवि  
बहु सन्माने आदरे ते वर्णादि रागादि विज्ञावमां प्रवेश करे नहि  
ज्यामुधी जिन वचननुं सन्मान आव्युं नथी त्यासुधी छु ले जरेखो  
जववास कायम ठे अने परपरिणति सन्माने एटले परग्रहणेज आठे  
कर्मनो पास ठे ॥ ४ ॥

आत्म शक्ति स्वतंत्र लखो जिन वाणथीरे ॥ साधो  
शिव मग शुरु शुक्ल छढ ध्यानथीरे ॥ शुक्ल० ॥ शुरु नये  
लखि जव्यने निस्पृह अन्यथीरे ॥ समजावे निज ध्याय  
तसु जव जय नथीरे ॥ तसु० ॥ ५ ॥

अर्थः—आत्म शक्ति परतंत्र नथी पण पोते आत्म शक्ति जाणी नथी त्यांसुधो पुद्गल ममत्व वशे पोते अनंत परतंत्रता जोगवे ठे हवे अवसर मदयो माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद उपदेशथी आत्मशक्ति स्वतंत्रपणे जाणो अने शुद्ध शिवमार्ग उढ शुक्लध्याने साधो शुद्ध नये स्वपर अव्ययने जिन जाणी अन्य अव्ययथी निस्पृह थई समजावे निज शुद्धात्म पद ध्याय तेने जव जय नथी ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत पंचाचार श्री जिन वदेरे ॥ पंच समिति त्रण गुप्ति समजावे सधेरे ॥ सम० ॥ ज्ञान ध्यान किरिया साची समजावथीरे ॥ साध्य शून्य किरिया कष्टे शिवपद नथीरे ॥ कष्टे० ॥ ६ ॥

अर्थः—जिनेश्वरे पंच महाव्रत अने ज्ञानाचारादि पच विधे आचार कळो ठे तथा पंच समिति अने त्रण गुप्ति प्ररूपी ठे ते सर्वे पूर्ण समजाव अर्थे ठे अने राग द्वेष तजी समजाव राखी व्रत आचार समिति गुप्ति साधीए तोज सधाय वळी ज्ञान ध्यान अने किरिया समजाव सहित होय तोज साचां जाणवा राग द्वेष सहित जाणवु ते ज्ञान नथी, राग द्वेष सहित ध्यान ते शुद्धध्यान नथी, राग द्वेष सहित क्रिया ते उत्तम क्रिया नथी पण राग द्वेष विना समजाव सहित ज्ञान ध्यान अने क्रिया तेज साचां मोक्ष हेतु ठे, ज्ञान दर्शन चरणनुं विषमपणुं टाळी सम अने थिरपणुं साधवुं ठे एवो शुद्ध साध्य जाण्या विनानी शून्य क्रिया कष्टथी मोक्षपद नथी अने समजाव तो परग्रहण बुद्धि तजवाथी आवे माटे, परग्रहण बुद्धि तजी परद्रव्यादिथी निस्पृह थई मुक्तिगुण राखीए तोज समजाव आवे अने सकळ कार्य सिद्ध थाय एम स्यंदनजिन देवे परम उपकार बुद्धिए उपदेश्युं ते हमारा सरखा जविळ उपर तेमनो परम उपकार ठे ॥ ६ ॥

शुद्ध साध्य सापेक्ष सुनय वाणी लखोरे ॥ समजावे शु-  
 क्षातम अनुभव रस चखोरे ॥ अनुभव ० ॥ देवचंद्र प्रभु  
 वचनामृत रस पानमारे । मनसुख शिवघर वासे सुख अमान-  
 मारे ॥ सुख ० ॥ ७ ॥

अर्थ—तीर्थकरोनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए होय ठे तो परमे-  
 श्वरनी वाणी शुद्ध साध्य सापेक्षताए सुनये जाणो एटले एकांत न-  
 यनी खेंच विना हृदयमा धारो अने परडव्य उपरनो राग छेप ठोनी  
 ज्ञान दर्शन चरणादिकमां सम एटले सुधो राग छेपनी मरोक्ष अने  
 चपलता वगरनो स्थिर जाव राखी आत्म शुद्धतानो अनुभव रस  
 चाखो. आत्म शुद्धतानो स्वाद चाखवानो—रस खेवानो अज्यास वधा-  
 रवो ते अनुभव कहीए ज्यांसुधी पुद्गलीक स्वादनो अनुभव करीए  
 त्यांसुधी शुद्धात्म अनुभव आवे नहि माटे पुद्गलीक अनुभव अथिर  
 अहितकारी जाणी तजी आत्म शुद्धता रस खेवानो अनुभव अज्यास  
 करो साध्य निरपेक्षपणे जे जे वचनो होय ते तीर्थकरोना अथवा तो  
 ज्ञानीउना नथी माटे तीर्थकरोना वचन परखवा साध्य सापेक्षतानो वि-  
 चार हृदययी चूकवो नहीं देवोमां चंद्रमा समान स्यदन जिनेश्वर-  
 ना वचनामृत रस पाननी उत्तम सेवा मनसुखे आदरे ते शिवत्रियनो  
 स्वामी थाय अने तेने कोई प्रकारनी उणता रहे नहि अने अमाप  
 सुखमां शाश्वत घरवास करे ॥ ७ ॥

॥ अथ चउविंशतिम संप्रति जिन स्तवन ॥

संप्रति जिनवर पद नमी ऋवि ध्यावोरे ॥ साधो शुद्ध  
 निज साध्य परम पद पावोरे ॥ अतित समय चोवीशमा ॥  
 ॥ ४० ॥ प्रभु सम हो निरुपाध्य ॥ ५० ॥ १ ॥

अर्थः—गत चोविंशीना चोविंशमा तीर्थंकर संप्रति जिनवरना पद कमलमां नमस्कार करी हे ऋवि जीवो। तमे सिद्ध समान निज शुद्ध साध्य ध्याउं, साधना कारक प्रवृत्तिए करीने शुद्ध साध्य साधो—सिद्ध करो मन वचन काय त्रणे योग थिर करी स्वपरिणति शुद्ध साध्यमां एकत्वपणे लयलीन करी निर्मल ध्याने शुद्ध साध्य ध्याउं के जेथी शाश्वत परमात्म पद पामो एटले प्रभुजी समान उपाधिरहित थाउं।।

शुद्ध साध्य जाण्याविना ऋवि० ॥ साध्या साध्य अनेक ॥  
॥ प० ॥ आणा विण निज उंदथी ऋवि० ॥ सुख पाम्यो नहि ठेक ॥ प० ॥ १ ॥

अर्थः—शुद्ध साध्य जाण्याविना असाध्य एहवी पुद्गल परिणति जे स्त्री, पुरुष, संतान, लोही, वीर्य, हारु, मांस, धन आदि साधवाने अनेक प्रकारे श्रम कख्या मन वचन बल बुद्धि प्रवर्त्तावी पण ते पुद्गल परिणति आपणे वश थई नहि तेथी कर्म बंध करी चार गति संसार कंतारमां जम्यो दुःख सखां अने मोक्ष साधवा स्वउंदताए अने जिन वचन अजाण पुरुषोना कखा प्रमाणे घणांए क्रिया कष्ट कख्यां अने जिन मार्गमां कखा प्रमाणे पण साध्य शून्य एकांते क्रिया साधी तेथी केवल संसार सधायो अने निवृत्ति रूप साचुं सुख लेश पण पाम्यो नहि ॥ १ ॥

स्याद्वाद प्रभु वचनथी ऋवि० ॥ लहि शुद्धतम साध्य ॥  
॥ परम० ॥ शुद्ध साधना सेवतां ऋवि० ॥ नाशे सर्व उपाध ॥  
॥ परम० ॥ ३ ॥

अर्थः—प्रभुजीनां स्याद्वादमय वचन सांजली शुद्धात्म साध्य जाणी शुद्ध साधना सेवीए—साधीए तो सकल कर्म उपाधि नाशे ॥३॥  
॥ निर्मल साध्य स्वरूप ए ऋवि० ॥ मुज सत्तागत एम

॥ परम० ॥ शुद्ध ध्येयनिज जाणिने ऋवि० ॥ ध्यातां-शिवपद  
हेम ॥ परम० ॥ ४ ॥

अर्थ—जेवु प्रजुजीनु शुद्ध स्वरूप ठे तेवुज महारं निर्मल साध्य  
माहरी सत्तागते ठे ते साधि प्रगट वगकि जावमां लाववु एज  
उमेद करो पोतानो शुद्ध ध्येय जाणीने यथार्थ साधकतापणे ध्याईए  
तो हेमकुशले शिवपद पामीए ॥ ४ ॥

॥ ए विण अवर न साध्य ठे ॥ ऋ० ॥ सुखकारण जगमांदि  
॥ परम० ॥ शुद्ध ध्येय निज साधवा ॥ ऋवि० ॥ साधन शुद्ध  
उगांदि ॥ परम० ॥ ५ ॥

अर्थ—सिद्ध समान निर्मल आत्म साध्य शिवाय परम स्वतंत्र सु-  
खनुं कारण जगत्मा वीजुं काई साध्य नथी अने मोह द्रष्टिए जग-  
त्मां जे जे रुपी साध्यो जणाय ठे ते सर्वे परतत्रता अनिवृत्ति चप-  
सता सन्नयता आदि दुःखनां कारण ठे एम जाणवु निज शुद्ध ध्येय  
साधवा आत्मवीधे करीने शुद्ध साधनामां मने उच्छाह ठे अने सर्वे  
चव्यो पण एम उच्छाह उमग राखो ॥ ५ ॥

॥ रत्नत्रयी विणु साधना ॥ ऋवि० ॥ निष्फल जाण सदाय  
॥ परम० ॥ रत्नत्रयी शिव साधना ॥ ऋवि० ॥ साधि ऋवि  
शिव पाय ॥ परम० ॥ ६ ॥

अर्थ.—आत्मज्ञान आत्मदर्शन आत्म स्वजावाचरण ए' त्रणेने  
रत्नत्रय कहीए एथी त्रिन्न अन्व साधना सदाय निष्फल जाणवी  
जेम खसवाले खजोलीने सुख मानी लोधु पण एणे काई सुख सा-  
ध्यु नथी आत्माना आत्माथी अज्ञेदपणे रहेला ज्ञानदर्शनचरण  
गुणो ते अज्ञान मिथ्यात्व अने मोह वशे मखिन थएला ठे ते अनि-  
चार टाळी ज्ञानदर्शन चरण आराधी निर्मल करवा एज रत्नत्रय  
मोक्ष साधना साधि ऋविजीवो मोक्ष पामे ठे ॥ ६ ॥

शुद्धतम जाण्या विना ॥ ऋवि० ॥ परपद ममत उपाय  
॥ परम० ॥ रागादिक वश जीव ए ॥ ऋवि० ॥ कीधा अनेक  
अपाय ॥ परम० ॥ ७ ॥

अर्थ-ज्यांसुधी आत्म शुद्धता जाणो नथी त्यासुधी परपदमां  
ममत उपजे ठे तेथी राग द्वेष मोहादि वश थई जीवे पोताने अनंत  
दुःख उपजे पडवा अपाय खना कख्या ॥ ७ ॥

तुज वाणिथी में लह्या ॥ ऋवि० ॥ निज गुण डव्य प्रजाय ॥  
॥ परम० ॥ पर गुण डव्य प्रजायनुं ॥ ऋवि० ॥ ममत तजे सुख  
थाय ॥ परम० ॥ ८ ॥

अर्थ-तमारी वाणी वने पर डव्य गुण पर्यायथी चिन्न निज  
डव्य गुण पर्याय जाण्या तेथी जाणुं तुंके पर डव्य गुण पर्यायनुं  
ममत तजवाथीज सर्वे दुष्ट अपायो नाश थई स्वतंत्र सुख प्रगट थशे ॥ ८

जाण्युं आत्म स्वरूप में ॥ ऋवि० ॥ वलि कीधुं निरधार ॥  
॥ परम० ॥ चरणे निज गुण रमणमां ॥ ऋवि० ॥ तजि पररमण  
प्रचार ॥ परम० ॥ ९ ॥

अर्थ-में आत्मस्वरूप जाण्युं अने सिद्धांत, नयो, प्रमाणो अने  
साहरी बुद्धिवने निरधार कखुं हवे पर रमणनो चालो तजी शुद्ध स्व-  
ज्ञावाचरणे निज गुण रमण करुं ए साहरी इच्छा ठे ॥ ९ ॥

धीर वीर निज वीर्यने ॥ ऋवि० ॥ राखी अचल गुण ठाम  
परम० ॥ परसंगे चल नवि करुं ॥ ऋवि० ॥ नहि परथी निज  
काम ॥ परम० ॥ १० ॥

अर्थ-धीर वीर थई निजात्म वीर्यने स्वस्वज्ञावमां स्थिर राखी  
एटले ज्ञान दर्शनादि निज गुण स्थानकमां वीर्य अचलपणे राखी  
पुद्गलादि परसंगे वीर्य चलायमान करुं नही केमके साहरे परडव्य-

थी काई काम नथी हे मोक्षाजिखाषी जव्यो ! तमे सर्वे एज प्रमाणे शुरू साध्य साधो. धीर पुरुषोनो एज मार्ग ठे विषय कषायादिके धैर्य राखी शकता नथी ते शिवमार्ग शी रीते साधी शके ? माटे वीर्य अचल राखवु एज श्रेय ठे ॥ १० ॥

पुद्गल खल संगे कखुं ॥ जवि० ॥ आत्म वीर्य चल रूप ॥ परम० ॥ जरु संगे ड खीळं थयो ॥ जवि० ॥ थइ वेठो जड नूप ॥ परम० ॥ ११ ॥

अर्थ.—जीवोए अचेतन जड एहवा खल पुद्गल संगे आत्म वीर्य चल कखुं तेथी जरु पुद्गलोमां मली जडतावत् जड थई वेठो तेथी थन अधिकारी ठता जरु पदार्थोनो अधिकारी—नूप राजा थई वेठो तेथी महान् ड खीळं थयो ॥ ११ ॥

दरशन ज्ञान चरण सदा ॥ जवि० ॥ आराधो तजि दोष ॥ परम० ॥ आत्म शुद्ध अजेदथी ॥ जवि० ॥ लहिये गुण गण पोष ॥ परम० ॥ १२ ॥

अर्थ.—दरशन ज्ञान अने चारित्रने ए त्रणेना आठ आठ दोष अने प्रमाद तजी सदा आराधो आत्मअंगना अने आत्मगुणनाव्यवहारथी ज्ञान दर्शन चारित्र एहवा मुख्य त्रण जेद ठे अने निश्चयथी आत्म रत्नत्रयथी अजेदपणे एकज ठे एम त्रणे गुणो आत्मार्थी अजेदपणे ध्याईए तोज निर्विकल्प ध्यान अने अनंत निर्मल गुणोनो पुष्ट आनंद आवे ॥ १२ ॥

दरशन ज्ञान विराधना ॥ जवि० ॥ तेहिज जव जय मूल ॥ परम० ॥ निज शुद्ध गुण आराधना ॥ जवि० ॥ ए शीव पद अनुकूल ॥ परम० ॥ १३ ॥

अर्थ.—दरशन ज्ञान चरणमय आत्मगुण विराधना तेज कर्मबंधनुं

कारण अने जव जयनु मूल ठे, आत्माथी प्रतिकूल ठे, पूर्वापर हित-  
कारी नथी अने दरशन ज्ञान चरण आदि शुद्धात्म गुणनुं आराधनुं  
एज शिवमार्ग अनुकूल ठे तो मुख्य ए जाव हृदयमां धारो, एज  
साध्य जाणी एनी प्रशस्तताए क्रिया आदरवी अने ए साध्यथी अप्र-  
शस्त पणे जे क्रिया होय ते तजवी ॥ २३ ॥

शुद्ध स्फटिक सम साध्य निज ॥ जवि० ॥ साधे राग  
रहित ॥ परम० ॥ साध्य अपेक्षा विणु क्रिया ॥ जवि० ॥  
कष्ट कखे नहि हित ॥ परम० ॥ २४ ॥

अर्थः—शुद्ध स्फटिक मणि समान सत्तागते रहेलो शुद्धात्म स्वजाव  
साध्य ठे अने रागादिके थपली अशुद्धता वडे दवी जे आत्म शुद्धता  
ते रागादिक अशुद्धता जेम जेम तजीए तेम तेम शुद्धताना अंश  
प्रगट थता जाय, रागादिक सकल विजाव पूर्ण तजेथी पूर्ण शुद्धता  
प्रगट थाय तेज सिद्धि जाणवी तो राग रहित थई समजावे शुद्धता  
साधवी प्रथम सिद्ध स्वरूप रुप शुद्धता ध्येय ध्यानमां राखी ते शुद्ध-  
ताने प्रशस्तपणे उपयोग थिर राखवामां द्रढता वधारवी जे जे अप्र-  
शस्त जावोथी उपयोग चलायमान थतो होय ते ते अप्रशस्त जावो  
तजवा एम सिद्धि थाय पण साध्य निरपेक्ष क्रिया कष्ट करवाथी  
कांई हित थाय नहि पण उलटुं जव ज्रमणादि अहित वधे ॥ २४ ॥

परम दयाल कृपालुआ ॥ जवि० ॥ देवचंद्र शिव रूप ॥  
॥ परम० ॥ शिव कमला मनसुख लहे ॥ जवि० ॥ शाश्वत  
आत्म स्वरूप ॥ परम० ॥ २५ ॥

अर्थः—परम दया अने कृपावंत देवमां चंद्रमा समान संप्रति  
जिनवर पोते शिवरूप ठे तेमनी आज्ञा मनमां सुखे करी सेवतां शिव-  
सद्वर्ती पामीए एम शाश्वत आत्म स्वरूप पामीए ॥ २५ ॥ ॥ संपूर्ण ॥



॥ कलसं ॥ हरिगीत वंद ॥

गत समयना चौवीश जिननी स्तवन चौवीशी करी । मुनि देवचंद्र महंत हितकर सार जश कीरती वरी ॥ इव्यानुयोग गंजीर एहनो अर्थ जन सुगुरा लहे । मतिमंद न लहे अरथ एहनो साध्य शून्य क्रिया चहे ॥ १ ॥ में तनुमती इह अर्थ कीधो यथाशक्ति प्रमाणमां ॥ बहु सूत्र ग्रंथ प्रमाण जोई जव्य जेजो ध्यानमा । उत्सूत्र दोष दुरे करीने स्यादवाद सुनय रसे । जे आदरे जिन वचन ते निज आत्म अनुभव रस वसे ॥ २ ॥ एकवीश स्तवनो हाथ लाध्या तीन स्तवन मढ्यां नहीं । वावीशमा शिवकर श्रीजिनथी स्तवन मे रचिया सहो । शुध नय निक्षेप प्रमाण युक्ते अर्थ एह विचारिये । उपयोग शुद्धे थीर बुद्धे छुष्ट परिणति वारिये ॥ ३ ॥ शुद्धात्म परिणति आदरी उपयोग धिरता राखिये ॥ निज ज्ञान दरशन चरण वीरज सुमति अनुभव चाखिये । लंगणीज पासठ फादगुणे सुदि पुनम इंडु निरमलो । मन रंगशुं एअर्थ करतां आत्मगुण लखो ऊजलो ॥ ४ ॥ जिन आणसगी तत्त्व रंगी जव्यना आग्रह वने । दाहोद नगरे अर्थ कीधो जव्य धर्म रसे वने ॥ इव्यानुयोग दुरे करे सवि पाप ताप संतापने । शिव अंग "मनसुख" रग विलसे लही आप प्रतापने ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ ॐ परम गुरुच्यो नमः ॥

॥ श्री जिनागममां कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो ॥

॥ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाळ कृत ॥

॥ ढाल (१) ॥ पहेली ॥ धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

बहु सुतने जिनवर कहीरे । सोल उपमा सार ॥ बहु सन्माने  
सेवतोरे ऋषि । लहे जग जयजयकार ॥ साहेली हितकर बहुसुत  
सेव । शासन नायक देव । साहेली ० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ उज्ज्वल  
शंखे डुधे नखोरे । बहिरंतर शोभाय । शुरु समण गुण ऊजलोरे ।  
कीरतीवतो मुनिराय ॥ साहेली ० ॥ २ ॥ रहे गुरुकुल वासमां रे । उ-  
ज्ज्वल सुतपय पूर । शुरु समाचारी धरेरे नीत । सम शीव मग वरसूर  
॥ साहेली ० ॥ ३ ॥ अश्वे कंबोज सुदेशनोरे । वेगवंत गुणवंत ॥ शत्रुथी  
जे नवि ह्तेरे । जेहना बलनुं तेज अत्यंत ॥ साहेली ० ॥ ४ ॥ जिन  
शासन शुभ देशमारे । उत्तम कुल उत्पन्न ॥ मोक्ष मार्गमा चालतोरे  
मुनि । महा बलिउं तप धन्न ॥ साहेली ० ॥ ५ ॥ कुमत शत्रुथी नवि  
ह्तेरे । स्यादवाद नय पूर ॥ कुमति मान मद ऋजतोरे करे ।  
कुमत सकल चकचूर ॥ साहेली ० ॥ ६ ॥ द्वादशांग निर्घोषनारे ।  
नंदी घोष वाजीत ॥ साध्य सिद्ध दर्शवतारे मुनि । जग तारक जग  
मीत ॥ साहेली ० ॥ ७ ॥ द्दामा विनय आदिक गुणेरे । धीर वीर गंजीर ॥  
निस्पृही निराखंवनीरे मुनि । शीघ्र लहे ऋवतीर ॥ साहेली ० ॥ ८ ॥  
संवेगे रगे रमेरे । रम्य शुधातम मांख ॥ राग रोष वरजित सदार  
मुनि ॥ शिवमग मांहि उठांइ ॥ साहेली ० ॥ ९ ॥ स्यादवाद प्राक्रम  
वनेरे । प्राप्ते कुमति वृद्ध ॥ जिन जयपडह वजावतोरे साधु । सुत-  
धर विद्या अमंद ॥ साहेली ० ॥ १० ॥ सुगुण कंबोजी अश्वमारे  
वेगवंत गुणवंत ॥ उत्तम शील सुसंजमीरे वर । शास्त्र सुलक्षणवंत  
॥ साहेली ० ॥ ११ ॥ स्वामि इच्छाप चालतोरे । लखि स्वामी अजि-

प्राय ॥ पाषाणादिक शब्दथीरे नाव । त्रासी पाठो जाय ॥ साहेली०  
 ॥ १२ ॥ शस्त्रादिकथी नवि हठेरे । अतिवेगी सम मार्ग ॥ राजादिकने  
 मानीतोरे एवो । कथक तुरग सोजाग ॥ साहेली० ॥ १३ ॥ तेच  
 प्रधान बहुसुत मुनीरे । ज्ञान क्रिया व्रत धार ॥ निर्जय परवादी  
 थकीरे साधु । लहतो जग जयकार ॥ साहेली० ॥ १४ ॥ सम्यक  
 चरण विराजतोरे । सहुने बह्वज होय ॥ जिन शासन कीर्ती  
 करे मुनि । बहुसुत वदू सोय ॥ साहेली० ॥ १५ ॥ शंख अश्वनी  
 उपमारे । कहि प्रथम हितकार ॥ उपमा चौद आगल कहुरे मन-  
 सुख बहुसुत जयकार ॥ साहेली० ॥ १६ ॥

ढाल वीजी (२) ॥ वेनी मोरी चाखो सुगुरुजीने वंदीये ॥ ए देशी ॥

सजनी शूरवीर अश्वे चढ्यो । अपडिह्य बलवंत हो अखवेली  
 हेली । सजनी जीती शके नहीं अन्य को । विद्या अचल अमंद हो  
 अखवेली हेली । सजनी सेवो सुतधर चरणने । धरि हृदये सनमान हो  
 अखवेली हेली ॥ सजनी सेवो सुतधर० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥  
 सजनी नंदि घोष चउ बाजुए, छादशाग तूरनाद हो अखवेली हेली ।  
 सजनी वदोजनो बोले बहु । मगल आशीरवाद हो अखवेली हेली  
 ॥ सजनी सेवो० ॥ २ ॥ सजनी प्रवचन अश्वारूढ मुनी । वर प्राक्रमी  
 अति सूर हो अखवेली हेली ॥ सजनी परवादी बहु जूथथी । जीत  
 वरे जय पूर हो अखवेली० ॥ सजनी सेवो० ॥ ३ ॥ सजनी नंदि घोष  
 स्वाध्यायनो । पचनो अहनीश नाद हो अखवेली हेली । सजनी शिष्य  
 सुगुण स्वाध्यायनो । शोने प्रवचन वाद हो अखवेली हेली ॥ सजनी  
 सेवो० ॥ ४ ॥ सजनी जीवो जीवो बहुसुत सदा । प्रवचन दीपक  
 शुरू हो अखवेली हेली ॥ सजनी ए आदि विरुदावली । बोले त्रवि  
 मुनि वुरू हो अखवेली हेली ॥ सजनी सेवो० ॥ ५ ॥ सजनी जीतो  
 कुमतीना वृदने । स्यादवाद बलवंत हो अखवेली हेली । सजनी तुम

आगे नवि टकिं शके । परवादी मतीमंद हो अलवेली हेली ॥  
 सजनी सेवो ॥ ६ ॥ सजनी नाग नागणी जुथ्यनो । स्वामी गंज  
 बलवंत हो अलवेली ॥ सजनी परमत गजथी नवि हठे । साठ वरस  
 वयवंत हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ ७ ॥ सजनी परजुथ्य  
 पती मद माननो । जंग करे ततकाल हो अलवेली हेली ॥ सजनी  
 अप्रतिहत गज बलधरु । डढ तन बल सुविशाल हो अलवेली हेली  
 ॥ सजनी सेवो ॥ ८ ॥ सजनी तेम सुतधर बलीठ मुनी । समण  
 समणी गणधार हो अलवेली ॥ सजनी श्रावक श्राविका जुथ्यनो । सत्य  
 सदा आधार हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ ९ ॥ सजनी उत्पाता-  
 दिक बुद्धिथी । विद्या वृद्धि विवेक हो अलवेली हेली ॥ सजनी शुरू नये  
 सुत अनुजवी । शिव मगनी डढ टेक हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो  
 ॥ १० ॥ सजनी तीक्ष्ण शींगनो वृषज जे । खंध पुष्ट बल पूर हो अलवेली  
 हेली ॥ सजनी बहु गज जुथ्य तणो पती । रोग रहित अति शूर  
 हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ ११ ॥ सजनी एणि पेरे शोत्रे  
 वृषज शो । तेम बहुश्रुत मुनिराय हो अलवेली हेली ॥ सजनी  
 न्याय सुतीक्ष्ण शींगथो । जेदे कुमत कुन्याय हो अलवेली हेली ॥  
 ॥ सजनी सेवो ॥ १२ ॥ सजनी संजम रथने चलाववा । बुद्धि खध  
 डढ पुष्ट हो अलवेली हेली ॥ सजनी जे चारंड पेरे सदा । अप्रति-  
 हत अडुष्ट हो अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ १३ ॥ सजनी  
 उपमा तीन इहां कही । बलि कहिशु अगीयार हो अलवेली हेली ॥  
 सजनी शिव सपति मनसुख लहे । बहुसुत जग जयकार हो  
 अलवेली हेली ॥ सजनी सेवो ॥ १४ ॥

ढाल त्रीजी ( ३ ) ॥ हे जी शियल सुरंगी चूनकी ॥ ए राग ॥

हेजी नीक्ष्ण दाढा हो शोचती । हेजी केशरीसिंह बलवंत हो ॥  
 हेजी राजा भृग पशु आदिनो । हेजी न शके पराजवी जंत हो ॥  
 हेजी बहसुत जिन शासन जयो । हेजी मत्त बल सहजानंद हो ॥

हेजी बहुण ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ हेजा सत नये, तिहाण दाढ ठे ।  
हेजी जेदे कुमतीना मर्म हो ॥ हेजी कुमति पराजवी नवि शके ।  
हेजी जेणे लखो उढ जिन धर्म हो ॥ हेजी बहुण ॥ २ ॥ हेजी जिन  
शासन मुनि सिंहनुं । हेजी परमती नवि सहे तेज हो ॥ हेजी शुद्धातम  
अनुत्तव रमे । हेजी विघसे सुमती स्हेज हो ॥ हेजी बहुण ॥ ३ ॥  
हेजी शंख चक्र गदा धरू । हेजी अप्रतिहत बासुदेव हो ॥ हेजी  
जोखो वर बल जय वरू । हेजी तेम बहुसुत मुनि एव हो ॥  
हेजी बहुण ॥ ४ ॥ हेजी परवादीने जीततो । हेजी परशुं गज्यो न  
जाय हो ॥ हेजी देखत परमत वृन्दना । हेजी हृदयमान क्षीण थाय  
हो ॥ हेजी बहुण ॥ ५ ॥ हेजी दर्शन उज्वल शंख ठे । हेजी ज्ञान  
सुदर्शन चक्र हो ॥ हेजी बहुण ॥ ६ ॥ हेजी रागादिक अंतर थरी ।  
हेजी बाह्य कुवादी सर्व हो ॥ हेजी वासुदेव पेरे प्रबल जे । हेजी  
हणता कुमतीना गर्व हो ॥ हेजी बहुण ॥ ७ ॥ हेजी चतुरंगी सेना  
सजी । हेजी मह रिद्धि चउ दश रत्न हो ॥ हेजी चक्री -नरपती  
ठाजतो । हेजी चौद पुरव मुनि रत्न हो ॥ हेजी बहुण ॥ ८ ॥ हेजी  
आतम अव्यादिक जली । हेजी उढ सेना चतुरंग हो ॥ हेजी दर्शन  
ज्ञान चरण तपे । हेजी एम चतुरंग अचग हो ॥ हेजी बहुण ॥ ९ ॥  
हेजी अथग दान शीयल तप । हेजी जाव सहित चउ चग हो ॥  
हेजी सेना मुनिने शोजती । हेजी दाखी श्रीजिन अग हो ॥ हेजी  
बहुण ॥ १० ॥ हेजी ज्ञानावरणादिक तथा । हेजी रागादिक अरि  
सर्व हो ॥ हेजी हणता प्राक्रम फोरीने । हेजी चूरे कुमतीना गर्व हो  
॥ हेजी बहुण ॥ ११ ॥ हेजी आमोसही पमुहा महा । हेजी रिद्धि-  
धर मुनिराय हो ॥ हेजी ज्ञान रिद्धि अतिशय जख्या । हेजी सुत-  
धर चक्री सोहाय हो ॥ हेजी बहुण ॥ १२ ॥ हेजी सिंह वासुदेवने  
चक्रीनी । हेजी त्रण उपमा कही एह हो ॥ हेजी बलि कहुं आगली  
दासमा । हेजी मनसुव बहुसुत खेह हो ॥ हेजी बहुण ॥ १३ ॥

ढाल चौथी (४) वाडीना जमरा डाक मीठीरे चांपानेरनी ॥ ए देशी ॥

जीरे शंकर देवींइ सदेवनो । जीरे सहस्र नेत्र सुररायरे ॥ आतम  
गुण जोगी बहुसुत सेव सोहामणी । जीरे वज्रायुध डड कर धरे ।  
जीरे दैत्यपुरी हणनाररे । शासनना धोरी बहुसुत इंद्र हृदय वस्या  
॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ जीरे अवर पुरंदर नाम ठे । जीरे युति कान्ति  
ज्योतीवंतरे । आतम० ॥ जीरे रिद्धि अधिक सहु देवथी । जीरे  
जश बल अतुल अत्यंतरे ॥ शासन० ॥ २ ॥ जीरे दश दिशि तेज  
प्रकाशतो । जीरे तेम सुतधर मुनिरायरे ॥ आतम० ॥ जीरे विमल  
सूत्र सहस्र नेत्र ठे । जीरे निरमल तेज सोहायरे ॥ शासन० ॥ ३ ॥  
जीरे आतम विद्यायुध बने । जीरे करे कर्म अरी चुररे ॥ आतम० ॥  
जीरे तप तेजे ततखिण दहे । जीरे मोहादि रिपुना पुररे ॥ शासन०  
॥ ४ ॥ जीरे सुत शुक्र द्रष्टे देखता । जीरे रुपी अरुपी जावरे  
॥ आतम० ॥ जीरे श्रमण देवोना अधिपती । जीरे बहुसुत परम  
प्रजावरे ॥ शासन० ॥ ५ ॥ जीरे सारण वारण चोयणा । जीरे पडि-  
चोयण करनाररे ॥ आतम० ॥ जीरे सकल साधु गुणधर्मनी । जीरे  
करे रक्षा पटधाररे ॥ शासन० ॥ ६ ॥ जीरे जेहनी रक्षा देवो  
करे । जीरे हरिकेशी मुनि पेरे साररे ॥ आतम० ॥ जीरे चार नि-  
कायो देवी देवता । जीरे करे नित रक्षा ऊदाररे ॥ शासन० ॥ ७ ॥  
जीरे जलहल ज्योति प्रकाशतो । जीरे बहुसुत रविकंर तेजरे ॥ आ-  
तम० ॥ जीरे मिथ्या तिमिर नसावतो । जीरे हरे अज्ञान मुनि हेजरे  
॥ शासन० ॥ ८ ॥ जीरे जत्रि हृदयकमले करे । जीरे जाव धर्म  
सुकुट्टासरे ॥ आतम० ॥ जीरे रुपी अरुपी नव तत्त्वना । जीरे नय  
निक्षेप प्रकाशरे ॥ शासन० ॥ ९ ॥ जीरे शुक्र साध्य बलि साधना ।  
जीरे करता सुमग प्रकाशरे ॥ आतम० ॥ जीरे दिनकर पेरे ऊंचो  
बने । जीरे शिव मग करे ऊजाशरे ॥ शासन० ॥ १० ॥ जीरे जां-

ज्वल्यमान ज्ञाने करे । जीरे शीत विजाव विनाशरे ॥ आतम० ॥  
 जीरे ते मुनि अग्रमत्त जावमा । जीरे जागृत करे ऊह्यास ॥ शासन०  
 ॥ ११ ॥ जीरे खदखद विध तप तेजथी । जीरे उव्य जाव विधि  
 दोयरे ॥ आतम० ॥ जीरे जेहनु तेज सहे नही । जीरे कुमत उलुक  
 जेह होयरे ॥ शासन० ॥ १२ ॥ जीरे सोल कला पूरण शैशी । जीरे  
 सारठ पुनम सोहायरे ॥ आतम० ॥ जीरे ग्रह तारा नक्षत्रना । जीरे  
 बहु समूहे ढीपायरे ॥ शासन० ॥ १३ ॥ जीरे देत आहृदसाद जन-  
 मन जणी । जीरे करे आतम गुण शुद्धरे ॥ आतम० ॥ जीरे तेम  
 सुतधर शुच सधने । जीरे परम समाधि दीये बुद्धरे ॥ शासन०  
 ॥ १४ ॥ जीरे सम्यक सोल कला जख्यो । जीरे ताप कषाय वृजायरे  
 ॥ आतम० ॥ जीरे ते सुतधर मुनि सेवता । जीरे सहज समाधि  
 निपायरे ॥ शासन० ॥ १५ ॥ जीरे इंद्र सूरज ने चंद्रनी । जीरे बहु-  
 सुतने उपमायरे ॥ आतम० ॥ जीरे उपमा अवर आगे कहुं । जीरे  
 मनसुख शीव सदायरे ॥ शासन० ॥ १६ ॥

ढाल पांचमी ( ५ ) हरिवर हरिवर शु करो ॥ ए देशी ॥  
 जेम उत्तम कोठारमां । विणसे न धान्य लगार ॥ चोर चुवानोरे  
 जय नहीं । न सले दले विकार ॥ बहुसुत ज्ञान कोठार ठे, आतम  
 विद्या जकार । बहुसुत० ॥ १ ॥ ए आकणी ॥ बहुसुत हृदय कोठार-  
 रमा । बहु पद धान्य प्रकार ॥ कुमत प्रमाद आदि थकी । विणसे  
 नाहि लगार ॥ बहुसुत० ॥ २ ॥ कण रहे अंग उपांगना । सुतधर  
 कोठारे शुद्ध ॥ सध चतुर विधिनु सदा । करे रखोपुरे बुद्ध ॥ बहुसुत०  
 ॥ ३ ॥ सुदर्शन जंबुतरु । वृद्ध समुहमारे जेम ॥ वीठ्यो जंबु सुद्धि-  
 पने । अतिशय शोजे ठे एम ॥ बहुसुत जंबूरे शोनतो ॥ ४ ॥ तेम  
 मुनिमा बहुसुतधरु । शोजे अतिशयवत ॥ वीठ्यो चढ विधि सं-  
 घने । धीर वीर बढ संत ॥ बहुसुत जवूण ॥ ५ ॥ अधिष्ठाता जवूरे  
 द्विपना । देवोनुं शुच स्थान ॥ तेम जिच शासन सधनुं । बहुसुत

जाणो मंकाण ॥ बहुसुत जंबू ॥ ६ ॥ मह रिद्धिवत मुनिश्वरुं । उप-  
 ड्रव टाळेरे सर्व ॥ मधुर अरथ सुत फल दीये । कुमतीनो हरे गर्व  
 बहुसुत ॥ ७ ॥ बहु सरितां मांहे शोभती । बहु परिवार समेत ॥  
 महासागरमांरे जई जळे । तेम बहुसुत शिव खेत ॥ बहुसुत ॥  
 ॥ ८ ॥ सुनय अनंत तरंग ठे । शांत नुधा जलपूर । आतम ज्ञानेरे  
 शोभता । करे करम रज दूर ॥ बहुसुत ॥ ९ ॥ नीलवंत परवत  
 थकी । सीता सरी उत्पन्न ॥ तेम मुनि उत्तम कुल थकी । उपना  
 तेहनेरे धन्न ॥ बहुसुत ॥ १० ॥ विनय उदार गंचीरता । आदि  
 गुण पय पूर ॥ सीता सरी सुतधर पदे । नित थिर रहो हजूर ॥ बहु-  
 सुत ॥ ११ ॥ जंबूवृक्ष कोठारनी । सीतासरिता ए तीन ॥ उपमा  
 दाखी आ ढालमां । मनसुख आगे नवीन ॥ बहुसुत ॥ १२ ॥

ढाल ठठी (६) पर्वतमां उत्तम कह्योरे, मंदरैंगिरिगुणवंत ॥ दीलमे  
 वसी रह्यो ॥ बहु ओषधिश्चे शोभतोरे, दिव्यमान दरसंत ॥ मनमो हसी  
 रह्यो ॥ १ ॥ जावसुत बहु ओषधीरे, सहित दिपे मुनिराय ॥ दीलडे वसी  
 रह्यो जाव रोग हरता सदारे, सारे जविजन काज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ २ ॥  
 सदय विसदय संगरोहणीरे, सजीवनी चित्रावेळिरे ॥ दीलडे वसी  
 रह्यो ॥ विषहर शस्त्रनिवारणीरे, अहीनूत दमणी वेळिरे ॥ मनडो  
 हसी रह्यो ॥ ३ ॥ बहु लब्धी ओषधी जख्योरे, सुतधर मेरु राज ॥  
 दीलडे वसी रह्यो ॥ दु.ख दावानल रुज हरे रे, देत शांति शिव  
 राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ४ ॥ प्रवख प्रवर मुनि गण विपेरे, संजम  
 पुष्टि काज ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ ड्रव शुद्धातम जावमारे, बहुसुत  
 शासन राज ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ५ ॥ मिथ्या अज्ञान कपायनेरे,  
 ततखिण हरतो संत ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ वयरमुनी आठिक पेरेरे,  
 बहुसुत मेरु महंत ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ ६ ॥ विविध रत्नचर पूरियोरे,  
 चरमजैलधि जलपूर ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ बहु अनिशय रले जख्योरे, दीपे  
 बहुसुत नूर ॥ मनमो हसी रह्यो ॥ ७ ॥ शांती जल गंचीर ज्यारे, नय अनंत



११६ श्री जिनागममा कहेली श्रुतधरने सोल उपमानी ढालो.

कल्लोल ॥ दीलने वसी रह्यो ॥ आतम अनुचव रस जख्योरे, आसय जास  
अतोल मनमो हसी रह्यो ॥ ७ ॥ द्वांत्यादिक ज्ञानादिकेरे, जल गंजीर  
अखूट ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ परिसह्यी कोजे नहींरे, सजम जाव  
अतूट ॥ मनमो ॥ १० ॥ शात सिद्धात रसे जख्यारे, गण रक्षक मुनिराज ॥  
दीलडे वसी रह्यो ॥ कर्म खपावे आपणारे, सारे निज पर काज ॥  
मनडो हसी रह्यो ॥ १० ॥ ते माटे नित नित करोरे, शुध नये सूत्र अध्येन ॥  
दीलने वसी रह्यो ॥ सकल विजाव जीती लहोरे, आतम संपति श्वेन  
मनडो हसी रह्यो ॥ ११ ॥ उत्तम अर्थ गवेपिनेरे, तजि पर ममता  
राग ॥ दीलने वसी रह्यो ॥ तारो निज पर जीवनेरे, धरि संवेगे लाग  
मनडो हसी रह्यो ॥ १२ ॥ वार अश्वपर अकलोरे, शूरो थइ असवार  
॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ चतुरंगी सेना सजीरे, लहे बहुसुत जयकार  
मनमो हसी रह्यो ॥ १३ ॥ इत उत द्रष्टि निवारिनेरे, चाले सम शिव  
पंथ । दीलने वसी रह्यो ॥ शुक्र साध्य द्रग आपिनेरे, धिर परिणति  
निग्रथ । मनमो हसी रह्यो ॥ १४ ॥ मेरु चरमजलधी तणीरे, मलि  
उपमा थइ सोल ॥ दीलने वसी रह्यो ॥ “मनसुख” शिवसगे लहेरे,  
सहजानंद अकलोल ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ १५ ॥ जेठ शुक्ल त्रयोदशीरे,  
“शा गीरधर हेमचद” ॥ दीलडे वसी रह्यो ॥ आग्रह्यी “दोहदे”  
रच्यारे । बहुश्रुत गुणना ठद ॥ मनडो हसी रह्यो ॥ १६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

(१) अभिप्राय

(२) अरुढ

॥ ॐ श्री परम गुरुच्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुलाल हरिलाल कृत ॥

॥ श्री विषय परिहारनी ढालो ॥

॥ ऋजंगी ठंद ॥

नमो धीर आणद अत्यत दाता । सदा शीव शांती  
सुत्राता विख्याता ॥ जित्या कर्म आठे सरम्ये रमीने । करं  
बोध साचो प्रचूने स्तवीने ॥ १ ॥

॥ माळिनी ठंद ॥

रिखव अजित वंदी, आपणुं वीर्य धारी । विषय विष  
निवारी, प्रव्यने शांति कारी ॥ प्रव तरण सुहेते, बोध साचो  
विचारी । करिण सरस रंगे, सूत्रमांथी उधारी ॥ १ ॥

॥ ढाल पहेली ( १ ) ॥ सहजानंदीरे आतमा ॥ ए राग ॥

चेतन चेतोरे चेतना, आतम तत्त्व विचार ॥ वश करि ईडिय  
चोरने, जिम लहिये शीव सार ॥ चेतन चेतोरे-चेतना ॥ १ ॥ पुरो  
शूरो ते मुनि कळ्यो, चरण रयण धन जास ॥ लूटे न ईडिय चोरटा,  
निज गुण रमण विळास ॥ चेतन० ॥ २ ॥ ईडिय वश जे नवि हुवे,  
पडित पण कळ्यो तेह ॥ रंक सदा रहे ते नरा, विषय वश होय जेह ॥  
॥ चेतन० ॥ ३ ॥ सत्य प्रशंसारे तेहनी, नहि विषये वश जेह ॥ ज्ञाना-  
दिक निज गुण विषे, मग्न रहे मुनि तेह ॥ चेतन० ॥ ४ ॥ ईडिय  
चपल तुरंग ठे, डुरगति मार्गेरे जाय ॥ बांधी ज्ञाननी राशथी, वश  
करे मुनी अमाय ॥ चेतन० ॥ ५ ॥ जावो प्रव स्वरूपने, ए संसार  
असार ॥ पर परजाय अनित्य ठे, अशरण जीव सदाय ॥ चेतन० ॥ ६ ॥  
आवे जावेरे एकलो, सुख डु ख जोगेरे एक ॥ चेतन प्रव्य अखंठ ठे,  
ए धिर राखो विवेक ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ चेतनता वीण सर्व जे, आपणु

कोई ना होय ॥ पुद्गल स्नेह मूरख करे, तुं निज ज्ञानेरे जोय ॥  
 ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ देह अशाचि जरपूर ठे, विषय अशुचीनी खाण ॥  
 नरकादिक दुःख आकरां, तु केन थाय अजाण ॥ चेतन० ॥ ८ ॥  
 ईंद्रिय धुत्तोने वश पड्यो, क्षिण विषय सुख हेत ॥ काल अतंतोरे  
 दुःख सहै, जटकी जवनन खेत ॥ चेतन० ॥ १० ॥ तिल तुस मात्र  
 ईंद्रिय विषे, बधवा मति देरे मित्र ॥ प्रसख्या विषय प्रणाममां, जब  
 दु ख देशे विचित्र ॥ चेतन० ॥ ११ ॥ निर्मल चारित्र तेहनूं, विषय  
 कीमे न खवाय ॥ चूक्यो क्षिण सुख कारणे, कोटि वरस दुःख पाय ॥  
 ॥ चेतन० ॥ १२ ॥ कीडा लाग्या जे काष्टमा, ते होय काष्ट निसार ॥  
 विषय कीना लागे जिहा, चारित्र तास असार ॥ चेतन० ॥ १३ ॥  
 यज्ञ करो ऋढ प्राणिया, विषय जीतण काज ॥ ज्ञानादिक प्रगट हुवे,  
 लहिये शिवपूर राज ॥ चेतन० ॥ १४ ॥ काचनी कांगणी कारणे, हारे  
 रत्न जो क्रोड ॥ चरण हणै विषय रसे, ते महा मूरख जोड ॥ चे० ॥ १५ ॥  
 तिलमित सुख विषय तणूं, फल दु ख मेरु समान ॥ जेह उपारेरे  
 प्राणिया, ते नवि कहिये सुजाण ॥ चेतन० ॥ १६ ॥ थोडो पण रस  
 विषयनो, क्रोडो जब दुःख देत ॥ तेणे नवि थाउं विषयरसी, ईच्छो  
 आतम हेत ॥ चेतन० ॥ १७ ॥ जोगवतां मधुरा लागे, अति कम्वा ठे  
 विपाक ॥ किंविपाकना फल समो, राखो विषयनी धाक ॥ चेतन० ॥ १८ ॥  
 खण्णता कंजुरे बतने, लागे ठे अती मीष्ट ॥ पठी जलनादिक वेदना,  
 उपजे अतीसे अनिष्ट ॥ चेतन० ॥ १९ ॥ जोग थकी अतीसे बधे,  
 तृष्णा दाहनूं जोर ॥ मृगतृष्णा जख जाकुवे, शासि लहे नहीं ठोर ॥  
 चेतन० ॥ २० ॥ बहु बहु योनी कुजन्मनी, आपे विषय सदाय ॥  
 जगमा बैरी न ए समो, मनसुख ठमो अपाय ॥ चेतन० ॥ २१ ॥

ढाल वीजी (२) विषय विष परिहरो प्राणीया ॥ ए देशी ॥  
 ॥ अमि वृजी शके जखथकी, वृजे नहि कामनी आगरे ॥ क्रोन

समूहना जल थकी, दुष्ट अति मदननो रागरे ॥ विषय विष परि-  
 हरो चेतना ॥ १ ॥ काल अनंत लगे वलि वलि । जोगव्या विषय  
 विकाररे ॥ तो पण तृप्ति पाम्या नहीं, विषय दुःखदाइ असाररे ॥  
 विषय० ॥ २ ॥ जीव हिंसा विषय वश करे, आदरे जूठ अदत्तरे ॥  
 कूशील परिग्रह आदरे, करी करी अधिक ममत्तरे ॥ विषय० ॥ ३ ॥  
 सकल कषाय होय एहथी, पापनां स्थान अढाररे ॥ जब जंजाल  
 एहथी वधे, लहे न शुद्धातम साररे ॥ विषय० ॥ ४ ॥ विषय परि-  
 णाम जेणे जीतिया, मुगति सुख तेहने गोदरे ॥ मनुष्य जब लहि  
 जवी आदरो, जिन वचन निर्मल बोधरे ॥ विषय० ॥ ५ ॥ विषय मद-  
 पाने उन्मत्त थयो, नवि लहे योग्य अयोग्यरे ॥ कृत्य अकृत्य पण नवि  
 गणे, चाह एक विषय विष जोगरे ॥ विषय० ॥ ६ ॥ आवि विपाक  
 हाजर हुवे, दीन परवश लहे क्लेशरे ॥ नरक निगोद गतिमां पड्यो,  
 जिहां नहीं सूखनो लेशरे ॥ विषय० ॥ ७ ॥ कीडा विष्टाना विष्टा  
 विषे, कीव कीडा लिंग मांदिरे ॥ तेम विषयी विषय विष विषे, मा-  
 नि सुख मग्न रहे तांदिरे ॥ विषय० ॥ ८ ॥ कृष्णिक चपल परतंत्र जे,  
 गख्या पण नवि रहे जेहरे ॥ विषय नर नारिना जाणिए, मूकिये एह पर  
 स्नेहरे ॥ विषय० ॥ ९ ॥ जेम जेम अग्नि इधन अती, नांखतां तृप्त  
 नवि होयरे ॥ तेम ए विषयीने विषयथी, तृप्ति रति होय नवि कोयरे  
 ॥ विषय० ॥ १० ॥ देव मनुष्य तीर्यचना, जोग सहु अथिर परतंत्ररे  
 ॥ जोगतां तेहथी नवि लह्या, निज गुण सहज स्वतंत्ररे ॥ विषय०  
 ॥ ११ ॥ जोगता रम्य मनने लगे. परिणमे कटुक विपाकरे ॥ गीत  
 विलाप सम जाणिए, नृत्य विटंबना थाकरे ॥ विषय० ॥ १२ ॥ जूषण  
 चार उपानवो, इंद्र नरींद्रना जोगरे ॥ ए जबचक्र जमता लह्यो, वलि  
 वलि एहनो योगरे ॥ विषय० ॥ १३ ॥ तो पण तृपती नवि रहीं, आ-  
 तम धर्म अजाणरे ॥ चौर पुद्गलपरिअट्टमां, तें लह्यां दुःख अ-

(?) द्रव्य क्षेत्र काल अने भावथी एम चार प्रकारे

मानरे ॥ विषय० ॥ १४ ॥ आहार नीहार ग्रहि ठांडिया, पुद्गल  
 अनत अनंतरे ॥ तो पण थीर सुख नवि लह्यो, अमल सुख सहज  
 स्वतंत्ररे ॥ विषय० ॥ १५ ॥ जोगि जव जोगना स्नेहथी, पुद्गल  
 माहि लपटायरे ॥ जोगनो स्नेह जे नर तजे, ते नरा शिवसुख  
 पायरे ॥ विषय० ॥ १६ ॥ गोलो थालो जेम माटीनो, लागशे जी-  
 तने जेमेरे ॥ तिम नरा जोगना स्नेहथी, कर्म रज ग्रहि रहे एमेरे ॥  
 ॥ विषय० ॥ १७ ॥ सूको गोलो जेम जीतने, नवि लगे ते कोई वाररे  
 ॥ जोगनो स्नेह जेहने नहीं, ते लहे शिवपद साररे ॥ विषय० ॥ १८ ॥  
 सरिता असंख्यनी आवथी, सागर जेम न पूरायरे ॥ काम अनंतना  
 जोगथी, मुग्ध नर तृप्ति नवि पायरे ॥ विषय० ॥ १९ ॥ देव नर जोग  
 बहु जोगवी, बलि लहे नरकना दू खरे ॥ कलकलित अग्नि तपावियु,  
 ताम्र रस पान नहीं सूखरे ॥ विषय० ॥ २० ॥ कोण हणायो नहीं लो-  
 नथी, नारिथी कोण न ठगायरे ॥ मृत्युए कोण जीव नवि ग्रह्यो, कोण  
 विषय गृह्य नवि थायरे ॥ विषय० ॥ २१ ॥ ज्ञान शुद्धातम तत्त्वनुं, लहि  
 नर धन्य कहायरे ॥ मनसुख चेति चित्तमा सदा, तुं विषय वश नवि  
 थायरे ॥ विषय० ॥ २२ ॥

ढाल त्रीजी (३) मोरा प्रीतमजी तुं सुण एक मोरी शीख  
 वालमजी ॥ ए देशी ॥

मारा चेतनजी मारा वालमजी, बलि बलि हुं तुज शु कहुं ॥ च-  
 तुर न जाग्यो चित्त चेतनजी, न लह्यु ते निज हीत चेतनजी ॥  
 बलि० ॥ १ ॥ कामग्रह अति आकरो, सकल कुग्रह शिरदार चेतनजी  
 ॥ दुःख दिए मूरख जीवने, जे एहना थया थार चेतनजी ॥ बलि०  
 ॥ २ ॥ नर ईजादिक जग सहू, ब्रह्मा विष्णु महेश चेतनजी ॥ वश  
 करि राख्या केदमां, सहेता विविध कलेश चेतनजी ॥ बलि० ॥ ३ ॥  
 थावर जगम विषयकी, सिंह सरपने आग चेतनजी ॥ जेह दु ख

उपजे न जीवने, कामथी दूःख अथाग चेतनजी ॥ वलि० ॥ ४ ॥  
 इच्छेथी दुःख उपजे, जोगे विविध असूख चेतनजी ॥ द्विण द्विण  
 कामना वेगीने, नही निवृत्तिनुं सूख चेतनजी ॥ वलि० ॥ ५ ॥  
 काम प्रणाम जिहां रहे, एहीज आश्रव आय चेतनजी ॥ कर्म रजे  
 रस पूरमां, आत्म समूझ चराय चेतनजी ॥ वलि० ॥ ६ ॥ चव  
 अनंत नमतां करे, दुःख आक्रंद अनंत चेतनजी ॥ पण जेह निज  
 गुण जोगमां, मग्न रहे मुनि सत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ७ ॥ जोर न  
 रंक अनंगनुं, नवि चले कोइ प्रकार चेतनजी ॥ पंच विषयनी कामना  
 जे तजशे नरनार चेतनजी ॥ वलि० ॥ ८ ॥ पुरुषपणुं धन्य तेहनं,  
 प्राक्रमवंत महत चेतनजी ॥ लघु काले शिवपद लही, काम तज्यो  
 जेणे संत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ९ ॥ तजे अपेक्षा विषयनी, विघ्न  
 रहित शिव पाय चेतनजी ॥ लघु काले संसारथी, सहज निवृत्ति थाय  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ १० ॥ प्रवचन सार एहिज लहो, ए विण नाण,  
 अनाण चेतनजी ॥ जीहां राग तिहां विषय ठे, राग तिहां नहीं ज्ञान  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ ११ ॥ ज्ञानीने राग होवे नहीं, राग विण विषय  
 न होय चेतनजी ॥ सार सिद्धातनो ए लही, विषय तजो सहु कोय  
 चेतनजी ॥ वलि० ॥ १२ ॥ सकल शत्रुमां शत्रु ए, सकल झेरमां झेर  
 चेतनजी ॥ सकल दुष्टमा दुष्ट ए, विषये कख्यो जग जेर चेतनजी  
 ॥ वलि० ॥ १३ ॥ सवि प्रतिबंध ठे विषयथी, ए विण नहीं प्रतिबंध  
 चेतनजी ॥ प्रतिबंधे बंधन महा, एह तजिए कूंध चेतनजी ॥ वलि०  
 ॥ १४ ॥ विषय थकी निरपेक्षने, गोपद सम संसार चेतनजी ॥ तरवो  
 सुगम सूत्रे कह्यो, जिनवर जगदाधार चेतनजी ॥ वलि० ॥ रत्नादेवी  
 वश पड्या, तेणे छीप बंधव दोय चेतनजी ॥ चेती त्यांथी जागीया,  
 शरण मढ्यो देव कोय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १६ ॥ देवे कह्युं अच मत  
 चले, चलतां ठोडिश तूज चेतनजी ॥ रत्नाए आवी चटावीओ, देवे  
 ठोड्यो अबूज चेतनजी ॥ वलि० ॥ १७ ॥ वलि तोहा वीजो बंधव

गयो, करि आख्यो देवने शरण चेतनजी ॥ रत्ना चलाव्यो नवि  
 चह्यो, करि शकी देवी न हरण चेतनजी ॥ वलि० ॥ १० ॥ देवे  
 सिधु उतारीने, मूक्यो तेहने खेत चेतनजी ॥ विषय कुलटथी नवि  
 चले, तेह लहे शिव हेत चेतनजी ॥ वलि० ॥ ११ ॥ जे जमे जव  
 कतारमा, तेहनु विषय ठे मूल चेतनजी ॥ विषयनुं मूल अज्ञान ठे,  
 ज्ञान आतम अनुकूल चेतनजी ॥ वलि० ॥ १२ ॥ विषय विशेष आ-  
 शक्तने, सुशील पाख ठेदाय चेतनजी ॥ पाख रहित जेम पक्षीथी,  
 नवि आकाग तराय चेतनजी ॥ वलि० ॥ १३ ॥ डव्य जाव दोय  
 शीलनी, होय पाख डढ जास चेतनजी ॥ तरे ससार कतारथी, पामे  
 सिद्धि विलास चेतनजी ॥ वलि० ॥ १४ ॥ सूका अस्थी चावतो,  
 श्वान माने जेम सूख चेतनजी ॥ गाल तालु ठेदन तणु, नतक्षण  
 पामे दूख चेतनजी ॥ वलि० ॥ १५ ॥ तेम विषयी विषय  
 रसे, करि निज वीर्यनी हाण चेतनजी ॥ तनु मन गत बहु रोगनी,  
 मूढ सोले दु ख खाण चेतनजी ॥ वलि० ॥ १६ ॥ सहेत लीपटि अ  
 सी चाटता, प्रथम लहे मन स्वाड चेतनजी ॥ जीज कटे दु खवेदना,  
 होय अति वीखवाद चेतनजी ॥ वलि० ॥ १७ ॥ मोह मदीरा मद  
 तजो, करि जिन वच सुधापान चेतनजी ॥ रोग शोग जवजय टले,  
 रहे मनसुख शिव थान चेतनजी ॥ वलि० ॥ १८ ॥

॥ ढाल चौथी (४) ॥ राग पङ्करी ठढ ॥

अशुची जर नर नारी शरीर, जर मोह वशे लागे रुचीर ॥ नवि  
 देरे डु खने खेद थाक, सदगुरुनी पण नवि माने हाक ॥ १ ॥ क-  
 दली तरु माहि न काष्ट सार, तेम नर नारी तन अति असार ॥ नारी  
 नदि यौवन जल जरेल, शृंगार रूप बहु आवे बेल ॥ २ ॥ जल जमर  
 विलास विलोकि कोय, तिहा वूडे नवि जे ज्ञानि होय ॥ नारी नदि  
 शोक जले जरेल, अति कूरु कपटनी गुहिर बेल ॥ ३ ॥ अति चेर

क्लेश बन्धि उपाय, नारी श्ररणी जाणो सदाय ॥ महिला दुःख खा-  
 णी सुख नशाय, ईहां सुख जाणी नर चपल थाय ॥ ४ ॥ दुर्गंधि वहे  
 दश दोय छार, वश काम मूर्ख मन एहिज सार ॥ पर नारि मिले  
 अतिहरख होय, दुरदशा आवि नहि मूर्ख जोय ॥ ५ ॥ नारी पर पुरुषधी  
 धरत प्यार, नहि मदन विना जग कोइ सार ॥ जाण्यो नहि तत्त्व अतत्त्व  
 मर्म, ते किम पामे निज धर्म शर्म ॥ ६ ॥ ते किम रहेशे थइ धीर वीर,  
 नारी तन देखी जल गंजीर ॥ नवि लहि मन शक्ति निज कदाय,  
 त्रिय नेत्र वाणधी नवि नसाय ॥ ७ ॥ देखी विषधर सहु जागि जाय,  
 त्रिय नागणि देखी हरख थाय ॥ ए वरु अचंव मुज मन सदाय, एह  
 मोह महीपतिनो उपाय ॥ ८ ॥ द्रष्टीविषधी पण अधिक एह, शुध  
 चरण प्राण पण हणत जेइ ॥ माटे तज नारी साथ वात, असंजमनी  
 ए जाण मात ॥ ९ ॥ श्रुतधर द्रढ चित्त जितेइ कोय, युवती पिशा-  
 चणी जीति सोय ॥ नवनीत तपे जिम अग्नि संग, मुनि संजम गलत हे,  
 त्रिय प्रसंग ॥ १० ॥ एह विषय विना रहे तनु निरोग, सुख होय न  
 आवे दुःख वियोग ॥ शुच शीलथि वंठित सिद्धि होय, सन्मुख नवि  
 देखे वयरि कोय ॥ ११ ॥ जख प्रेत पिशाचनुं विघन जाय, देवादिक  
 पण तसु सेवे पाय ॥ शुध शीलवतने सुख सदाय, मंत्रादिक नवनिधि  
 सिद्धि थाय ॥ १२ ॥ जेणे ठग्या क्षीणमा महत धीर, एहने जीते ते  
 परम वीर ॥ नारी नदि जन तृण खेंचि जाय, तस रसिया जवसिधु  
 समाय ॥ १३ ॥ एम जाणी धुरथी तजि सनेह, मनमा नवि चितो  
 नारि नेह ॥ जग धन्य धन्य ते धीर वीर, लहुं आत्म रमण संसार  
 तीर ॥ १४ ॥ सिह गुफा वासि मुनि तप सुधीर, बहु मास तपे सोस्युं  
 शरीर ॥ घर धन कुटुंब तजि टेह राग, धास्यो तो संजम योग याग ॥  
 ॥ १५ ॥ क्षिणमां खोयुं जेणे चरण रत्न, जो नवि कीधु नारीथि यत्न ॥  
 माटे तजिए जवि काम नेह, मोटो शत्रु जग जाणि एह ॥ १६ ॥ सहु  
 काले विषये जल चराय, तव आतम सर अति मलिन थाय ॥ संव-



रता प्रगटे विमल रूप, करि निर्जरणा होय शांति नूप ॥ १७ ॥ करो  
शुरू रमण थिरथोज आप, विषये विष उतरे जाय पाप ॥ मनसुख  
आतम गुण मग्न होय, शाश्वत शिव संगे अचल सोय ॥ १८ ॥

ढाल पाचमी (५) प्यारा प्राण थकी मुनिराज ॥ ५ राग ॥

दुविध परिग्रह राग तज्यो जेणे, विषय राग नवि रोपजी ॥ ज्ञानाटिक  
निज गुणमा तृप्ति, लढ्यो गांति रस पोप ॥ धन्य नर तेहोजी, धीर वीर  
गंजीर गुणना गेहोजी ॥ ५ आंकणी ॥ १ ॥ लहे निर्वाण शाश्वत सुख  
पूरण, परमानंद विलासोजी ॥ इद्र चक्री धनवंत नरो पण, तरुणीना थया  
दासो ॥ धन्य० ॥ २ ॥ सहज शुधातम तत्त्व विचारी, नरजव  
सफलो कीजेजी ॥ सार सिद्धांतनो रहस्य एह ठे, विषय विकार  
तजीजे ॥ धन्य० ॥ ३ ॥ श्लेषम लिपटी जे मद्कीका, उरुवा समरथ नां-  
हिजी ॥ विषय श्लेषम जे लेपाया, तेह रह्या जव माहि ॥ धन्य० ॥ ४ ॥  
लेश मात्र पण कामे वश जे, ते नहि मूक्ति समथ्यजी ॥ काम तज्यो  
जेणे तेणे शिव साध्यो, अटल वीरज परमथ्य ॥ धन्य० ॥ ५ ॥ जे सुख  
विलसे ठे वितरागी, ते सुख तेहिज जाणेजी ॥ विष्टा कर्दममा नित रद्द-  
तो, जुन महा सुख माने ॥ धन्य० ॥ ६ ॥ इडोन सुख जुंन न जाणे, तेम  
विषयी सुर शिवनुजी ॥ विषय तजि शिव सुख थच्यासो, कारज सिद्धे  
जीवनुं ॥ धन्य० ॥ ७ ॥ ठे प्रतिबंध विषयनो जवलो, मोह उलंग्यो न  
जायजी ॥ तजि विषय निज गुण अवलवे, मोह समूद्र तराय ॥ धन्य० ॥ ८ ॥  
कामे अध थया ठेजे नर, धरत न जव जय शंकाजी ॥ विषय तजी जिन  
वचने लीना, ने जव जीरु थवका ॥ धन्य० ॥ ९ ॥ मुत्र पुरीप वलि पित  
श्लेषम, चरवी हाड ने सूजोजी ॥ मेद मासने वमन करंरुक, नरनारी  
तन वृजो ॥ धन्य० ॥ १० ॥ लाल वहे मुख होष्ट डुगधी, नाके अशूची  
वहेतीजी ॥ चर्म मफित तन प्यारी नारी, मनधी मूको वहेती  
॥ धन्य० ॥ ११ ॥ कीरम कीट बहु रोगनु स्थानक, कूरु कपटनी खा-

णीजी ॥ हीण मती होय एहना रसिया, एह दुर्गतिनी निशानी  
 ॥ धन्य० ॥ १२ ॥ चळ पग जीवने उरपरी खेचर, पास पिजर वंधा-  
 याजी ॥ युवती पास पिजरमां पडना, दुर्गति सनमुख धाया ॥ धन्य०  
 ॥ १३ ॥ प्रत्यक्ष क्षिण क्षिण दुःख अनुभवतो, मोह वशे पण जाण्युं-  
 जी । पण नवि ठोडे एह वड अचरिज, किम विषये मन मान्युं ॥ धन्य०  
 ॥ १४ ॥ युवती ससर्गी नर जे जे, बहु विध दुःख संसर्गजी ॥ काल  
 अनंत संसार कंतारे, जमि लहे नवी अपवर्ग ॥ धन्य० ॥ १५ ॥ वि-  
 द्धी संसर्गे उंदरने, नहि सुपने सुख साचुंजी ॥ नारी संगे तिम ज-  
 गमां सुख, न कहुं एह नवि काचुं ॥ धन्य० ॥ १६ ॥ वासुदेव शिवने  
 वलि ब्रह्मा, कार्तिक इंद्र ने चंद्रोजी । देव विद्याधर ने बहु वलिया,  
 तेम नरींद्रसुरीद्रो ॥ धन्य० ॥ १७ ॥ जगमां बहु मोटा कहेवाया, पण ते विषय  
 वश व्यसनेजी । नारीना किंकर हुइ रहिया, धिक्क अनीठ एह रसने ॥  
 धन्य० ॥ १८ ॥ परिसह ताप सहें ठेवहु जन. बहु विध तप करिकीरियाजी ॥  
 अविवेकी ए विषय न त्यागे, प्राण रावण परिहरिया ॥ धन्य० ॥ १९ ॥  
 श्लाची निज कुटुंबने त्यागी, विवेक राखि न शकीयोजी ॥ जेणे निज  
 आत्म गुण न संजादयो, तेह विषयमां ठकीयो ॥ धन्य० ॥ २० ॥  
 नारी देखी मुनि अणचलतो, देखि श्लाची वृश्योजी ॥ विषय वि-  
 कार असार लहीने, निरमल शिवमग सूइयो ॥ धन्य० ॥ २१ ॥ पाप  
 चरित्र बहु नरनां सुणि पण, जे जन विषय न त्यागेजी ॥ जिनवर व-  
 चन हृदय नवि धाखा, तस किम अनुभव जागे ॥ धन्य० ॥ २२ ॥  
 चपल जिवित जल विंडु सम ठे, यौवन संध्या रगोजी ॥ सरिता पूर  
 समान ठे लच्छी, तजिये विषय अनंगो ॥ धन्य० ॥ २३ ॥ कर्दममा  
 खूतो जिम नागो, सर तीर देखे किनारोजी ॥ पण खूतो आपे थयो  
 परवश, होइ शके नहि न्यारो ॥ धन्य० ॥ २४ ॥ विषय कर्दममां जे  
 खूता, परवशता दुःख वेदेजी ॥ श्री जिन धर्म कांडक पण जाण्यो, पण  
 नहीं वीर्य उमेदे ॥ धन्य० ॥ २५ ॥ श्री जिन वचन सुधारस पीतां

निज गुणमा लय लागी जो ॥ परम निवृत्तो पदवी मनसुख, लहशे तेह  
सोचागी ॥ धन्य ॥ १६ ॥

॥ ढाल ठठी ॥ (६)

॥ श्री श्री मंदिर साहेव सुणजो जगत क्षेत्रनी वातो रे ॥ ए राह ॥

विषय रसे आशक्त थयो जेह, उद्वृत्त वेप करीनेजी ॥ जव वन  
नव नव नाटक नाचे, पुद्गल रूप धरीनेजी ॥ श्री जिनवचन सुधारस  
पीजे, सहज सधर्म रमीजेजी ॥ श्री जिन० ॥ १ ॥ दश द्रष्टाते दुर्लज  
नरजव, काल अनंत आव्योजी ॥ रत्नी थकी पणी अधिक धर्मनो,  
योग प्रमादे गमाव्योजी ॥ श्री जिन० ॥ २ ॥ विषय कागमे जगजन  
उगिया, रत्न चिंतामणि हरियुंजी ॥ पण मूरख मनमां नवि चेत्यो,  
चरण रयण न समरियुंजी ॥ श्री जिन० ॥ ३ ॥ चित्रसाधु वधव  
विषये वश, अशुभ नियाणु धाखुंजी ॥ ब्रह्मदत्त चक्री पद पामी,  
सजम सार विसाखुजी ॥ श्री जिन० ॥ ४ ॥ नरके परवशताए बहु  
दुःख, आक्रंद करत विलापोजी ॥ तेम विषये वश सजम चुके, ते  
सहे जवदव तापोजी ॥ श्री जिन० ॥ ५ ॥ चित्र मुनि सजम रस  
खीनो, रग रसे शिव लहियुंजी ॥ ते देखी मुज अधिक उमाहे, स-  
जम मन गहगहियुंजी ॥ श्री जिन० ॥ ६ ॥ विषय मद्यपाने जे पर-  
वश, धिक धिक ते नरनारीजी ॥ नरकादिक दुःख आप स्विकारे,  
सजम सार विसारीजी ॥ श्री जिन० ॥ ७ ॥ श्री जिनवचन अमृत  
रस त्यागी, तित्र विषय मद्य पीवेजी ॥ चउगति काल अनंत जमे  
ते, परवश दुःखजर जीवेजी ॥ श्री जिन० ॥ ८ ॥ ईंद्रिय बल घाटु  
जस अतिगय, मरण निकट पण जाणेजी ॥ बहु नारीथी विषय जा-  
चता, डुरेबल विण सनमानेजी ॥ श्री जिन० ॥ ९ ॥ जेहनुं महातम  
ईंद्र न खंमे, जगमा किरती जेहनीजी ॥ एवा पण स्त्रीए वश कीधा,  
तो मति रूफि न तेहनीजी ॥ श्री जिन० ॥ १० ॥ राजुख देखि रथ-

नेमी चलयो, संजम चित्त विसाखुंजी ॥ राजुल वचन अंकुशे वृद्धयो,  
 संजममां चित्त वाह्युजी ॥ श्री जिन० ॥ ११ ॥ धिक धिक विषय  
 विकारज एह्वो, शिवतरु मूल नसावेजी ॥ एम जाणी मतिवंत चे-  
 तने, विषय सामो न जावेजी ॥ श्री जिन० ॥ १२ ॥ मेरु सम उढ  
 धीर पुरुषने, काम मदने चलाव्याजी ॥ एम मन रुरिने जे दुर रहेता,  
 ते सजम घर आव्याजी ॥ श्री जिन० ॥ १३ ॥ सर्प सिद्ध गजने कोइ  
 जीते, बलवतो धीर वीरजी ॥ तोपण तेणे कदर्प न जीत्यो, जीते  
 अनुजवी वीरजी ॥ श्री जिन० ॥ १४ ॥ प्यास अनादि विषम विप-  
 यनी, ए संसरण स्वचावजी ॥ चंपल ईडी मनने जीते, रमत शुद्धा-  
 तम चावजी ॥ श्री जिन० ॥ १५ ॥ कामे तापित जे नर होवे,  
 कलमल अरती नूखजी ॥ दाह व्याधि मरण बहुविध दुख, इष्ट  
 वियोग असूखजी ॥ श्री जिन० ॥ १६ ॥ काम तजे तस दूःख जाय  
 सव, तन होये विमल निरोगजी ॥ इष्ट संजोग मले बहु विवधी ॥  
 सुगुरु मित्र सयोगजी ॥ श्री जिन० ॥ १७ ॥ पंच ईदि त्रण योग सवर  
 करी गले कातर मत वाहोजी ॥ आठे कर्म निर्जरणा करवा, लीजे  
 नरजव लाहोजी ॥ श्री जिन० ॥ १८ ॥ रे जीव ! तुं शु अथ थयो ठे,  
 के धत्तूरो पीधोजी ॥ के सन्निपातनो चाखो ठे तुज, संजम लाज न  
 लीधोजी ॥ श्री जिन० ॥ १९ ॥ अमृत सम जिन धर्म ते विपवत,  
 विषय विष अमृत मान्योजी ॥ तो तुं हिज पोतानो दुश्मन, निज  
 हित कांइ न जाण्योजी ॥ श्री जिन० ॥ २० ॥ ज्ञान विज्ञानने किरती  
 तारी, पोते किम विणसावेजी ॥ ठोरु उतावलथी सहु विषयो, सद्-  
 गुरु तुज समजावेजी ॥ श्री जिन० ॥ २१ ॥ ज्ञायकता निज थिर उप-  
 योगे, धर्म शुक्ल उढ धारीजी ॥ आतम सपति लहिने मनसुख,  
 होवे शिव अधिकारीजी ॥ श्री जिन० ॥ २२ ॥

## ॥ ढाल ( ७ ) सातमी ॥

चेतन ए तन कारमु ॥ तुमे ध्यावोने ॥ विषय तजी जिन धर्म ॥  
 जविक नीत ध्यावोने ॥ अनत काळे नरजव लह्यो ॥ तुमे ॥ प्रगट  
 करो शिव शर्म ॥ जविक ॥ १ ॥ चितामणी सम ए लही ॥ तुमे ॥  
 धर्म योगता सार ॥ जविक ॥ विषय विकार वशे रही ॥ तुमे ॥  
 नवि करो तेह असार ॥ जविक ॥ २ ॥ सूकी जप्मने कारणे ॥  
 तुमे ॥ ढाले चंदन कोय ॥ जविक ॥ गज ठोडि वकरो ग्रहे ॥ तुमे ॥  
 ते महा मूरख होय ॥ जविक ॥ ३ ॥ धत्तूर वावे आगणे ॥ तुमे ॥  
 जखेडि कल्पवृक्ष ॥ जविक ॥ मूर्ख शिरोमणी ते कह्यो ॥ तुमे ॥  
 कोण कहे तस दक्ष ॥ जविक ॥ ४ ॥ आयु चपलथी चेतने ॥ तुमे ॥  
 तजि प्रमाद थइ सूर ॥ जविक ॥ आतम सत्ता निरमली ॥ तुमे ॥  
 चिदानद रस पूर ॥ जविक ॥ ५ ॥ जीती दुर्जय विषयने ॥ तुमे ॥  
 दर्शन ज्ञान चरित्त ॥ जविक ॥ सम जावे रंगे रमो ॥ तुमे ॥ पचा  
 चारे मित्त ॥ जविक ॥ ६ ॥ अणगमता गमता बहु ॥ तुमे ॥ विषयो  
 पंच प्रकार ॥ जविक ॥ रमण तजि सवि एहनुं ॥ तुमे ॥ चित्त चप-  
 लता वार ॥ जविक ॥ ७ ॥ शब्द सुणी मन अति चले ॥ तुमे ॥ इष्ट  
 अनिष्टे जाय ॥ जविक ॥ रूप देखी तेम जाणिए ॥ तुमे ॥ थिर चित्त दण  
 नरहाय ॥ जविक ॥ ८ ॥ गधनी धधमा मन चले ॥ तुमे ॥ चूके ध्याननी ता-  
 ल ॥ जविक ॥ रस विषयथो एम बहु ॥ तुमे ॥ आवे खोटा रूपाळ ॥ जविक ॥  
 ॥ ९ ॥ फरस विषय रस जस लग्यो ॥ तुमे ॥ जव जंजालनु मूल ॥ जविक ॥  
 तेम ए पंचे जाणिए ॥ तुमे ॥ जीवने नहि अनुकूल ॥ जविक ॥ १० ॥  
 ए पुद्गल परजाय ठे ॥ तुमे ॥ अथिर चपल परतंत्र ॥ जविक ॥  
 शाश्वत तु ज्ञायक सदा ॥ तुमे ॥ सहजानद स्वतंत्र ॥ जविक ॥ ११ ॥  
 काम न एहशुं ताहरे ॥ तुमे ॥ पुद्गल जग जटकाय ॥ जविक ॥ काम  
 सहजात्म स्वजावमा ॥ तुमे ॥ अविचल विमल सदाय ॥ जविक ॥  
 ॥ १२ ॥ आतम अंग विचारिए ॥ तुमे ॥ अमर अजर अकलंक

॥ ज्विक० ॥ कास घाम शीत जित नहीं ॥ तुमे० ॥ निर्जय अटल  
 निशंक ॥ ज्विक० ॥ १३ ॥ वेदन जेदन वेदना ॥ तुमे० ॥ जूख न  
 प्यासान दाह ॥ ज्विक० ॥ इत्यादिक दूषण विना ॥ तुमे० ॥ आतम  
 अमल अंगाह ॥ ज्विक० ॥ १४ ॥ शांति समाधी मय सदा ॥ तुमे० ॥  
 अव्यावाध अनंत ॥ ज्विक० ॥ गुण अनंतनो नाथ ए ॥ तुमे० ॥  
 वीरज परम अत्यंत ॥ ज्विक० ॥ १५ ॥ पूरण सुखमय आतमा ॥ तुमे० ॥  
 ठोनी पुद्गल आश ॥ ज्विक० ॥ समय न चूको चित्तधी ॥ तुमे० ॥  
 अनुभव वील विलास ॥ ज्विक० ॥ १६ ॥ विषय तजी निजगुण रम्या  
 ॥ तुमे० ॥ दुःखथि निवर्त्या तेह ॥ ज्विक० ॥ आठ करम दल ठेदिने  
 ॥ तुमे० ॥ विलसे शिव निज गेह ॥ ज्विक० ॥ १७ ॥ लेश मात्र ए  
 विषयनो ॥ तुमे० ॥ मति करजो विश्वास ॥ ज्विक० ॥ (गेहेर) घेर  
 गंजिर समूझसां ॥ तुमे० ॥ पग धरि शी सुख आश ॥ ज्विक० ॥ १८ ॥  
 दु ख समूझसा ते पड्या ॥ तुमे० ॥ क्लेश अथाह निवास ॥ ज्विक० ॥  
 विषय थकी रही वेगला ॥ तुमे० ॥ करो गुण ज्ञान विलास ॥ ज्विक० ॥  
 ॥ १९ ॥ लागती आग बुजावतां ॥ तुमे० ॥ होवे न काई विनाश  
 ॥ ज्विक० ॥ जोर वधे जव आगनु ॥ तुमे० ॥ वस्तुनी किम रहे आश  
 ॥ ज्विक० ॥ २० ॥ देवु रोग अग्नि प्रते ॥ तुमे० ॥ वधवा न दीजे मित्त  
 ॥ ज्विक० ॥ सावधान समये रही ॥ तुमे० ॥ लखि सुत जाव अमित्त  
 ॥ ज्विक० ॥ २१ ॥ समय प्रमाद तजी करो ॥ तुमे० ॥ संजम रग अ-  
 जंग ॥ ज्विक० ॥ मनसुख मुक्ति पुरे रहो ॥ तुमे० ॥ शिव प्रिय रंग  
 सुचंग ॥ ज्विक० ॥ २२ ॥

ढालः (८) आठमी ॥ वीर कहे गौतम सुणो ॥ ए देशी ॥

वीर वचन हृदये धरो, जवदधि तारक जेहेरे ॥ विषय विकार  
 निवारतां, प्रगटे निज गुण गेहेरे ॥ वीर० ॥ १ ॥ सुत शीख विज्ञानने,  
 वलि वैरागने चूकीरे ॥ बहु नर जवदधिमां पड्या, विषयधी लाजने  
 मूकीरे ॥ वीर० ॥ २ ॥ रोग सकल प्रतिकारने, विषयी नर सुख मा-

नेरे ॥ आतम गुणनी विराधना, होय तेह नवि जाणैरे ॥ वीर० ॥३॥  
 उद्धट वेधे नारीने, देखी डुरमती चूक्योरे ॥ जेणे जिन वचन  
 हृदय धर्यां, राग प्रथमयी मूक्योरे ॥ वीर० ॥ ४ ॥ सुख शाश्वत  
 जे मुक्तिनुं, उज्ज्वल जश जेम इदूरे ॥ ठंकि मोही उपचारथी, सूख  
 विषय मधुविदूरे ॥ वीर० ॥ ५ ॥ प्रजलित विषय अग्नि थकी, चा-  
 रित्र सारने वालीरे ॥ सम्यक दर्श विराधीने, अनंत संसारमां घाळीरे  
 ॥ वीर० ॥ ६ ॥ मूरख आपही आपने, होय महाडुःख दातारे ॥  
 विषय थकी जे डुर रहे, तेहने कोइ न अशातारे ॥ संसार अरण्य  
 विहामणो, विषय तृष्णाएनचाव्यारे ॥ चौद पूरवधर मुनिवरा, श्रेणि चू-  
 कि निगोदमा आव्यारे ॥ वीर० ॥७॥ हा हा विषय ए विषम ठे, प्रति-  
 वधी डुःख पाम्यारे ॥ ईड्र जाल पेरे, चपल ए, ठंढ्या तेणे डुःख  
 वाम्यारे ॥ वीर० ॥ ८ ॥ फरस वर्ण रस गंध ठे, शब्द संस्थान प्रजा-  
 यरे ॥ पुद्गलना सहु जाणिये, क्षिण क्षिणमा चदलायरे ॥ वी० ॥  
 ॥ १० ॥ क्षिणमां लागे मनोइ ए, क्षिणमां होय अणगमतारे ॥  
 उगणी पुद्गल परिणति, मूढ ए संगे रमतारे ॥ वीर० ॥ ११ ॥ ए  
 सगे रंगे रम्या, तेहने सुखनी न ठायारे ॥ जेह तजे एने मूलथी, ते  
 सुख, सिंधु समायारे ॥ वीर० ॥ १२ ॥ चपल विषय ईड्रधनुष्यने,  
 विजली सम ठे रूपरे ॥ अधकार समारमा, मूझी पडे जड चूपरे ॥  
 ॥ वीर० ॥ १३ ॥ राग छेप दोय कोपता, थापे जेटलुं वृ खरे ॥ विप  
 शत्रु पिशाचथी, अग्निथी एहवु न दू खरे ॥ वीर० ॥ १४ ॥ रागादिक  
 वश जे थया, डु ख सघला ठे तेहनेरे ॥ रागादिकने वश नहीं, सवि  
 सुख होवे, एहनेरे ॥ वीर० ॥१५॥ क्लेशनो हेतु संसार ठे, एहनो हेतु ठे  
 क्लेशोरे ॥ ज्ञानी क्लेश रहित सदा, नहि जस राग आवेशरे ॥ वीर०  
 ॥ १६ ॥ राग आश्रवतुं, मूल ठे, डुविध कर्मनी आयरे ॥ त्यागी राग  
 संवर करे, आठ करम क्षय थायरे ॥ वीर० ॥ १७ ॥ मोह थई त्रिया  
 रूपमा, जगमा माही ठे जाखरे ॥ ईडादिक त्रिय वश पढ्या, अनादि

जरमनी दाखरे ॥ वीर० ॥ १८ ॥ विषय जुजंगे मंखीया, तृष्णां अ-  
 भिमां जखतारे ॥ लक्ष चोराशी योनीमां, जमता दुःखे कलकलतारे ॥  
 ॥ वीर० ॥ १९ ॥ ग्रीष्म काल संसारमां, विषय उष्ण अति वायुरे ॥  
 हित अहित अजाण ते, दुःख सहे चउ गति आयुरे ॥ वीर० ॥ २० ॥  
 इंद्रिय अश्व चपल घणा, उन्मत उन्मग गामीरे ॥ अणशिल्या  
 पह अश्वना, उपर वेठा थइ स्वामीरे ॥ वीर० ॥ २१ ॥ तेहने सूख  
 किहां थकी, अश्व ईच्छाए चाखेरे ॥ पण सुखिया ज्ञानी सदा, जेह  
 सम शेरी निहाखेरे ॥ वीर० ॥ २२ ॥ उदाशीनता मार्गथी, सहजे शिव  
 घर लहियेरे ॥ मनसुख आप स्वतंत्रथी, सुमति रंगे रमि रहियेरे ॥  
 ॥ वीर० ॥ २३ ॥

ढाल नवमी ( ए ) पंथको निहांलुंरे बीजा जिन तणोरे ॥ ए देशी ॥

विषय पिपासीत नारिना जे हुवारे, जव वन सर कीच मांझ ॥  
 छोटे पण तृप्ती पामे नहींरे, खुति रक्षा दुःखि त्यांढ ॥ विषय निवा-  
 रोरे वेगे चेतनेरे, जेम लहो पद निरवाण ॥ विषय० ॥ १ ॥ धृति  
 रसी करि बांधे इंद्रिय अश्वनेरे, राखे आप स्वतंत्र ॥ अश्व रक्षक  
 बांधे जेम अश्वनेरे, तो उधमात तजंत ॥ विषय० ॥ २ ॥ धृति रज्जु  
 बांधी इंद्रिय वश करीरे, चाखे सम शिव पंथ ॥ इंद्रिय सर्व लगावे  
 संयम काममांरे, ते साचो निग्रंथ ॥ विषय० ॥ ३ ॥ मन वच काय  
 योग त्रण वश विनारे, संयम जागे अवरुद्ध ॥ उन्मत गज वश विण  
 तोडे वागनेरे, चल योगे शील अशुद्ध ॥ वि० ॥ ४ ॥ तेथी थिर  
 कीजे त्रण योगनेरे, होय न चरणनी हाण ॥ दरशन ज्ञान चरण  
 व्यक्ति होवेरे, होशे परम कल्याण ॥ वि० ॥ ५ ॥ विषयथी जेम जेम  
 होये विरामतारे, तेम तेम दोषनी हाण ॥ निर्मल गुण जे जे अंशे  
 थयारे, ते होय मोक्ष निदान ॥ वि० ॥ ६ ॥ तेणे डुकर कारज कसुं मानि-  
 येरे, तरुणपणे धरि धीर ॥ विषय सैन्या हृषि जे निर्जय थयारे, ते  
 जगमां वडवीर ॥ विषय० ॥ ७ ॥ धर्म शुक्ल शुच तेहने परिणमेरे,



प्रिय नयणे नः हषाय ॥ अंतर इष्टि धरेः शुद्धात्ममारे, परमात्मः पद  
पाय ॥ वि० ॥ ७ ॥ नमो नमो हुं शुद्धासंजमधरारे, शीखान् चूक्या

जेह ॥ हु, शेषक तु निशदिन तेहनोरे, पान्या परम पद तेह ॥ वि० ॥  
रे जीव अधिकुं हुं तुजः शुं कहुंरे, चाहे जो शिव आरोग्य ॥ ठंनि

विषयः सेवी उदासीनतारे, लहेशो निज गुण जोग ॥ वि० ॥ १० ॥  
विष्णु विषय कषाय होवे नहीरे, तेम वलि जाय प्रमाद ॥ विरती रती

आवे चेतन धररे, धिर योगे जाय विषाद ॥ वि० ॥ ११ ॥ विषय मूल  
कहु सत्तारनुरे, तेहनं ममतारे मूल ॥ तेहनु मूल अज्ञान जडेदिनेरे,

लहो शिवपद अनुकूल ॥ वि० ॥ १२ ॥ चतुर न चूको चित्तथी  
चेतनारे, दरश ज्ञान उपयोग ॥ वीर्य अनत ते रम्य सरूपमारे, चरण

रमण रस जोग ॥ वि० ॥ १३ ॥ अव्यावाध अनंत स्वतंत ठेरे, आत्म  
अंग अजग । अमर अजर निर्द्वंद्व नीकल सदार, जो लहो निज गुण

रग ॥ वि० ॥ १४ ॥ सद्गुरु संगे रगे नित्य रहीरे, कीजे श्रुत अच्युत ॥ विषय  
रमण तजि आत्म स्वभावमारे, करो अनुभव सुविवास ॥ वि० ॥

॥ १५ ॥ काळादिक अतिचार नीवारीनेरे, परम विनय सन्मान ॥  
करि श्रुत सद्गुरु पासे शीखियेरे, होय श्रुतज्ञान सुध्यान ॥ वि० ॥

॥ १६ ॥ आत्म अनात्म लखी सहु तत्त्वनेरे, नय निक्षेप प्रमाण ॥  
ममना नासे जासे सहज शुद्धात्मतारे, विषय गये सुख गण ॥

॥ १७ ॥ उदाशीन सम्यक् मृगाकनीरे, सेवि पुनी नरनार ॥ वीर्य  
अनंत अचल शाश्वत लहीरे, होवे शिव चरतार ॥ वि० ॥ १८ ॥ मतीधर

“गीरधर” आग्रहथी रच्योरे, सुखकर एह प्रबंध ॥ “दाहोद”  
नगरे जवि हित कारणेरे, साधर्मीशु संबंध ॥ वि० ॥ १९ ॥ आगणीश पासठ

शुच परिणामधीरे, स्यादवाद नय सार ॥ श्री जिन आगम अरथ  
विचारतारे, कीधो सार उद्धार ॥ वि० ॥ २० ॥ शुक्ल पुनम श्रावण रवी दिन

रच्योरे, विषय विषहर तंत्र ॥ नव ढाले नव निधि लहो रगशुरे, विषनाशक  
महामंत्र ॥ वि० ॥ “मनसुख” शिव सुख होशे शाश्वतुरे, तजजो विषय

विकार ॥ दर्शन ज्ञान चरण निर्मल करीरे, जीव लहो जयकार ॥ वि० ॥ २१ ॥

॥ ॐ श्री वर्धमानाय नमः ॥ ॐ श्री परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ ॐ श्रीमान् मनसुखलाल हरिलाल कृत ॥

॥ ममत्व परिहार विषय ॥

॥ बंदो, दोहा, चौपाई, ढाल विगेरे रागोमां ॥

(१) ॥ झुतविलंबित बंद ॥

|| 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 | 5 |

विमल आत्म धर्म सुदायकं, अचल मोक्षसुखं शिव नायकं ॥ नमिय  
 आदिश्वरं शिव दायकं, सुख शुधातमं जोगत दायकं ॥१॥ सुखन आ-  
 तम धर्म विना कदा, अचल आत्म ज्ञान सुसंपदा ॥ विण शुधातम  
 सुख न कोइ हे, थिर शुधातम तारक होइ हे ॥ २ ॥ हित न ज्ञान  
 विना दु ख आपदा, लहत ज्ञानि सदा निज संपदा ॥ दुःख न राग  
 विना जगमां कदा, ममत आत्म ज्ञान न हे तदा ॥ ३ ॥ सधत  
 राग विरोध ममत्तयी, ममत ज्या नहि राग तिहां नथी ॥ सधत  
 सुख शुधातम बोधयी, रहत एक अमंद प्रमोदथी ॥ ४ ॥ जजत  
 आत्म स्वभाव सुचेनथी, डुरित दोहगनो तस ज्ये नथी ॥ अकल  
 राग विना अग्रतंत्र ठे, सकल सिद्धि तणो वर मत्र ठे ॥ ५ ॥ परम  
 पावन आत्म ज्ञावमा, रहित राग नरा शिव दावमा ॥ सहित आत्म  
 सुधारस पावना, लहत केवल एक सुजावना ॥ ६ ॥ सुनय आत्म स्व-  
 ज्ञाव सदा लखे, विगत राग शुधातम ए चखे ॥ समय साधि सहो  
 निज सपदा, कुनय त्याग हरे जव आपदा ॥ ७ ॥ सुनय साधन से-  
 वत जे नरा, परम आत्म पावन ते खरा ॥ जमग त्यागि रहे नहि  
 दुःखमां, सुमग सेवि रहे मनसुखमा ॥ ८ ॥



कुमत होय तिहां जव वास ठे, सुमत संग रहे न विनाश ठे ॥ ममत जावत ध्यावत हे समं, ममत नाशत ईंद्रियको दमं ॥ २ ॥ गति न चार करे ममता विना, शिव न कोइ लहे समता विना ॥ निफल ज्ञान क्रिया समता विना, अफल साधुपणो समता विना ॥ ३ ॥ तप न दे फल मोह विकारिने, सुमत सेव तुं एह विचारिने ॥ तिरथ शेवक जे ममता तजे, तिरथ शेवक ते समता जजे ॥४॥ दरश ज्ञान चरित्त सुतीर्थ ठे, अवर जेद अनेक विचित्र ठे ॥ ममत होवत त्यां व्रतको नहीं, ममत ज्यां नहि त्यां व्रत हे सही ॥५॥ सुमत राखत श्रीजिन आणको, सुमत देवत हे निरवाणको ॥ सुमत आतम ज्ञान विना नहीं, ममत नाशत कर्म रहे नहीं ॥ ६ ॥ लख न लक्षण ओरकुं संगहे, दरव लक्षण आप स्वयं ग्रहे ॥ अवर काज न साज न कोइ हे, निज सकारण कारज होइ हे ॥ ७ ॥ चरण होय न आत्म अज्ञानिने, चरण आवत निर्मम ज्ञानिने ॥ विमल ज्ञान तिहां नहि राग ठे, सुमत त्यां ममता नहि लाग ठे ॥ ८ ॥ ममत दोष अनंतानि माय ठे, विमल बोधथि दोष नसाय ठे ॥ तिक्षण जेद विज्ञान सुवाणथी, हरिय मोह महादल ता नथी ॥ ९ ॥ तजि प्रमाद सदा उपयोगमां, सजिय आत्म सुधारस जोगमां ॥ अचल जे थिर ध्यान सदा धरे, मनसुखे शिव सुंदरि ते वरे ॥

( ४ ) ॥ ललित बंद ॥

सकल शास्त्रनो सार ए सही, सुनय सेविने आत्मता लही ॥ ममत त्यागिने जागिए सदा, परम आत्मनो लाज द्यो मुदा ॥ २ ॥ धरम ते खरो छीविधे दया, जरम त्यागिने राखिए सया ॥ शुक्ल ध्यानमा घ्याइ आतमा, सकल आपणी पाइए रमा ॥१॥ अचल योगथी शुद्धता लहो, सहज जावनी शांतिमा रहो ॥ तजि प्रमादने लागिए सदा, विमल ध्यानमा एकता मुदा ॥३॥ जगत जीवथी वैर ना करो, सम स्वभावमां थीरता धरो ॥ विमल मंत्र ए ज्ञान हुं सदा, सुंथिर धारणा राखिए मुदा ॥४॥ सम सभावमां साध्य सिद्धि ठे, सम सभावमां सर्व रिद्धि ठे ॥

विषमता तजो राग, द्वेषनी, विपत्ति नाशार्थे बध, क्लेशनी ॥५॥ मर्मतः त्या-  
गथी आत्म सिद्धि, ते, गुण अनेतनो जोग, तिद्धि, ते ॥ मसत ना, करे  
आत्म शुद्ध तो, सुमति आदरे आत्म बुरु तो ॥६॥ विमलः देवनी सार  
प्रेरणा, सुमति प्रेरिये शुद्ध हेरणा ॥ इग न, चूकिये वीर्य राखिय,  
अटल ध्यानमां शांति चाखिय ॥७॥ कटत मोह तो आत्म ध्यान-  
थी, झटक कर्मकुं ब्रह्म वाणथी ॥ पटक क्रोधकुं खाति पानसें, हृषि  
मिथ्यातक ज्ञान जाणसें ॥८॥ पुरुष आपणी शुद्धता ग्रहे, सवि वि  
जावनो जोर ना रहे ॥ ॥ रिखवदेवनी हो कृपा सदा, मनसुखें लहो  
आत्म संपदा ॥ ९ ॥

(५) ॥ राग चौपाई ॥

उत्तम नरजव लाहो लीजे, आतम अनुजवें प्योखा पीजे ॥ आल  
पंपाख जजाख निवारी, शुद्धातम पदमां मति धारी ॥ १ ॥ समय प्र-  
माद न कीजे जाई, पुद्गल चिंता सर्व मिटाई ॥ सिद्ध समान शु-  
द्धातम घ्यावो, परम महोदय पूरण पावो ॥ २ ॥ श्वेत दिग्गवर भेरे  
नांही, ए जरु पर परिणति पर ठांही ॥ ते कारण मत-जेद न कीजे,  
ज्ञायक ज्ञान सुधारस लीजे ॥ ३ ॥ ज्ञाता दरशन निरमल कीजे,  
ज्ञायक चरण रमण रस लीजे ॥ चेतन वीर्य अचल करि राखो, अ  
जर अमर अबाधित चाखो ॥४॥ निज गुण पक्काव अखय अखूटं, निज  
धन सहज अनंत अतूट ॥ अजय निराकुल आतम घ्यावो, तजि ममत  
हु ख'पाप गमावो ॥ ५ ॥ वचन आलाप विकार निवारो, दुष्ट  
विकल्प न मनमां धारो ॥ देह चपलता कांई न कीजे, सकल समय  
अनुजव रस लीजे ॥ ६ ॥ वेद किताब पुराण न जाणुं, सुमता संगे  
मुज मन मान्यु ॥ व्याकरण ठद किहा शीखीजे, मनसुख शिव  
कमला रस लीजे ॥ ७ ॥

( ६ ) ॥ अफिल्ल ठंड ॥

चरण कमल कमला वसे श्री जिन पासने, तसु आणाधर जेह लहे शिव वासने ॥ आतम ज्ञाने आत्म लखे निज संपदा, प्रगटे सम्यक बोध मिटे सहु आपदा ॥ १ ॥ नाशे अविरति रोग विरति रति अति लहे, मीटे दूष्ट प्रमाद जोग थीरता रहे ॥ पुद्गलसँ नहि काम आ-  
राम शुद्धात्ममां, सकल समय निज कार्य सधाम महात्ममां ॥ २ ॥  
ते कारण निज शुद्ध स्वभाव सदा लखो, सकल समय परमाद तजी  
अमृत चखो ॥ परपरिणति निज मानी मिथ्यामति अति बनी, आवी अ-  
विरति नारि ते दुःख देती घणी ॥ ३ ॥ रागादिक कषाय अनेक ते ऊपज्या,  
चउ गति भ्रमण प्रतंत्र शत्रु सम ते बन्या ॥ सदगुरु विण जग जीव  
न जाणे आत्मता, कुगुरु वशे जटकाय दूःख लहे अणठता ॥ ४ ॥ नय  
अनंतनी युक्ति न जाणे वापका, कुगुरुनुं फाव्युं जोर ठगे चही दोकना ॥  
विधि उद्यम जय वर्षोत्सर्ग अपवाद ठे, उजय मली अे सातनो  
आगम वाद ठे ॥ ५ ॥ ते नवि समजे बाल सुंझाया नित रहे, करि  
करुणा गुरुराज शुधात्मता कहे ॥ जाणि शुधात्म स्वरूपने ममता परि-  
हरो, सवि दुःख दोष विधाय सासय संपति वरो ॥ ६ ॥ लखतां  
आत्म स्वरूप आनंद अनंत ठे, सकल दोष दूःख नाश ससूख स्वतंत्र  
ठे ॥ उव्य सकलना जाणि विशेष स्वभावने, जेद विज्ञाने  
जेदि ग्रहो निज दावने ॥ ७ ॥ कर्त्ता अन्यनो नाहीं होवे कोइ कदा,  
आश्रित उव्य स्वभाव रहे ठे थिर सदा ॥ इह विधि निश्चय खायक  
सम्यक पद लहो, मनसुख शिव सहवास परम सूखमां रहो ॥ ८ ॥

( ७ ) ॥ मंदाक्रांता ठंड ॥

ज्ञानानंदं ममत विण तुं, एक अत्यंत ठेक ॥ कर्त्ता जोक्ता पर दर-  
वनो, तुं नथी ए विवेक ॥ व्यापे व्यापे ससस दरवे, कोइ व्यापे न के-  
मां ॥ ग्राह्यो ग्राहे सवि दरव तौ, जेहना तेह तेमां ॥ १ ॥ क्षेत्रे आपे

रहत सरवे, अन्य क्षेत्रे न जावे, जोगादि तो निज निज सदा, आपणा आप पावे ॥ त्यागो मिथ्या जर्म परनो, शुद्ध बीवेक धारी, साची वाणी विमल जिननी, सेविये सिद्धिकारो ॥ १ ॥

(८) ॥ स्वधरा ठंड ॥

में तो जेव्या जिणंदा वर विमल सदा मुक्तिना हेतु जाणी, नित्ये ध्याने रमावुं सकल समयमा चित्त आनंद आणी ॥ राग रोष निवारी ममत्त्व परिहारी शुद्ध आनंद लीजे, जाणी सत्ता सतती मनसुख सुखमां आपणा काज, कीजे ॥ १ ॥

(९) ॥ शालिनी ठंड ॥

ज्ञाने नाशे मोहनु जोर चारी, ध्याने आवे थीरता सिद्धिकारी ॥ माटे त्यागो पुद्गलोनो प्रसंग, तो ते पामो शुद्ध जावे सुरंग ॥ १ ॥

(१०) ॥ शार्दूलविक्रीणित ठंड ॥

हुं नित्ये अमलान ज्ञान रवि तु, म्हारे न को आपदा। जे जे पुद्गलनी परीणति सवे, म्हारो न जाणु कदा ॥ म्हारे काम नहीं कदा पर तणु, म्हारे महा सपदा। जूढयो जेह स्वरूप शुद्ध अपनु, मोडे मुझायो तदा ॥ १ ॥ को केनो नवि होय डव्य कवहू, सत्ता सदा शाश्वती। जोगी आप सदा ससपति तणो जोगेज जाणे ठती ॥ जूढया जर्म वशे रहे जन सदा, सेवी अनाणी गुरु। ना जूळे नर तेह जे विमल ठे, सेव्या सदा सद्गुरु ॥ २ ॥ सेवे जे समये शुधातम सदा, पावे महानदने। जाचे ना विषयो विकार कवहू, ठोडे द्विधा बंधने ॥ सेवो श्री जिन वाणि उज्वल महाआनंद दाई सदा प्रकांते नवि जोइए तव महा, जागे सुज्योती मुदा ॥ ३ ॥ सतोषे सुख ठे महान जगमां, ते तो सुज्ञाने मले। ईद्रोने पण सूख ए सम न ठे, एतो सकाले चले ॥ ज्ञाने ठे वर शांति साचि जिवने, शक्ती लखे आपणी। जागे जे परमाद ठोडि सममें, पामे रमा ते घणी ॥ ४ ॥

( ११ ) ॥ वसंततिलका बंद ॥

जे ठे विकल्प विधि ते सवि कर्म जाणो, ज्ञाता सदा थिर रहे  
निज शुद्ध ध्याणो । त्यागी ममत्व न करे खिण राग रोषं, आपा लखे  
शिव सदा सुख शांति पोषं ॥ १ ॥ कर्ता कह्यो जिव करे विविधे वि-  
कल्प, तेथी तजो डुर सवे कुविकल्प जल्प ॥ हुं ए मने सकल ठे  
बहु राग मूल. सारु बुरू सुख डुख नहि सानुकूल ॥ २ ॥ आत्मा  
लखे निज सदा शुध रूप ज्यारे, संचे न कर्म दल ते कदि को प्रकारे  
॥ तेथी जजो सुगुणे श्रुतज्ञान आवे, ध्याई लहो निज जली निधि  
सिद्धि थावे ॥ ३ ॥ संतोष तृप्ति सगुणे महानंद आपे, साचो शुधा-  
त्म अनुजौ सवि बंध कापे ॥ सेवे नरो थिर थई श्रि जिनंद वाणी,  
लावे तदा मनसुखे घर रिद्धि खाणी ॥ ४ ॥

( १२ ) ॥ मालिनी बंद ॥

ममत तजि सुज्ञाने ध्याशए शुद्ध रूपं, सकल विणति नाशे सेवता  
आत्म जूपं ॥ विगत मद कपाया शुद्ध स्याद्वाद वाणी, सकल ज्रम  
नशावे सेविय हेत आणी ॥ १ ॥ कुमत मद हटावे शुद्ध स्याद्वाद  
जावे, पुरण अचल रिद्धी आत्मनी आत्म पावे ॥ पर परिणति त्यागो  
आप आपे रमावे, सकल डुरित नाशे फेर संसार नावे ॥ २ ॥  
जरम वश जुळीने पुद्गळे आप मानो, नवि लहि निज रिद्धी राग  
रोपे अनाणी ॥ जमत जवदधोमां दूख जोगे प्रतंत, समय निज न जाणे  
जेद जाणे न तंत ॥ ३ ॥ मनुज जव लहोने शुद्धस्याद्वाद जाणो, परिणति  
समजावे सेविये शुक्ल ध्याणो । न रति अरति कीजे त्यागिए अन्य संग,  
मनसुख शिव संगे होय सिद्धी सुरग ॥ ४ ॥ हरत तिमिर मोहं  
शुद्ध स्याद्वाद ज्ञान, व्यय उतपति ध्रुवं प्रव्य सर्वे विनाणं ॥ सकल  
दरव जिन जे लखे शुद्ध ज्ञाने, ममत तस न होवे वर्चिते शुक्ल



घ्याने ॥ ५ ॥ निज निज परिणामे ड्रव्य कर्ता सदाए, न करत पर  
काम जाणिए शुद्ध न्याये ॥ करिय ममत चूढ्यो काज ए ठे हमारू,  
विण लखि निज काज सूख साचु न धाखुं ॥ ६ ॥ सत्तर तर चख्यो  
ठे ड्रव्य सर्वे प्रदेशे, सकल समय सत्ता कोइ केनी न खेसे ॥ अखय  
अकल आत्मा शुद्ध निश्चे सदाए, विमल सुथिर जोता मोहनो नाश  
थाए ॥ ७ ॥ नवि फुरत असत्ता रोकशे कोण शक्ती, विपरितमति  
त्यागो जागशे ज्ञान व्यक्तो ॥ बहिर जवळगे जे राखशे आत्म ड्रष्टी,  
तव लग न लहे ते आत्म आनंद पूष्टी ॥ ८ ॥ सदरवधि अजेदे सर्व  
वर्ते प्रजाये, न पर दरवमा ते जाय आवे कदाये ॥ इम लखि निज  
सत्ता शुद्ध आनंद लीजे, मनसुख शिव सगे रंगमां अंग जीजे ॥ ९ ॥

( १३ ) ॥ शिखरणी उंद ॥

सम ज्ञानादीमा निज पद अहुं हुं निरमलुं, कदा रागे रोये पर  
परिणतीमां नवि जलु ॥ ठतो ज्ञाता हुं तो ममत पर ड्रव्ये किम करू,  
लही शिक्षा साची सुगुरु वचनोने न विसरूं ॥ १ ॥ तरे ते तो साधू  
अप्रमत सजावे अनुसरे, चूढ्या ते जे मूढा परिणति पराई मन धरे ॥  
कहुं वारे अगे सुमुनि सगुणोमा थिर रहे, वसे धर्मे शुक्ले अहट  
डुहटे तो नवि रहे ॥ २ ॥ उदासिन्ने चाले परम सम शेरी सरल ठे,  
सदा जे ए मार्गे तस न जय होवे विमल ठे ॥ लहे साचो ज्ञाता  
सुथिर मन जेनुं विनित ठे, रहे जे आणामा जव ज्रमणथी जे जिरुत  
ठे ॥ ३ ॥ न सेवुं हिंसा हु निज पर कदाए ड्रुविधथी, सदा यत्ना  
राखु ड्रुविध सवि प्राणोनि विधिथी ॥ क्कमादी धर्मोने सकल समये  
हु ड्रढ धरू, रहु शुद्धात्मामा मनसुख सजावे शिव वरू ॥ ४ ॥

( १४ ) ॥ हरिणी उद ॥

पर परिणती त्यागी आपे रहे समजावमा, जिव तव लगे बंधे  
नाही कदापि विजावमा । जब लग करे रागं रोष फसे पर जावमां,

जिव सुख दुःखं माने ठे ज्यां शुचाशुच जावमां ॥ १ ॥ जिव तव लगे संचे कर्म रहे नसजावमां, ममत तजिने ते माटे तुं जुले म विजावमां गुण परजयो जे ड्रव्योना नहीं परमां जले, सनिज निजमा व्यापे ठे ते कदापि नवी टले ॥ २ ॥ पर दरवमां जोगो नाही मिथ्यामति मानि ले, निज दरवमां जोगो साचा सुजाण ते जाणिले ॥ चपल परमां श्याने थाउं निधी निज चूकिने, विकल्प तजो जव्यो सर्वे मिथ्यामति मूकिने ॥ ३ ॥ नरजव लह्यो ठे पून्ये तो सदागम सेवजो, निज पर जुदा जावे जेदी अनूजवने जजो ॥ जिन समयमां जे जे जाख्युं यथार्थ पणे ग्रहो, मनसुख सुखे रिद्धी सिद्धी सदा शिवमां रहो ॥४

॥ ढाल ( १ ) पहेली ॥ नव तत्त्व विकल्प अधिकार ॥

॥ जविजन सेवज्योरे ॥ ए देशी ॥

विकल्पधर संसारि जेरे, आस्रवधारी जीव । निर्विकल्प ज्ञानी तथा रे, सिद्ध अनंत सदीव ॥ १ ॥ तत्त्व विचारणारे, शुधनय सार विचार, जवदुःख वारणारे ॥ ए आकणी ॥ जस विकल्प शक्ति नहींरे, ते जरु जाण अजीव । शुच विकल्पथी पुण्य ठेरे, अशुचथी पाप सदीव ॥ तत्त्व ० ॥ २ ॥ खिण खिण विकल्प जे करे रे, तेतो आस्रव चाल ॥ रोके विकल्प संवरीरे, वांधी आस्रवपाल ॥ तत्त्व ० ॥ ३ ॥ पुद्गल जोग इहा तजे रे, देश विकल्प विनाश ॥ शुद्धातम तृती लहीरे, करे निर्जरा खास ॥ तत्त्व ० ॥ ४ ॥ विकल्प विधि डढ-धारणारे, बंध कह्यो जिनराज ॥ अडविध वांधे कर्म ते रे, चार प्रकार अकाज ॥ तत्त्व ० ॥ ५ ॥ सर्व विकल्प विनाशथीरे, पूरण मोक्ष स्वरूप ॥ इम जाणी नव तत्त्वनेरे, जवि मूदो जव कूप ॥-तत्त्व ० ॥ ६ ॥

ढाल (१) बीजी ॥ नव तत्त्व कर्ता पद अधिकार ॥

॥ क्यु जाणुं क्युं बनी आवशे ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनो, कर्ता ममतावत हो विनीत । ते संसारी जीव ठे, जाखे श्री जगवत हो विनीत ॥ १ ॥ तत्त्व विचार सुधारसी, सेवो श्री जिन आण हो विनीत ॥ जब दुःख दोहगता टले, करता तत्त्व प्रतीत हो० । तत्त्व विचार सुधारसी ॥ ए आंकणी ॥ ज्ञानी ने वली सिद्ध ते, नहीं करम करतार हो० । शुद्ध परिणामीकता तणा, सकल समय करतार हो० ॥ तत्त्व० ॥ २ ॥ होय अचेतन द्रव्य ते, नहि परना करतार हो० । निज गुण पञ्जावना कहा, सकल समय जरतार हो० ॥ तत्त्व० ॥ ३ ॥ शुज परिणामे पुण्यने, करे सुगुण नर कोय हो० । अशुज करम पापी करे, मूढ पुरुष जे होय हो० ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ शुजाशुज किरियारसी, कर्ता आस्रववत हो० । शुजाशुज तजतो सदा, संवरवत महत हो० ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी, निज गुण जोगे लीन हो० । निश्चरणा करता कह्यो, आतम ज्ञाने पान हो० ॥ तत्त्व० ॥ ६ ॥ पुद्गल परिणति ऊपरे, करे राग रस बध हो० । करता भावित कर्मनो, ते अज्ञानी अंध हो० ॥ तत्त्व० ॥ ७ ॥ पर परिणति रस त्यागिने, शुद्धातम द्रव्य होय हो० । ममता त्यागी मूलथी, करे मोक्षपद सोय हो० ॥ तत्त्व० ॥ ८ ॥

॥ ढाल (३) त्रीजी ॥ नव तत्त्व चोक्ता पद अधिकार ॥

॥ प्रथम गोवाल तणे जवेजी ॥ ए देशी ॥

शुजाशुज परिणामनोजी, जोगी ते जगजीव । जोगी ज्ञानादिक तणाजो, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ १ ॥ सुगुण नर धारो तत्त्व विचार, ए जिन शासन सार जविक जन धारो तत्त्व विचार ॥ ए आंकणी ॥ जोगदशा जरु अव्यमाजी, होय नहीं त्रिहु काल ॥ विषय कयाय कुजोगतेंजी, बाधे पाप कराल ॥ सुगुण नर० ॥ २ ॥ संजम दान दया-

दिमांजी, जोगे रागानंद ॥ गुणबंध तेथी करेजी, करुणा रसीयो संत ॥ सुगुण नर० ॥ ३ ॥ मिथ्या अविरतिने वलीजी, ग्रहे अज्ञान कषाय । धरी प्रमादने जोगवेजी, पुद्गल जाव सदाय ॥ सुगुण० ॥४॥ रागादिक युत जोगवेजी, योग क्रिया मन लाय । आस्वधारी ते कह्योजी, सूत्रे श्री जिनराय ॥ सुगुण० ॥ ५ ॥ पर परिणति रस त्यागतोजी, मग्न शुधातम मांछ । निज गुण संवर जोगमांजी, शिवपद साधे उठांद् ॥ सुगुण० ॥ ६ ॥ इंद्रिय जोग इहा तजीजी, विलसे निज गुण जोग । तेह निर्जरावत ठे जो, तजतो कार्य अयोग ॥ सुगुण० ॥ ७ ॥ ममत करे पर अव्यमांजी, जोगे राग विरोध । उद बंधन ते तो करेजी, लक्ष्यो न आतम बोध ॥ सुगुण० ॥ ८ ॥ पर वस्तु ममता तजेजी, न करे राग विरोध । शुद्धातम अनुभव करेजी, मोक्ष होय अविरोध ॥ सुगुण० ॥९॥ पुद्गल जोग तजी सवेजी, जोगे शुद्ध स्वभाव । थिर अनुभव अन्यासथीजी, प्रगट मोक्ष सजाव ॥ सुगुण० ॥ १० ॥

ढाल (४) चौथी ॥ नव तत्त्व ग्राहकता अधिकार ॥

॥ श्री युगमंधर विनवुरे ॥ ५ राग ॥

तन धन आदि वस्तु बहु हो लाल, पर परिणति अनंत हो चेतनजी लाल । ममता जावे जे ग्रहे हो लाल, ते संसारी जंत हो जीवणजी लाल । श्री जिन वचन विचारिण हो लाल ॥१॥ ए आकणी ॥ शुद्ध रूप निज नवि लख्युं हो लाल, गाणे राग विरोध हो चेतनजी लाल ॥ ग्राहक तेह विजावनो हो लाल, मिथ्या मती जे अवोध हो जीवणजी लाल ॥ श्री जिन० ॥ १२ ॥ पुरण शुद्धता आत्मनी हो लाल, सहज अनंत प्रजाय ॥ हो चेतनजी लाल ॥ शुद्ध परिणामीकता ग्रहे हो लाल, ज्ञानी सिद्ध सदाय हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥३॥ जरु निज गुण पळाव ग्रहे हो लाल, ग्रहे न अन्य स्वभाव हो चेतनजी लाल ॥ तेह अचेतन अव्यनो हो लाल, शा-

श्रुत एह स्वभाव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ४ ॥ संजम दान  
 दयादिके हो लाल, ग्रहतो शुच परिणाम हो चेतनजी लाल ॥ पुण्यवंत  
 ते जाणिए हो लाल, करतो उत्तम काम हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ५ ॥  
 विषय कपाय अशुद्धता हो लाल, ग्रहे मिथ्यात अनाण ॥ हो चेतनजी लाल  
 पापी जीवनी परिणती हो लाल, आत्म स्वरूप अजाण हो जीव-  
 णजी लाल ॥ श्री० ॥ ६ ॥ शुजाशुच परिणामने हो लाल, ग्रहे ते आस्त्र-  
 वंत हो चेतनजी लाल ॥ आत्म शुद्धता जे ग्रहे हो लाल, संवर-  
 वंत महंत ॥ हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ७ ॥ ईद्रि विषय रस  
 नवि ग्रहे हो लाल, ग्रहे शुद्धातम जाव ॥ हो चेतनजी लाल ॥ वि-  
 विध विज्ञाव वहावतो हो लाल, निर्जरवंत स्वभाव हो जीवणजी  
 लाल ॥ श्री० ॥ ८ ॥ ग्राहक पर परजायनो हो लाल, रागी अनाणी  
 जीव हो चेतनजी लाल ॥ मिथ्या अविरति आदिथी हो लाल ॥  
 करतो बंध सदीव हो जीवणजी लाल ॥ श्री० ॥ ९ ॥ शुद्ध अखंड  
 स्वभावनो हो लाल, ग्राहक पूर्ण प्रजाय हो चेतनजी लाल ॥  
 शुद्धातम अनुभव करे हो लाल, लहे मोक्ष असहाय हो जीवणजी  
 लाल ॥ श्री० ॥ १० ॥

॥ ढाल पांचमी ( ५ ) ॥ नव तत्त्व व्यापकता अधिकार ॥

॥ नमि नमि नमि नमि वीनवु ॥ ए देशी ॥

व्यापे पर परिणती विषे, रागादिकमा जीव लाखरे ॥ वलि मिथ्या  
 अज्ञानमा, ठे संसारी सदीव लाखरे ॥ पर पद व्यापकता तजो, लहि  
 आतम अधिकार लाखरे ॥ पर पद० ॥ १ ॥ ए आकर्णी ॥ जे परमां  
 व्यापे नहीं, गुण पज्जवथी अजेद लाखरे ॥ व्यापे निज निज पज्जवे,  
 ज्ञानी सिद्ध अखेद लाखरे ॥ परपद० ॥ २ ॥ वर्णादि पज्जव विषे, व्यापे  
 पुद्गल दर्व लाखरे ॥ धर्म अधर्म आकाश ते, अजीव प्रजाये सर्व लाखरे  
 ॥ परपद० ॥ ३ ॥ व्यापे शुच परिणाममा, पुण्यवत जे होय लाखरे ॥ व्या-

पे अशुच परिणाममां, पापवंत ते जोय लाखरे ॥ परपद० ॥ ४ ॥ व्यापे राग विरोधमां, ते तो आस्रववंत लाखरे ॥ व्यापे शुद्ध स्वभावमां, संवर-  
वंत महंत लाखरे ॥ परपद० ॥ ५ ॥ निज गुण जोगे व्यापतो, इच्छे नहीं परजोग लाखरे ॥ तेह निर्जरावंत ठे, दुविध दया थिर योग लाखरे ॥ परपद० ॥ ६ ॥ व्यापे पुद्गल परिणते, द्रढ मिथ्या अज्ञान लाखरे ॥ अत्रत प्रमाद कषायथी, बंध करे दुःख खाण लाखरे ॥ परपद० ॥ ७ ॥ निरमल निज गुण पज्जवे, व्यापे थइ थिर थोच लाखरे ॥ चले न शुद्ध स्वभावथी, मोक्ष अकप अक्षोच लाखरे ॥ परपद० ॥ ८ ॥

॥ ढाल ( ६ ) ठठी ॥ नव तत्त्व रक्षकता अधिकार ॥

॥ जांकरिया मुनिवर ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिनोरे, रक्षक ते जग जीव ॥ रक्षक शुद्ध स्वभाव-  
नोरे, ज्ञानी सिद्ध सदीव ॥ सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार, जेम  
लहिण चवपार सुन्यायी अप्पा कीजे तत्त्व विचार ॥ १ ॥ जे पर  
गुण राखे नहींरे, जड धर्मादि अजीव ॥ रक्षक निज गुण पज्जवारे,  
पुद्गल आदि सदीव ॥ सुन्यायी० ॥ २ ॥ रक्षक शुच परिणामनोरे,  
पुण्यवंत नर होय ॥ राखे अशुच परिणाम जेरे, ते पापो सुख खोय ॥  
॥ सुन्यायी० ॥ ३ ॥ राग द्वेष रक्षक सदारे, ते तो आस्रववंत ॥  
रक्षक निज गुण शुद्धतारे, संवरवंत महंत ॥ सुन्यायी० ॥ ४ ॥ रक्षक  
निज गुण जोगनोरे, चहे न ईद्रिय जोग ॥ धर्म शुक्ल करि निर्जरारे,  
रक्षक सजम योग ॥ सुन्यायी० ॥ ५ ॥ ममता पुद्गल आदिनीरे,  
राखे जर अज्ञान ॥ राग द्वेष राखे सदारे, साधे बंध विधान ॥  
॥ सुन्यायी० ॥ ६ ॥ राखे निज गुण पज्जवारे, राखे न राग विरोध ॥  
शुद्धात्म अनुभव करेरे, लहे मोक्ष अविरोध ॥ सुन्यायी० ॥ ७ ॥

॥ ढाल ( ७ ) सातमी ॥ नव तत्त्व रमणता अधिकार ॥

॥ ह्वेरे राणी पदसावती ॥ ए राग ॥

वर्णादि रागादिमां, रमण करे जग जीव । रम्य रमण शुद्धात्ममां,

ज्ञानी सिद्ध अतीव ॥ वचनामृत रस सेवीष, स्याद्वाद सुखकार,  
 शुद्ध नये जिनराजना, दीख मांहे उदार ॥ वचनामृत० ॥ २ ॥ ए  
 आंकणी ॥ रमण स्वजाव न जेहमां, तत्त्व अजीव कहाय ॥ रमे सदा  
 शुच जावमा, पुण्य करि सूख पाय ॥ वचनामृत० ॥ ३ ॥ अडदश  
 स्थानक पापमां, रमे अशुच परिणाम ॥ पापवंत ते जाणीष, दुःखी  
 महा दुःखधाम ॥ वचनामृत० ॥ ३ ॥ मिथ्या अविरतिमा रमे, धरि  
 अज्ञान कथाय ॥ जोग क्रिया परमादमां, रमता आस्रव आय ॥  
 ॥ वचनामृत० ॥ ४ ॥ रमण तजी परजावनु, रमे शुद्धातम मांघ ॥  
 संवरधारी ते कसो, शिवपद माही उठांछ ॥ वचनामृत० ॥ ५ ॥  
 विषय रमण नत्रि आदरे, निज रमणे सतोष ॥ करे निर्जरा कर्मनी,  
 लहे शुद्धता पोष ॥ वचनामृत० ॥ ६ ॥ पुद्गल परिणतिमां रमे,  
 मिष्ठ अविरति अनाण ॥ लहे न आतम शुद्धता, वधे कर्म अमान ॥  
 ॥ वचनामृत० ॥ ७ ॥ रमण शुद्धातम जावमा, धर्मशुक्ल थीर होय ॥  
 अचल अकंप सदा रहे, मोक्ष लहे नर सोय ॥ वचनामृत० ॥ ८ ॥

ढाल आठमी (८) ॥ नव तत्त्व दान विषे अधिकार ॥

॥ आ ससार असाररे जीवना आ० ॥ ए देशी ॥

जे निज परने नित दियेरे, ईडि विषयनु दान ॥ ते संसारी जीव  
 ठेरे, आतम तत्त्व अजाणरे प्राणी धारो तत्त्व विचार ॥ ए संसार  
 असार रे प्राणी धारो० ॥ २ ॥ ए आकणी ॥ आतम सपति सुख  
 दियेरे, ज्ञानी सिद्ध सदाय ॥ दाता पद जेहमा नहीरे, तत्त्व अजीव  
 कहायेरे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ दायक शुच परिणामनेरे, निज परने जे  
 होय ॥ पुण्यवंत ते जाणियेरे, उपचारे सुखी सोयरे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥  
 देत अशुच परिणाम जेरे, ते दु खदाय अजाण ॥ ते पापी जग जीव  
 ठेरे, शीख स्वजाव अजाणरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ शुजाशुच परिणामधी  
 रे, सुख दुःखनो दातार ॥ आस्रववत ते जाणियेरे, ते न लहे नवपा-

रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ तजि शुजाशुज कल्पनारे, दाता संवर जाव ॥  
 रोके आस्रव आवनेरे, सहजातम सद्जावरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ इंद्रिय  
 जोग लिये नहीरे, नवि दे इंद्रिय जोग ॥ देत शुधातम जोग जेरे,  
 निर्जरणा थिर योगरे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ राग विरोध तणो सदारे,  
 निज परने दातार ॥ वलि अज्ञान मिथ्यातनोरे, कर्मबंध करताररे  
 ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ आतम संपत दान देरे, त्यागी ममता जाव ॥  
 सकल समय स्व प्रजायनोरे, अनुभव मोक्ष स्वजावरे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥  
 ढाल नवमी (९) नव तत्त्व लाज विषे अधिकार ॥

॥ कहे साहुणी सुण कन्यकारे धन्या० ॥ ९ देशी ॥

पुद्गल वस्तु लाज लेरे अप्पा, कर्मबंधनो तेम ॥ विषय कषाय  
 कुलाज लेरे ॥ अप्पा ॥ संसारी जीव एम सुज्ञानीअप्पा सेवो सुतत्त्व  
 विचार ॥ तजि मिथ्या उपचार सुमग सेवो दुष्ट प्रमाद निवार ॥१॥  
 ए आंकणी ॥ निज शक्ति व्यक्ति तणोरे ॥ अप्पा ॥ लेवे लाज सदाय ॥  
 ज्ञानी ने वलि सिद्धजीरे ॥ अप्पा ॥ सकल समय सुखदाय ॥ सु-  
 ज्ञानी० ॥ २ ॥ लेइ न जाणे लाजनेरे ॥ अप्पा ॥ तेह अचेतन दर्व ॥  
 लाज लीए शुज जावनोरे ॥ अप्पा ॥ पुण्यवत तजि गर्व ॥ सुज्ञानी०  
 ॥ ३ ॥ दु.ख कषाय अज्ञाननोरे ॥ अप्पा ॥ मिष्ठ प्रमाद अ-  
 पाय ॥ आदि लाज लीए सदारे ॥ अप्पा ॥ पापी जीव कहाय  
 ॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ लाज शुजाशुजनो लीयेरे ॥ अप्पा ॥ अध्यवसाय  
 असंख ॥ दुविध कर्मनी आयमारे ॥ अप्पा ॥ आस्रवधारी रंक  
 ॥ सुज्ञानी० ॥ ५ ॥ आत्म शुद्धता लाज लेरे ॥ अप्पा ॥ रोके आस्रव  
 आव ॥ तजि ममता निज संवरेरे ॥ अप्पा ॥ राखे शुद्ध स्वजाव  
 ॥ सुज्ञानी० ॥ ६ ॥ इंद्रिय जोग त्यागी लीयेरे ॥ अप्पा ॥ निज गुण जोग  
 सुलाज ॥ शुद्ध निजातम जोगतारे ॥ अप्पा ॥ कर्म निर्जरा लाज  
 ॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥ मिथ्या अज्ञान कषायनोरे ॥ अप्पा ॥ लाज



श्रविरति खेत ॥ वंधे आठे कर्मनेरे ॥ अर्प्या ॥ जरु सम जेह अचेत  
 ॥ सुज्ञानी ० ॥ ८ ॥ ममता ठेदी मूलथीरे ॥ अर्प्या ॥ राग द्वेष जरु  
 नाश ॥ लाज शुद्धातम जावनोरे ॥ अर्प्या ॥ अनुभव मोक्ष विलास  
 ॥ सुज्ञानी ० ॥ ए ॥

ढाल दशमी ( १० ) नव तत्त्व उपजोग विषे अधिकार ॥

॥ सहजानदीरे आतमा ॥ ए देशी ॥

पुद्गल गुण उपजोगमा, वरते ममतारे वत ॥ राग द्वेष विषये  
 रसी, ते संसारीरे जंत ॥ तत्त्वामृत रस अनुभवो, छुष्ट विज्ञाव पला-  
 य । आतम, परमातम लहे, शिव सपति सुख पाय ॥ तत्त्वा० ॥ १ ॥  
 ॥ ए आकणी ॥ ज्ञानादिक उपजोगमां, ज्ञानी सिद्ध महत ॥ निज  
 परिणति रस ममता । अक्षय काल अनंता ॥ तत्त्वा० ॥ २ ॥ जस उपजोग  
 शक्ति नहीं । ते जरु जाण अजीव ॥ शुद्ध परिणति उपजोगतो । पुण्यवत  
 ते जीव ॥ तत्त्वा० ॥ ३ ॥ खिण खिण होय अशुचनो । पापीने उप-  
 जोग ॥ तेम होय आस्रववंतने । शुचाशुच उपजोग ॥ तत्त्वा० ॥ ४ ॥  
 संवरवत शुद्धात्ममा । करि निज गुण उपजोग ॥ पर परिणति रस  
 रोकने । साधे सयम योग ॥ तत्त्वा० ॥ ५ ॥ शुध निज गुण उपजोगमां ।  
 करे निर्जरा शुद्ध ॥ तजि परगुण उपजोगने । सयम राखेरे बुद्ध  
 ॥ तत्त्वा० ॥ ६ ॥ पुद्गल गुण उपजोगमां । रहे सदा लयलीन ॥ कर्म  
 वंध तेहिज करे । ज्ञान विना मति हीन ॥ तत्त्वा० ॥ ७ ॥ आतम  
 गुण उपजोगमा । अनुभववत सदाय ॥ मुक्त होय अरु कर्मथी ।  
 परमातम पद पाय ॥ तत्त्वा० ॥ ८ ॥

ढाल अगोप्यारमी ( ११ ) नव तत्त्व वीर्य विषे अधिकार ॥

॥ रूपज जिनेश्वर प्रीतम माहरोरे ॥ ए देशी ॥

करण वीर्य फोरे जगजन सदारे । बाधक जावे वाख ॥ आतम  
 वीरज परमा फोरतारे । कर्मबंधनी चाल ॥ आत्म वीरज सजाखो

परवदूरे । प्रगटे अन्वय सिद्धि ॥ चल वीरजे सवि जपाधि धरिरे ।  
 थिर वीरजे होय सिद्धि ॥ १ ॥ ॥ ५. आंकणी ॥ तनु मन वच इन्द्रिय  
 विषय विपेरे । फोरे वीर्य सदायः ॥ तनु आदि चल पुद्गल दल विपे  
 रे । वीर्य चले दुःख पाय ॥ आत्म० ॥ २ ॥ फोरे वीर्य असंयम कार्य-  
 मारे । ते ससारी जीव ॥ स्वगुण पञ्जवमां वीरज फोरवेरे । ज्ञानी सि-  
 द्ध सदीव ॥ आत्म० ॥ ३ ॥ निज पर करता थइ नवि फोरवेरे । वीर्य  
 रहित ते अजीव ॥ शुभयोगे फोरे वीरज सदारे ॥ पुण्यवंत ते जीव  
 ॥ आत्म० ॥ ४ ॥ पाप कार्यमां अहनिश फोरवेरे । करण वीरज चित्त  
 चाह्य ॥ पापवंत जन तेहने जिन कहेरे । लखे न न्याय अन्याय  
 ॥ आत्म० ॥ ५ ॥ शुभाशुभ परिणामे फोरवेरे । करण वीरज धरि राग  
 ॥ आत्मवधारी मंद ते जाणिपरे । पुद्गल रंगे लाग ॥ आत्म० ॥ ६ ॥  
 संवरी संयम योगे फोरवेरे । लब्धि वीरज निज शुद्ध ॥ प्राण हणे न-  
 हि दुविधे जीवनारे । रहे निज पद अविच्छेद ॥ आत्म० ॥ ७ ॥ निज  
 गुण योगे जोगे फोरवेरे । लब्धि वीरज मतिवंत ॥ चलमल पुद्गल  
 जोग इहा तजेरे । करे निर्जरा संत ॥ आत्म० ॥ ८ ॥ मिच्छ अविर-  
 ति प्रमाद कषायमारे । तिम वल्लिजोगे जेह ॥ करण वीरज चल  
 करि फोरे नरा रे । बंध करे अरु तेह ॥ आत्म० ॥ ९ ॥ शुद्ध निज  
 गुण पञ्जव स्वतंतमारे । अचल वीरज थिर योग ॥ पामे मोक्ष अकंप  
 सजावथीरे । लहे परम पद जोग ॥ आत्म० ॥ १० ॥ ढाल अगियार  
 माहे नव तत्त्वनारे । दाख्या जाव उदार ॥ जाणी तजशे जेह विजा-  
 वनेरे । सेवि उपादेय सार ॥ आत्म० ॥ ११ ॥ निज गुण पञ्जव थिर-  
 ता रमणमारे । धरशे जे शुभ ध्यान ॥ शिव संगे रंगे मनसुख रहेरे  
 लहेशे परम कल्याण ॥ आत्म० ॥ १२ ॥ संपूर्ण ॥

॥ मदाक्रांता उंद ॥

॥ बाध्या कर्मों ममत करिने देह पंचे प्रकारे ॥ ईड्री पचे मन वच  
 तनु बंध व्यक्ती विकारे ॥ आवे ते तो ममत सहिते एक काले उदे

ते ॥ जाणे जीवो पुढगल क्रिया काज कीधुं ह्मे प ॥ १ ॥ माटे त्या-  
 गो ममत मलने आत्मता शुद्ध जासे ॥ वेद जेदं पुढगल विषे आत्म  
 शांती प्रकाशे ॥ मिथ्या त्यागी अचल सुखमां शुद्ध आनंद लीजे ॥  
 सिद्धी पामे निज पर लखी आत्म ध्याने रमीजे ॥ २ ॥ जोगे कीधु  
 ममत वशथी मे कखुं मूढ माने ॥ जोगोने जे डु ख सुख सदा ठे मने  
 एम जाणे ॥ आठे कर्मो तणि विधि सवी डव्य जावे विचारी ॥ सा  
 थे आवे उदय डुविधे जव्य लेजो विचारी ॥ ३ ॥ आपा आपे सकल  
 समये आपमां आप मानो ॥ जे ठे जेना गुण परजयो तेहना त्यां व-  
 खाणो ॥ साची सत्ता लखि समयमां शुद्ध आनंद लीजे ॥ त्यागी  
 हिंसा स्वपर डुविधे धर्म शुक्ले रमीजे ॥ ४ ॥ धर्मो राखो स्व-  
 पर जिवना जाव हाणी न कीजे ॥ प्राणो राखो चित धरि दया ड-  
 व्य हिंसा तजीजे ॥ राखे साची चटक चितमां संयमे काज सीधे ॥  
 वूके ते तो धरि प्रमत्ता पुढगली रंग लीधे ॥ ५ ॥ आ काळे ठे मदद  
 सुतनी जव्यने शांति दाई ॥ माटे सेवो मन वच तने आत्ममां हेत  
 लाई ॥ सेवो साचा समदरशि जे शुद्ध बोधाधिकारी ॥ वेगे पामो  
 मनसुख सुखे आत्म संपत्ति जारी ॥ ६ ॥

॥ अफिल्ल ठंद ॥

॥ जोगोथी जे थाप तेह कहे में कखुं । ममत ग्रही मिथ्यात शुद्ध  
 पद वीसखुं ॥ जोगने जे जे थाप थयुं ते मुज प्रते । एम माने अज्ञानी  
 ममत मिथ्या मते ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोग पुरवळा वध ठे ।  
 क्रिया अनुक्रम उदय हुवे परतप्र ठे ॥ जीवे वांध्यु ममत्व मोहनीय  
 कर्मयी । समकाळे ते उदय होय लहे जर्मयी ॥ २ ॥ जोग क्रियानु  
 काम कखुं में मानतो । ज्ञानादिक निज काजनो रहे अजाणतो ॥  
 सुख स्वरूप शुद्धात्म लख्या विण डु-खि रक्षो । पुढगलमां लखि सुख  
 आव करमे ग्रहो ॥ ३ ॥ अष्ट करम दल वध अशुद्ध उपयोग जे ।

समकाले विपाक उदय होय जुगपदे ॥ समकाले दो विधयी उदय  
 पिठाणिये । तजि ममता अड कर्मनी शक्ति जानिए ॥ ४ ॥ पुद्गल  
 जरु चल पंत सदा परतंत्र ठे । रहे न राख्या कोइ ग्रहे मतिअध जे ॥  
 क्रिया क्लेश करि चाहे सुख पुद्गल विपे । कर्मवध वश उपजे  
 चलगति दश दिशे ॥ ५ ॥ आत्म अफरसी किम फरसे पुद्गल प्रते ।  
 ममता वश पर मानी निज मिथ्या मते ॥ पर परिणति किरियानी  
 ममता परिहरो । सुख निधान शुद्धात्म अनूचव अनुसरो ॥ ६ ॥  
 पुद्गल अथिर असारने ममताथी ग्रहे । मिष्ठ अनाण कपाय अवि-  
 रति पण रहे ॥ वधे प्रमादज दोष अनंता एहथी । वांधे कर्म अनंत  
 सुख तेहने नथी ॥ ७ ॥ अर्ध्यवसाय असख्यनुं ममता मूल ठे । तेहनुं  
 मूल अज्ञान आत्म प्रतिकूल ठे ॥ जेदज्ञान लहि शुरू ममत्व नि-  
 वारिये । आत्मता लखि शुरू विमल मति धारिये ॥ ८ ॥ जड अचे-  
 तन चेतन आत्म स्वभाव ठे । चेतनताथी जिन सकल परभाव ठे ॥  
 उदासीनता धारी रागादि परिहरो । मोह अरि दल ठेदि कर्म अड  
 दय करो ॥ ९ ॥ ज्ञायकता ठे ज्ञप्ति क्रिया शुरू आपणी । ज्ञेयार्थ  
 परिणाम तजो जे पापणी ॥ दरशन ज्ञान चरित्त वीरज थिर जावमां ।  
 मनसुख शिव विश्राम लहे द्रढ दावमां ॥ १० ॥

॥ आघा आम पधारो पूज्य अम घर वहेरण बेला ॥ ए राग ॥

ए हुं हुं ए एम अज्ञानी मिथ्या मतधर मानेजी ॥ में बीजाने  
 बीजे मुजने कखुं माने अजिमाने ॥ मोह निवारोजी ॥ लही शुरू  
 जेद विज्ञान निजात्म तारोजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ हुं बीजानो  
 बीजो म्हारो करता एम निरधारीजी ॥ हु तेह माटे तेमुज माटे डुरमति  
 एम निरधारी ॥ मोह ॥ २ ॥ म्हारूं कारज परथी होवे मुजथी परनुं  
 होवेजी ॥ धन कुटुंब देहादिक सर्वे मुजथी ठे एम जोवे ॥ मोह ॥  
 धन कुटुंब देहादिक पुद्गलने पोतानु मानेजी ॥ हुं माता पिता पत्नी-

नो देहादिकनो जाणे ॥ मोह० ॥ ४ ॥ हुं तुं वर्णादिकमां एकज वर्णा-  
 दिक सह मुजमांजी ॥ श्री जिन वचन लह्या विण मूरख सहतो  
 दू ख अरुजमा ॥ मोह० ॥ ५ ॥ वस्तु सकल चउ नेदे जाणे जे  
 जेहना ते तेहनाजी ॥ कोइना परमां जाय न आवे शुद्ध न्याय लहो  
 पहना ॥ मोह० ॥ ६ ॥ डव्य क्षेत्रने काल जाव चउ वस्तुना वस्तु-  
 माजी ॥ अनंत प्रजाय त्रिकाल एकमां डवे जेहना तेहमा ॥ मोह० ॥  
 ७ ॥ प्रथम डव्य स्वजाव एह ठे होय त्रिकाल अखंडजी ॥  
 निज प्रदेश स्वसत्ता राखे अनंत प्रजाय प्रचड ॥ मोह० ॥ ८ ॥  
 उपजे विणसे स्व स्वकाले गुण पज्जवनी व्यक्तीजी ॥ विपेशपणे  
 निज निज पज्जवनी जावे निज निज शक्ती ॥ मोह० ॥ ९ ॥ डव्या-  
 दिक ए चार सडव्ये अस्ति परनी नास्तिजी ॥ आठ पक्षना सात  
 सात एम जागा अस्ति नास्ति ॥ मोह० ॥ १० ॥ निज निज चार  
 निक्षेप डव्यना होय अजेद स्वजावेजी ॥ डव्य गुण परजाय आपणा  
 ते किम परमा जावे ॥ मोह० ॥ ११ ॥ अनुभव ज्ञान प्रमाणे निजपर  
 जेदि स्व डव्ये रहियेजी ॥ ममता मारी समता धारी मनसुख शिव-  
 सुख लहिये ॥ मोह० ॥ १२ ॥

### ॥ हरिगीत उद ॥

शुद्ध आत्मता अज्ञानथी नर ममत करि पुद्गल तणुं । करि राग  
 रोष विमोह अतिशय कर्म बंधन करि घणुं ॥ दुःख ताप बहु संताप  
 सहतो उपजि चउदे राजमा । बहु जन्म मरण कलेश जोगे रहे न  
 निज सुख काजमा ॥ १ ॥ शुद्धात्म ज्ञाने ममत नाशे सहज निज सं-  
 पति लहे । सवि राग द्वेष विमोह नाशे कर्म क्षय करि शिव रहे ॥ शुद्ध  
 ज्ञान विणु पुद्गल क्रियाथी होय सुख इम जाणिने ॥ रस रोष किरि-  
 या मांदि करतो काज आपणु मानिने ॥ २ ॥ करि में कराव्यु कखु  
 तेणे ठीक करुं करावुं ते करे । हुं करिश पोते वलि कराविश तेह क-  
 रशे चित धरे ॥ मन वचन काय त्रियोग एना जेद सत्तावीशथी ।

शुचि अशुचि कर्मथी जीव वंधे शांति निवृत्ति तस नथी ॥ ३ ॥ प्रथम  
 अंगे वीर जिनवर एम जाखे जाणिने । सुख पुरण अरथे आत्म स्थि-  
 रता सेविए सनमानिने ॥ अज्ञान विण नहि ममत परनुं ए विना न  
 मिथ्यात ठे । अविरति प्रमाद कषाय दोषो सर्वनो ए तात ठे ॥ ४ ॥  
 माटे लहि शुध आत्म ज्ञानने दरश चरण विमल करो । तजि राग  
 दोष विमोह दूषण उदासिन समपद वरो ॥ अज्ञान विण नहि दुःख  
 जगमा ज्ञान विण सुख को नहीं । शुध ज्ञान दरशन चरण सेवी पामिये  
 वर शिव मही ॥ ५ ॥ छादशांगनो सार एह ठे ममत तजिए वेगथी ।  
 मनसूख अमला शीवकमला लहे सहज संवेगथी ॥ ओगणीश पांसठ चैत्र  
 पूनम दोहदे मन रंगथी । स्वपर हितकर पर ममतहर रच्यो ठंद  
 उमंगथी ॥ ६ ॥

( संपूर्ण )

॥ ॐ परमगुरुच्योनमः ॥

॥ श्री सूत्र तत्त्वार्थ सार विचारनी ढालो लिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥

ब्रह्माणी वंदी वदू । स्यादवाद शुचि बोध ॥ तत्त्व अधिगम सूत्रथी ।  
 निर्मल आतम शोध ॥ १ ॥ वंदू वीर जिनेंझने । तीर्थपती जिनराज ॥  
 आतम वीर्य अचल लहुं । सिद्धे वंछित काज ॥ २ ॥ गोयम गणधर  
 पद नमुं । छादशांग करतार ॥ तसु लब्धि सुपसायथी । लखुं परम श्रुत  
 सार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ( १ ) पेहेली ॥ प्राणी एकल जावना जाव ॥ ए राग ॥

सम्यक दर्शन ज्ञाननुंरे । शुद्ध स्वभाव चरित्त ॥ मारग जाख्यो  
 मोहनोरे । आदरिये डढ चित्तरे ॥ प्राणी आतम शक्ति संजाल ।  
 मोहाधिनता वाररे ॥ प्राणी ० ॥ ए आकणी ॥ १ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्र

ठेरे । निश्चय आत्म अज्ञेद ॥ जेद रत्नत्रयी साधतारे । लहिये मोक्ष  
 अखेदरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ ए त्रण गुण निरमल करेरे । टाखि सकल  
 अतिचार ॥ ए त्रणमा एक न्यूनथीरे, केम लहिये जवपाररे ॥ प्राणी०  
 ॥ ३ ॥ जिन देशित सप्त तत्त्वनीरे, श्रद्धा रुची प्रतित ॥ निर्मल होवे  
 जेदनेरे, समकित कहिये मित्तेरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ नय निक्षेप  
 प्रमाणथीरे, आठ पक्ष शुचि बोध ॥ होवे जीवाटिक तणोरे, यथा  
 सूत्र आविरोधरे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ सम सवेग निरवेद ठेरे, आस्ता अ-  
 नुकपा होय ॥ शकादि दूषण विनारे, निशंकादि अरु जोयरे ॥ प्राणी०  
 ॥ ६ ॥ निसर्ग ने अधिगम थकीरे ॥ च्यार गतीमा धार ॥ जव्य स-  
 न्नि समकित लहेरे, लहि जिन शासन साररे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ जीवा-  
 जीवास्त्व बंध ठेरे, सवर निर्जर मुक्त ॥ उपयोगवत ते जीव ठेरे,  
 द्वीविध चेतना युक्तेरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ धर्म अधर्म आकाश ठेरे, पुद्-  
 गलने वलि काल ॥ पंच अजीव ए जाणियेरे, डव्य अचेतन जालेरे  
 ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥ काल विना खट डव्यमारे, अस्ति डव्य ठे पंच ॥  
 काल डव्य उपचारथीरे, एम खटनो होय सचरे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥  
 पर रमणे आस्त्व कहेरे, रागादिकनी आय ॥ अष्ट कर्मदल वर्गणोरे,  
 आत्म समूह जरायरे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥ जेद वेंतालीश तेहनारे, पच  
 ईडि चार कपाय ॥ पंच अत्रत त्रण जोग ठेरे, क्रिया पच्चीश मिलाय  
 रे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥ पयइ त्रिइ रस प्रदेश ठेरे, बंधना चार प्रकार ॥  
 आत्म बधे कर्मथीर, डव्य जाव विधि धाररे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ तजि  
 आस्त्व शुद्धात्ममारे, थिर उपयोग सुरंग ॥ सिद्ध समो निज ध्याव-  
 तारे, प्रगटे सवर अंगरे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ जेद सत्तावन्न तेहनारे,  
 पच समिति गुप्ति तीन ॥ परिसह वाविश जीततारे, क्वात्यादि दश  
 गुण लीनरे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥ चार जावना जावियेरे, चारित्र पंच  
 प्रकार ॥ सम सवर जे आदरेरे, तेइ तरे ससाररे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ खट  
 खट वाह्य अच्यंतरेरे, तप तपि निर्जरा थाय ॥ आत्म रमणे आत

मारे, सहजानंद उपायरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥ शुक्ल ध्यान धरि आतमारे,  
द्वय करि अष्टे कर्म ॥ पूर्ण व्यक्ति म्व प्रजायनीरे, करि विलसे शिवश  
र्मरे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥ सात तत्त्व एणि पेरे क्ह्यारे, नव ग्रथांतर माह्य  
पुण्य पाप दोय वंधथीरे, क्ह्या विशेषे त्यांह्यरे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥ नय-  
आदिक कांड वर्णवुरे, संक्षेप तत्त्व विचार ॥ मनसुख सम्यक् दर्शथीरे,  
लहिये शिवपद साररे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥

॥ दोहरा ॥

वस्तु अनंत धरम मयी । समकाले न कहाय ॥ नय वचने जो  
उच्चरे । तो कांड विरुद्ध न थाय ॥ १ ॥ पञ्जाव गौण दरव मूखे ।  
द्रव्यार्थिक ए जाण ॥ द्रव्य गौण पञ्जाव मूखे । पञ्जाव अर्थ वखाण ॥  
॥ २ ॥ नैगम संग्रह व्यवहारने, रूजुसूत्र ए चार ॥ द्रव्यार्थिक नय  
जाणिए । धारो एह विचार ॥ ३ ॥ शब्द समजिरूढने । एवंजुत  
ए तीन ॥ पञ्जाव नय मन धारतां । पडित होय प्रवीण ॥ ४ ॥

॥ ढाल ( २ ) वीजी ॥ श्री सुपार्श्व जिन वंदिये ॥ ए राग ॥

सकल वस्तुने जाणीए । चार निक्षेप समेत ललना ॥ न्यास क्ह्या  
ए वस्तुना । द्रव्य प्रजाय अज्ञेद ललना, तत्त्व द्रष्टि द्रढ राखीए ॥  
॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ नाम स्थापना द्रव्यने । जाव सहित होय च्यार  
ललना ॥ वस्तुना वस्तु विषे । शुद्ध निक्षेप विचार ललना ॥ तत्त्व० ॥  
॥२॥ उपचारे पण वस्तुना । दाख्या चार निक्षेप ललना ॥ सूत्रे विशेषे  
वर्णव्या । इहां दाख्युं संक्षेप ललना ॥ तत्त्व० ॥ ३ ॥ चार निक्षेपे वस्तुनो ।  
जिन्न जिन्न होय बोध ललना ॥ न्यास जे जेहना ते तेहमां । जाणो  
सदा अविरोध ललना ॥ तत्त्व० ॥ ४ ॥ नित्यानित्य वस्तु सवि ।  
तेम वलि एक अनेक ललना ॥ सत्य असत्य पणे सदा । वक्त अव-  
क्तव लेख ललना ॥ तत्त्व० ॥ ५ ॥ आठे पक्षे जाणीए । जिन्न जिन्न  
ससजंग ललना ॥ स्यादवाद एम जाणतां । लहिये समकित रंग



लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ ६ ॥ स्यादवाद परिणाममां । परिणमे वस्तु सदाय  
 लक्षणा ॥ आपे आप स्वरूपमां । वर्ते विण पर सहाय लक्षणा ॥  
 ॥ तत्त्व० ॥ ७ ॥ दोय प्रकार प्रमाण ठे । प्रत्यक्ष परोक्ष ते जाण  
 लक्षणा ॥ प्रत्यक्ष दोय प्रकारनुं । सर्वने देश वखाण लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥  
 ॥ ८ ॥ केवल सर्व प्रत्यक्ष ठे । देश श्रवधि मननाण लक्षणा ॥  
 मति सुत परोक्ष वखाणीए । प्रमेय मापे प्रमाण लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ ए  
 बीजां चार प्रमाण ठे । प्रत्यक्ष अनुमान वचन लक्षणा ॥ चोथुं उप-  
 मान जाणीए । ए चउ धारो मन्न लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ १० ॥ सकल  
 वस्तु प्रमेयने । जे मापे ते ज्ञान लक्षणा ॥ ज्ञान प्रमाण हृदय धरो ।  
 जेम नाशे दुर्घ्यान लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ ११ ॥ सकल तत्त्व निर्देशने ।  
 वलि स्वामित्व विचार लक्षणा ॥ साधेन अधिकरण जाणीए । स्थिति  
 विधान खट धार लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ १२ ॥ ए अनुयोगे आत्मनुं ।  
 दर्शन निर्मल होय लक्षणा ॥ धिरता आवे चरणमा । आतम तत्त्व  
 विलोय लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ १३ ॥ सत संख्या क्षेत्र फरसना । कालने  
 शतर जाग लक्षणा ॥ जाव ने श्रद्धपवहुत्वए । नव अनुयोगनो लाग  
 लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ १४ ॥ चउदश मार्गणामां करो । सम्यक तत्त्व  
 विचार लक्षणा ॥ निर्मल सुतरस ऊपजे । लहिये दर्शन सार लक्षणा  
 ॥ तत्त्व० ॥ १५ ॥ एम अनुयोगने अनुगमे । प्रगटे सम्यक बोध लक्षणा ॥  
 मनसुख शिवसंपति लहे । सहजातम अविरोध लक्षणा ॥ तत्त्व० ॥ १६ ॥

॥ दोहरा ॥

दर्शन पद वर्णन कस्यु । हवे कहु ज्ञान स्वरूप ॥ आत्म ज्ञान  
 निर्मल लही । जवि मूदो जव कूप ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ३ ) बीजी ॥ जविका सिद्ध चक्र पद वदो ॥ ए राग ॥

पच प्रकार ठे ज्ञाननारे । मति श्रुत श्रवधि सार ॥ मन पल्लव  
 केवल चलुरे । सेवि लहो जव पाररे प्राणी वीर वचन चित्त धरिये ।

जवदधि वेगथी तस्येरे प्राणी० ॥ वीर० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ ज्ञान  
 प्रमाण ठे सर्वनुंरे । मापे सकल प्रमेय ॥ आप रहे निज रूपमांरे ।  
 ज्ञानानंद अमेयरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ पंच ईद्रि एक मन वनेरे । जेद  
 अष्टाविश सार ॥ मन नयन विण चारनारे । व्यजनावग्रह चाररे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ अथ्या ईहा अवाय ठेरे । चोथो धारणा जेद ॥ पच  
 ईद्रि एक मन तणारे । चोविश जेद अखेदरे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ बहु  
 अवहु बहूविधेरे । अवहूविधे जणायं ॥ द्विप्र अद्विप्रपणे लखेरे ।  
 निश्रित अनिश्रित लखायेरे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ युक्त अयुक्त पणे लखेरे ।  
 ध्रुव अध्रुव होय लक्ष ॥ वार अष्टाविशथी गुणोरे । तिसय ठत्तिश जेद  
 दक्षरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ उत्पात विनयकी कामिआरे । चोथी परि-  
 णामीआ बुद्धि ॥ त्रणशें चाळीश जेद एरे ॥ मतिना जाणो शुद्धिरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ मति स्मृती संज्ञा कहीरे । चिता आनिनिचोधी ॥  
 पंच नाम मतिनां कह्यारे । ते जाणो अविरोधिरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥  
 अक्षर अनक्षर कहुंरे । सत्री असत्री दोय ॥ सम्यक मिथ्या सुत  
 तथारे । सादि अनादि होयरे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥ सपज्जवसित कहुंरे ।  
 वलि अपज्जवसित ॥ गमिक अगमिक जाणिएरे । अंग अंगवाह  
 मित्तेरे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ चौद जेद एम श्रुतनारे । वलि ठे वीश  
 प्रकार ॥ पज्जव अक्षर पद तथारे । चोथो संघात विचाररे ॥ प्राणी०  
 ॥ ११ ॥ पक्विचत्ती अनुयोग ठेरे । पाहुन पाहुन सत्त ॥ आठमो पाहुन  
 जाणिएरे । नवमो वथु पयत्तेरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥ पूर्व जेद दशमो  
 कह्योरे । वलि ए दशना समास ॥ मिलतां वीश जेदे हुवेरे । जाणो  
 सुत विलासरे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ वार जेद वार अंगथीरे । इव्य ज्ञाव  
 दोय जेद ॥ एम सुत जेद अनेक ठेरे । करो अन्यास उमेदरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ खट विध अवधि ज्ञान ठेरे । प्रथम कह्यो अनु  
 गामी ॥ अननुगामी वीजो कह्योरे । त्रीजो वर्द्धमान नामीरे ॥ प्राणी०  
 ॥ १५ ॥ हेयमान चोथो कह्योरे । पंचम ठे प्रतिपाती ॥ आव्युं न

जावे उंहि जेरे । ठो अग्रप्रतिपातीरे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ जवप्रत्य  
 नारक देवनेरे । तिर्य मनुज गूणप्रत्य ॥ जेद विशेष असंख्य ठेरे ।  
 सूत्रे जाणो सत्येरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥ ऋजु विपुल दोय जेदथीरे ।  
 कहुं मनपञ्जाव नाण ॥ केवल एक अजेद ठेरे । निर्मल जलहल  
 जाणरे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥ ऋजुमतिथी विपुलमतीरे । विशुद्ध अ-  
 पडिवायी ॥ मनपञ्जावथी उंहिनारे । जाव सुणो अधिकाशे ॥ प्राणी०  
 ॥ १९ ॥ इव्य क्षेत्र काल जावथीरे । अधिक तथा विशुद्ध ॥ मन-  
 पञ्जावथी ओहिनोरे । स्वामी जाणो बुद्धरे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ मुनि  
 अप्रमादीने हुवेरे । मनपञ्जाव दोय सार ॥ चउ गति ह्यउपशम  
 गुणरे । उपजे ओहि उदाररे ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ सर्व एकावन्न जेद  
 ठेरे । ज्ञानना चित्तमां धारो ॥ शुद्ध ज्ञान आराधतारे । लहिये जव  
 जल पारोरे ॥ प्राणी० ॥ २२ ॥ रूपी अरूपी विषय ठेरे ॥ मति श्रुत-  
 ज्ञाननो जाणो ॥ असंख्य समयमा ए लखेरे । निज निज विषय  
 प्रमाणेरे ॥ प्राणी० ॥ २३ ॥ ऋषि विषय अवधि तणोरे । पुद्गलनो  
 ए ज्ञाता ॥ मनपञ्जाव सङ्गीतणारे । मन जाव जाणे विख्यातारे ॥  
 प्राणी० ॥ २४ ॥ केवल रूपी अरूपिनारे । अनतानंत प्रजाय ॥ एक  
 समय त्रिहुंकालनारे । जाणे पुरण असहायरे ॥ प्राणी० ॥ २५ ॥  
 विप्रयास पण जाणिणरे । कुमति कुसुत विजग ॥ होय मिथ्याती  
 जीवनेरे । समकिति ज्ञान सुचगरे ॥ प्राणी० ॥ २६ ॥ एक समय एक  
 जीवनेरे । मइ सुय ओहि मन होय मइ ॥ सुय ओहित्रिय कोइनेरे । मइ  
 सुय मन त्रिय जोयरे ॥ प्राणी० ॥ २७ ॥ मति सुत दो होय कोइनेरे ॥  
 कोइने केवल एक ॥ एक समय त्रिहु कालनारे । जाणे जाव अशेखरे ॥  
 ॥ प्राणी० ॥ २८ ॥ जाग अनंत ओहीथकीरे । विषय ठे मनपञ्जावने  
 ॥ अनत विषय केवल तणोरे । आनंद निज अनुभवनेरे ॥ प्राणी० ॥  
 ॥ २९ ॥ ज्ञान अज्ञान केवल विनारे । ह्यउपशमथी सात ॥  
 उच्चस्थ जावे होयठेरे । केवल अव्याघातरे ॥ प्राणी० ॥ ३० ॥

निर्मल ज्ञान आराधतारे । होय समाधि स्वतंत ॥ मनसुख शिवसंगे  
सदारे । विलसे सूख अत्यंतरे ॥ प्राणी० ॥ ३१ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो ज्ञान अधिकार ए । कहुं कतु जीव स्वजाव ॥ लखो शुद्ध स्वरु-  
पनिज । नाशे जेम विजाव ॥ १ ॥ दर्श ज्ञानमयी चेतना । उपयोगी  
गुणवंत ॥ कर्ता जोक्ता आदि निज । गूण अरूपि अनत ॥ २ ॥ चार  
प्राणयुत जीवतो । जीवे ठे विद्यमान ॥ आगे पण एम जीवशे । स्वपर  
वस्तुनो जाण ॥ ३ ॥ इंद्रिय बल आणपान ठे । चोथो आयु प्राण ॥  
ठे ससारी जीवने । उत्तर दशविध जाण ॥ ४ ॥ दर्शन ज्ञान चारि-  
त्रने । वीर्य प्राणयुत चार ॥ जावप्राण ए सिद्धना । अमल अचल सुख-  
कार ॥ ५ ॥ आठकर्म आवरणथी । जमे चतुर्गति माह्य ॥ निज गुण  
सर्व मलिन हुवा । निज पद शुद्ध न कांय ॥ ६ ॥ पंच जाव संसारीने ।  
खायक परिणामीक सिद्ध ॥ खायक परिणामीक लह्यो । ते पाम्यो नव  
सिद्ध ॥ ७ ॥

॥ ढाल (४) चौथी ॥ अमिद्ध ठंद ॥

दोय जाव उपशमिक, प्रथम मिथ्यातनो ॥ वीजो उपशम चरण,  
मोहनी जातनो ॥ द्वायिकसमकित द्वायिकचरण ते जाणिये ॥ केवल द-  
र्शन ज्ञान ए, द्वायिक मानिए ॥१॥ दान लाज ने जोगोपजोग लब्धि  
कही ॥ अनंत वीरज लब्धि, ए नव द्वायिक सही ॥ केवल विण चउ  
ज्ञानने, दर्शन तीन ठे ॥ तिन अज्ञान ने लब्धि, पंचे जिन ठे ॥ २ ॥  
वेदकसमकित ने वलि, चरण सराग ठे ॥ संजमासंजम मलि अठ-  
दशनो लाग ठे ॥ क्षयउपशमथी जीवना, जाव अढार ठे ॥ कर्मक्षय करि  
द्वायिक, वरवुं सार ठे ॥ ३ ॥ चउगति चार कपाय, खिगत्रय जाणिये ॥  
मिथ्यादर्शनने अज्ञान प्रमाणिये ॥ असंजम असिद्धत्वने खट लेश्या  
कही ॥ जेद उदयना एकवीश जाणो सही ॥ जीव जव्य अजव्य

परिणामीक त्रण कहा ॥ सौ मली त्रेपन जेद सूत्रमांधी लह्या ॥ छिविध कद्यो उपयोग जेद तस वार ठे ॥ ज्ञान अज्ञान ए आठ ने दर्शन चार ठे ॥ ५ ॥ ज्ञान पंच अज्ञान तीन साकार ठे ॥ चउ दर्शन सामान्यथी नीराकार ठे ॥ उपयोगवत ते जीव संसारीने सिद्ध ठे ॥ संझी अ-संझी जववासी छीविध ठे ॥ ६ ॥ थावर त्रस संसारी दोय प्रकारना ॥ पृथ्व आद्रि पंच ते थावर धारणा ॥ वी ती चउ पचेडि त्रस विचारिये ॥ इंद्रि पचने दोय प्रकारे धारिये ॥ ७ ॥ निवृत्ती उपकरण ते द्रव्य इंद्रि कही ॥ लब्धि ने उपयोग ते ज्ञाव इंद्रि सही ॥ फरस विषय ठे आठ पच रसना तणा ॥ घ्राणना दोय प्रकार पंच द्रव्यना जणया ॥ ८ ॥ संचित अचित ने मिश्रशब्द त्रय श्रोतना ॥ विषय त्रेविश प्रकार तजो थई शुभ-मना ॥ सुतगोचर जे विषय ते मननो जाणिये ॥ विषय राग तजि कर्म-नी सत्ता जानिए ॥ ९ ॥ थावर पंचने एकज फरस इंद्रि कही ॥ वि ति चउ पंचेडि एक एक बधती लही ॥ पुद्गल विण नहीं जेद सिद्ध शुद्ध जीवमां ॥ सहजानंद स्वतंत्र ते विलसे शीवमां ॥ १० ॥ कर्मयोग कोइ जीवने, विग्रहगति कही ॥ शुद्ध जीव होय सिद्ध ते अविग्रह गति लहि । जीव परमाणुनु सम श्रेणीमां गमन ठे ॥ पुद्गल योगे जीवनुं चउगति त्रमण ठे ॥ ११ ॥ गत्यातर जातां कोइ विग्रहगति करे ॥ बीजे त्रीजे चोथे समये आँहरे ॥ एक दो तिन विग्रहथी चोथा समयमा ॥ नौतन धरे प्रजाय करम कृत्य उदयमा ॥ १२ ॥ अविग्रहि अनाहारी एकज समयनो ॥ विग्रहवत अनाहारी वेत्रण समयनो ॥ समूर्ठिम गर्जज उत्-पातकी तीन ए ॥ जन्म कहा एम जिन जिन जगजीवने ॥ १३ ॥ देव नर-कर्ने जन्म सदा उत्पातथी ॥ मनुष्य तिर्यचने गर्ज समूर्ठिम जातथी ॥ अडज पोतज जरायुज त्रण जानना ॥ ए विध गर्ज प्रकार जूइ जूइ जा-तना ॥ १४ ॥ नव प्रकारनी योनि कही ते जाणिए ॥ सचित अचितने शीत उष्ण परमाणिए ॥ संवृत ने विवृत ए खट विध धारीए ॥ सचित अ-

चित्त मिश्र सप्तमी विचारीए ॥ १५ ॥ उष्ण शीत मिश्रनी आठमी.  
जाणीए ॥ संवृत विवृत मिश्र.ए नवमी मानीए ॥ चुलसी लाख विशेष  
जीवा.योनी कही ॥ तजिए .ममता। सर्व विमल शक्ति ग्रही ॥ १६ ॥  
उदारिक वैक्रिय आहारक तेजस तथा ॥ पंचमुं कार्मण नाम शरिर  
होये यथा ॥ एक एकथी सूक्ष्म अनुक्रमे जाणीये ॥ अनतानंत प्रदेशी  
कार्मण मानीये ॥ १७ ॥ तेथी अनंतमे जाग प्रदेश तैजस कहुं । तेथी  
अनंतमे जाग आहारक तनु लहु ॥ आगे थोठा थोठा प्रदेश ठे  
थूलमां । जेम सूक्ष्म तेम अधिक प्रदेशी मूलमा ॥ १८ ॥ तेजस का-  
र्मण दोय ए अप्रतिघातीने । वज्रादिक नवि रोके ए दोय जातीने ॥  
ए न करे प्रतिघात जगतमां कोईने । तत्व विचारो सार सिद्धातमां  
जोईने ॥ १९ ॥ कार्मण तेजस जीव संबध अनादिनो । नव नव ग्रहणे  
होये संबध तेसादिनो ॥ एक समय कोइ जीवने चारे देह ठे । उदारिक  
वैक्रिय तेजस कम्म एह ठे ॥ २० ॥ आहार उदारिक तेजस कार्मण  
पण कदा । वाकी सर्व ससारी ती शरिरी सदा । विग्रहगतिमां तैजस  
कार्मण जाणिये । नित्य निगोदमां तोन्न शरीर प्रमाणिये ॥ २१ ॥  
तैजस कार्मण दोय ते निरूपचोग ठे । उदारिक वैक्रिय आहारकथी  
चोग ठे ॥ गर्ज समूर्तिमने मूल तीनज देह ठे । उदारिक तैजस का  
र्मण जाणो एह ठे ॥ २२ ॥ उत्पातिकने वैक्रिय आदिक त्रण कह्या ॥  
लब्धिवत अधिके वैक्रिय आहारक लह्या ॥ तैजस लब्धिवंत करे तै-  
जस कदा । एक मुहुरत स्थिति आहारक अधिकी नहि कदा ॥ २३ ॥  
चौद पुरवधर आहारक शक्ति लही करी । आहारक करतो आवे  
प्रमाद गुणे फरी ॥ अव्याघातने शुभ विशुध आहारक कहुं । चुकि  
उंचेथी ठछम गुणठाणु लहुं ॥ २४ ॥ समूर्तिमने नारक सवि नपुंसक  
कह्या । स्त्री पुरुष दोय वेद देव मांहे लह्या ॥ गर्जज मनुष्यने तिर्य-  
चने त्रण वेद ठे । सिद्ध जीव निरवेद अचल निरजेद ठे ॥ २५ ॥  
असंख्य वर्ष जे आयु युगलियादिकमां । निरूपकम ठे आयु तरकने

देवमा । सोपक्रम पण आयु चरम तनुनुं सुण्युं ॥ निरूपक्रम विशेष  
 प्रयातरथी मुण्यु ॥ २६ ॥ चरम शरिरीनुं आयु डुविधधी जाणीए ।  
 प्राये निरूपक्रम सूत्रधी मानोये ॥ त्यागी सकल विजाव निरायु पद  
 लहो । मनसुख विमल स्वजाव लहि शिवघर रहो ॥ २७ ॥

॥ दोहरा ॥

पंच जाव आदि १७, वर्णन कीधु सार । नरकादिक कहु वर्णनु,  
 स्थानक आदि विचार ॥ १ ॥

॥ ढाल (५) पाचमी ॥ त्रीर जिनेश्वर वदन वचन आदर जवि  
 प्राणी ॥ ए राग ॥

रत्न शर्करा बालुप्रजा पक धुम्र जेह, ठठी तम.प्रजा कही तम-  
 तम सप्त षह ॥ सप्त गोत पुढवीय नाम धम्मा वशा शेला ठे, अंजना  
 अरीष्टा तथा मघा माववई ए ॥ १ ॥ अनुक्रमे नाम ए सात नरक  
 जीव वास तिहा ठे, कननां फल ठे पापनां परवश डु.ख सहे ठे ॥  
 रत्नप्रजादि सात ए अथो अथो जागे, तीन वलयधी कींटी पहेलो  
 घनोदधि लागे ॥२॥ घनवात वलय विजो त्रिजो तनुवात वलय ठे । चो  
 थो आधार आकाश आकाशने अवर नहीं ठे ॥ एक लाख एशीहजार  
 जोयण रत्नप्रजा नामे । त्रण जाग तेहना करो त्रीजा जागने ठामे  
 ॥ ३ ॥ जोयण सोल हजारनो ते उपर खर जाग । चित्रा वज्रा वैमूर्य  
 आदि सोल पृथ्वी लाग ॥ सहस्र सहस्र जोयण कही नीचे उपरनी  
 ढालो । मध्यनी चौंटे पुढवीमा देव निवास निहालो ॥ ४ ॥ किन्नर  
 किपुरुप महोरग गर्धर्भ यक्ष । जूत व्यतर देव रहे ठे तिहा पिशाच  
 सयुत ॥ नाग विद्युत सुपर्ण ठे अग्नि वायुकुमार । स्तनित उदधि  
 द्विप दीग ए नव जाती धार ॥ ५ ॥ जुवनवासी नव एहना निवा  
 सना स्थान । खरजाग नीचे मध्यलो सहस्र चोराशी मान ॥ जोयणनो पक  
 जाग ठे असुर राक्षस वास । पंक जाग हेठे कळो एशीहजारनो खास ॥६॥

अबहुल जोयणनो कह्यो तिहां नारकी जाणो । नीचे राज एक अंतरे  
 वीजी शर्करा मानो ॥ एक एक राजने अंतरे सातमी क्रमे जाणो ।  
 तमतमः प्रजा कह्यो महापु ख ठाणो ॥ ७ ॥ नरकावास लक्ष त्रीश ठे  
 रत्नप्रजा मांहे । लाख पच्चीश निवास कह्या शर्करा मांहे ॥ पदर लाख  
 वासुप्रजा दश पंकमां धारो । धुम्रप्रजा त्रण लाख ठे नेरश्या विचारो ॥  
 ॥ ८ ॥ पंच थोठा लख वास ठे तमः प्रजानी मांहे । पंच वास सतमी  
 विषे तमतमः ज्यां हे ॥ साते नरकना वास कह्या ठे लक्ष चोराशी ।  
 नारकी जीव वसे तिहा जोगवे पु ख राशी ॥ ९ ॥ अशुच लेश्याना  
 स्वामि तथा अशुच परिणामी । देह विक्रिया अशुच वली अशुचना  
 स्वामी ॥ खेत्र तनु मन वेदना परमाधामी कृत्य । अन्योअन्य उदी-  
 रतां पूरव फल अकृत्य ॥ १० ॥ पंच प्रकारनी वेदना मुखे तिहां  
 नाखी । पण ठे विविध प्रकारनी ग्रंथोमां साखी ॥ पहेलीथी त्रीजी  
 लगे परमाधामी जाए । चार पांच ठ सातमी परमाधामी न जाए ॥ ११ ॥  
 एक तीन सत दश कहुं सत्तर बावीश । तेत्रीशसागरनुं कहुं आयु  
 जगदीश ॥ अनुक्रमे उक्कृष्ट आयु ठे सातमी लगे जाणो । दश सहस्र  
 एक सागर तीन सागर मानो ॥ १२ ॥ सात सागर दश सागर सागर  
 सत्तर प्रमाण । बावीश सागर सातमे जघन्य आयु जाए ॥ अनुक्रमे  
 साते नरकनुं जघन्य आयु दाख्यु । जेणे जिन वचन न आदस्या तेणे  
 ए फल चाख्यु ॥ १३ ॥ पहेलेथी सातमी लगे दुःख अधिक अधिक ठे,  
 असंझी जीव प्रथम लगे सरिससर्प बीजे ॥ पक्षि पहेलेथी त्रीत्रिमां  
 चोधि लग सिंह जाय । विषधर सर्प पंचमी लगे ठठि लगे स्त्री जाय  
 ॥ १४ ॥ मनुष्य मत्स्य सातमी लगे एह रीत सदाय । नारकी मरि  
 नवि नरकमां नवि देवमां जाय ॥ जैन धर्म जेणे आदख्यो तेने डुरगती  
 नाहीं । शुद्धातमता जावतो मनसुख शिव मांही ॥ १५ ॥



## ॥ दोहरा ॥

कह्यो नरक अधिकार ए, ह्वे कहुं क्षेत्र विचार । शुद्ध स्वजावे आ-  
तमा, ध्याता जवजल पार ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ६ ) ठठी ॥ नगरि महाण कुंरुमां वसेरे ॥ ए राग ॥

जवु आदिक छीप ठे रे ढाला समूझ लवणादिक । शुज  
नामे ते जाणिए रेढाला एक एकथी ठीकरे ढाला एक एकथी  
ठीक ॥ १ ॥ एक एकथी डुगूणा कला रे ढाला वलियाकारे  
जाण । समुडे वीढ्यो छीप ठे रे ढाला छिपे समूझ वलाण  
रे ढाला ॥ छीपे ॥ २ ॥ जवूथी वमणो कह्यो रे ढाला लवणसमूझ  
विचार । लवणथी दूणो धातकी रे ढाला डुगुण कालोदधि धार रे  
ढाला ॥ डुगुण ॥ ३ ॥ पुष्कर वमणो तेहथी रे ढाला डुगुण अ-  
नुक्रमे जाण । स्वयचूरमण लगे गणोरे ढाला डुगुण डुगुणनुं मान  
रे ढाला ॥ डुगुण ॥ ४ ॥ मध्ये जवूछीप ठे रे ढाला लवणे वीढ्यो  
तेह । लवणने वीढ्यो धातकी रे ढाला कालोदधि ए तेह रे ढाला  
॥ कालो ॥ ५ ॥ ते वीढ्यो पुष्करारधे रे ढाला तेणे पुष्कर समूझ ।  
स्वयचूरमण लगे रे ढाला छीप असरय समूझ रे ढाला ॥ छीप ॥  
॥ ६ ॥ जवु मध्ये मेरु ठे रे ढाला तनमा नाजी जेम । जवु गोला  
कार ठे रे ढाला लख जोयननो एम रे ढाला ॥ लख ॥ ७ ॥ लंबो  
चोडो लाख ठे रे ढाला परधि जोयण त्रण लाख । सोल हजार ठे  
उपरे रे ढाला वशो सत्तावीश लाख रे ढाला ॥ वशो ॥ ८ ॥ योजन  
एटला जाणीए रे ढाला त्रण कोश उपर जाण । एकशो सत्तावीश  
धनुपने रे ढाला साडातेर अगुल मान रे ढाला ॥ साडातेर ॥ ९ ॥  
तेथी काइ अधिक ठे रे ढाला जवू परधी एह । वे हजार कोशनुं कहुं  
रे ढाला जोयन मानो तेह रे ढाला ॥ जोयन ॥ १० ॥ सात खेत्र  
जवू विपे रे ढाला चरत हेमवत जाण । हरिविदेह रम्यक तथा रे

लाला हैरण्यवत खट मान रे लाला ॥ हैरण्य० ॥ ११ ॥ ऐरावत ठे  
 सातमो रे लाला जेह्थी प्राय विनाग । तेवा खट पर्वत कह्या रे  
 लाला ते सुणजो धरी लाग रे लाला ॥ ते० ॥ १२ ॥ हीमवान पहेलो  
 कह्यो रे लाला दुतीय महाहीमवान । निपथ त्रीजो जाणीए रे लाला  
 चोथो नील वखाण रे लाला ॥ चोथो० ॥ १३ ॥ रुक्मी पर्वत पंचमो  
 र लाला ठठो शिखरी जोय । ए खट पर्वतथी सवि रे लाला क्षेत्र  
 विनागज होय रे लाला ॥ क्षेत्र० ॥ १४ ॥ जरत हैमवंत वीचे रे लाला ठे  
 पर्वत हीमवान । एम दो दो खेत्रो वीचे रे लाला एक एक पर्वत  
 जाण रे लाला ॥ एक० ॥ १५ ॥ सुवर्णमय हीमवान ठे रे लाला  
 रजत महाहीमवान । तपत हीम सम निपथ ठे रे लाला नील म-  
 युर सम जाण रे लाला ॥ नील० ॥ १६ ॥ रुक्मी रूपामय कह्यो रे  
 लाला शिखरी सोना वर्ण । ए खट पर्वत जाणीए रे लाला जिन्न जिन्न  
 नू वर्ण रे लाला ॥ जिन्न० ॥ १७ ॥ नीचे उपर तेहनो रे लाला दा-  
 ख्यो सम विस्तार । ते उपर खट ड्रह कह्या रे लाला नाम कहु तस  
 सार रे लाला ॥ नाम० ॥ १८ ॥ पद्म तथा महापद्म ठे रे लाला ती-  
 गच केशरि नाम । महापुंरिक तीम जाणीए रे लाला पुंरिक ख-  
 ट नाम रे लाला ॥ पुंरिक० ॥ १९ ॥ सहस्र जोयण पद्मड्रह ठे रे  
 लाला पूरव पश्चिम लव । अरधो उत्तर दक्षिणे रे लाला चोन्नो दी-  
 शे रम्य रे लाला ॥ चोन्नो० ॥ २० ॥ दश जोजन ऊंडो कह्यो रे लाला  
 पद्म जोयननु होय । रत्नमयी ते जाणजो रे लाला श्रीदेवि रहे सोय  
 रे लाला ॥ श्री० ॥ २१ ॥ दुगुण दुगुण ठे तेह्थी रे लाला महापद्म  
 ड्रहपद्म । अनुक्रमे एह प्रमाणथी रे लाला तीगंच लगे ड्रहपद्म रे  
 लाला ॥ तीगंच० ॥ २२ ॥ पद्मड्रह अने पद्मथी रे लाला दुगुण महापद्म  
 ड्रहपद्म । तीगंचपद्म तेथी दुणो रे लाला ए सम केशरीपद्म रे लाला  
 ॥ ए० ॥ २३ ॥ केशरिथी अर्धो कह्यो रे लाला महापुंरिक ड्रहपद्म । तेथी

अधो जाणीए रे लाखा पुडरिक्कड्ड धने पद्म रे लाखा ॥ पुनरिक्क ॥ २४ ॥  
 तीन पद्मेला तीन पाठलारे लाखा ऊह् अने पद्म समान ॥ चढता  
 उतरता मापथीरे लाखा तत्त्वार्थे ठे व प्राण रे लाखा ॥ तत्त्वार्थे ० ॥ २५ ॥  
 ऊह् कमल ए शाश्वता रे लाखा निगन सूत्रथी जाण ॥ तिहा देवी  
 स्थानक कहा रे लाखा । अथथी जाणो सुजाण रे लाखा ॥ प्रथथी ० ॥  
 ॥ २६ ॥ श्री छी धृति कीर्त्ति कती रे लाखा बुद्धि लक्ष्मी जाण ॥  
 पढ्योपम आयु कहुं रे लाखा काती युती अमान रे लाखा ॥ कांती ०  
 ॥ २७ ॥ बहु परिवार ते देविनो रे लाखा चारयो सूत्रमोजार ॥ पंचेडि  
 सुखजोगमा रे लाखा क्रीडा करत अपार रे लाखा ॥ क्रीडा ० ॥ २८ ॥  
 रत्नमयी ते कमलनी रे लाखा किरणीकामा सार ॥ उज्ज्वल जवन  
 तिहां कहा रे लाखा तिहा देवी परिशार रे लाखा ॥ तिहां ० ॥ २९ ॥  
 परिपद सामानीक तिहां रे लाखा दे अनेक निवास ॥ दिव्य जोग  
 तिहा जोगवे रे लाखा करता खीटा विलास रे लाखा ॥ करता ० ॥  
 ॥ ३० ॥ मध्य कमल चउ श्योरमा रे लाखा बीजा कमल अनेक ॥  
 ते सवि सूत्रथी जाणजो रे लाखा गरी हृदय विवेक रे लाखा ॥  
 ॥ राखी ० ॥ ३१ ॥ स्थानक एम अनेकमा रे लाखा जीव अनती  
 वार ॥ आतम तत्व लहा विना रे लाखा जमियो ए ससार रे लाखा ॥  
 ॥ जमियो ० ॥ ३२ ॥ दर्शन ज्ञान चरणमयी रे लाखा जाणी आत्म  
 स्वरूप । लहे मनसुख समजावथी रे लाखा सिद्ध समाधि अनूप  
 रे लाखा ॥ सिद्ध ० ॥ ३३ ॥

॥ दोहरा ॥

देव जवन थ्यादि कहां । कहु सरितादि विचार ॥ आतम तत्त्व  
 अजाणतो । जम्यो जीव ससार ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ७ ) सातमो ॥ धणरा ढोखा ॥ ए देशी ॥

साते क्षेत्र मांहे कही रे हूं । दो दो नदि गंजीर मोह निवारिये ।

सब मलि चौद महा नदी रेहा । जिहां वहे निरमल नीर जवहुःख  
 वारिये ॥१॥ गंगा सिंधु रोहितारेहां । झोहितारस्याए नाम ॥ मोह० ॥  
 हरीतं हरिकांता सीतारेहा । वदी सीतोर्दा नाम ॥ जव० ॥ २ ॥ नारी  
 नरकान्ता तथा रेहा । सुवर्ण रूपकुलीय ॥ मोह० ॥ रक्तौ रक्तोर्दो  
 कही रेहा । सरिता वल अतुला ॥ जव० ॥ ३ ॥ खेत्र खेत्र दो दो  
 नदी रेहा । सहु मलि चौदे होय ॥ मोह० ॥ बहु परिवारे परिवरी  
 रेहा । खेत्रे वहेती सोय ॥ जव० ॥ ४ ॥ सात गुगल नदिना कहां रेहां ।  
 प्रथम पुरवदधि जाय ॥ मोह० ॥ शेष साते पश्चिम दिशे रेहां । सिंधु  
 माहि समाय ॥ जव० ॥ ५ ॥ इहा ए मुख्य नदी कही रेहां । वत्रीश  
 विजयनी ओर ॥ मोह० ॥ एम अनेक सरिता कही रेहां । वहती  
 निज निज ओर ॥ जव० ॥ ६ ॥ जंबुद्वीप एक लाखनो रेहां । जरत  
 क्षेत्र ए मांछ ॥ मोह० ॥ एक गतनेवु जागमां रेहां । विस्तारे सुत  
 मांछ ॥ जव० ॥ ७ ॥ पाचशे ठगीश जोजने रेहां । अधिक कला खट  
 जाण ॥ मोह० ॥ तेथी डुगुण डुगुण पणे रेहां । विदेह लगे परमाण  
 ॥ जव० ॥ ८ ॥ उत्सर्पिणी अवसर्पिणि रेहां । जरत ऐरवत जोय ॥  
 मोह० ॥ आयु काय जोगादिके रेहां । वधतुं घटतु होय ॥ जव० ॥ ९ ॥  
 दश कोडाकोडि सागरु रेहा । उत्सर्पिणिनो काल ॥ मोह० ॥ अवस-  
 र्पिणि पण ए समो रेहा । मलि कालचक्रनी चाल ॥ जव० ॥ १० ॥  
 विजयनी पुढवी पांचमा रेहा । उत् अवसर्पिणि नाहि ॥ मोह० ॥  
 चौथा आरा सम सदा रेहा । वत्ते विदेहनी माहि ॥ जव० ॥ ११ ॥  
 जुगलिआनु जाणिए रेहां । एरु थी तीय पढ्य आय ॥ मोह० ॥  
 गर्जजतिरा मनुष्यनु रेहा । वत्ते त्वाय सदाय ॥ जव० ॥ १२ ॥  
 पंच मेरु सबधिया रेहा । दास्या पंच विदेह ॥ मोह० ॥ आयु वर्ष  
 संरयातनुं रेहा । गज्जय पणेदी जेह ॥ जव० ॥ १३ ॥ धातकी खड  
 माहे कया रेहा । दो दो जरत औरवत ॥ मोह० ॥ एम पुष्कलार्थ  
 छापमा रेहा । वे वे औरवत चर्त्त ॥ जव० ॥ १४ ॥ सोल लाख जोजन

कहुं-रेहा । पुष्करछीप प्रमाण ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर पर्वत तिहां  
 रेहा । मध्ये जाण सुजाण ॥ जव० ॥ १५ ॥ जोयण एक सहस्रने रेहा  
 । वाविशनु ठे मान ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर लग जाणिये रेहा । मनुष्य  
 तणु रहेण ॥ जव० ॥ १६ ॥ गमनागमन मनुष्यनु रेहा । छीप अढीमां  
 थाय ॥ मोह० ॥ मनुषोत्तर वाहिर कोइ रेहा । मनुष्य कढाय न जाय  
 ॥ जव० ॥ १७ ॥ ठप्पन अतर छीपना रेहा । मनुष्य कहा ठे जेह ॥  
 मोह० ॥ अढी छीपमां ते रहा रेहा । वाहिर नहि कोइ एह ॥ जव० ॥  
 १८ ॥ पंच पच जर्त औरवत ठे रेहा । जाख्या पाच विदेह ॥ मोह० ॥  
 कर्मजुमी एह जाणिये रेहा । पंदर दाखी एह ॥ जव० ॥ १९ ॥ मुहूर्त  
 दोय घडिनु कहु रेहा । अदरनो जे काल ॥ मोह० ॥ अतर्मुहूरत जाणिये  
 रेहा । तत्त्वारथनी जाल ॥ जव० ॥ २० ॥ आयु तिर्यच मनुष्यनु रेहां ।  
 तीन पद्य उकोस ॥ मोह० ॥ जघन्य अतर मुहूर्तनुं रेहा । एम जाणो  
 निरदोष ॥ जव० ॥ २१ ॥ छीप समूद्र असख्यमां रेहा । नदि जल पर्वत  
 ठाण ॥ मोह० ॥ श्री जिन वचन अजाणतां रेहां । जीव जम्यो एह ठाण  
 ॥ जव० ॥ २२ ॥ सुहृम ड्यर एकेडि दो रेहां । विंगल त्रीय वलि जाण ।  
 मोह० ॥ सन्नि असन्नि पण ईदि ठे रेहां । सात पङ्कता मान ॥ जव० ॥ २३ ॥  
 अपजत्ता पण सान ठे रेहा । चउ दश जेद विचार ॥ मोह० ॥ कहा  
 सूत्रे सक्षेपथी रेहा । ए जीय ठाण विचार ॥ जव० ॥ २४ ॥ जीव ठाण  
 चादे कहा रेहा । सक्षेपे मन धार ॥ मोह० ॥ पाचसे तेंसठ जेद ठे रे  
 हा । काइ विशेषे विचार ॥ जव० ॥ २५ ॥ सकल जीवठाणे जम्यो  
 रेहा । विण समकित मति हीण ॥ मोह० ॥ परवशताए छु ख  
 सही रेहा । निशदिन छु खियो दीन ॥ जव० ॥ २६ ॥ ईडि विषय  
 विष सेवता रेहा । केम आवे जव पार ॥ मोह० ॥ तजे विषय विप  
 ईडिना रेहा । ते तरसे संसार ॥ जव० ॥ २७ ॥ उत्तम नर जव पा  
 मिने रेहां । करि नित श्रुत अन्यास ॥ मोह० ॥ ध्यानम गुण निर-  
 मल करी रेहां । पामो शिवपुर वास ॥ जव० ॥ २८ ॥ पर रमण

तजि आदरे रे हां । आत्म रमण गुण गेह ॥ मोह ॥ शिव संपति  
मनसुख लहे रे हा । इहां नहि को संदेह ॥ जव ॥ १६ए ॥

॥ दोहरा ॥

देवो चार निकायना । जुवनपती दश जाण ॥ व्यंतर आठ प्रकार-  
ना । जोइस पंच प्रमाण ॥ १ ॥ छादश कल्प विमानी ठे । नव त्रैवेक  
वखाण ॥ पंच अनुत्तर वासिना । कल्पपातीत सुजाण ॥ २ ॥

ढाल ( ८ ) आठमी ॥ राग मारु ॥ निशदिन जोड तारी

वाटडी घग् आबोने ढोला ॥ ए देशी ॥

जुवनवासी व्यतर विषे, आदि लेश्या चार ॥ हांहा रे ० ॥ ज्योतीषीमां  
एकली, तेजु लेश्या धार ॥ हांहा रे तेजु ० ॥ १ ॥ चार प्रकारना देवमां, जेद  
तो दश दाख्या ॥ हां ० ॥ इंद्र सामौनीक ने वली, त्रायत्रिंशक जा-  
ख्या ॥ हांहां रे त्राय ० ॥ २ ॥ पौरिसद आतमरक्षक, लोकपाल ते-  
जाणो ॥ हां ० ॥ अनीक प्रकीर्णक जाणिये, आजीयोगीक मानो ॥  
॥ हां ० ॥ ३ ॥ किंद्विष तीन प्रकारना, एम दशविध कहिये ॥ हां ०  
तत्त्वार्थ टीका थकी, अरथ एह लहिये ॥ हां ० ॥ ४ ॥ अणिमा म-  
हिमा आदिक, रिद्धि बहु जेने ॥ हां ० ॥ आज्ञा करतो स्वामी ए,  
कह्यो इद्र ते तेने ॥ हां ० ॥ ५ ॥ इंद्र समो रिद्धि खरी, पण इंद्र न  
जेह ॥ हां ० ॥ आयु वीर्य जोगादिके, सरखा ठे तेह ॥ हां ० ॥ ६ ॥  
सामानिक तेह जाणिये, इद्र सम परिवार ॥ हां ० ॥ हेतु मित्र जे  
इन्द्रना, त्रायत्रिंशक धार ॥ हां ० ॥ ७ ॥ बाह्य अच्यंतर मध्यनी, सजा  
त्रण प्रकार ॥ हां ० ॥ वेसे इंद्र मजा विषे, पारीसद धार ॥ हां ० ॥ ८ ॥  
इद्र अंग रक्षण करे, धारी हथियार ॥ हां ० ॥ आतमरक्षक जाणिये,  
जेद पचमो सार ॥ हां ० ॥ ९ ॥ कोटवाल सम जे रहे, लोकपाल ठे  
तेह ॥ हां ० ॥ सैन्या रुपे जे हुवे, अनीक कह्या एह ॥ हा ॥ १० ॥  
प्रजा जे ठे इंद्रनी, प्रकीर्णक जाणो ॥ हां ० ॥ इंद्र हुकम हाजर सदा,

आज्ञियोगीक मानो ॥ हा० ॥ ११ ॥ इडादिकथी दुर रहे, जस नहि  
 सनमान ॥ हा० ॥ हीण आदर ठे जेहनो, कित्विपक जाण ॥ हा० ॥  
 ॥ १२ ॥ त्रायत्रिंशक लोकपाल विण, व्यंतर ज्योतिपमां ॥ हा० ॥  
 आठ प्रकारे देव तो, जाऱ्या सूत्रोमा ॥ हा० ॥ १३ ॥ जुवनपती विश  
 इड ठे, व्यतर सोल जाणो ॥ हा० ॥ सोल ठे व्याणवंतर तणा, ज्यो  
 तिपी दोय मानो ॥ हा० ॥ १४ ॥ वार देवलोकना पती, इडो दश  
 कहिये ॥ हा० ॥ सौ मली चोसठ इड तो, सूत्रोमा लहिये ॥ हा० ॥  
 ॥ १५ ॥ नव गेवेक माहे नहीं, कोइ इड अनेरा ॥ हा० ॥ आपे आ  
 पहि इंड ठे, निज निज घर केरा ॥ हा० ॥ १६ ॥ अनुत्तर पंच विमा  
 नमा, अहंमंड्र सवे ठे ॥ हा० ॥ हूकम नहि कोई अन्यनो, स्वतत्र  
 रहे ठे ॥ हा० ॥ १७ ॥ जुवनपतीथी जाणिये. जाव देव इशान ॥ हा०  
 ॥ देव देवी मैथुननो, जोग मनुष्य समान ॥ हा० ॥ १८ ॥ फरस रूप  
 ने शब्दनो, मन चिंतन जोग ॥ हा० ॥ अच्युत देव लगे जाणिये,  
 यथावत योग ॥ हा० ॥ १९ ॥ सनतकुमारथी मांडीने, वाकी दश  
 देवलोग ॥ हा० ॥ मैथुन जोग एहमा नहीं, नहि रोग ने शोग ॥ हा०  
 ॥ २० ॥ पुद्गल जोग इहा तजो, जेम शिवसुख लहिये ॥ हा० ॥  
 शिवसुंदरी मनसुख घरे, आनदे रहिये ॥ हा० ॥ २१ ॥

### ॥ दोहरा ॥

इडादिक वर्णन करु, देव नाम कहु सार ॥ जूदि जूदि निकायना,  
 दाखुं तेह उदार ॥ १ ॥

ढाल (ए) नवमी ॥ राग मारु ॥ गिरि वैताढ्यने ऊपरे

चक्राका नयरी लो ॥ ए देशी ॥

असुर नाग विद्युत ठे, सूपर्ण कहिजे हो ॥ अहो सूपर्ण ॥ अ-  
 सि वात स्तनितने, ऊदधि लहिजे हो ॥ अहो ऊदधि ॥ १ ॥ छीप  
 दीग मली सवे, कूमर दश धारो हो ॥ अहो ॥ जुवनवासीना

जाणीए, एह नाम विचारो हो ॥ अहो० ॥ २ ॥ किन्नर की  
 पूरुष कक्षा, महोरग गंधर्व हो ॥ अहो० ॥ यद्द राक्षस जा-  
 णिये, चूत पीशाच सर्व हो अहो० ॥ ३ ॥ जेद आठ व्यंतर तणा,  
 अरु व्याणव्यंतरना हो ॥ अहो० ॥ पंच ज्योतिष चल जाणिये,  
 पंच थिर ज्योतिषना हो ॥ अहो० ॥ ४ ॥ सूर्य चंद्र नक्षत्र ठे, ग्रह  
 तारा कहिए हो ॥ अहो० ॥ चल थिर मखि दश जेद ए, सूत्रोथी  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ ५ ॥ चल ज्योतिष मेरु तणी, प्रदक्षिणा करता  
 हो ॥ अहो० ॥ काल विजाग ठे एहथी, गगने विचरता हो ॥ अहो०  
 ॥ ६ ॥ थिर ज्योतिष पंच जाणिये, अढी छीपथी व्हारे हो ॥  
 अहो० ॥ सब मखि ज्योतिष जेद तो, जाख्या विस्तारे हो ॥  
 अहो० ॥ ७ ॥ सौधर्म ईशान ठे, सनत महेन्द्र हो ॥ अहो० ॥ ब्रह्म-  
 देव लांतक तथा, महाशुक सुरींद्र हो ॥ अहो० ॥ ८ ॥ सहस्रार  
 आणत जाणिए, प्राणत विचारो हो ॥ अहो० ॥ आरण्य अच्युत जेद  
 ए, वारे प्रकारो हो ॥ अहो० ॥ ९ ॥ नव त्रैकेकना जाणिए, अनुत्तर  
 पंच कहिए हो ॥ अहो० ॥ विजय विजयंत जयंत ठे, अपराजीत  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ १० ॥ सर्वारथ वीमान ठे, अनुत्तर एह जाणो  
 हो ॥ अहो० ॥ पूरण सुख ईहां देवनां, विलसे मनमानो हो ॥ अहो०  
 ॥ ११ ॥ अच्युत देवना ऊपेर, त्रैवेक ते नव ठे हो ॥ अहो० ॥ ते  
 ऊपर अनुत्तर कक्षां, ईक ईक अनुक्रम ठे हो ॥ अहो० ॥ १२ ॥  
 लोकांतिक आलय कक्षां, ब्रह्मदेवना अंते हो ॥ अहो० ॥ सारस्वत  
 आदित्य ठे, त्रिजो वन्हि संत हो अहो० ॥ १३ ॥ चोथो अरुण ए  
 नामनो, पचम गर्दतोय हो ॥ अहो० ॥ ठठो लुपित जाणिए, अव्या-  
 वाध जोय हो ॥ अहो० ॥ १४ ॥ आठमो आङ्गेय जाणिए, नवम  
 अरिष्ट जाणो हो ॥ अहो० ॥ अंग पुरवधर सुतरसी, आवे एह ठाणो  
 हो ॥ अहो० ॥ १५ ॥ आठ सागरनु आयु ठे, सह लोकांतिक मान  
 हो ॥ अहो० ॥ श्रुत बोध हृदये रह्यो, जात्र पुरवना जाण हो ॥ अहो०



॥ १६ ॥ तीरथपती विद्या समे, लोकातिक आवे हो ॥ अहो० ॥ दिक्षा  
 अवसर जाणिने, प्रजुने चेतावे हो अहो० ॥ १७ ॥ सुधर्म देवधी  
 जाणिए, स्थिति आयु प्रजाव हो ॥ अहो० ॥ सुख द्युति लेश्या विशुद्धता,  
 ईद्रि विषयना जाव हो ॥ अहो० ॥ १८ ॥ अधिक विषय अवधि तणो,  
 सर्वारथ सिद्ध जाव हो ॥ अहो० ॥ सुधर्मदेवधी अनुक्रमे, अधिका ए  
 जाव हो ॥ अहो० ॥ १९ ॥ सर्वारथ मिद्धि लगे न्यूनता हवे धारो हो  
 ॥ अहो० ॥ गमन शरीरनी उचता, मूर्ठा मान विचारो हो ॥ अहो०  
 ॥ २० ॥ सुधर्मदेवधी जाणिए, जाव सर्वारथ सिद्ध हो अहो० ॥ अनु-  
 क्रमे चार ए न्यून ठे, दाखी ठे प्रसिद्ध हो ॥ अहो० ॥ २१ ॥ सुधर्मने  
 ईशानमा, तेजुलेश्या कहिए हो ॥ अहो० ॥ सनत महींजने ब्रह्ममां,  
 पद्म लेश्या लहिए हो ॥ अहो० ॥ २२ ॥ वाकी सात विमाननां, लेश्या  
 शुक्ल कत्री ठे हो ॥ अहो० ॥ अनुक्रमे लेश्या विशुद्ध ठे, सूत्रोधी  
 लहिए हो ॥ अहो० ॥ २३ ॥ विजयादि चार विमानमा, कोइ वे जव  
 नरना हो ॥ अहो० ॥ करी मोरूपद पामता, जोगी शिव धरना हो ॥  
 अहो० ॥ २४ ॥ विजयादि चार विमानना, कोइ नरजव पामी हो ॥  
 अहो० ॥ ते जवमा सिद्धि बरे, होय शिव वधु स्वामी हो ॥ अहो०  
 ॥ २५ ॥ सर्व विमानीक देवना, कोइ नर जव पामी हो ॥ अहो० ॥  
 आत्म संपती पद बरे, होवे शिव गामी हो ॥ अहो० ॥ २६ ॥ सर्वारथ  
 विमानना, नरजव लही सिद्धे हो ॥ अहो० ॥ मनसुख शुद्ध स्वजावनी  
 आनद रस लीधे हो ॥ अहो० ॥ २७ ॥

### ॥ दोहरा ॥

नामादिक कल्या देवना । वलि कहु कांइ विशेष ॥ देव जेद आ-  
 दिक सुणो । सूत्र तणो काइ लेश ॥ २ ॥

॥ ढाल (१०) दशमी ॥ एक दिन गंगाके वीचे सूर साथ बहोरा ॥ ए रागा ॥

सवि मखी देवना जेद ठे, इगसय अछाणु ॥ हाहां रे इगसय ॥  
 जुवनपती दश जाणिये, व्यंतर अरु मानुं ॥ हांहा रे व्यंतरण ॥ १ ॥

व्याणव्यतरना आठ ठे, चल-जोइस-पंच ॥हांहां॥ थिर जोइस पण  
 पंच ठे, किलविष तीन सच ॥हां॥ ॥शा॥ पैदर परमाधामी ठे, तिर्यक  
 जुंवक दश ठे हा० ॥ नव जेद लोकातिकना, जेने अति श्रुत रसठे ॥  
 हां० ॥३॥ कट्पवासी वैमानिना, जेद वार प्रकारो ॥ हां० ॥ नव  
 प्रेवेकना नव कह्या, तेह मनमां धारो ॥ हां० ॥ ४ ॥ अनुत्तर पंच वि-  
 मान ठे, पण नामे लहिये ॥ हां० ॥ नवाणु पञ्जात्त जेद ए, चित्तमां  
 सदाहिए ॥ हा० ॥ ५ ॥ अपञ्जात्ता एहना नवाणु जेद हा० ॥ एक सत  
 अष्टाणु थया ते जाणो अखेद ॥ हां० ॥ ६ ॥ ठप्पन अंतर छीपना अ-  
 कम्म चू त्रीश ॥ हां० ॥ पंदर कर्मचूमितणा सय एक जगीश ॥ हां०  
 ॥७॥ पञ्जात्ता अपजत्ता मली, दो सयने दोय ॥ हां० ॥ समूर्ठिम एकसत  
 एक मली तीनसय तीन होय ॥ हा० ॥ ८ ॥ एणिपेरे जेद मनुष्यना  
 चित्तमांहि-विचारो हां० ॥ पञ्जा अपञ्जात्त नारकी सप्तना चौद धारो ॥  
 हां० ॥ ९ ॥ पण पण सूक्ष्म वादर प्रत्येक तरु ठे ॥ हां० ॥ एकेंद्री  
 अग्निप्रारना जेद एकादश ए हा० ॥ १० ॥ विगल इडिना त्रण कह्या  
 जेद ए चउदश ठे ॥ हां० ॥ जलचर थलचर खेचरा उरपरि जुजपरि-ठे  
 ॥ हा० ॥ ११ ॥ समूर्ठिम गर्जज मली दश जेद ए लहिए हां० ॥ अपजत्ता  
 पञ्जात्ता मली अरुतालीश कहीए हा० ॥ १२ ॥ पणसय त्रेसठ जेदमां  
 ससारी जीव ॥ हां० ॥ सिद्ध अजेद आणदमां लहु शाश्वत शीव ॥  
 हा० ॥ १३ ॥ आत्म अजेद गुणे रमे थिरता त्रण योगे ॥ हां० ॥ मनसुख  
 शिवसंगे सदा शाश्वत सुख जोगे हा० ॥ १४ ॥

॥ दोहरा ॥

देवादिक वर्णन कथ्यु । हवे कहुं तत्त्व स्वरूप ॥ जीवादिक खट  
 इव्यनु । सुणजो वचन अनूप ॥ १ ॥

॥ ढाल ( ११ ) अग्निप्रारमी ॥ राग चोपाई ॥

धर्माधर्म पुद्गल नत्त सार । जाख्या अस्ति अजीव ए चार ॥  
 बहुप्रदेशी अचेतन एह । असंख्यप्रदेशी जीवास्ति जेह ॥ १ ॥

अस्ति द्रव्य ए पंच'वखाण । खटम काल उपचारे जाण ॥ निजगुण  
 पक्कावमय तिहु काल । द्रव्य स्वरूपनी जाणो चाल ॥ १ ॥ वचमां  
 नत्रि वदलाये जेह । उत्पत्तिव्यय ध्रुव सत्तज एह ॥ अनत गुण पक्कावनो  
 पिंन । द्रव्य स्वरूप ते जाणो अरखड ॥ ३ ॥ द्रव्यार्थिक नय नित्य  
 सदाय । पक्काव नये अनित्य कहाय । द्रव्यार्थिक नय एक स्वरूप ।  
 पक्काव नयथी अनेक अनूप ॥४॥ द्रव्यार्थिक एक रूप अचेद । पक्काव  
 नय जेहमां बहु चेद ॥ सीय वक्तव्य अवक्तव्य होय । लक्षण लक्ष्य  
 अचेदे सोय ॥ ५ ॥ निज द्रव्यादिक अस्ति स्वरूप । पर द्रव्यादिके  
 नास्ति रूप ॥ नित्य अवस्थित निज निज रूप । द्रव्य ग्रहे नहि अन्य  
 स्वरूप ॥ ६ ॥ रुपी द्रव्य ते पुद्गल होय । फरस वरण रस गंधी  
 सोय । शब्दादिक जिहा बहु परजाय । पुद्गल पुद्गल मलता थाया ॥७॥  
 धर्माधर्म नत्र एक एक होय । पुद्गल जीव अनंता जोय । अनत  
 समय दाख्यो ठे काल । पंचास्ति परावर्त्तन चाल ॥ ८ ॥ पंचास्ति  
 वर्त्तना परिणाम । अगुरुलघुथी काल ए नाम । नव नव किरिया  
 जे पलटाय । काल जिन्नता एहथी थाय ॥ ९ ॥ मंदगती पुद्गल  
 अणु जाय । क्षेत्रथी वीजे प्रदेशे आय । समय अणु ए सूक्ष्म काल  
 । आवलि आदि स्थूल निहाल ॥ १० ॥ प्रयोग विश्रसा मिश्रसा जेह  
 । क्रिया तीन प्रकारे एह । प्रत्वा प्रत्वे काल स्वरूप । तत्त्वारथ जोइ  
 खेजो अनूप ॥ ११ ॥ तीन वरस वलि कहिए सात । प्रत्वा प्रत्वे काल  
 विख्यात ॥ पहोर डुपहोर ने तीसरो काल । ए पण प्रत्वा प्रत्वनी चाल  
 ॥ १२ ॥ धर्माधर्म नत्र अक्रिय जाण । पुद्गल सक्रिय रूप वखाण ॥  
 सक्रिय ठे ससारी जीव । अक्रिय जाणो सिद्ध सदीव ॥ १३ ॥ धर्म  
 अधर्म अने जीव जेह । असख्य प्रदेशी दाख्या तेह ॥ अनंत प्रदेशी  
 सर्व आकाश । असख्य प्रदेशी लोकाकाश ॥ १४ ॥ अप्रदेशी कहायो  
 ठे काल । अस्तिकाया नांहि निहाल ॥ पुद्गल संख्य अख्य अनत । प्र-

देशो ज्ञाख्यो जगवंत ॥ १५ ॥ नांहि प्रदेश परमाणु मांह्य । प्रदेश  
 थवानी सत्ता त्याह्य ॥ परशुं मलतां होय प्रदेश । पण पोते नहि कोइ-  
 नो देश ॥ १६ ॥ पच अत्थि लोकमांहि रह्या । अलोकाकाशे नवि  
 कह्या ॥ अलोके एकज आकाश । त्यां नहि अवर द्रव्यनो वास ॥ १७ ॥  
 जिहां द्रव्य गुण पञ्जाव होय । लक्षण विविधे देखिए कोय ॥ ते तुम  
 जाणो द्रव्य स्वरूप । जेह त्रिकाळे एक अनूप ॥ १८ ॥ पञ्जावथी  
 पलटाये जेह । तोपण द्रव्य अखंडित एह ॥ गुण पञ्जाव नवि काल-  
 मां होय । द्रव्य उपचारे कह्यो सोय ॥ १९ ॥ अवकाश दान दिये  
 आकाश । क्षेत्र कह्यो ते आपे वास ॥ रहे खेत्रमां खेत्री तेह । धर्मा-  
 धर्म पुद्गल जीव जेह ॥ २० ॥ काल सहित ए खेत्री पंच । नजने  
 अवर खेत्र नहि रच ॥ धर्म अधर्म आकाश सदाय । अचल प्रदेशी  
 नित्य कहाय ॥ २१ ॥ तेम अचल ठे सिद्ध प्रदेश । कर्मवंत जीव  
 सचल हमेश ॥ पुद्गल सचल सदाय कहाय । पूरणगलण तेमाहे  
 थाय ॥ २२ ॥ स्रुण पन्ण विध्वसण रूप । एम बहु विध पुद्गलनुं  
 रूप ॥ शब्द बंध ठाया तम जेह । उद्योत प्रजा कान्ति तप देह  
 ॥ २३ ॥ इत्यादिक उपाधि कही । पुद्गल गुण पञ्जावनी सही ॥  
 फरस आठ रस पंच वखाण । दोय गंध पंच वर्ण तु जाण ॥ २४ ॥  
 स्थुल पुद्गलमां वीश गुण एह । उठे चार फरस सोल तेह ॥ सूक्ष्म  
 पुद्गलमा ए लह्या । परमाणु गुण पंचज रह्या ॥ २५ ॥ दोय फरस  
 रस एक एक गंध । एक वर्ण एम पच प्रबंध ॥ कर्ता एक द्रव्य ठे  
 जीव, कारण बीजा पंच अजीव ॥ २६ ॥ जीव कारण निज आपे हो-  
 य । निश्रे कारण अवर न कोय ॥ रहे स्वक्षेत्रे आपहि आप । जिहा  
 नहीं अन्य द्रव्यनो व्याप ॥ २७ ॥ कर्ता शुद्ध स्वचावनो सिद्ध । सं-  
 सारी करे कर्म ड्रविध ॥ द्रव्यकर्म कर्ता व्यवहार । अशुद्ध निश्चय रागा-  
 दिककार ॥ २८ ॥ शुधनय जोक्ता शुद्ध स्वचाव । अशुद्धे रागादि वि-  
 चाव ॥ अज्ञाने पर ग्रहणे लाग । ज्ञाने सगुण ग्रहे पर त्याग ॥ २९ ॥

मिथ्याते व्यापे पर माह्य । ज्ञाने व्यापकता निज मांह्य ॥ आत्म  
 ज्ञान विण परमां रमे । विषय वश पुद्गल गुण गमे ॥ ३० ॥ जव  
 जाणे निज शुद्ध स्वप्ताव । निज गुण रमतो त्यागि विज्ञाव ॥ पुद्गल  
 विषयनो दानी होय । चाधे कर्म अनंता सोय ॥ ३१ ॥ शुद्ध स्वरूप  
 ज्ञान निज लहे । ज्ञानादिक निज दानी रहे ॥ पुद्गल लाज  
 लिये अज्ञानि । शुध गुण लाज लिये शुध ज्ञानि ॥ ३२ ॥ क्षिण क्षिण  
 चाहे पर उपजोग । कर्मबध अज्ञाने रोग । निरमल आतम गुण  
 उपजोग । ज्ञानीने शिव संपत्ति योग ॥ ३३ ॥ पुद्गल वीरज फोरे  
 जेह । बंधे अष्ट कर्मदल तेह ॥ जाव वीरज फोरे जो दक्ष । शुध  
 गुण प्रगटे पूर्ण प्रत्यक्ष ॥ ३४ ॥ इत्यादिक जीव गूण अनंत । श्री-  
 मुख जाख्या श्री अरिहत ॥ सर्वगत दाख्यो आकाश । पच देशगत  
 लोकाकाश ॥ ३५ ॥ कछो सर्वगत चेतनज्ञान । जावनयेथी एह व-  
 खाण ॥ लोक खेत्र पंच अस्थि रहे । परगुण पञ्जव कोइ नवि ग्रहे  
 ॥ ३६ ॥ लक्षण गुण परजाय अनंत । सकल ड्रव्यमां सहज स्वतंत ॥  
 निश्चय परसहायी नहि कोय । गुरु सहाय व्यवहारे होय ॥ ३७ ॥  
 व्यवहार क्षेत्र ठे लोकाकाश । असंख्य प्रदेशे होय निवास ॥ जूदा  
 जूदा पचे दर्व । निश्चे निज खेत्रे ठे सर्व ॥ ३८ ॥ व्यवहारे परखेत्री  
 पच । निश्चे न कोइ परक्षेत्रे रंच ॥ निश्चे परिणामी सहु दर्व । निज  
 निज गुण पञ्जवना सर्व ॥ ३९ ॥ व्यवहारे जीव पुद्गल दोय । परि-  
 णामी ठे अवर न कोय ॥ काल विना पचास्ति स्वप्ताव । काल विना  
 पंच ड्रव्यत्व जाव ॥ ४० ॥ वस्तु काल विना ठे पंच । प्रमेय ड्रव्य सकल  
 मा संच ॥ काल विना होय पचे सत्व । ड्रव्य सर्वमा अगुरुलघुत्व  
 ॥ ४१ ॥ पुद्गल खंध गुरु लघु होय । शुद्ध ड्रव्य अगुरुलघु जोय ॥  
 काल ड्रव्य उपचारे जाण । तस गुण उपचारे मन आण ॥ ४२ ॥  
 ड्रव्य गुण परजाय विविध । पंचास्तिमा होवे सिद्ध ॥ ड्रव्य गुण प-  
 ञ्जव एक समे । उत्पत्ति व्यय ध्रुवता परिणमे ॥ ४३ ॥ समकाले सा-

मान्य विशेष । तेहिज ड्रव्य कद्यो श्री जिनेश ॥ ड्रव्य गुण पञ्जव जिहां नांही । व्यय उत्पत्ति स्थिति पण नांही ॥ ४४ ॥ सामान्य विशेष जेहमां नही । तेह ड्रव्य उपचारे सही । परमाणु खेत्र प्रमाण प्रदेश । पंच ड्रव्यना जाण विशेष ॥ ४५ ॥ लोकाकाश असंख्य प्रदेश, प्रति प्रदेशे जाण विशेष । धर्म अधर्म एक एक प्रदेश । पुद्गल जीव अनंत प्रदेश ॥ ४६ ॥ गति स्थिति कारण धर्म अधर्म । श्रवकाश कारण ठे नत्र मर्म ॥ कारण प्राण पर्याप्तितुं होय । ते तो पुद्गल जाणो सोय ॥ ४७ ॥ पुद्गल सुख दुःख कारण कहुं । रागादिक निश्चे सदहुं ॥ जीव जीवतुं कारण होय । ज्ञान अज्ञान तणुं पण कोय ॥ ४८ ॥ निश्चे कारण ड्रव्यहि आप । वाकी व्यवहारे आलाप ॥ सकल ड्रव्यमां चार प्रकार । दाख्या ते जाणो सुखकार ॥ ४९ ॥ ड्रव्य क्षेत्र काल जाव ए चार । आप आपणा सहुमां धार ॥ जे जेहनां ते तेहना कद्या । कोशना कोश मांही नहि रद्या ॥ ५० ॥ अनंत परमाणु वूटा होय । छयणुक खंध अनंता जोय ॥ त्रयणुक खंध पण होय अनंत । संख्यातिक एम खंध अनंत ॥ ५१ ॥ असंख्यातिक खंध अनंत, अनंताणुक पण खंध अनंत ॥ अणु अणु मलतां होय संघात । पुद्गल खंध तणो उत्पाद ॥ ५२ ॥ मली खंध बहु इक खंध थाय । जागी खंध विविध खंध थाय ॥ फरसो चाखो सुंघो जेह । देखो सुणो सवि पुद्गल एह ॥ ५३ ॥ सूक्ष्म पुद्गल नवि देखिये । पण गुण पञ्जवथी लेखिये ॥ एम पुद्गल परिणमन अनंत । वचने केम कहि शकिए तंत ॥ ५४ ॥ तद्जावथी नवि त्रिणसे जेह । अव्यय नित्य कहीजे तेह ॥ सकल समय निज रूपे रहे । श्रवर जाव कोश समय न ग्रहे ॥ ५५ ॥ तेहिज जाणो नित्य स्वजाव । श्रवयपणुं एम लेखिये दाव ॥ ड्रव्य अनंत धर्ममय एक । एक वचने केम कहिये ठेक ॥ ५६ ॥ नय वचने करि कहिए जेह । श्ररपित जाव कहावे तेह ॥ प्रयोजन विण नवि कहिए जेह । गौण जाव श्रनर्पित एह ॥ ५७ ॥ अचिर्लाप्य धर्म जे होय । वचनद्वारे

कहि शकिए सोय ॥ अनजिलाप्य धर्म जे होय । वचने कही शके नहि कोय ॥ ५७ ॥ केवली जाणे पण न कहाय, अनजिलाप्य धर्म कहे-वाय ॥ एण्णेरे वस्तु धर्म अनत, दाख्या श्री केवली जगवंत ॥५८॥ अनजिलाप्ययी गुणा अनत, अनजिलाप्य जाणिए सत ॥ स्निग्ध रूक्ष गुण पुद्गल माह्य, अनतानंत कह्या सुत माह्य ॥ ६० ॥ दो गुण अ धिक स्निग्ध रूक्ष मले, द्विगुण अधीक रूक्ष स्निग्ध जले ॥ रूक्ष रूक्ष मले द्विगुण अधीक, स्निग्ध स्निग्ध मले द्विगुण अधीक ॥ ६१ ॥ एक तीन अधिक, नवि मले, सम सम गुण पण नाहिज मले ॥ परमाणु मलि वर्गणा होय, सूक्ष्म स्थूल डुविधयी जोय ॥ ६२ ॥ गुण सकल डव्याश्रित होय, गुणमा अवर गूण नहि कोय ॥ पञ्जाव परिणमे डव्य स्वरूप, सकल समय एम डव्य अनूप ॥ ६३ ॥ डव्य गुण परजाय अचेद, स्वपर डव्ये लखि टालो खेद ॥ गुण पर्यायवंत ते डव्य, निश्चे जिन्र क्षेत्री सहु डव्य ॥ ६४ ॥ आतम विद्या विद्या एह, ए विण विद्या अविद्या तेह ॥ जेह्थी सकल दुःख क्षय जाय, आतम परमातम पद पाय ॥ ६५ ॥ परजावे ऊदासिन थई, आत्म जाव उपयोगे रहीं ॥ ठोमो अष्ट करमना पास, लहो मनसुख शिव सहज विद्यास ॥ ६६ ॥

॥ दोहरा ॥

कह्यो डव्य अधिकार ए, कहु कहु आस्त्रव रूप ॥ बधन कारण कर्मना, जाखुं डुविध स्वरूप ॥ १ ॥

ढाल ( १२ ) वारमी ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ ए राग ॥

मन वच काय त्रियोगनी ॥ चित्त चेतोने ॥ किरिया आस्त्रव मूल ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ जे जे ठे संप्रायनी ॥ चित्त चेतोने ॥ ते आत्म प्रतिकूल ॥ चतुर चित्त चेतोने ॥ १ ॥ मन वच काय त्रियोगयी ॥ चित्त० सकपे आत्म प्रदेश ॥ चतुर० चल योगे बंधन कहुं ॥ चित्त० निहां निवृत्ति न खेश ॥ चतुर० ॥ २ ॥ पंदर जेद ठे तेहना ॥ चित्त०

॥ चउ चउ मन वच जाण ॥ चतुर० ॥ काय योग सातज कह्या ॥  
 चित्त० ॥ ग्रंथशी जाण सुजाण ॥ चतुर० ॥ ३ ॥ अशुज प्रवृत्ति योग-  
 थी ॥ चित्त० ॥ होय पापनो वध ॥ चतुर० ॥ शुज प्रवृत्ति योगथी ॥  
 चित्त० ॥ जाण पुण्यनो वंध ॥ चतुर० ॥ ४ ॥ हिंसा अनृत चोरिमां  
 ॥ चित्त० ॥ अब्रह्म परिग्रह मांह्य ॥ चतुर० ॥ जोग प्रवृत्ते जे समे ॥  
 चित्त० ॥ पाप वध होय त्याह्य ॥ चतुर० ॥ ५ ॥ एम अठ दश पापज  
 विये ॥ चित्त० ॥ जोग प्रवृत्ति अशुद्ध ॥ चतुर० ॥ टालि थिरता आ-  
 दरो ॥ चित्त० ॥ संवर राखी वुद्ध ॥ चतुर० ॥ ६ ॥ दान दया तप  
 शीलमा ॥ चित्त० ॥ पूजादिकमा जेह ॥ चतुर० ॥ शुज प्रवृत्ति जो-  
 गथी ॥ चित्त० ॥ पुण्यबंध होय तेह ॥ चतुर० ॥ ७ ॥ क्यउपशम  
 शक्ति लही ॥ चित्त० ॥ करणवीर्य त्रय योग ॥ चतुर० ॥ फोरे जेह  
 विज्ञावमा ॥ चित्त० ॥ वंधे कर्म अरु रोग ॥ चतुर० ॥ ८ ॥ क्यउप-  
 शम त्रण योगनी ॥ चित्त० ॥ शक्ति करि नर नार ॥ चतुर० ॥ मारे  
 मोह जिलिंदने ॥ चित्त० ॥ ते पामे जवपार ॥ चतुर० ॥ ९ ॥ हणाये  
 आतम शक्तिथी ॥ चित्त० ॥ कर्म शत्रु दल फोज ॥ चतुर० ॥ कां-  
 त्यादि मित्रो पोपीने ॥ चित्त० ॥ लहिये निज गुण मोज ॥ चतुर०  
 ॥ १० ॥ विणु कपाय त्रिय योगनी ॥ चित्त० ॥ किरिया इरियापथ्य  
 ॥ चतुर० ॥ कपाय युक्त किरिया कही ॥ चित्त० ॥ नहि आतम गुण  
 पथ्य ॥ चतुर० ॥ ११ ॥ संपरायिक किरिया थकी ॥ चित्त० स्थिति  
 रसनो होय वंध ॥ चतुर० ॥ विणु कपाय जे योगनी ॥ चित्त० ॥ प्रकृ-  
 ति प्रदेशनो वंध ॥ चतुर० ॥ १२ ॥ पंच इडि विषय रसे ॥ चित्त० ॥  
 वांधे कर्म अजाण ॥ चतुर० ॥ वंधे चार कपायथी ॥ चित्त० ॥ ते  
 नवि कहिये जाण ॥ चतुर० ॥ १३ ॥ सेवत पंच अब्रत जे ॥ चित्त० ॥  
 नहि निवृत्ति कदाय ॥ चतुर० ॥ कर्म वंध बहु विध करी ॥ चित्त० ॥  
 जवसागर जटकाय ॥ चतुर० ॥ १४ ॥ किरिया पंचिश प्रवृत्तती ॥  
 चित्त० ॥ वधे शुज अशुज ॥ चतुर० ॥ इरिया पथ्यनी शुजठे ॥ चित्त० ॥  
 शेषथी शुज अशुज ॥ चतुर० ॥ १५ ॥ तिव कपाये वंध जे ॥



चित्त० ॥ अशुच तिव्र वधाय ॥ चतुर० ॥ मदरस मंदकपायथी ॥  
 चित्त० ॥ अशुच कर्मनो थाय ॥ चतुर० ॥ १६ ॥ मंदकपाये पुण्यनो ॥  
 चित्त० ॥ तिव्र रसबंध जाण ॥ चतुर० ॥ तिव्रकपाये पुण्यनो ॥ चित्त० ॥  
 एम मदो रस मान ॥ चतुर० ॥ १७ ॥ करणवीर्य विशेषथी ॥ चित्त० ॥  
 होय शुच अशुच विशेष ॥ चतुर० ॥ न्यून करणवीर्ये करी ॥ चित्त० ॥  
 उठो कर्म कलेप ॥ चतुर० ॥ १८ ॥ अधिकरण आस्रव तणु ॥ चित्त० ॥  
 दुविधे होय सदीव ॥ चतुर० ॥ ज्ञावकर्मनु जीव ठे ॥ चित्त० ॥ इव्यक-  
 र्मनु अजीव ॥ चतुर० ॥ १९ ॥ अग्निप्राय आरंजनो ॥ चित्त० ॥ करता  
 ठे संरज ॥ चतुर० ॥ शस्त्रादि कारण मेलवे ॥ चित्त० ॥ ते जाणो समारज  
 ॥ चतुर० ॥ २० ॥ कस्यो आरंज जेणे समे ॥ चित्त० ॥ ते तो आरंज जाण ॥  
 चतुर० ॥ कृत कारित अनुमोदना ॥ चित्त० ॥ त्रण त्रणथी नव मान ॥  
 चतुर० ॥ २१ ॥ नूत वर्तता आश्रवता ॥ चित्त० ॥ कालथी सत्तावीश ॥  
 ॥ चतुर० ॥ मन वच काय त्रियोगथी ॥ चित्त० ॥ गुणत एकाशी  
 लहीश ॥ चतुर० ॥ २२ ॥ गुणतां सोल कपायथी ॥ चित्त० ॥ वारसें  
 ठहु होय ॥ चतुर० ॥ सूत्रे जेद अनेक ठे ॥ चित्त० ॥ आस्रवना तु  
 जोय ॥ चतुर० ॥ २३ ॥ मोहनिकर्मना जाणिये ॥ चित्त० ॥ अघ्य-  
 वसाय असख्य ॥ चतुर० ॥ ते सहु आस्रव जेद ठे ॥ चित्त० ॥ जाणो  
 चित्त निशक ॥ चतुर० ॥ २४ ॥ पण पण ईडि अत्रत ठे ॥ चित्त० ॥  
 तेम बलि चार कपाय ॥ चतुर० ॥ पविश क्रिया त्रण योगनी ॥ चित्त० ॥  
 जेद वेतालीश थाय ॥ चतुर० ॥ २५ ॥ आस्रव क्रिया परिणामथी  
 ॥ चित्त० ॥ परिणाम सकल्पथी होय ॥ चतुर० ॥ संकल्प आत्म अ-  
 ज्ञानथी ॥ चित्त० ॥ कर्मबंध एम जोय ॥ चतुर० ॥ २६ ॥ निश्चय  
 पर रमणे हुवे ॥ चित्त० ॥ आस्रव एक अजेद ॥ चतुर० ॥ वधे पुद्गल  
 स्नेहथी ॥ चित्त० ॥ बहुविध कर्मना जेद ॥ चतुर० ॥ २७ ॥ ए सवि  
 आस्रव रोकना ॥ चित्त० ॥ प्रगटे सवर रूप ॥ चतुर० ॥ तजि प्रमाद  
 सवर ग्रहो ॥ चित्त० ॥ मूदो जवजल कूप ॥ चतुर० ॥ २८ ॥ अधि

करण आस्त्रव तणां ॥ चित्त० ॥ निर्वर्त्तना निक्षेप ॥ चतुर० ॥ संजोग  
निसर्ग जाणिये ॥ चित्त० ॥ चार जेद संक्षेप ॥ चतुर० ॥ ३६ ॥ कि-  
रिया चेष्टा शरिरनी ॥ चित्त० ॥ धुर उपकरण ते जाण ॥ चतुर० ॥  
बीजी किरिया शस्त्रनी ॥ चित्त० ॥ उपकरण निर्वर्त्तना मान ॥  
॥ ३७ ॥ पंच प्रकार शरिर तथा ॥ चित्त० ॥ निपात्रे मन वच काय ॥  
॥ चतुर० ॥ ए मूल गुण निर्वर्त्तना ॥ चित्त० ॥ तत्त्वार्थे मन लाय ॥  
॥ चतुर० ॥ ३१ ॥ काष्ट पापाण चित्रादि ते ॥ चित्त० ॥ कांश् वनावे  
कोय ॥ चतुर० ॥ जे जे कीधुं शस्त्रथी ॥ चित्त० ॥ उत्तर निर्वर्त्तना  
होय ॥ चतुर० ॥ ३२ ॥ निक्षेप कहिये स्थापवु ॥ चित्त० ॥ चार जेद  
तस मान ॥ चतुर० ॥ सहसाधिकरण प्रथम कह्यु ॥ चित्त० ॥ अना-  
जोग विय जाण ॥ चतुर० ॥ ३३ ॥ त्रीजुं दुप्रमार्जना ॥ चित्त० ॥  
अप्रतिपेक्षित चार ॥ चतुर० ॥ निक्षेपा अधिकरण ठे ॥ चित्त० ॥  
अर्थ सूणो तस सार ॥ चतुर० ॥ ३४ ॥ विण विचार उतावले ॥  
॥ चित्त० ॥ उपकरण मूके कोय ॥ चतुर० ॥ सहसाअधिकरण कह्युं ॥  
॥ चित्त० ॥ दोष ईहां बहु होय ॥ चतुर० ॥ ३५ ॥ विण उपयोगे जे  
मूकवुं ॥ चित्त० ॥ अनाजोग ते होय ॥ चतुर० ॥ हाणी कारण जीवतुं  
॥ चित्त० ॥ करे दोष बहु सोय ॥ चतुर० ॥ ३६ ॥ प्रमार्जना अयथा-  
र्थथी ॥ चित्त० ॥ मूके संजम हथियार ॥ चतुर० ॥ दोष ईहां बहु  
ऊपजे ॥ चित्त० ॥ तृतीय जेद मन धार ॥ चतुर० ॥ ३७ ॥ विण देखे  
मूके लिये ॥ चित्त० ॥ अप्रतिपेक्षित एह ॥ चतुर० ॥ ए चउ अविधि  
न आदरे ॥ चित्त० ॥ संजमधर ठे तेह ॥ चतुर० ॥ ३८ ॥ शीत उष्ण  
न विचारता ॥ चित्त० ॥ उपकरण मेलवे कोय ॥ चतुर० ॥ ते उपकरण  
संयोजना ॥ चित्त० ॥ प्रथम जेद ए होय ॥ चतुर० ॥ ३९ ॥ गमता आ  
हारने पाननो चित्त० ॥ करे संयोगे जेद ॥ चतुर० ॥ दोष लगे संजम  
विषे ॥ चित्त० ॥ बीजो जेद प्रत्यक्ष ॥ चतुर० ॥ ४० ॥ दुप्रयोग त्रिय  
योगनो ॥ चित्त० ॥ नीसर्गाधिकरण कहाय ॥ चतुर० ॥ सह मलि

एकादश कक्षा ॥ चित्त० ॥ दोष तजे निरमाय ॥ चतुर० ॥ ४१ ॥ एम  
 बहु विध आस्रव प्रत्ये ॥ चित्त० ॥ रोके सवरवत ॥ चतुर० ॥ मनसुख  
 शीव स्वतंत्रता ॥ चित्त० ॥ पामे सूख अत्यत ॥ चतुर० ॥ ४२ ॥

### ॥ दोहरा ॥

कह्यो आस्रव अधिकार ए, कर्मबंधनुं मूल । जेह्यी जेह वधाय ठे,  
 कहुं सूत्र अनुकूल ॥ १ ॥

॥ ढाल (१३) तेरमी ॥ धर्म जिनेश्वर गाऊ रंगशं ॥ ए देशी ॥

दर्शन ज्ञान चरण गुणवंतनु, समकित तपसीनु जेह ॥ सुगुण नर ॥

अरिहंत सिद्ध आचारज मुनितणु, पाठक आदिनुं एह ॥ सुगुण नर ॥

तत्त्व विचार सुधारस पीजीए, लहिये आत्म रिद्ध ॥ सु० ॥ १ ॥ ए

आकणी ॥ जे नर प्रत्यनीकपणु आदरे, एह्यी विपरीत होय ॥ सु० ॥

कर्मबंध करि जव जमतो रहे, मूढ जीव जेह कोय ॥ सु० ॥ तत्त्व०

॥ २ ॥ जे निन्हव होय सुगुरु तणो कदा, तेह मूढमती हीण ॥ सु० ॥

निदे सदगुरु आदिक शुज प्रते, कर्म अशुजने आधीन ॥ सु० ॥ तत्त्व०

॥ ३ ॥ ज्ञान दर्शन दाता सदगुरु प्रते, जेह नुपावे हो मूढ ॥ सु० ॥

आप अजाण ठता कहे जाण तुं, जाण्यु राखे हो गूढ ॥ सु० ॥ त०

॥ ४ ॥ करे उपघात सुगुरु आदिक तणो, सम्यक शास्त्रनो कोय

॥ सु० ॥ बंधी दूष्ट करम बहु दुःख सहे, मिथ्या मूढ ते होय ॥ सु०

॥ त० ॥ ५ ॥ शिवमार्गी जन ऊपर जे करे, निशदिन अधिको हो

द्वेष ॥ सु० ॥ अनिष्ट वचन बोले उत्तम प्रते, पामे बहु विध क्लेश

॥ सु० ॥ त० ॥ ६ ॥ करे अंतराय गुरु आदि तणो, ज्ञानादिकनो हो

विशेष ॥ सु० ॥ बाधे विविध प्रकारे अंतराय ते, लहे दुःख राशी

अशेष ॥ सु० ॥ त० ॥ ७ ॥ अरिहतादिक दशनी आशातना, शील

संजमनी हो जाण ॥ सु० ॥ ते पगले पगले बहु दुःख सहे, पामे

अधिक अपमान ॥ सु० ॥ त० ॥ ८ ॥ ए खट अशुज जाव जे आदरे,

वांधे दर्शन ज्ञानावर्ण ॥ सु० ॥ जाणि तजो खट ए अशुज जावने,  
 राखि शुद्धातम चर्ण ॥ सु० ॥ त० ॥ ए ॥ देतो देशना जे उनमार्गनी,  
 सुमग नशावे हो कोय ॥ सु० ॥ मूढमती करि देवदरव हरे, जिन  
 मुनि प्रत्यनीक होय ॥ सु० त० ॥ १० ॥ चैत्य सध तणो प्रत्यनीक ते,  
 वांधे दरशनमोह ॥ सु० ॥ कपाय नोकपाय वशे हूवो, जेहने अधि-  
 को हो कोह ॥ सु० ॥ त० ॥ ११ ॥ वांधे चरणमोहनी दोय जेदथो,  
 कपाय तथा नोकपाय ॥ सु० ॥ अधिक आरज परिग्रह जे करे, वांधे  
 नरकनुं हो आय ॥ सु० ॥ त० ॥ १२ ॥ गुरुजक्ति खाति करुणा करु, व्रत  
 जोग कपायनी जीत ॥ सु० ॥ उढ धर्मादानी अज्जवधरु, शाताव-  
 धनी ए रीत ॥ सु० ॥ त० ॥ १३ ॥ विपरित एथी अशाता वेदनी,  
 करि हिसादि कूकर्म ॥ सु० ॥ वांधे पापस्थानक सेवतो, जेणे न लह्यो  
 शुद्ध धर्म ॥ सु० ॥ त० ॥ १४ ॥ तिर्यक आयु कूरु कपट वशे, वांधे राखी  
 हो शक्य ॥ सु० ॥ मंदकपाय प्रकृती जेहने, दान रुची हांय  
 निशक्य ॥ सु० ॥ त० ॥ १५ ॥ मध्यमकपायी मनुष्य आयु  
 लहे, न करे अधिक कूकर्म ॥ सु० ॥ अविरती सम्यकद्रष्टि तथा,  
 बाल तपस्वी शूज धर्म ॥ सु० ॥ त० ॥ १६ ॥ अकाम निर्जरा करतो इडि-  
 जयी, ए आदि वांधे देव आय ॥ सु० ॥ देशव्रती मनुष्य तिर्यच जे,  
 आयु देवनुं निपाय ॥ सु० ॥ त० ॥ १७ ॥ गर्व रहित मद कपट रहित जे,  
 विषयथी कांईक विराम ॥ सु० ॥ मंदकपाय नहीं पर पीरतो, वांधे ठे  
 शूज नाम ॥ सु० ॥ त० ॥ १८ ॥ एहथी विपरित जे होय जगतमां, अ-  
 शुज नाम करे बंध ॥ सु० ॥ गुणपेक्षी मद कपट रहित सदा, सुतरुचि  
 गुरुमित्र संबंध ॥ सु० ॥ त० ॥ १९ ॥ करे जक्ति जिन गुरुआदि तणी,  
 बंध करे जंच गोत्र ॥ सु० ॥ एहथी विपरित जे जन जगतमां, बंधे ठे नीच  
 गोत्र ॥ सु० ॥ त० ॥ २० ॥ जिन आणा पूजा जिन मार्गमां, विघ्न करे  
 जन कोय ॥ सु० ॥ दान लाज जोग उपजोगनी, शक्ति हणें नर सोय  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २१ ॥ रोके सुख जोगादिक जीवनां, हिसा वश पणं होय

॥ सु० ॥ बाधे दुविध पंच अंतराय ते, बाध मूढ जन सोय ॥ सु० ॥  
 ॥ त० ॥ २२ ॥ दान छाज जोग उपजोगमां, न किजे वीर्य अंतराय ॥  
 ॥ सु० ॥ आतम छब्धि अनुचव रगमां, रहिप शीव सदाय ॥ सु० ॥  
 ॥ त० ॥ २३ ॥ दरशनविशुद्धि जेह आदरे, चुके न विनैय योग ॥  
 ॥ सु० ॥ न समावे अतिचार शियल विपे, क्षिण क्षिण ज्ञान उपयोग  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २४ ॥ जवजीरू निज शक्ति न गोपवे, दान संवेग तप  
 लाग ॥ सु० ॥ खट विध वाह अज्यंतर तप करे, मुनिसर्जाल सोजाग्य  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २५ ॥ वैयावर्ध करे नित धर्मीनी, अरिहंतादिनी  
 जंक्ति ॥ सु० ॥ तेम सुरिश्चरनी सेवा करे, यथायोग्य निज शक्ति ॥  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २६ ॥ सुतधर ने सुतपद नित सेवतो, प्रवचनजक्ति  
 करे सार ॥ सु० ॥ श्रावश्यक नित नित प्रते करे, मार्गप्रज्ञावना उदार  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २७ ॥ प्रवचन वात्सल्यता नित आदरे, ए सोले पद  
 धाम ॥ सु० ॥ सेवे तन्मय थई निज आत्ममा, बाधे जिनपद नाम  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २८ ॥ जे जिन शासन अधिक फेलाववा, तारवा जव्य  
 सदाय ॥ सु० ॥ तत्त्वार्थे दाख्यो अधिकार ए, तीर्थपती पद पाय ॥  
 ॥ सु० ॥ त० ॥ २९ ॥ एम सवि बधन कारण जाणीने, तजिए तत  
 खीण तेह ॥ सु० ॥ मनसुख दरशन ज्ञान चरण लही, लहिये शिव सुख  
 गेह ॥ सु० ॥ त० ॥ ३० ॥

॥ दोहरा ॥

कर्म बंध कारण कष्टो, कहं वत आदि स्वरूप ॥ लहि निवृत्ति  
 विजावथी, लहो समाधि अनूप ॥ २ ॥

॥ ढाल ( २४ ) चौदमी ॥

॥ हुं तो नहीं रे नमुं डुजा देवने रे खो ॥ ए देशी ॥

हुं तो नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे खो, रूनी रूनी अरिहंत  
 जीनी सेव महाराखास नहीं रे तजुं जिन धर्मने रे खो ॥ ए आकणी ॥

व्रत पहेले हिंसा तजी सेविए रे लो, शुद्ध आतम चरण अशेष महारा लाल ॥ दश प्राण हणो नही ड्रव्यथी रे लो, जाव प्राण नवि हणिए लेश महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ १ ॥ काई अलीक वचन नवि बोलिए रे लो, क्रोधादिक वश थई काई महारा लाल ॥ जिन आणाए वाक्य ऊचारिये रे लो, द्रष्टि राखी आतम गुण माहि महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ २ ॥ अण दिधी परवस्तु नवि लीजिए रे लो, ड्रव्य जावथी ड्रुविध प्रकार महारा लाल ॥ ज्ञानादिक गुण प्रही थिर रहो रे लो, पुद्गल ग्रहणे नहि सार महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ३ ॥ नर नारी अव्रह्म नवि सेविये रे लो, छोमि सुमतिनो रंग अजंग महारा लाल ॥ ड्रव्य जाव परिग्रह त्यागिये रे लो, नवि राखो काइ मूर्च्छा संग महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ४ ॥ मुनि राखे ए पच व्रत सर्वथीरे लो, ग्रहस्थोने होय देश विवेक महारा लाल ॥ एम चरण शरणे ड्रढे आदरेरे लो, जिन धर्मे अचल ड्रढ टेक महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ५ ॥ व्रत थिर अर्थे नित जावियेरे लो, व्रत पंचनी जावना पचीश महारा लाल ॥ शुद्ध आतम गुण प्रगटे सवेरे लो, एथी लहिये शुद्धात्म जगीश महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ६ ॥ इरियासर्मिति सहित नित चालवुरे लो, वारो पापथी मनने सदाय महारा लाल ॥ हिंसाकारी वचन नवि बोलवुरे लो, आदाननिक्षेपण दोष न लगाय महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ७ ॥ आहार पाणी विलोक्यो विना न लियेरे लो, पंच पहेला व्रतनी जाण महारा लाल ॥ अहिंसा व्रत एथी विमलुं रहे रे लो, शिव साधन गुणगणखाण महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ८ ॥ क्रोधे लोचं जय हास्यथी न बोलवु रे लो, काई अलीक वचन ड्रु.ख.दाय महारा लाल ॥ जिन आणा विचारी बोलिए रे लो, निज पर आतम सुखदाय महारा लाल ॥ नहीरेण ॥ ९ ॥ क्रोध लोचं जय हास्य वश नां थशो रे लो, जाणिए ए अहितकारी जाव महारा लाल ॥ पंच जावना ए बीजा व्रत तणी रे लो, तेथी नाशे दूष्ट विजाव महारा

लाल ॥ नहींरे० ॥ १० ॥ वस्ति अथग्रह परिमित विचारि ले रे लो,  
 दाता दिधो रजाए आहार पाण महारा लाल ॥ काल क्षेत्र मर्यादा  
 राखिने रे लो, क्षिये वस्ति अथग्रह शुरू जाण महारा लाल ॥ नहींरे०  
 ॥ ११ ॥ वार वार अथग्रह हृद बांधि ले रे लो, ए चोथी जावना होय  
 महारा लाल ॥ अथग्रह परिमित साधर्मिथी रे लो, मागि लेता प्रीजा  
 वतनी जोय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १२ ॥ वार वार स्त्रीकथा करे  
 नहीं रे लो, स्त्री ईद्रि अगै निरखे न कोय महारा लाल ॥ पुरव काम  
 क्रिमौ न सजासता रे लो, अधिक मादक आहार न होय महारा लाल  
 ॥ नहींरे० ॥ १३ ॥ स्त्री नपुंसक पशु जिहां रहे रे लो, वस्ती आसन  
 तेह न लेय महारा लाल ॥ चोथा महाव्रतनी ए पंच जावना रे लो,  
 व्रत राखे सुख होय अमेय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १४ ॥ शब्द रूप  
 गंध रस फेरस पचने रे लो, ईठ अनिठ न धारे मन माह्य महारा लाल  
 पुद्गल पक्कव भाहरा नथी रे लो, माहरी ज्ञायकता शिव ठाह  
 महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १५ ॥ पंच जावना ए पच विषय त्यागनी  
 रे लो, धन विषयनो लोभ न कदाय महारा लाल ॥ इम जावना पच-  
 विश जाविए रे लो, पच व्रत शुरू अखंक रखाय महारा लाल ॥  
 ॥ नहींरे० ॥ १६ ॥ चित चिते पच महाव्रत आदरथा रे लो, मन  
 वच कायथी निरमाय महारा लाल ॥ व्रत पाली पलावी अनुमोदता  
 रे लो, जिन आणा आराधक थाय महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ १७ ॥  
 हिंसादि पच अत्रत सेवता रे लो, अशोक परलोक महारा  
 लाल ॥ राजदमादिक बहु दु ख तिरियकना  
 दु ख थोक महारा लाल ॥ नहींरे० ॥ पंच दु ख  
 दाय ठे रे लो  
 दिक चार  
 ॥ नहींरे० ॥  
 तारवानी

रे लो, राखि ड्रव्यने जाव विशुद्धि महारा लाख ॥ नहीरेण ॥ २० ॥  
 आचारज वाचक मुनि लखी रे लो, साधु साधर्मीथी प्रमोद महारा  
 लाख ॥ धन्य हुं म्हारे उत्तम गुरु मढ्या रे लो, करे उत्तमनो विनय  
 विनोद महारा लाख ॥ नहीरेण ॥ २१ ॥ हिंसक मिथ्याती आदि लखी  
 रे लो, ते ऊपर राग न रोप महारा लाख ॥ एम चित्त चोखे चार जा-  
 वना रे लो, जावतां लहे निज गुण पोप महारा लाख ॥ नहीरेण ॥ २२ ॥  
 लही चरण करणनी शुद्धता रे लो, करी अनुभव रंग विलास महारा  
 लाख ॥ मनसुख शिव सुदरिशु रमे रे लो, आनंदपुरी शाश्वत वास  
 महारा लाख ॥ नहीरेण ॥ २३ ॥

॥ ढाल (१५) पंदरमी ॥ चेतन जाव ते चेतना जीहो, जलट

अचेतन जाव ॥ ए राग ॥

पचाचार आराधिण लाखा टाली सकल अतिचार, ॥ आतम  
 जावे आतमा लाखा, रमत लहो नवपार ॥ सुगुणनर आराधो जिन  
 धर्म, तजि डुरमति कूकर्म ॥ सुगुणण ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥

काल विनय बहुमानथी लाखा, बलि धारी उपधान ॥ निन्हव-  
 पणु ठोडी करि लाखा, व्यंजन अरथ प्रमाण ॥ सुगुणण ॥ २ ॥ व्यं-  
 जन अर्थ उन्नय मढी लाखा, लखि लहो तत्त्व विचार ॥ एम शुभ  
 ज्ञान आराधतां लाखा, लहिये नवजल पार ॥ सुगुणण ॥ ३ ॥ शंका  
 कंखा डुगच्छना लाखा, मूढद्रष्टि तजि सार ॥ नय आदि मन धा-  
 रिने लाखा, कीजे तत्त्व विचार ॥ सुगुणण ॥ ४ ॥ गुरु अवगुण नवि  
 बोधिण लाखा, थिर करि सम्यकद्रष्टि ॥ वात्सल्यता जिन धर्मनी  
 लाखा, करि प्रजावना पुष्ट ॥ सुगुणण ॥ ५ ॥ एम दरशन निरमल  
 करो लाखा, जेहथी नवन्नय जाय । चारित्र आवे निरमलुं लाखा,  
 स्हेजे शिवसूख थाय ॥ सुगुणण ॥ ६ ॥ त्रिप्रणिधान शुद्ध आदरो  
 लाखा, पण समिति त्रय गुप्ति ॥ चरण करण आराधतां लाखा,



मुनिवर पामे मुक्ति ॥ सुगुण० ॥ ७ ॥ चाह् अन्यंतर तप तपो लाखा,  
 द्वादश विधे अति शुद्ध ॥ कुगलद्रष्टि राखो सदा, लाखा, गिलाणता  
 तजि वुद्ध ॥ सुगुण० ॥ ८ ॥ आजीविकादि न ईष्टिण लाखा, नवि  
 चाहो जवजोग ॥ पुद्गल जाव निरीह्थी लाखा, तप शिव साधन  
 योग ॥ सुगुण० ॥ ९ ॥ फोरे सदा धर्म कार्यमां लाखा, आत्म वीर्य  
 अमाय ॥ तप सुत ध्यानादि आदरे लाखा, गोपे न वीर्य कदाय  
 ॥ सुगुण० ॥ १० ॥ जे जे कारण धर्मना लाखा, तेहमां मन वच काय ॥  
 धिर वीर वीरज फोरेवे लाखा, आलस निंद नसाय ॥ सुगुण० ॥ ११ ॥  
 पचे आचार आराधये लाखा, नवि कीजे अतिचार ॥ मनसुख शिव  
 सपत्ति लहे लाखा, अचल विमल सूखकार ॥ सुगुण० ॥ १२ ॥

### ॥ दोहरा ॥

महाव्रतादिक वर्णव्या, देगवतादिक सार ॥ चाखु सूत्राधारथी,  
 शुद्धातम हितकार ॥ १ ॥

॥ ढाख (१६) सोलमी ॥ पाडलीपुरनी शेरिण रमता, रत्नाचि  
 तामणि लाघ्युंजी ॥ ए राग ॥

सवेगने निरवेदने अरथे, जगत स्वरूप विचारोरे ॥ जावना अ-  
 नित्यादिक वारे, मनथी कव न विसारो ॥ विरती रस लीजेजी, आत्म  
 अनुभव अज्यास, अमृत रस पीजेजी ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ प्रमाद  
 वगे इव्य जाव प्राणनी, हाणी कवहु न कीजेजी ॥ जिन शासन  
 लहि समकित पामी, देशविरती आढरोजे ॥ विरती० ॥ २ ॥ सात  
 धातुने साते मळथी, डुगवित ए देहोजी ॥ रोग अनेकनु जाजन  
 एहिज, डु खदायक डु स गेहो ॥ विरती० ॥ ३ ॥ जगत पदारथ  
 सवि पुद्गलना, खिण खिण उपजे विणसेजी ॥ खिणमा ईष्ट अनिष्ट  
 खीणमा, देखी मूरख हरपे ॥ विरती० ॥ ४ ॥ सवि पुद्गल अथिर  
 समल जरु, जगनी एठ प्रतंतजी ॥ मूरख जोगनी वुद्धे देखी, माने

सुख अत्यंत ॥ विरती० ॥ ५ ॥ रागादिक परमाद आदरतां, दुविधे  
 हिसा जन्मेजी ॥ इंद्रि'आदि दश द्रव्यप्राणनी, हाणि करी' रस  
 मनमें ॥ विरती० ॥ ६ ॥ जावप्राण ज्ञानादि जीवना, ते कवहू नवि  
 हाणियेजी ॥ जव ज्रमण'वहु दु खनु कारण, हाणि जाणि परिहरिये  
 ॥ विरती० ॥ ७ ॥ पंदर जेदे प्रमाद कह्यो ठे, पच विषय इंद्रि'नाजी ॥  
 चार कषाय ने विकथा चारे, निंजा रागादिक ज्ञीना ॥ विरती० ॥ ८ ॥  
 स्वपर जीवना सुख हाणीथी, हिसा श्रीजिन दाखीजी ॥ स्वपर  
 जीव हाणि नवि कोजे, निज गुण निरमल राखी ॥ विरती० ॥ ९ ॥  
 वध वंधन ठवि ठेद न कीजे, जार अधिक नवि जरियेजी ॥ जात पाणि  
 बीठोहू जीवने, प्रमाद वशे नवि करिए ॥ विरती० ॥ १० ॥ मंत्र  
 उंसन जूठां देखाडी, कष्टमा कोईने न पाडोजी ॥ गुप्त वात निज ना-  
 रिथी जाणी, रहस्य नवी देखाओ ॥ विरती० ॥ ११ ॥ मूखा उपदेश  
 न दिजे कोईने, कूको लेख न लखिएजी ॥ साचुं पण 'दुःखकारी न  
 वोखो, विय व्रत रस ईम चखिए ॥ विरती० ॥ १२ ॥ पर द्रव्य नवि  
 हरवुं त्रीजे, थूल जेद तस पंचजी ॥ चोरि आणेखी वस्तु न लीजे,  
 जेख'न कीजे रंच ॥ विरती० ॥ १३ ॥ दान आदिमां राज विरुद्ध  
 नहीं, कूमां तोल न मापोजी ॥ मदद काई चोरने नवि दीजे, त्रीजा  
 व्रत फल चाखो ॥ विरती० ॥ १४ ॥ परदारा पर पुरुषथी क्रीडा,  
 चोथा व्रतथी न कीजेजी ॥ स्थूल अन्नह्य तजिने श्रावक, समता संग  
 रमीजे ॥ विरती० ॥ १५ ॥ अपरिग्रहिता ने पर नारी, अनंग क्रिमा  
 नवि कीजेजी ॥ पर. विवाह जोडावो न कवहू, तिव्र राग ठडीजे ॥  
 ॥ विरती० ॥ १६ ॥ धन धान्य क्षेत्रने वस्तु, रूपु सोनु जाणोजी ॥  
 कूप दुपद चौपद मर्यादा, राखो इह प्रमाणो ॥ विरती० ॥ १७ ॥  
 दश दिशानो गमण प्रमाण ते, कीजे व्रत गुण हेतेजी ॥ टालि पंच  
 अतिचार एहना, राखो व्रत-अखेदे ॥ विरती० ॥ १८ ॥ उर्ध्व अधो  
 तिर्यग दिशि नीमथी, न जाय मर्यादा वधारीजी ॥ एक दिशि त्यागी,

बीजी वधारे, एम कुमती निवारी ॥ विरती० ॥ १९ ॥ लीधु नेम  
 संजाल न राखे, एम पण विधि अतिचारोजी ॥ निर्मल व्रत राखि  
 हित कारण, ए विधि दोष निवारो ॥ विरती० ॥ २० ॥ मदिरा मांस  
 नक्षण नवि कीजे, फूल फल ने गंध मालाजी ॥ जोग उपजोगनुं नीम  
 करीने, ठोडो मोहना चाला ॥ विरती० ॥ २१ ॥ अजक वाविश नवि  
 वापरिये, अनंतकाय वत्रीशजी ॥ सचित तणो प्रतिबंध न कीजे,  
 अपक तजो निशदीश ॥ विरती० ॥ २२ ॥ छुपक आहारने रयणी  
 जोजन, कूलां फल निवारोजी ॥ जीव दयानु कारण जाणी, ए विधि  
 व्रत निरधारो ॥ विरती० ॥ २३ ॥ सचित ड्रव्य विगयने वाणी, त-  
 बोख वखने कुसुमोजी ॥ वाहन शयन विलेपन स्नानने, ब्रह्म दिशि  
 नक्त नीमो ॥ विरती० ॥ २४ ॥ चौद नीम ए नित्य आदरिये, नवि  
 चूको कोई वारजी ॥ तुच्छ फल विष नक्ष निवारो, राखो व्रत ड्रढ  
 सार ॥ विरती० ॥ २५ ॥ अगारा करी मत वेचो, हारु चाम मति  
 वणजोजी ॥ वन न ठेदावो सरं न फोरुवो, कवहू न वणजो किणजो  
 ॥ विरती० ॥ २६ ॥ जौडीकर्म न कीजे कवहू, निर्लठंन दर्व दाणजी ॥  
 पीलेण कर्म न कीजे कवहू, शखंनुं कर्मादान ॥ विरती० ॥ २७ ॥  
 दंते रसे व्यापार न कीजे विष व्यापार तजीजेजी ॥ केशे वणज  
 असंजतिपोपण, तजि व्रत शुद्ध ड्रढ कीजे ॥ विरती० ॥ २८ ॥ पंदर  
 कर्मादान ए मोटा, कारण पाप करमनुजी ॥ जिन धर्मे ड्रढ रंग  
 धरीने राखो मूल धरमनु ॥ विरती० ॥ २९ ॥ पंदर कर्मादान तजीजे,  
 गुणव्रत बीजु धारीजी ॥ विश अतिचार पडना ॥  
 दूर निवारी ॥ विरती० ॥ ३० ॥ आठमे  
 अर्थ विण कोईजी ॥ शस्त्र अग्नि  
 ॥ विरती० ॥ ३१ ॥ तृण काठ  
 जेजी ॥ बीजा पासे नवि  
 ॥ ३२ ॥ न्हवण उवटण विलेपन ए,

कारण कोईने नवि दीजे, कीजे चरणनुं शरण ॥ विरती० ॥ ३३ ॥  
 कंदर्प वश कूचेष्टा न कीजे, पाप अधिकरण न दीजेजी ॥ पापकारी  
 शब्द नवि बोलीजे, निरमल व्रत फल लीजे ॥ विरती० ॥ ३४ ॥  
 विषय जोगनी वस्तु कोईने, देवानुं शुं कामजी ॥ आप आपणी आ-  
 त्म शक्तिमा, किजे थिर आराम ॥ विरती० ॥ ३५ ॥ मिथ्या पाप  
 उपदेश न दीजे, बहु विध अनरथ त्यागोजी ॥ गुणव्रत एम तिन  
 निरमल राखी, आतम काजे लागो ॥ विरती० ॥ ३६ ॥ अनरथ दंरु  
 व्रत एम पाळीजे, अणुव्रतने गुणकारीजी ॥ दरशन ज्ञान चरण आ-  
 राधो, मनसुखथी शिवकारी ॥ विरती० ॥ ३७ ॥

॥ दोहरा ॥

पच अणुव्रत वर्णव्यां, तिन गुणव्रत सुखकार ॥ चउ शिदाव्रत  
 दाखशु, श्री जिन वचनाधार ॥ १ ॥

ढाल ( १७ ) सत्तरमी ॥ हो सुखकारी आ ससार थकी जो मुजने  
 उरुरे ॥ ए वेशी ॥

नवमे सामायक आदरिये, मन वच काया त्रण ड्रढ करिये ॥  
 पुद्गल ममता साव परिहरिये, तजो राग द्वेष प्रातिक हरिये ॥ हो  
 चेतनजी आतम अनुभव अमृत रस जर पीजे, नरजव पामो प्रमाद  
 तजीने संजम लाहो लीजे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ दुःप्रणिधान त्रिविध  
 तजिये, दोय घनि आदि थिरता जजिये ॥ टाली परसंग आतम  
 यजिये, धीर वीरज राखी सुमती जजिये ॥ हो चेतनजी० ॥ २ ॥  
 एक ठामे थिर आसन धारी, तन वच मन चंचलता टाली ॥ निरमल  
 निज सत्ता निहाली, जिन आणाए ड्रष्टि जाली ॥ हो चेतनजी० ॥ ३ ॥  
 ड्रव्य जाव थकी सावद्य ठंभी, निज दरशन ज्ञान चरण मडी ॥ शुद्ध  
 नय सुतपद ड्रढ अज्यासी, निज आतम ध्यावो अविनाशी ॥ हो  
 चेतनजी० ॥ ४ ॥ दिशा अवगाहीने रहिये, त्यांधी वाहिर शब्द

नवि कहिए ॥ समता धरिने सुत रस लहिए, ज्ञानादिक गुणमां गह  
 गहिए ॥ हो चेतनजी० ॥ ५ ॥ बाहिरथो कांइ न मंगावो, काई बाहिर  
 पण नवि जेजावो ॥ बाहिर निज रूप न देखावो, ना ककर बाहिर  
 केपावो ॥ हो चेतनजी० ॥ ६ ॥ करि पोपध रहि पोपध जाले, निज  
 शुद्धात्म गुण सजाले ॥ सथारा विधि काई नवि चूके, परमाद वशे  
 विधि नवि मूके ॥ हो चेतनजी० ॥ ७ ॥ आहारादिक चिंत्ता नवि  
 कीजे, ज्ञानादिक गुण गण पोपीजे ॥ रागादिक दोष सकल वारी,  
 धिर रहिए शुद्धात्म अधिकारी ॥ हो चेतनजी० ॥ ८ ॥ असूरो पोपो  
 नवि लीजे, उणे काखे नवि पालीजे ॥ देववंदन काल न चूकजे,  
 समजावे निज गुण ध्यायीजे ॥ हो चेतनजी० ॥ ९ ॥ शुद्ध आहारा-  
 दिक मुनिने दीजे, सचित पम्बिबंध नविकीजे ॥ देवा बुद्धे परनुं अपनु  
 अणदेवा बुद्धे कहे परनु ॥ हो चेतनजी० ॥ १० ॥ तप चरण करण  
 मुनि गुण धारी, दान देता मन मच्छर वारी ॥ दान दीजे जक्ति बहु  
 सन्माने, मुनिवर वरते जेम शुच ध्याने ॥ हो चेतनजी० ॥ ११ ॥  
 देतां अतिचार न काई करे, मुनिने देता मन हर्ष धरे ॥ दातानां  
 बहु प्रातिक जावे, शुचदानी सुख संपति पावे ॥ हो चेतनजी० ॥  
 ॥ १२ ॥ असजतिने नवि दान दिये, काई राग तथा काई द्वेष लीये ॥  
 जो सुखी के दूखी होवे, सम्यकधर निज गुण किम खोवे ॥ हो  
 चेतनजी० ॥ १३ ॥ सजमीने में नवि दान दियो, पण देवा हरखे  
 अति हेयो ॥ प्राशुक अन्नादिक हमे देइशु, देई दान ज्ञानादिक गुण  
 लेइशु ॥ हो चेतनजी० ॥ १४ ॥ एम वारे व्रत ऊढता धारो, अते  
 सखेखन ठे सारो ॥ कपाय सवी पतला कीजे, तजी आहार पान तन  
 शोपीजे ॥ हो चेतनजी० ॥ १५ ॥ ईह, लोमाशंसा नवि धारू, पर  
 लोमाशंसा निवारू ॥ जीवित आशंसा पण न करू, मरणाशंसा पण  
 चित्त न धरू ॥ हो चेतनजी० ॥ १६ ॥ काम जोग तणी आशंसा  
 तजु, निज दर्शन ज्ञान चरित्त जजुं ॥ एम आवक वारे व्रत धारी,

चारित्र उमाहे सुखकारी ॥ हो चेतनजी० ॥ १७ ॥ विरतिथी परम-  
विरती आवे, द्विण द्विण निज ज्ञायकता जावे ॥ मनसुख रंगे शिव  
सुख पावे, फरी ए संसारे ना आवे ॥ हो चेतनजी० ॥ १८ ॥

### ॥ दोहरा ॥

शब्द रहित व्रती कह्यो, शब्द युक्त व्रती नाहि ॥ शब्द सहित  
व्रत जो धरे, जमे चतुरगति माहि ॥१॥ माटे शब्द न राखिए, माया-  
मिथ्या निदान ॥ शब्द रहित व्रत आदरो, पामो सुख अमान ॥ २ ॥  
प्रमाद त्यां हिंसकपणुं, विण प्रमाद नहि तेह ॥ सहित प्रमाद वाहिर  
दया, तो पण हिसक एह ॥ ३ ॥ माटे तजी प्रमादने, थिर उपयोग  
अमोल ॥ धारि धर्म शुक्ल सदा, लहो निज गुण रंग चोल ॥ ४ ॥  
आगारी अणगारी दो, देश सर्व व्रत धार ॥ शेष अव्रती जे रह्या, ते  
जमशे ससार ॥ ५ ॥ शंका कंखा दुर्गहंणा, तजि धारो जिनवाण ॥  
स्तवन प्रशंसा कुलिगीनी, समकित अतिचार ए जाण ॥ ६ ॥ वलि-  
व्रत वार तणा कह्या, बहु विध जे अतिचार ॥ टाळी व्रत डढ राखिए,  
शुरू स्वजावाचार ॥ ७ ॥ व्रत आदि अधिकार ए, दाख्यो लेश विचार ॥  
बंध हेतु कांइ दाख्यु, श्रोता धारो सार ॥ ८ ॥

ढाल (१८) अठारमी ॥ ए व्रत जगमा दिवो मेरे प्यारे ॥ ए राग ॥

मिथ्यादरशन ने अतिरति बली, प्रमाद कषायने योग ॥ पंच  
कारण ए कर्मबंधनां, तजि लहो शिवमग योग ॥ हो जविया जिन  
दरशन रस लीजे, ज्ञान संधारस पोजे, हो जविया जि० ॥ ए आंकणी  
॥ १ ॥ मिथ्यारुची अनादि जीवने, ते अग्रहित मिथ्यात ॥ कुगुरु  
धकी मिथ्यात ग्रहे जे, अजिग्रहित मिथ्यात ॥ हो जविया० ॥ २ ॥  
ग्रहित मिथ्यात ठे पंच जेदथी, प्रथम एकते माने ॥ अनत धर्ममयी  
वस्तुने, एक धर्ममय जाणे ॥ हो जविया० ॥ ३ ॥ हिंसादिक जे धर्म-  
थी विपरित, तेहने माने धर्म ॥ धर्म लखी अधर्म आदरतो, बांधे

बहुविध कर्म ॥ हो जविया० ॥ ४ ॥ जीव मांहे अजीवनी श्रद्धा, अ-  
 जीव प्रते जीव माने ॥ धर्म प्रते अधर्म कहे ते, अधर्मने धर्म प्रमाणे  
 ॥ हो जविया० ॥ ५ ॥ कुगुरु प्रते सुगुरु निरधारे, सुगुरुने कुगुरु  
 उचारे ॥ मुक्त प्रते अमुक्त कहे एम, अमुक्तने मुक्त स्विकारे ॥ हो  
 जविया० ॥ ६ ॥ देवप्रते अदेव कहे एम, अदेव देव करि जाणे ॥ एम  
 बहु विंध विपरीत वासना, होय मिथ्याश्रजिमाने ॥ हो जविया० ॥ ७ ॥  
 तीनसय त्रैसठ पाखंनो, बहु मिथ्यातना जेद ॥ सम्यक तत्त्व सुज्ञान  
 लहीने, किजे मिथ्यात उठेद ॥ हो जविया० ॥ ८ ॥ देव अदेव सु-  
 गुरु कुगुरुने, मोक्षाथें आराधे ॥ विनय करे वेहुनो एक सरखो, चउ  
 गति मारग साथे ॥ हो जविया० ॥ ९ ॥ जिन देशित नवतत्त्व मांहे  
 जस, शका विविध प्रकारो ॥ चोथो जेद मिथ्यातनो ए तो, जाणी  
 शका निवारो ॥ हो जविया० ॥ १० ॥ जीव अजीवादिक नवि जाणे,  
 गहल रूप होय अंध ॥ पंच मिथ्यात जेदनो एह, दाख्यो संक्षेप  
 प्रबध ॥ हो जविया० ॥ ११ ॥ खटकायनी हिंसा नवि त्यागे, पच  
 विपयनो जोग ॥ निज मन धिरता कबहु न धारे, वार ए अविरति  
 योग ॥ हो जविया० ॥ १२ ॥ पंच अत्रत थकी न निवत्तें, वलि त्रिजोग  
 क्रियाथो ॥ कर्मबंध करि एहथी बहुविध, नवि निकसे जवमांथी ॥ हो  
 जविया० ॥ १३ ॥ पंदर विधे प्रमाद सेवतो, तेम वलि चार कपाय ॥  
 जोग चपलता बहुविध करतो, कर्मबंध बहु थाय ॥ हो जविया०  
 ॥ १४ ॥ राग द्वेष वश जीव पुद्गलनो, सर्व प्रदेशे सचध ॥ प्रकृति  
 स्थिति अनुज्ञाग प्रदेशनो, चार प्रकारे बंध ॥ हो जविया० ॥ १५ ॥  
 लोकाकाश असंख्य प्रदेशे, वर्गणा विविध प्रकार ॥ काळ अनादि  
 सदाय जरी ठे, ते मांहे कार्मण सार ॥ हो जविया० ॥ १६ ॥ आठ  
 प्रयोग ठे तेहनारे, स्नेहथी जीव बधाय ॥ ज्ञानावरणादिक करमना,  
 आठ प्रकारज थाय ॥ हो जविया० ॥ १७ ॥ प्रकृति कहिये कर्म

टेवने, स्थिति कालनुं मान ॥ कर्म तणो विपाक शुभाशुभ, ते अनु-  
 नव रस जाण ॥ हो ऋवियाण ॥ १७ ॥ पुद्गल वर्गणा आत्म प्रदेशे,  
 वंधे प्रदेशनो वंध ॥ आत्म रमण करि कर्म उठेदो, टाळि अनादि  
 कुबंध ॥ हो ऋवियाण ॥ १९ ॥ मूल प्रकृति आठज जाणो, उत्तर  
 एकसय अक्याली ॥ ज्ञानावरणनी पंचज कहिये, दरशन नवविध  
 जाली ॥ हो ऋवियाण ॥ २० ॥ शाता अशाता दोय वेदनी, मोहनि  
 अष्टावीश ॥ अंतरायनी पच प्रकारे, आयु चार जगीश ॥ हो  
 ऋवियाण ॥ २१ ॥ गोत्र ऊंच नीच दोय प्रकारे, नामकर्मनी त्राणुं ॥  
 सत्ताए एम दाखी श्रुतमां, इगसय वीश वंध मानुं ॥ हो ऋवियाण  
 ॥ २२ ॥ उदय होय एकसय वाविश, एम दाखी जगदीश ॥ कर्म  
 सत्ता हणि शुद्धातम लही, विलसो स्वगुण जगीश ॥ हो ऋवियाण  
 ॥ २३ ॥ कर्मवध परमण्ठी होवे, निज रमणे शिव लहिये ॥ शिवसगे  
 रंगे आनदे, मनसुख शिवघर रहिये ॥ हो ऋवियाण ॥ २४ ॥

## ॥ दोहरा ॥

स्थूल स्वरूप कहुं कर्मनुं, कहुं कहु सूक्ष्म रूप ॥ सहजानंद अज्या-  
 सयी, आतम सिद्ध स्वरूप ॥ १ ॥

॥ ढाल ( १९ ) ओगणीशमी ॥ एसो कर्म अतुल बलवानं जग-  
 तकुं पीरु रह्यो ॥ ए राग ॥

एसो कर्म अतुल बलवान, जगत जीय पीड रह्यो ॥ कोई वंधे तत्त्व  
 अजाण, पुद्गल रस कीरु रह्यो ॥ ए आंकणी ॥ निश्चय राग विरोध-  
 थीरे, वंधे अडविध कर्म ॥ आतम रमणे आतमारे, हरे कर्मना मर्म  
 ॥ जगतण ॥ १ ॥ निज ज्ञायकता नवि लखीरे, देखत ज्ञेय अनेक ॥  
 ममत करि परज्ञेयमारे, शुध पद नूद्यो ठेक ॥ जगतण ॥ २ ॥ ममता  
 वशथी ऊपज्यारे, राग रोष बहु दोष ॥ कर्म वर्गणा ग्रहणथीरे, वध्यो  
 कर्मघन पोष ॥ जगतण ॥ ३ ॥ सिद्ध समाधिमय सदारे, जे जाणे



निजरूप ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे, रम्य रमण सुखरूप ॥ जगत०  
 ॥ ४ ॥ व्यवहारे पंचाक्षवेरे, कर्म वर्गणा आय ॥ रमतां पुद्गल जाव-  
 मारे, अष्ट कर्म बंधाय ॥ जगत० ॥ ५ ॥ ज्ञान विना ममता रहेरे,  
 ममताथी मिथ्यात ॥ अविरति प्रगटे तेहथीरे, प्रमाद कपाय विख्यात  
 ॥ जगत० ॥ ६ ॥ जोग चपलता तेहथीरे, पुद्गल स्नेह विकार ॥  
 कर्मबंध तेथी करीरे, जमे चलगति कतार ॥ जगत० ॥ ७ ॥ शुभाशुभ  
 विकल्पथीरे, लहि निवृत्ती न क्षेश ॥ ज्ञानादिक चक्ष मक्ष हुवारे,  
 जोगत बहुविध क्लेश ॥ जगत० ॥ ८ ॥ ज्ञानसुधारस पानथीरे, सकल  
 विकल्प विलाय ॥ उढ समता समजावमारे, अष्ट करम क्षय थाय  
 ॥ जगत० ॥ ९ ॥ ज्ञान दर्शनावरणनीरे, वेदनी ने अंतराय ॥ तिस  
 कोडाकोमी सागरूरे, स्थिति कही जिनराय ॥ जगत० ॥ १० ॥ सित्तेर  
 कोनाकोडी मोहनीरे, तेत्रिश सागर आय ॥ नाम गोत्र दोय जाणि-  
 यरे, वीश कोडाकोमी थाय ॥ जगत० ॥ ११ ॥ ए उक्कोस थिति कहीरे,  
 वेदनी मुहूरत वार ॥ नाम गोत्र अरु मुहूर्त्तनीरे, जघन्य स्थिति मन  
 धार ॥ जगत० ॥ १२ ॥ पच कर्म अंतमुहूर्त्तनीरे, जघन्य स्थिति कही  
 एह ॥ शुद्ध स्वजावाचरणथीरे, स्थिति रस ठेशे एह ॥ जगत० ॥ १३ ॥  
 मोहनी कर्म तणी स्थितिरे, सामान्ये कहि जेह ॥ सित्तेर कोनाकोमी  
 सागरूरे, कहु विशेषे तेह ॥ जगत० ॥ १४ ॥ चाखिश कोडाकोडी  
 सागरूरे, स्थिति ठे सोल कपाय ॥ पुरुष हास्य रति तीननीरे, दश  
 कोडाकोडी थाय ॥ जगत० ॥ १५ ॥ जय शोग अरति तथारे, दुगंधा  
 नेपुवेद ॥ विग कोनाकोडी सागरूरे, उक्कोस स्थितिनो जेद ॥ जगत०  
 ॥ १६ ॥ पदर कोनाकोमी सागरूरे, नारिवेद स्थिति होय ॥ मिथ्या-  
 मोह तणी कहीरे, सित्तेर कोडाकोमी जोय ॥ जगत० ॥ १७ ॥ सम-  
 कित मिश्रमोहनी तणोरे, होय न बंध कदाय ॥ मिश्रमोहनी उदय  
 तोरे, अतरमुहूरत थाय ॥ जगत० ॥ १८ ॥ माधिक ठासठसागरूरे,

उदय समकितमोह ॥ निश्चय आतम घ्यावतारे, मोहनी होय विठोह,  
 ॥ जगत० ॥ १९ ॥ घनघाती चउ कर्मनोरे, अशुज कटुक अनुजाग ॥  
 चार अघातीनो कहोरे, शुज अशुज रस लाग ॥ जगत० ॥ २० ॥ मति  
 श्रुत अवधि मन तथारे, निरमल केवलनाण ॥ पंच प्रकार ठे ज्ञान-  
 नारे, तिन विपरीत अनाण ॥ जगत० ॥ २१ ॥ चक्षु अचक्षु ओहि-  
 नेरे, केवलदरशन होय ॥ निडा निडानिडा कहीरे, त्रीजी प्रचला  
 जोय ॥ जगत० ॥ २२ ॥ प्रचलाप्रचला बोधी कहीरे, थीणद्धि पचमि  
 जाण ॥ 'सहु मलि दरशनावरणनारे, ए नव जेद प्रमाण ॥' जगत०  
 ॥ २३ ॥ शाता अशाता वेदनीरे, मोहनि दोय प्रकार ॥ पणवीश चारित्र  
 मोहनीरे, दरशनमोह त्रय धार ॥ जगत० ॥ २४ ॥ कपायमोहनी  
 सोल ठेरे, नोकपाय नव जाण ॥ नरक तिरिय मनु देवनुरे, आयु चार  
 प्रमाण ॥ जगत० ॥ २५ ॥ पिरु प्रकृती चौदनारे, पासठ जेद ते थाय ॥  
 त्रस थावर दश दश मलेरे, वीश जेद चित्त लाय ॥ जगत० ॥ २६ ॥  
 प्रत्येक प्रकृती आठ ठेरे, सवि मलि त्राणु थाय ॥ जुंव नीच दोय गोत्र  
 ठेरे, दानादि पण अंतराय ॥ जगत० ॥ २७ ॥ ड्रव्यथी पुद्गल वर्ग-  
 णारे, वंधे जीव प्रदेश ॥ जावे अशुद्ध उपयोगमारे, रागादि दोष विशेष  
 ॥ जगत० ॥ २८ ॥ जीव प्रदेश असंख्यमारे, प्रतिप्रदेशे जाण ॥ पुद्-  
 गल वर्गणा जाणिएरे, अनंतानंत प्रमाण ॥ जगत० ॥ २९ ॥ अज्ञानादि  
 टेव जेरे, तेह प्रकृति नाम ॥ एम आठे कम्मपयमिनोरे, जथावत  
 प्रकृती नाम ॥ जगत० ॥ ३० ॥ सम्यक चरण रमण करीरे, वेदि कर-  
 मनुं मूल ॥ शिवसंपति मनसुख लहेरे, सहजातम अनुकूल ॥ जगत० ॥ ३१ ॥

### ॥ दोहरा ॥

कहो कर्म अधिकार ए, वलि कहुं कांई विशेष ॥ आतम शक्ति  
 फोरवी, निज धन लहो अशेष ॥ २ ॥ समिति गुति आदि कहुं, संव-  
 रनो अधिकार ॥ जे सेवे मुनिवर सदा, पामे जवजल पार ॥ २ ॥

॥ ढाल ( १० ) वीशमी ॥ प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए ॥ ए देशी ॥

आहार निहार विहारने, अरथे मुनिवर जाय ॥ हाथ सांभातीन मांही आसोकी आगे चले, जेम जतू न ह्णाय ॥ १ ॥ आहु अवसुं देखे नहीं, मनमां त्राति न कोय ॥ नहि चित्त राग विरोध बोध सुतनो सदा, जेम सजम डढ होय ॥ २ ॥ जापा बोले विचारीने, राखी श्री जिन आण ॥ अक्षिक वचन नवि बोले क्रोधादिक वश थई, एवा होय चुजाण ॥ ३ ॥ दोष वेताखीश टाळीने, आहारादि लीये शुद्ध ॥ लेत आहार चउ दोष तजी ठेयाखिश ईम, राखे सजम घुद्ध ॥ ४ ॥ संजम उपकरणो सवे, जोइ प्रमाजी विशेष ॥ लेवे मूके अत्रांत प्राणिनी हाणी नहीं, कोइ प्रकारे रे लेश ॥ ५ ॥ परठवणा मल मूत्रनी, वलि आहारादिक कांय ॥ हाण जंतुनी होय न एम सजावता, उपयोगी चित्त माय ॥ ६ ॥ सम्यक समिति पंच ए, राखे मुनिवर शुद्ध ॥ संजम कारण देह नेह विण साचवे, वरते न जीव विरुद्ध ॥ ७ ॥ मन वच काय त्रियोगनी, वारि चपलता दूर ॥ गुप्त राखे संजममां चरण थीरता वधे, अनुभव रस जरपूर ॥ ८ ॥ विकल्प तजी समजावमा, ध्यान शुक्ल डढ धीर ॥ ध्याता डव्य प्रजाय अजेद शुद्धात्मथी, मनसुख लहे जवतीर ॥ ९ ॥

॥ ढाल ( ११ ) एकवीशमी ॥ वेदनी कर्मना अगिआर परिसह विपे ॥

॥ हु वारी घना तुज जाण न देश ॥ ए राग ॥

हु अविनाशी आतमारे अप्पा, अमर अजर निर्दद, हु निरजय एक चेतनारे अप्पा, अक्षय ज्ञानानंद सुज्ञानी अप्पा धारो सहज विवेक, ज्ञानानंदमय ठेक ॥ सुज्ञानी० ॥ ए आकणी० ॥ १ ॥ कुर्षावंत ते देह ठेरे अप्पा, देहथी निन्न हु ठेक ॥ अक्षुधित गुणमय सदारे अप्पा, ए मुज टेक विवेक ॥ सुज्ञानी० ॥ २ ॥ ज्ञानामृत रस तृप्त तुंरे अप्पा, तृषावंत ठे देह ॥ म्हारुं न विणसे तेहथीरे अप्पा, हु शांति

रस गेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ३ ॥ ज्ञानानंद रसे जख्यो रे अप्पा, तृषातु-  
रता नवि होय ॥ तृषा लगी जे देहमां रे अप्पा, देह न म्हारी कोय  
॥ सुज्ञानी० ॥ ४ ॥ फरस रहित हुं आतमारे अप्पा, किम करि  
फरसे शीत ॥ फरस विना निरजय सदारे अप्पा, उँण तणी नहीं  
नीत ॥ सुज्ञानी० ॥ ५ ॥ वज्रमयी मुज अंग ठेरे अप्पा, शुद्ध असं-  
ख्य प्रदेश ॥ दर्श मशक आदि तणारे अप्पा, उँख न होय प्रवेश  
॥ सुज्ञानी० ॥ ६ ॥ मुज ज्ञायकतामां वसेरे अप्पा, लोकालोक अनंत  
॥ देह उदय जे विचरवुरे अप्पा, चर्या दूःख न संत ॥ सुज्ञानी० ॥ ७ ॥  
थाके दू.खे देह तेरे अप्पा, में जाण्यो तसु मर्म ॥ पर परिणति मा-  
हरी नहिरे अप्पा, में लखो आतम धर्म ॥ सुज्ञानी० ॥ ८ ॥ ममता  
मुज एहनी नहिरे अप्पा, में त्याग्यो पर गर्व ॥ पुद्गल गुणपरजायनुं  
रे अप्पा, काम न वँछू सर्व ॥ सुज्ञानी० ॥ ९ ॥ संजम काज विहार  
ठेरे अप्पा, पर चिंता नहि मुज ॥ देह खेदथी जे विहे रे अप्पा, ते  
तो जाण अबूज ॥ सुज्ञानी० ॥ १० ॥ आतम डव्यादि चउरे अप्पा,  
शँय्या माहरे एह ॥ पुद्गल शय्या देहनीरे अप्पा, त्यां माहरे श्यो  
नेह ॥ सुज्ञानी० ॥ ११ ॥ तन दूःखे मुज डु ख नहींरे अप्पा, हुं जा-  
णुं ते सर्व ॥ जेह डुःख काई अन्यनेरे अप्पा, नहि मुज एहनो गर्व  
॥ सुज्ञानी० ॥ १२ ॥ जिहां तनु त्यां मल उपजेरे अप्पा, देहथी  
जिन्न हुं एक ॥ ज्ञायक रूपी हुं सदारे अप्पा, मल डुःख मुज नहि  
ठेक ॥ सुज्ञानी० ॥ १३ ॥ अज्जदी अजेदी बुरे अप्पा, बंधवधन  
मुज नांहि ॥ ताडन तर्जन देहनेरे अप्पा, अविनाशी पद मुज मांहि  
॥ सुज्ञानी० ॥ १४ ॥ रोगं रहित हुं आतमारे अप्पा, रोगी होय ते  
वेह ॥ दरशन ज्ञान चरणमयीरे अप्पा, हुं निरोग गुणगेह ॥ सु-  
ज्ञानी० ॥ १५ ॥ फरस रहित मुज अंगनेरे अप्पा, नहि तृषादिकफीस  
॥ गुण अनंतमय हुं सदारे अप्पा, में लखो ज्ञान विलास ॥ सुज्ञानी०  
॥ १६ ॥ वेदनीकर्म उदय कक्षारे अप्पा, परिसह ए अगियार ॥

पण नहि आतम अंगमारे अर्प्या, परिसहनो प्रचार ॥ सुज्ञानी०  
 ॥ १४ ॥ तजि ममता जेणे देहनीरे अर्प्या, तस नहि परिसह ताप ॥  
 ज्ञान चरणमां ममतारे अर्प्या, रहे अखंडित आप ॥ सुज्ञानी० ॥ १५ ॥  
 ए परिसह अगिअार तो रे अर्प्या, जिनवरने पण होय ॥ पण नहि  
 मोहनीकर्म ठेरे अर्प्या, वेदक जाव न कोय ॥ सुज्ञानी० ॥ १६ ॥  
 जाववेदना विण कदारे अर्प्या, करवा परिसह दूर ॥ कवहु न छ्छे  
 चित्तमारे अर्प्या, संजम रस जरपूर ॥ सुज्ञानी० ॥ १७ ॥ परिसह  
 दुर करवा कदारे अर्प्या, श्याने वंठे तेह ॥ ज्ञान चरण धन ममतारे  
 अर्प्या, विषसे मुनि गुणगेह ॥ सुज्ञानी० ॥ १८ ॥ अचल अकंप सदा  
 रहे रे अर्प्या, भीर वीर धरि ध्यान ॥ मनसुख शिवसंगे सहोरे अर्प्या,  
 शाश्वत सुख सुजाण ॥ सुज्ञानी० ॥ १९ ॥

ढाल ( २२ ) वावीशमी ॥ अनिहारे दरशन दीपक निरमळोरे ॥ ए रागा ॥

अनिहारे सवर अंबरमां रहोरे, नवि देखे मुजने कोय ॥ जे दे-  
 खाय ते देह ठेरे, मुजथी तेह चिन्नज होय ॥ मोहनि मूल ऊठेदिपरे,  
 यद् निर्मोही निरमाय, संजम श्रेणि निहालतारे, शिव सपत्ति सहज  
 लहाय ॥ मोहनि० ॥ ए आकणी ॥ अनिहारे देह ढाकवा कारणेरे,  
 नहि मुज वेखनु काम ॥ ज्ञान स्वरूपी हु आतमारे, निज पद गुहा-  
 राम ॥ मोहनि० ॥ २ ॥ अनिहारे काम विकार तनमा रहोरे, हु  
 निकामी नि शंक ॥ कामजोग ममता करे रे, ते नर अविवेकी रक  
 ॥ मोहनि० ॥ ३ ॥ अनिहारे हाव जाव नौरि तणारे, देखी चित्त चले  
 अजाण ॥ हु कामी शिवमार्गनोरे, शुद्ध निज गुण काम अमान  
 ॥ मोहनि० ॥ ४ ॥ अनिहारे रति अरति ते पुद्गल विषेरे, करे  
 अज्ञानी जीव ॥ नव नव पळाव उपजेरे, वखी व्यय होय सदीव ॥  
 मोहनि० ॥ ५ ॥ अनिहारे निश्चय ध्रुव अविनाशितुरे, ज्ञायक रूप एक  
 त्रिकाल ॥ रतिअरति नहीं मुजनेरे, पुद्गल परजाय निहाल ॥ मोहनि०

॥ ६ ॥ अनिहारे कठिण वचन कहे कोइ कदारै, करवो न घटे आ-  
 क्रोश ॥ ठोढ्या राग वीरोधने रे, तो मुज किण वाते रोष ॥ मोहनि०  
 ॥७॥ अनिहारे वचन तेसर्व पुद्गल दशारे, वचन मुज फरसे न कोय ॥  
 वचन अगोचर आतमारे, वचन दुःख मुज नवि होय ॥ मोहनि० ॥८॥  
 अनिहारे आहारादि संजम अर्थथीरे, जांचुं हुं हुं तजि मान ॥ विण  
 सजम काल अन्तथीरे, बहुविध पान्यो अपमान ॥ मोहनि० ॥ ९ ॥  
 अनिहारे जिन जेह जाव निपेधियारे, ते आदरुं नहि कोई वार ॥ का-  
 जसग ध्यानमा थिर रह्यो रे, हुं न चतु जयथी लगार ॥ मोहनि० ॥ १० ॥  
 अनिहारे वसति आदि जे जे निपेधियुरे, नवि आदरुं कोई प्रकार ॥  
 हुं निशंकित चेतनारे, अक्षय निर्जय सुखकार ॥ मोहनि० ॥ ११ ॥  
 अनिहारे करे सत्कार कोई मुनि तणोरे, मुनि न करे लोच लगार ॥ चेतन-  
 ता सहु जीवनीरे, सरखी संग्रहनय धार ॥ मोहनि० ॥ १२ ॥ अनिहारे  
 सात परिसह चारितमोहथीरे, दर्शनमोहनिथी अेक ॥ शंका कं-  
 खा जिन वचनमारे, टाली राखो दरश विवेक ॥ मोहनि० ॥ १३ ॥  
 अनिहारे आहारादिक अणलाजतारे, जाणे पुरव फल अंतराय ॥  
 जावलाब्धि दानादिक जावतोरे, रहे निजगुण मग्न सदाय ॥ मोहनि० ॥  
 ॥१४॥ अनिहारे तनुप्रज्ञा दोष कोईनेरे, मनमांनवि माने खेद ॥ धैर्य  
 धरी सुत साधवारे, धारे मन अधिक उमेद ॥ मोहनि० ॥ १५ ॥  
 अनिहारे ज्ञानावरण उदये होवेरे, अज्ञान विविध प्रकार ॥ खेद  
 रहित नित आदेरेरे, विनय वैधात्रच्च उदार ॥ मोहनि० ॥ १६ ॥  
 अनिहारे गुरु सुत आदि नित सेवतारे, तन्मय राखि श्रुतध्यान ॥  
 प्रगटे ज्ञानादिक गुण सवेरे, निरमल थिर अचल अमान ॥ मोहनि० ॥  
 ॥ १७ ॥ अनिहारे ज्ञानादि निज गुण उपयोगमारे, रहे अचल  
 धरि द्रढजाव ॥ परिसह ताप तेहने नहिरे, प्रगटे शुद्ध आत्म स्वजा-  
 व ॥ मोहनि० ॥ १८ ॥ अनिहारे धीर वीर थई शिवपद साधशेरे,

लहि श्रुत सिद्धातनो सार ॥ मनसुख शीव कमला वरे रे, करशे  
जवजलदाधि पार ॥ मोहनि० ॥ १ए ॥

॥ ढाल ॥ ( १३ ) त्रेवीशमी ॥ नयरी महानकुमुदा  
वसे रे, महारिद्धि रिखवदत्त नामरे ॥ ए राग ॥

परम क्लमागुण आदरोरे मुनि, श्री जिनशासन सार ॥ ड्रव्य  
जाव क्लमा धरिरे मुनि, लहिये जवजल पार हो मुनि लहिये जवजल  
पार ॥ १ ॥ अपराधीशु पण कदारे मुनि, कोप न कीजे लेश ॥ परप-  
रिणति ममता तजिरे मुनि, तजि मद मान आवेश हो मुनि तजि०  
॥ २ ॥ विनय करी गुणवतनो रेमुनि, लहिये ज्ञान अत्यत ॥ पूर्णातम  
गुण प्रगटशे रेमुनि, निरमल शक्ति अतत हो मुनि निरमल० ॥ ३ ॥  
मन वच कायनी वक्रता रेमुनि, न करो कपट कदाय ॥ माय त्यागयी  
प्रगटशे रेमुनि, समसुख अचल अमाय ॥ हो मुनि समसुख० ॥ ४ ॥  
समदरशी समनापीने रेमुनि, जगत जीव होय मीत ॥ निरजय  
निराकुल सदा रेमुनि, नहि कोइनी होय जीत ॥ हो मुनि नहि० ॥  
॥ ५ ॥ धन विषय त्रीय आदिनो रेमुनि, लोचन न कीजे लेश ॥ तजि  
स्पृहा पुद्गल तणि रेमुनि, राखो संजम अशेष ॥ हो मुनि राखो० ॥  
॥ ६ ॥ इहा मूर्ता कामना रेमुनि, नहि पुद्गलनी जास ॥ निरालंब  
निरलोचता रेमुनि, तोके कर्मना पास ॥ हो मुनि तोके० ॥ ७ ॥ दर-  
शन ज्ञान चरण गुणे रेमुनि, तृप्त रहो निशदीश ॥ विषय विकार  
इहा तजो रेमुनि, प्रगट आत्म जगीश ॥ हो मुनि प्रगटे० ॥ ८ ॥  
खट खट वाह्य अज्यतरे रेमुनि, तप तपि साधो सिद्धि ॥ इच्छा  
निरोधे तप करि रेमुनि, लहिये नित नव नीधि ॥ हो मुनि लहिये० ॥  
॥ ९ ॥ पण पण विषय अत्रत तजि रेमुनि, हणिये चार कपाय ॥ मन  
वच काया थिर करि रेमुनि, निरमल संजम पाय ॥ हो मुनि निरमल०  
॥ १० ॥ ड्रव्य जाव मृखा तजि रेमुनि, निज पर तत्त्व सुज्ञान ॥  
ड्रव्यादिक लखी राखिए रेमुनि, सत्यपणु सुखखाण ॥ हो मुनि

सत्य० ॥ ११ ॥ रागद्वेष आदि सवे रेमुनि, दोष तजी निरमाय ॥  
 शौच रहो निज रूपमा रेमुनि, निजघर मंगल थाय ॥ हो मुनि निज०  
 ॥ १२ ॥ कंचन तृण तूप आदि ठे रेमुनि, पुद्गल वस्तु जेह ॥ मुनि  
 परिग्रह राखे नहि रेमुनि, अकिंचन गुण गेह ॥ हो मुनि अकिंचन० ॥  
 ॥ १३ ॥ सहस्र अठदश जेदथो रेमुनि, तजिए सर्व अत्रह्य ॥ अढार  
 हजार शिलांगथी रेमुनि, सेवो पूरण ब्रह्म ॥ हो मुनि सेवो० ॥ १४ ॥  
 दश यतिधर्म आराधीने रेमुनि, रत्नत्रयी करि शुरु ॥ शिवसुंदरि  
 मनसुख वरे रेमुनि, जगत जंतु अविरुद्ध ॥ हो मुनि जगत० ॥ १५ ॥

॥ ढाल ( १४ ) चोवीशमी ॥ इणि पेरे चंचल आउखुं

जीव जागोरे ॥ ए राग ॥

जे जे पुद्गल पज्जवा ॥ तुम जाणोरे ॥ ते सवि जाण अनीत ॥  
 तजो दूरघ्यानोरे ॥ विणसे उपजे खिणखिणे ॥ तुम० ॥ तेहशुं केली  
 प्रीत ॥ तजो० ॥ १ ॥ गमता अणगमता क्षिणक्षिणे ॥ तुम० ॥  
 पुद्गल सवि परतंत्र ॥ तजो० ॥ श्रम करि राख्या नवि रहे ॥ तुम० ॥  
 ते केम चाहे संत ॥ तजो० ॥ २ ॥ देह त्रियादिक वस्तुनो ॥ तुम० ॥  
 बहुविध परिग्रह जेह ॥ तजो० ॥ तसु अधिकारी न आतमा ॥ तुम० ॥  
 तो किम कीजे नेह ॥ तजो० ॥ ३ ॥ ज्ञानादिक निज गुण तणो ॥  
 तुम० ॥ ठे अधिकारी आत्म ॥ तजो० ॥ निज अधिकार न सुंपीए ॥  
 तुम० ॥ वयरी जेह अनात्म ॥ तजो० ॥ ४ ॥ शरण नही ससारमां ॥  
 तुम० ॥ चरण विना कोइ ओर ॥ तजो० ॥ सदगुरु पण व्यवहारथी  
 ॥ तुम० ॥ जीव शरणनो ओर ॥ तजो० ॥ ५ ॥ मरण कष्ट आदिक  
 थकी ॥ तुम० ॥ बाले नरकादिक दूख ॥ तजो० ॥ एहथी राखी  
 कोण दिए ॥ तुम० ॥ शुद्धात्म थिर सुख ॥ तजो० ॥ ६ ॥ घर धन  
 स्त्री आदिक तणो ॥ तुम० ॥ राग न कीजे लेश ॥ तजो० ॥ पुद्गल



राग तजे थके ॥ तुम० ॥ लेश न होय कलेश ॥ तजो० ॥ ७ ॥ संस-  
 रतां संसारमा ॥ तुम० ॥ कस्या अनेक संबध ॥ तजो० ॥ पत्नी पुत्री  
 पण थई ॥ तुम० ॥ पुत्री पत्नी संबध ॥ तजो० ॥ ८ ॥ जज्जा ते जगिनी  
 थई ॥ तुम० ॥ जगिनी जज्जा होय ॥ तजो० ॥ मित्र शत्रु पण होय  
 ठे ॥ तुम० ॥ शत्रु मित्र तुं जोय ॥ तजो० ॥ ९ ॥ दास होय ठे  
 शेठनो ॥ तुम० ॥ दास शेठपणुं पाय ॥ तजो० ॥ एम अनेक संब-  
 धमा ॥ तुम० ॥ किण पर राग कराय ॥ तजो० ॥ १० ॥ सुख दुःख  
 जोगे एकलो ॥ तुम० ॥ जन्म मरण करे एक ॥ तजो० ॥ नरक  
 निगोदमां एकलो ॥ तुम० ॥ सिद्धि लहे निज एक ॥ तजो० ॥ ११ ॥  
 दरशन ज्ञान पोते लहे ॥ तुम० ॥ चरण लहे निज एक ॥ तजो० ॥  
 राग तजो परपद तपो ॥ तुम० ॥ राखो एक विवेक ॥ तजो० ॥ १२ ॥  
 जीवथी चित्र शरीर ठे ॥ तुम० ॥ धन कुटुव परिवार ॥ तजो० ॥  
 परसंजोग विजोगनो ॥ तुम० ॥ कारण निश्चय धार ॥ तजो० ॥ १३ ॥  
 अन्यत्व जावना जावतां ॥ तुम० ॥ नाशे राग विरोध ॥ तजो० ॥  
 आतमता आतम लहे ॥ तुम० ॥ प्रगटे निरमल बोध ॥ तजो० ॥ १४ ॥  
 मलमूत्रादिक बहुविधे ॥ तुम० ॥ रोग अनेकनी खाण ॥ तजो० ॥  
 दूर्गवी वहेती सदा ॥ तुम० ॥ देह ठे एह निदान ॥ तजो० ॥ १५ ॥  
 सात धातु सप्त मल जरी ॥ तुम० ॥ पुरण अशुचीगेह ॥ तजो० ॥  
 दु खदायक जाणी तजो ॥ तुम० ॥ चलमल देहनो ल्हेह ॥ तजो० ॥  
 ॥ १६ ॥ समय समय पररमणथी ॥ तुम० ॥ आस्रव दुविधनी  
 ध्याय ॥ तजो० ॥ शुद्धातम रमणे रमो ॥ तुम० ॥ सवर धारी सदाय  
 ॥ तजो० ॥ १७ ॥ पुद्गल जोग इहा तजी ॥ तुम० ॥ बहि शुद्धातम  
 तृप्ति ॥ तजो० ॥ करि निर्जरा कर्मनी ॥ तुम० ॥ लघुकाळे लहो  
 मुक्ति ॥ तजो० ॥ १८ ॥ लोकाकाश प्रदेशमां ॥ तुम० ॥ वसि वलि जट-  
 क्यो जीव ॥ तजो० ॥ जन्म मरण बहुलां कस्यां ॥ तुम० ॥ जोग-

व्या दुःख सदीव ॥ तजो० ॥ १९ ॥ च्छ पुद्गलपरिच्छेदने ॥ तुम० ॥  
 ग्रहिया पुद्गल सर्व ॥ तजो० ॥ ठोड्या मरणादिक करी ॥ तुम० ॥  
 रह्यो नहि तुज गर्व ॥ तजो ॥ २० ॥ सम्यकदर्शन दोहिलुं ॥ तुम० ॥  
 सुहृत्त धन परिवार ॥ तजो० ॥ विषयो देव मनुष्यना ॥ तुम० ॥  
 विलस्या अनंतीवार ॥ तजो० ॥ २१ ॥ तो पण वृत्ति नवि लही ॥  
 तुम० ॥ नरत्तव पाम्यो आज ॥ तजो० ॥ समकित गुण निरमल करी  
 ॥ तुम० ॥ साधो वंढित काज ॥ तजो० ॥ २२ ॥ धर्म परम अरिहं-  
 तनो ॥ तुम० ॥ साधो थइ उजमाल ॥ तजो० ॥ ज्ञान चरण निर्मल  
 करो ॥ तुम० ॥ लहिये गुणमणिमाल ॥ तजो० ॥ २३ ॥ तजी शुचा-  
 शुच कल्पना ॥ तुम० ॥ करि परिणति गुण लीन ॥ तजो० ॥ मनसुख  
 शिव शाश्वत लहे ॥ तुम० ॥ आत्म संपत्ति पीन ॥ तजो० ॥ २४ ॥  
 ढाल ( १५ ) पचीशमी ॥ पन्न प्रचु जिन तुज मुज आंतरूरे ॥ एराग ॥

मन वच काया थिर करीरे, तजि सावद्य पुवीध ॥ दरशन ज्ञान  
 आराधतारे, सामाश्क होय सिद्ध ॥ चरण आराधिणरे, तजि पर परि-  
 णति चाल, शिवसुख साधिणरे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ राग द्वेष तजि  
 आतमारे, आत्म चावे लीन ॥ इढ थिरता शुद्ध चावमारे, अनुभव  
 अमृत पीन ॥ चरण० ॥ २ ॥ शुचाशुच तजि कल्पनारे, निर्विकल्प  
 एक रूप ॥ रम्य रमण शुद्धात्ममारे, निश्चय चरण अनूप ॥ चरण०  
 ॥ ३ ॥ प्रमाद वश हुआ दोष जेरे, ठेदि चरण करि शुद्ध ॥ ठेदो-  
 पस्थापन धारियेरे, द्वितीय चरण थिर वुद्ध ॥ चरण० ॥ ४ ॥ तजि  
 हिंसा तपस्या करेरे, विनय ने सुत अन्यास ॥ चरणप्रजाय विशो  
 धतारे, परिहारविशुद्धि विलास ॥ चरण० ॥ ५ ॥ करि कपायने  
 पातलारे, रह्यो कहु सूक्ष्म लोज ॥ रमण शुधात्म एकतारे, करे मुनी  
 थिर थोज ॥ चरण० ॥ ६ ॥ जिहां सूक्ष्म संपराय ठे रे, वरते दशम  
 गुणठाण ॥ थिरता आत्म स्वचावमारे, शुक्ल प्रथम शुचध्यान

॥ चरण० ॥ ७ ॥ सवि कपाय उपशम करेरे, एकादशम गुणगण ॥  
 यथाख्यातउपशम चरण तेरे, शुक्ल प्रथम पद ध्यान ॥ चरण०॥७॥  
 पूर्ण कपायना क्षय धकीरे, चरणखायक यथाख्यात ॥ वीजो पायो  
 शुक्लनोरे, थिरता अव्याघात ॥ चरण० ॥ ८ ॥ वार तेर ने चौदमेरे,  
 खायकचरण महंत ॥ घातीकर्म क्षये करीरे, होय सजोगि जगवत  
 ॥ चरण० ॥ १० ॥ अघाती चउ क्षय करे रे, चतुर्दशम गुणगण ॥  
 शैलेशी करि मुनी लहेरे, शाश्वत सुख निरवाण ॥ चरण० ॥ ११ ॥

॥ ढाल ठवीशमी ( १६ ) वीर जिनेश्वर वदन वचन थ्यादर जनि  
 प्राणी ॥ ए देशी ॥

प्रथम हृण्यो मिथ्यात विमल दर्शनपद पायो, मिथ्या प्रत्तिओ वंध  
 हृणी विरती घर आयो । अविरति प्रत्तिओ वध हृणी परमाद नशाव्यो,  
 लहि सत्तम गुणगण प्रमादनो वध गमाव्यो ॥ १ ॥ क्षय करि पूर्ण  
 कपाय चरणक्षायक थीर पायो, लहि वारमु गुणगण दर्शनावरण  
 खपाव्यो ॥ ज्ञानने वीर्यावरण हृणी मुनि तेरमे आवे, घातीकर्म ह्राणि एम  
 अनत चतुक पद पावे ॥ २ ॥ कर्म सत्ता ह्राणि जेह तेह फरि वंध न  
 होवे, केवलदर्शनज्ञान त्रिलोक समयमा जोवे ॥ स्वपर अनत प्रजाय  
 समय समकाले देखे, सर्वे ड्रव्य त्रिकाल प्रजाय समयमा अशेषे ॥ ३ ॥  
 वधना हेतू जेह तेह सघला क्षय कीधा, अयोगि शैलेशीकरण करी  
 मुनि सिद्धा बुद्धा ॥ पूर्व प्रयोग गति परिणाम वध ठेद असंग, समय  
 एकमा उरधगती सम श्रेणी अजग ॥ ४ ॥ सिद्धि लहि सिद्ध क्षेत्र  
 विषे रक्षा सादि अनंत, पूर्णानंद विद्यास परमपद सहज स्वतत ॥  
 कर्मचूमिना उपन्या कर्मचूमिमा सिद्धे, कोशक देवना हरणथी अकम्म-  
 चूमे सिद्धे ॥ ५ ॥ सुणजो काल विचार सार जे ठे ते दाखु, उत्सर्पिणी  
 अवसर्पिणी कालचक्र ते जाखु ॥ वीशे कोमाकोरिनुं दश दशे कहिए,  
 अवसर्पिणी थारा चार चार उत्सर्पिणी लहीए ॥ ६ ॥ चार कोमाकोडी

अवसर्पिणिनो प्रथम ठे आरौ, त्रण कोडाकोरि वीजो त्रीजो वे कोमाकोडि धारो ॥ चोथो एक कोमाकोडिसागर धर्म प्रवृत्ति, तीर्थपती चोवीश तिहां होवे सिद्धि निवृत्ति ॥ ७ ॥ उत्सर्पिणिनो एक कोमाकोडि प्रथम ठे आरौ, तीर्थपती चोवीश होवे मोक्ष मार्ग सुधारो ॥ धर्म प्रवृत्ते सार सिद्धिपद एहमां लहिये, बाकी कोमाकोडी अढारमां सिद्धि न कहिये ॥ ७ ॥ उत्सर्पिणिने वीजे तीजे चोथे नवि सिद्धे, अवसर्पिणिने पहले वीजे त्रीजे नवि सिद्धे ॥ मूल ठे आरा चार कल्पना खटखट कीधा, डुपम डुपम वीचारि जेद दोय अधिक प्रसिद्धा ॥ ८ ॥ धर्मविरह्नो काल सदा एम वत्ते जोई, आदरिये जिनधर्म लही अवसर डढ होई ॥ व्यवहारे एह जेद सिद्धे निश्चयथी सकाले, निश्चे सिद्धि स्वक्षेत्र व्यवहारे परक्षेत्रे निहाले ॥ १० ॥ महाविदेह मोजार उत् अवसर्पिणी नांदि, विजय एकसैसावे सदा नवि सिद्धे तांदि ॥ ड्रव्य क्षेत्र सकाल जाव निज रम्ये रमिये, मनसुख शिवशुं केल करी नवन नवि नमिये ॥ ११ ॥

॥ ढाल ( १७ ) सत्तावीशमी ॥ श्री सुपार्श्व जिन वंदीये ॥ ए देशी ॥

नरगति पण्डि त्रस नव, सत्री यथारूयात चरित्त ललना ॥ खायकसमकितमां लहे, सिद्धे जिन जग मित्त ललना ॥ शिवरमणी रंगे रमो ॥ १ ॥ आखर अणाहारीपणुं, केवलदर्शन नाण ललना ॥ ए नव मार्गणामां लहे, शेष नहीं निरवाण ललना ॥ शिव० ॥ २ ॥ ड्रव्यथी सिद्ध अनंत ठे, लोक असंख्यमे जाग ललना ॥ एक जीव वा सर्वने, लोकांत स्थितिनो लाग ललना ॥ शिव० ॥ ३ ॥ क्षेत्र प्रदेशथी फरसना, अधिकी जाणो सार ललना ॥ एक सिद्ध आश्रित काल ठे, सादिअनंत अपार ललना ॥ शिव० ॥ ४ ॥ सर्वे सिद्ध परुचथी, काल अनादि अनंत ललना ॥ सिद्धपणाथी नवि पके,

तेथी न अंतर हुंत ललना ॥ शिव० ॥ ५ ॥ सर्व संसारो जीवथी,  
 सिद्ध अनंतमे जाग ललना ॥ खायक परिणामी जावमां, जीवपणुं  
 गत राग ललना ॥ शिव० ॥ ६ ॥ थोडा कृत्रिम नपुंसक, सख्यगुणी  
 स्त्री सिद्ध ललना ॥ तेहथी संप्यगुणा सदा, पूरूप होये सिद्ध  
 ललना ॥ शिव० ॥ ७ ॥ सिद्धे जिनपद पामीने, ते जिनसिद्ध कहायं  
 ललना ॥ सिद्धया पुंडरिक आदि जे, अजिनसिद्ध सुख पाय  
 ललना ॥ शिव० ॥ ८ ॥ गणधर आदि सिद्धिया, तीर्थसिद्ध कहा  
 तेह ललना ॥ मरुदेवादिक जाणीए, अतिथ्यसिद्ध ठे एह ललना  
 ॥ शिव० ॥ ९ ॥ गृहिलिंगे जरतादि सिद्धिया, वटकलचिरिय पर-  
 लींग ललना ॥ साधु सकल जे सिद्धिया, जाणो तेह स्वलींग ललना  
 ॥ १० ॥ चदनादि स्त्री सिद्धिया, गौतम आदि पुलिंग ललना ॥  
 गागेय आदि सिद्धिया, कृत्रिम नपुंसक लिंग ललना ॥ शिव० ॥ ११ ॥  
 करकंठु नमि कुम्मुह आदि, प्रत्येकवुद्ध सिद्ध जाण ललना ॥  
 कारणथी प्रतिबुद्धीआ, शास्त्रे एम वखाण ललना ॥ शिव० ॥ १२ ॥  
 स्वयंबुध कपिलादिक, सिद्धया जीव अनेक ललना ॥ बुद्धबोहि गुरु-  
 बोधथी, सिद्धया राखि विवेक ललना ॥ शिव० ॥ १३ ॥ एक समय  
 एक सिद्धिया, वीरजिन आदि अनेक ललना ॥ एक समय बहु  
 सिद्धिया, रिपनादि सुविवेक ललना ॥ शिव० ॥ १४ ॥ नवमुं गुणगणुं  
 नवि लह्युं, नपुंसक ने नर नार ललना ॥ लिंग तीन ए त्यां लगे,  
 आगे न लिंग विचार ललना ॥ शिव० ॥ १५ ॥ पूर्वपकुच्च तिन लिंग  
 ठे, नवमे ठेदे लिंग ललना ॥ ए त्रण लिंग रहित थया, सिद्धया  
 कहिए अलिंग ललना ॥ १५ ॥ लिंग जेद ए इव्यथी, जावथकी  
 जिनलिंग ललना ॥ सिद्धे जीव अनंत ए, नवि तिहा लिंगने शींग  
 ललना ॥ शिव० ॥ १६ ॥ सुत तत्त सार विचार ए, सहहशे नर नार  
 ललना ॥ अर्द्धा पुद्गल मांही ते, लहेशे जवदधि पार ललना ॥  
 ॥ शिव० ॥ १७ ॥ निज पर तत्त्व विचारतां, जाय विज्ञाव बलाय  
 ललना ॥ मनसुख शिवसगे रहे, सादि अनंत सदाय ललना ॥  
 ॥ शिव० ॥ १८ ॥

॥ ढाल ( १८ ) अष्टावीशमी ॥ एसो कर्म अतुल बलवान जगतकुं  
पीन रह्यो ॥ ए देशी ॥

एसे धीर वीर गंजीर परमपद सिद्ध किया, लही ध्यातम तत्त्व  
अवाध मोहमल चूर दिया ॥ ए आंकणी ॥ भरतचक्रि खटखंफनो, राज  
जोग सुविशाल ॥ जोगी जावी खीण एकमां, अनित्य अशुचि गुण-  
माख ॥ श्रेणि थारूढ जया ॥ एसे ॥ १ ॥ लहि केवल बहु तारिया,  
खल पूरव क्षगे फेम ॥ लहि निरवाण सुख शाश्वतो, सादि अनंत  
थिर एम ॥ स्वगुणरस क्षीन रहा ॥ एसे ॥ २ ॥ रिखवप्रचुनी नंदनी,  
वाह्यी सुंदरी दोय ॥ तप चरण डढ आदरी, शिषपद लहि सुखि  
होय ॥ विमल सुख जोगी रहा ॥ एसे ॥ ३ ॥ रिखवादिक  
चोविश जिना, राज सुजोग उदार ॥ जोगी चरण प्रही लह्यु, केवल-  
ज्ञान श्रीकार ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे ॥ ४ ॥ तीरथ थापी  
तारिया, गणधर मुनी अनेक ॥ चउविध संघ चलावियो, दाखी स्वपर  
विवेक ॥ परमपद सिद्ध किया ॥ एसे ॥ ५ ॥ विचरी देश विदेशमां,  
ताख्या बहु नरनार ॥ धन्य वाणी जिनवरतणी, जवि शिवसुख आधार  
॥ परम ॥ एसे ॥ ६ ॥ अन्यत्व जावना जावतां, मरुदेवां हुआ सिद्ध ॥  
निरमल निज नवनिधि लही, विलसे अनंती रिध्व ॥ परम ॥ एसे ॥  
७ ॥ अयोध्या नगरे हुआ, चक्री सागर नाम ॥ अजित जिनेश्वर  
समयमां, राजजोग सुखठाम ॥ परम ॥ एसे ॥ ८ ॥ पुत्र मरण सुणी-  
रूपन्यो, अति सवेग विराग ॥ अजितनाथ समीपे प्रह्युं, चरण शरण  
पडजाग ॥ परम ॥ एसे ॥ ९ ॥ ममता त्यागी मूखगी, ठेयो मोह  
गपंद ॥ आठ कर्मदल क्षय करी, पाम्या परमानंद ॥ परम ॥ एसे ॥  
१० ॥ सावथी नगरी धणी, चक्री मघवा नाम ॥ रमणी द्वेह  
अनित्य लखी, क्षीनो स्वगुण विराम ॥ परम ॥ एसे ॥ ११ ॥ चरण  
रमण डढ आदरी, पाम्यो प्रीजुं सर्ग ॥ नरजव लहि शुद्ध चरणपी,

लहेशे पद अपवर्ग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ ११ ॥ हस्तिनागपुर ऊपन्या,  
 चक्री सनतकुमार ॥ इंडे रूप वखाणियु, जेनो अतुल अपार ॥ परम०  
 ॥ एसे० ॥ १२ ॥ अणसहहतो देव तिहां, आवी निरख्यु रूप ॥  
 कोनादिक अतर लखी, चेताव्यो तेणे नूप ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १४ ॥  
 सवेग रग नरनाहने, वखि ऊपन्यो वैराग ॥ रगे चारित्र आदखुं, तन  
 ममता करि त्याग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १५ ॥ तप तपता लखि घणी,  
 अपनी मुनिने ताम ॥ इंडे धैर्य वखाणियु, आव्यो देव तेणे ताम ॥  
 परम० ॥ एसे० ॥ १६ ॥ करु परिक्षा एहनी, इम चिंती मन माह्य ॥  
 वैद्य वैद्य पोकारतो, आव्यो मुनि ठे ज्याय ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १७ ॥  
 मुनि कहे रोगि तन मुज नहीं, पण ठे रोग विजाव ॥ तेह मिटावा  
 शक्ति तुज, दिशे न ईस्यो प्रजाव ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १८ ॥ इम  
 कहि थुकथी आगली, करि चोपडी कोइ अग ॥ कोरु वरण मटिने  
 हुवो, निरमल कचन रग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १९ ॥ स्पृहा नहीं जस  
 देहनी, अवर स्पृहा नहि तास ॥ धैर्यवंत मुनि धन्य ते, वरते ज्ञान  
 विलास ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २० ॥ धैर्यवंत देखी मुनो, अति विस्मि-  
 त हुथ्यो देव ॥ वदि नमी मुनिराजने, देव गयो ततखेव ॥ परम० ॥  
 एसे० ॥ २१ ॥ चरण रमण तपस्या करीने, विचरे आत्म जाव ॥  
 अते सखेखन करी, आयु मास रहु जाव ॥ परम० एसे० ॥ २२ ॥  
 सनतकुमारमा ऊपन्यो, विलसे दिव्य सुजोग ॥ महाविदेहे सिद्धसे,  
 धारी सयम योग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २३ ॥ शान्ति कुंथु अर च  
 क्रिप, त्यागि सकल जवजोग ॥ परपरिणति ममता तजी, खीना निज  
 गुण जोग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २४ ॥ महापद्मचक्रि नवम हुथ्यो,  
 लहि सवेग विराग ॥ सजस सावि सुगति लही, आय्यो जवजल  
 याग ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २५ ॥ चक्रिहरियेण कापिलपुरे, पुरव  
 पुण्यरिद्धि जोग ॥ पाम्यो विलसे सुख घण, एक दिन हुथ्यो उपयोग

॥ परम० ॥ एसे० ॥ १६ ॥ ए संसार असार ठे, अनित्य सज्जन रिद्धि  
 सर्व ॥ अशुचि जरी एह देहनो, कद्दो कीम कीजे गर्व ॥ परम० ॥  
 एसे० ॥ १७ ॥ रंगे सवेगे वध्यो, लीधुं चरण उदार ॥ केवल लहि  
 मुक्ति वरी, पाम्यो जवदधि पार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १८ ॥ राजगृहीमां  
 ऊपन्यो, जयचक्री गुणवंत ॥ तृप्ति न देखी जोगथी, चेत्यो तेह  
 महंत ॥ परम० ॥ एसे० ॥ १९ ॥ खाहि समकित संजम ग्रह्युं, धीर  
 वीर गंजीर ॥ आठ करम मल द्य करी, पाम्यो जवजल तीर ॥  
 परम० ॥ एसे० ॥ २० ॥ अष्टम सुजुमचक्री थयो, करि अति राज्य-  
 नो खोज ॥ सिधु कुवो गयो सातमी, नरक जिहा दुःख खोज ॥  
 परम० ॥ एसे० ॥ २१ ॥ द्वादशम चक्री हुयो, ब्रह्मदत्त जस नाम ॥  
 जोगातुरता बस पड्यो, चित्त न आव्युं ठाम ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २२ ॥  
 पूर्व मित्र मुनि उपदिश्यो, पण नवि बूझ्यो लेश ॥ पहोंच्यो सातमी नर-  
 कमां, जोगे विविध कलेश ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २३ ॥ गणधर वोर  
 जिणदना, वेद वादी अगीश्वार ॥ मान ठेली मद म्हेखिने, आप  
 हुआ अणगार ॥ परम० ॥ एसे० ॥ २४ ॥ वलि पुंनरिकादिक मली,  
 चौदशें वावन धार ॥ श्री जिनशासन प्रेरता, करता बहु उपकार ॥  
 परम० ॥ एसे० ॥ २५ ॥ चोविश जिनना ए सवे, सिद्धया प्राकम  
 फोर ॥ सादिअनंतु सुख लहुं, मनसुख शाश्वत ठोर ॥ परम० ॥  
 एसे० ॥ २६ ॥

॥ ढाल ( १९ ) ओगणत्रीशमी ॥ कराकन दराखनरो

जावे ॥ कराकन० ॥ ए राग ॥

मोहमल खायक करि ऊटकोरे ॥ मोह० ॥ अष्ट कर्म  
 दल फोज ध्यान धिर राखीने पटको ॥ ए आंकणी ॥  
 चंपा नयर सोहामणुं जीहो, श्रेणिकराय सुजाण ॥ धारणी देवी



तस घरे जीहो, शीलरूप गुणखाण ॥ मोह० ॥ १ ॥ तस कूखे अति  
 पुण्यथी जीहो, उपन्यो मेघकुमार ॥ जोवन वय पामी करि जीहो,  
 विखसे जोग उदार ॥ मोह० ॥ २ ॥ वीरजिणद समोसरपा जीहो,  
 गुणशिल चैत्य भोजार ॥ चोत्रीश अतिशय दीपता जीहो, जगतजंतु  
 हितकार ॥ मोह० ॥ ३ ॥ देशना सुणवा आवियो जीहो, मेघकुमार  
 त्रेणिवार ॥ वर्द्धमान जिन उपदिशे जीहो, सुत चरण जगसार ॥  
 मोह० ॥ ४ ॥ पंचास्रव करी जीवने जीहो, धधे अन्विध कर्म ॥  
 चळगति जवकतारमा जीहो, दूख सहे विणधर्म ॥ मोह० ॥ ५ ॥  
 तजि आस्रव सवर ग्रहे जीहो, सेवे कारण तीन ॥ सम्यकदरशन  
 ज्ञानने जीहो, चरण शुक्रात्म अजिन्न ॥ मोह० ॥ ६ ॥ ए त्रण कारण  
 सेवतो जीहो, सहे जीव निरबाण ॥ ते माटे नरजव सही जीहो,  
 भोता थाथो सुजाण ॥ मोह० ॥ ७ ॥ इम निसुणी प्रजु देशना जीहो,  
 जेत्यो मेघकुमार ॥ अनुज्ञा मात पिता तणी जीहो, दोंइ छीयो  
 संयम नार ॥ मोह० ॥ ८ ॥ संयारे सूते थके जीहो, मुनि पग फर-  
 सनु दूख ॥ मानी अत्तमां धितवे जीहो, महेस समो सिद्धां सुख ॥  
 मोह० ॥ ९ ॥ पूढी धीर जिणंदने जीहो, जाइश घर परजात ॥  
 निज घरमां रहेतां थकां जीहो, होय नहीं उपघात ॥ मोह० ॥ १० ॥  
 सूरज लुगे आविने जीहो, धीरजिनने कहे एम ॥ जो मुऊने अनुज्ञा  
 दीयो जीहो, तो घर जाऊं होम ॥ मोह० ॥ ११ ॥ वीर कहे मेघा  
 सुणो जीहो, पूर्वे सु गज एक ॥ दावानख वनमां लग्यो जीहो, दुखि-  
 या जीव अनेक ॥ मोह० ॥ १२ ॥ पग उपाकि खणतां थकां जीहो,  
 ससखो आव्यो एक ॥ तुज पग ह्याने ते रणो जीहो, दया राखि ते  
 विवेक ॥ मोह० ॥ १३ ॥ त्रण दिनमां दव उपशम्यो जीहो, गयो  
 ससखो निज धान ॥ पण तुज पग अटकी रणो जीहो, पाम्यो दूख  
 अमान ॥ मोह० ॥ १४ ॥ एम केइ नीरग जवविपे जीहो, राखि दया  
 तें धीर ॥ साधु चरणथी दूमणो जीहो, केम हुथो तुं अधीर ॥

मोहण ॥ १५ ॥ एम जिन वचन सुणी लख्यो जीहो, अति डढ चित्त  
सवेग ॥ चरणे थिर परिणति करी जीहो, राख्यो एक विवेक ॥  
मोहण ॥ १६ ॥ गुणरत्नसंवत्सर आदरी जीहो, संलेखन एक मास  
पूर्णायु करि ऊपन्यो जीहो, विजयविमाने खास ॥ मोहण ॥ १७ ॥  
वत्रीश सागर आयुमां जीहो, दिव्य जोग सुबिलास ॥ विद्वत्सी  
पूरण आठखे जीहो, महाविदेह नर वास ॥ मोहण ॥ १८ ॥ चरण  
लही तिहा सिद्धशे जीहो, मेघकुमरनो जीव ॥ आठ कर्ममल द्य  
करी जीहो, लहेशे शाश्वत शीव ॥ मोहण ॥ १९ ॥ आठ वरस वयमां  
लियो जीहो, अतिमुक्ते संजम जार ॥ पत्र नाव करि नदी विषे जीहो,  
खेले बाळ अणगार ॥ मोहण ॥ २० ॥ थिविरे रमतो देखियो जीहो  
कहुं वीरजिनने एम ॥ शिष्य तुमारो सिद्धशे जीहो, अथवा होशे  
केम ॥ मोहण ॥ २१ ॥ वीर प्रष्टु कहे सिद्धशे जीहो, चरमशरिरी  
एह ॥ एहने तुम कांश मत कहो जीहो, ठे एह गुणनो गेह ॥  
मोहण ॥ २२ ॥ एक दिन वीर जिनेश्वरु जीहो, अतिमुक्कने कहे  
एम ॥ संजम धारी तुं घयो जीहो, दया न राखे केम ॥ मोहण ॥ २३ ॥  
वचन सुणी श्री वीरनां जीहो, प्रतिक्रमतां बहु दोष ॥ शुक्लध्यान  
केवल लघु जीहो, चार अनंतां पोष ॥ मोहण ॥ २४ ॥ ठेदी आठे कर्मने  
जीहो, पाम्यो पद्द निरबाण ॥ मनसुख समजावे लहे जीहो, शाश्वत  
सुख अमान ॥ मोहण ॥ २५ ॥

॥ ढाल ( ३० ) त्रीशमी ॥

करकंठु नमिराजजी रे, निग्गड डुम्मुद्द नरिंद ॥ कारणथी  
प्रतिब्रजिया रे, धाळुं चरणानद ॥ निज गुण रंग लाग्यो  
रग लाग्यो चौल मजीठ, चरणे रंग लाग्यो ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥ केवल  
लहि सिद्धि वख्या रे, एम केइ प्रत्येकवुद्ध ॥ वीरज फोरी सिद्धियारे,  
जगत जंतु अविरुद्ध ॥ निजण ॥ २ ॥ नमिराजा त्रिदेहनो रे, करकंठु

देश कलिंग ॥ दुम्मुह देश पचासनो रे, निग्गड गंधारी ढींग ॥ निजण ॥  
 ॥ ३ ॥ दधिवाहन राजा सुतारे, चंदनवाला नाम ॥ ब्रह्मचारी बालक  
 पण्येरे, ग्रहि चारित्र विराम ॥ निजण ॥ ४ ॥ गुक्कणी बहु अज्ञातणीरे,  
 बहु जविने आधार ॥ संजम साधि सिद्धियारे, पाम्या जवजल पार ॥  
 ॥ निजण ॥ ५ ॥ रहेनेमी प्रतिबूक्तिओरे, राजुल चरण महंत ॥ धीर  
 वीर प्राक्रम करीरे, आय्यो जवदधि अंत ॥ निजण ॥ ६ ॥ रहेनेमी  
 सिद्धि बख्यारे, ते राजुल उपकार ॥ राजुल वचने थिर थईरे, साध्युं  
 संजम सार ॥ निजण ॥ ७ ॥ सिद्ध्या ऊदायन रुपीरे, तप तपि निज  
 गुण लीन ॥ अनुजव रस आस्वादमारे, अष्ट कर्म करि खीण ॥ निजण ॥  
 ॥ ८ ॥ दश श्रावक श्री वीरनारे, आणंदादिक धीर ॥ परिसह तापे नवि  
 चढ्यारे, धरि व्रत गुण गंजीर ॥ निजण ॥ ९ ॥ सोहम कट्टे ऊपन्यारे,  
 वलि लहेशे ते सिद्ध ॥ एम जे व्रत इहे पाखशेरे, ते पामे नवनिद्ध  
 ॥ निजण ॥ १० ॥ अनुत्तर वासी दश हुवा रे, श्री जिन धर्म पसायो  
 व्रत धारी दश सिद्धियारे, वीरज फोरी अमाय ॥ निजण ॥ ११ ॥  
 एम अनेक सिद्धि बख्यारे, पुरुष पराक्रम कीध ॥ तजि प्रमाद व्रत  
 आधरे रे, ते पामे निज रिद्ध ॥ निजण ॥ १२ ॥ सिद्ध्या सिद्धे सिद्ध-  
 शेरे, समगुण सेवे जेह ॥ परमज्ञान मनसुख लहीरे, शिव संगे रहे  
 तेह ॥ निजगुण रंग लाग्यो ॥ १३ ॥

### ॥ कलश ॥

गायो गायोरे में तत्त्व सुधारस गायो ॥ निजपर तत्त्व लब्धु  
 जेणे जगमां, चरण लही शिव पायो ॥ परमानद विखास  
 प्रगट करि, पूरण ब्रह्म समायोरे ॥ में तत्त्वण ॥ १ ॥  
 “दाहोद” श्रावण शुक्ल दशमि दिन, आनंद हरख बधायो ॥  
 “कर्पूरा वाई” आग्रहथी, ए अधिकार बनायोरे ॥ में ॥ २ ॥

क्षीपी मदद करी "शाह गीरधर," निजपर हेत उपायो ॥ संघ  
सकल मंगल शिव कारण, जणजो गुणजो सदायोरे ॥ में० ॥ ३ ॥  
जवल्लग सिद्ध समाधि विलसे, तवल्लग रहो ए ग्रंथो ॥ जविजन तत्त्व  
अन्यास करीने, वत्तो वर शिव पथोरे ॥ में० ॥ ४ ॥ श्योगणीश पांस-  
ठ बुद्ध बुद्धि लखि, शिवमग प्रेरण काजे ॥ मनसुख समचावे शिव  
संगे, विलसे सदा शिवराजेरे ॥ में० ॥ ५ ॥

॥ संपूर्ण ॥ श्रीरस्तु ॥





॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी विरचित विहरमान  
जिन स्तवनानि षाळावबोध सहित ॥

॥ दोहरा ॥

जयति ज्योति शुद्धात्मनी, करति परम उद्योत;  
दूर करे सहु विघ्नजय, करे अखिल सद्बोध. ( १ )

छु खहर सुखकर सद्गुरु, " श्री मनसुख ' मति पूर,  
स्वपर समय ज्ञाता सदा, मम मति करे सनूर. ( २ )

स्याद्वाद जिन वचनने, वंडु धरि सन्मान,  
हृदय वदन राखुं सदा, सहज लहु शुभ्र ध्यान. ( ३ )

देवचंद्र मुनिवर रचित, स्तवन वीश अजिराम,  
विहरमान जिनवर तणा, अति गंजिर गुणधाम. ( ४ )

पूर्ण अर्थ में नवि लह्यो, पण निजमति अनुमान,  
अर्थ लखु हु एहनो, हृदय धरि सन्मान ( ५ )

उप्यानुयोग दूरे करे, करम जरमनो खेल;  
सुमति सखि आवी मले, लहे सुगुण रगरेल. ( ६ )

शिवमगमा पग ते धरे, करे सुतत्त्व विचार;  
शिव संपति शाश्वत लहे, तरे सहज संसार. ( ७ )

ध्यावे ते पावे सदा, परम महोदय सार;  
तिणे धरि धिर अप्रमत्तता, शिव साधो जयकार. ( ८ )

प्रथम श्री सीमंधरजिन स्तवन ॥ सिद्धचक्रपद वदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, वीनतनी अवधारो ॥ शुद्ध  
धर्म प्रगट्यो जे तुमचे, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विन-  
विये मन रगे ॥ १ ॥

अर्थ.—सहज अनंत सुख निधान शुद्धात्म परिणति, तेनो घात करनार मिथ्यात अज्ञान अने कपाय रूप अनादिकालना महान् शत्रु-  
श्रोणे जेणे सम्यक्पराक्रम वने जीत्या ठे ते “ जिन ” मां वर अर्थात्  
प्रधान शिरोमणि तथा शारीरिक अने मानसिक अनंत असह्य दुःखना  
हेतुचूत आ ज्ञानक सत्तार समुद्रमा परित्रमण करी दुःखी यता  
दीन जीवोनु परम करुणाजाव वडे रक्षण करनार तथा अन्य जीवोने  
पण अहिंसानो उपदेश आपी तेओ पासे पण रक्षण करावनार तथा  
अवाध्य सिद्धात वने समीचीन मोक्षमार्गनो उपदेश करी आत्मिक  
सहज स्वतंत्र परमानदना दातार होवाथी “ स्वामी ” तथा अनंतज्ञान,  
अनंतदर्शन, अनंतसुख अने अनंतवीर्यरूप आत्म लक्ष्मीना मालीक,  
देहातीत आत्मसत्ताजुमिमा निरतर विहरमान हे श्री सीमधर देव ।  
आपने समर्थ जाणी आप प्रति अत्यंत उलसित चित्ते नम्रजावे विनती  
करवु के सरस स्वर जलना प्रवाह वडे ज्ञानावरणादि कर्म रूप मल  
थोवाई जवाथी स्फटिक मणि समान अत्यंत शुद्ध केवलज्ञान दर्शना-  
त्मक जेम आपनो स्वधर्म सर्वथा प्रगट—व्यक्त थयो ठे “ तेमज अमारो  
पण सत्तागते रहेखो (ज्ञानावरणादि कर्म वडे खित थएखो ) लोकालोक  
प्रकाशक अनंत सुखनिदान आत्मधर्म सपूर्ण रीते प्रगट थाओ ”  
ए उक्त विनती—प्रार्थना हे जगवत ! अमो दीन उपर करुणाडट्टी  
करी अवधारो—चित्तमा धारो ॥ १ ॥

जे परिणामीक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ अ-श  
चासन रमण वियोगे,वलग्यो विजाव अधर्मरो।स्वामी॥१॥

अर्थ—सर्वे इव्य “ उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत् ” लक्षणवत  
होवाथी प्रति समये परमजाव अनुयायी नवा नवा पर्याये परिणमे ठे  
अर्थात् वर्तमान पर्याय तीरोचूत थाय ठे अने नूतन पर्यायनो आवी-  
जाव थाय ठे अने इव्य ध्रुव रहे ठे तेथी आपनो आत्म इव्य, ज्ञान

दर्शन चारित्रादि अनंत शुद्ध पर्याय रूप निरंतर परिणमे ठे—सहज परमानदना अनुभवमा निमग्नपणे वत्ते ठे तेमज आमारो आत्म ड्रव्य पण कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध ड्रव्यार्थिक नये ( शुद्ध समग्र नये ) आपना सदृश सत्तावत ठे “ जारिस सिद्ध सहावो तारिस ज्ञावो हु सव्व जीवाणं ” तथापि अनादिथी कनकोपल न्याये अशुद्ध होवाथी शुद्ध परिणतिनो श्रद्धा ( प्रतीती ), ज्ञासन ( विज्ञान ), रमण—आचरण, स्थिरताना वियोगथी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रूप अधर्मे परिणमे ठे अर्थात् आत्माथी परवस्तु जे पुद्गल ड्रव्यथी वनेला विलक्षण धर्मवत शरीरमा आत्मपणानी श्रद्धा करे ठे, तेनेज आत्म रूप जाणे ठे तेथी ते पौद्गलिक ज्ञावमा पोताना आत्म परिणामने स्थित करे ठे—तद्धीन करे ठे पटले पुद्गल ड्रव्यमां इष्टानिष्ट कल्पना करी अनिष्टने दूर करवामां अने इष्टने प्राप्त करवामां तथा स्थिर राखवामा पोतानी आत्म परिणतिने निरंतर रोकी राखे ठे ॥ १ ॥

वस्तु स्वज्ञाव स्वजाति तेहनो, मूल अज्ञाव न थाय । पर विज्ञाव अनुगत परिणतिथी, कर्मे ते अवरायरे स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थ—ड्रव्य, अस्तित्व नास्तित्व स्वज्ञाववत होवाथी अन्य ड्रव्यनो, परिणाम तेमां कदापि काले प्रवेश करी शके नहीं अने अस्तित्पणे रहेला जे अनंत अन्वय गुणो तेमांथी कोइनो पण कोइ पण काले अज्ञाव थाय नहीं कारणके ड्रव्य मात्र ड्रव्यार्थिक नये नित्य ठे अने “ तद्ज्ञावाव्यय नित्यम् ” एम नित्यनी व्याख्या श्री तत्त्वार्थ सूत्रमां प्रतिपादन करेल ठे तथा वली “ अस्मिण पविसंता, दिंता ओगास मस्स मस्सस्स । मेवंताविय णिच्चं, सग सग ज्ञाव ण विजहंति ” ए न्याय अनुसारे आत्मामां रहेला ज्ञान दर्शन



चारित्र्यादिनां समूल अजाव थवानो विलकुल असंजव ठे तथा वली पचास्ति इव्य मात्र उर्धता तथा तिर्यग्प्रचयवंत होवाथी पण तेमज सिद्ध थाय ठे परंतु अनादि अज्ञान वशे आत्म परिणतिने परकर्तृत्व, परजोक्तृत्व, परग्राहकत्व, परव्यापकत्व, पररमणता, परआधाराधेयता आदि परानुयायो पणे प्रवर्त्ताववाथी शुद्धात्म परिणति ज्ञानावरणादि दुष्ट अष्ट कर्मवडे अत्राय ठे—व्याघात पामे ठे एम शुद्ध परिणतिनो वियोग रहे ठे ॥ ३ ॥

जे विजाव ते पण नैमित्तिक, सतति जाव अनादि । परनिमित्तते विषय सगादिक, ते सयोगे सादिरे स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ—मनाङ्ग अमनोङ्ग पुद्गलोक विषयमा इष्टानिष्ट कल्पना करवाथी, धन धान्यादि सचित्त अचित्त मिश्र परिग्रहमा ममत्व बुद्धि ग्रहणबुद्धि करवाथी आत्मा राग द्वेष रूप विजावे परिणमे ठे तेथी ते विजाव नैमित्तिक ठे तथा सादि सात ठे तथापि प्रवाहे सतति अनादिनी ठे जेम आपणे वर्त्तमान समये एक पुरुषने जोश्ये विद्ये ते पुरुष तेना पितावमे उत्पन्न थयेल ठे तेथी ते आदि सहित ठे अने तेनो नाश पण ठे तेथी ते पुरुष सादिसांत जागे ठे परंतु ते पुरुष तेना पिताथी उत्पन्न थयो ठे तेम तेनो पिता पण वली तेना पिताथी उत्पन्न थयो ठे एम तेनो वश अनादि सिद्ध ठे ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्ते ए ससरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जव चिद्दूधन, कर्त्ता जोक्ता धरनो रे स्वामी ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्म उदय रूप अशुद्ध निमित्त पामी अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप अशुद्ध परिणामे परिणमी जव समुद्रमा ससरण—परिभ्रमण करता आत्मा परद्रव्यादिकना कर्त्तापणानु ममत्व, अजिमान करेठे अर्थात् मे अमुक जीवने माह्यो, अमुकने उगाह्यो, अमुकने सुखी करयो, अमुकने दुःखी करयो, अमुकने राज्यो, अमु-

कने चलाव्यो तथा घटपटादिक मे बनाव्या अथवा घर हाटादि-  
कनो में नाश कख्यो, अमुक इष्ट पदार्थोनो मे लाज मेळव्यो, तेओने  
में माहरा जोगमां लीधा, तेउने में राख्या, दूर जवा नहि दीधा,  
अमुक वस्तु मे शुच मनोइ करी, अमुक वस्तु में अशुच अमनोइ  
करो, एम हु करुं तुं, जविष्यतमां एम करीश ए आदि पुद्गल रूप  
त्रण योगनी क्रियामां ममत्व करे ठे एम अज्ञान वशे पर  
द्रव्यादिकनो कर्त्ता वनी पुनः ज्ञानावरणादि नत्रा कर्म बांधे ठे  
अने वली ते बांधेला कर्मना उदय काले पण उपर प्रमाणे वर्त्ती  
पुन ज्ञानावरणादि कर्म बांधे ठे एम परना कर्त्तापणानु ममत्व करी  
निरंतर सात आठ कर्म बांधतो आ संसार समुद्रमां परित्रमण करे  
ठे अने जन्म जरा मरण तथा रोग शोक जय आदि अनेक दुःसह  
दु खनो अमाप चार पोताना शिरउपर उपाडी ले ठे.

पण ज्यारे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्र रूप शुद्ध नि-  
मित्तमां रमण करे अर्थात् तेमां तल्लीन थाय, पोतानी आत्म परिण-  
तिने तेमां स्थित करे, पर द्रव्यादिथी उदासिन्न वृत्ति धारण करे  
त्यारे पोतानाज स्वप्नावनो कर्त्ता जोक्तादि थाय, निर्मल प्रशमरतिनो  
विखास पामे अने राग स्नेहथी रहित वर्त्तवाथी कर्म रूप रज तेने  
स्पर्श करवा पामे नहि तथा पूर्वे बांधेला सचित कर्मनो क्षय नि-  
र्जरा थाय ॥ ५ ॥

जेइना धर्म अनता प्रगट्या, जे निज परिणति वरिया ॥ पर-  
मातमजिन देव अमोही, ज्ञानादिकगुण दरियारे स्वामी ॥ ६

अर्थ—आत्मानो परमजाव जे ज्ञान, तदनुयायी दर्शन, चारित्र, तप,  
वीर्य, कर्त्तृता, जोक्तृता, ग्राहकता, व्यापकता, रक्षणता, रमणता, आ-  
धाराधेयता विगेरे अनत स्वधर्मो जे अनादिकालथी कर्ममलवके  
लिप्त थएला इता—बाधकजावे परिणमता इता, ते शुक्लध्याननी

तिष्ठण थां वने कर्ममल जस्म थइ जवायी संपूर्ण प्रगट थया  
 थर्थात् निरावाध-स्वतत्र पणे पोतपोताना कार्यजावे परिणमवा  
 लाग्या पटले शुद्ध परिणति रूप अनुपम लक्ष्मीने वस्था-तेना  
 स्वामी थया तेज परमात्म जिजेश्वर देव, क्रोध मान माया लोभ  
 आदि मोहनीय कर्मनी अष्टावीश प्रकृतिधी रहित तथा ज्ञानादिक  
 गुणना दरिया अर्थात् ज्ञानादि गुणना अखूट निधान ठे पटले जेम  
 दरियामापी जल खूटे नहि तेम तेमनामापी कोइ पण काले ज्ञा-  
 नादि गुणो-पर्यायो खूटवाना-क्षीण थवाना नथो, अनंतकाल सुधी  
 एक सरस्वी रीते परिणम्याज करशे ॥ ६ ॥

अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमधर देव । जजीये शुद्ध  
 निमित्त अनोपम, तजीये जव जय देवरे स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ-श्री सीमधर देवमा साध्य पद पूर्ण पणे प्रगट होवाथो  
 तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु ठे ( साध्य साध्य धर्म जेमाहे  
 होवेरे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंजोय,  
 मोक्ष सज्ञाव साधने ) तथा सर्वज्ञ अने बीतराग होवाथी  
 आत्ममोक्षमार्गना साचा उपदेशक तथा सर्वे आत्मरिद्धि संपूर्ण  
 पणे प्राप्त होवाथी परम आधार-जव समुद्रमा चूडता जव्य  
 प्राणीयोने जहाज समान, जवाटवीमा सथ्यवाह समान ठे.  
 न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेउनी जकि करीये अर्थात्  
 तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीए-सन्मानोये कष्टु ठे के  
 “ आणाकारी जत्तो, आणा वेइउं अजत्तोत्ति ” माटे तेमनी  
 आणा प्रमाणे वर्त्तीए. मिथ्यात, अज्ञान, कपाय, प्रमाद, आविरति रूप  
 जयंकर जव ज्रमणनी देवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये परजाव । आत्म  
 धर्म रमण अनुभवतां, प्रगटे आत्म जावेरे स्वामी ॥ ७ ॥

अर्थ—जे अज्ञान कषाय विषय आदि दूषणोथी जरपूर ठे अर्थात् जे सर्वे द्रव्यना त्रिकालवर्ती पर्यायोने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे जाणी शकता नथी, पोताना आत्म द्रव्यने पण सर्व नये प्रत्यक्ष पणे जाणता नथी तथा तेथी पोतानी आत्म रिद्धिथी परागमुख होवाथी निरतर जे विषय कषायने आधिन वत्ते ठे, चाह दाहमा प्रज्वलीत थइ रह्या ठे, जव समुद्रमां वृक्षेळ ठे तेमा देवपणुं केम मनाय ? पण जे अज्ञान आदि समस्त अधर्म रूप दूषणोथी सर्वे नये मुक्त होवाथी परम निष्कलंक शुद्ध देव ठे. ते श्री सीमंधर स्वामीनुं शरण ग्रहण करता परद्रव्यनी ममता, ग्राहकता, रमणता आदि समस्त परजावनो परिहार—त्याग थाय अने ज्ञान दर्शन चारित्र रूप शुद्धात्म जावमां रमण करतां—तेमा तद्धीन यतां-तृप्त यतां-सतुष्ट यतां—तेनो आस्वादन अनुभव लेता ज्ञानादि आत्म धर्म, कर्म लेपथी रहित—शुद्ध प्रगट थाय ॥ ७ ॥

आत्म गुण निरमल नीपजतां, ध्यान समाधि स्वजावे ॥

पूर्णानंद सिद्धता साधी, देवचंद्र पद पावेरे स्वामी० ॥९॥

अर्थ—शुद्ध साध्य सन्मुख लक्ष राखी ( यस्मात् क्रिया प्रति फलन्ति न जाव गुन्या ) धर्म शुक्लध्याननुं सेवन करतां तज्जन्य समाधिमां लीन यतां आत्म गुण निर्मल अर्थात् मल रहित-परमपवित्र थाय एम पूर्णानंदमय सिद्ध पद साधी देवमा चंद्रमा समान अर्थात् देवाधिदेवपदने प्राप्त थइए ॥ ९ ॥

॥ अथ द्वितीय श्री युगमंधर जिन स्तवन ॥ नारायणी देशी ॥

श्री युगमंधर-विनवुरे, विनतनी अवधाररे दयालराय ॥

ए पर परिणाति रंगधीरे, मुजने नाथ उगाररे ॥ द० श्री० ॥ १

अर्थ—प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विर-

२२४ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बालावबोध सहित.

मण, मैथुन विरमण तथा परिग्रह सग्रह विरमण रूप पंचमहाव्रत  
तथा क्षाति, मार्दव, आर्यव, मुक्ति, तप, सयम, शौच, सत्य, अकिं  
चन, तथा ब्रह्मचर्य आदि सर्वे धर्मोमा अनुवृत्ति धरावनार अहिं-  
सा-दया धर्म ठे जेमा सर्वे धर्मनो समावेश थइ जाय ठे  
उक्तच-सव्वाउंवि नइउं, जह सायरंमि निवरुति । तह जग,  
वई अहिंसिं, सबे धम्मा समिह्वन्ति ॥ तथा जेने सर्व मतावल  
बीउं स्विकारे ठे-सन्माने ठे " अहिंसा परमो धर्म, हिंसा सर्वत्र  
गर्हिता " परतु जैन शिवाय अन्य मतावलबीउं अहिंसा-दयामा  
वर्ती शकता नथी कारणके तेउं हिंस्य हिंसा तथा हिंसाना कारणोने  
यथार्थ सपूर्ण उलखता नथी

सर्वज्ञ तीर्थंकर देव ड्रव्यहिंसा तथा जावहिंसा एम हिंसाना  
वे प्रकार प्ररूपे ठे-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय अने  
अनस्पतिकाय एम पच स्थावरकायिक एकेंद्रि जीवो तथा वैद्विय  
आदि त्रम जीवोना पांच इंद्रियो, मनोबल, वचनबल, कायबल,  
श्वासोश्वास तथा आयुप्राण ए दश ड्रव्यप्राणने मारवुं, कापवु,  
ठेदवु, डु खववु तथा तेनो वियोग करवो ते ड्रव्यहिंसा ठे, पोताना  
ड्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते स्वड्रव्यहिंसा अने अन्य जीवना  
ड्रव्यप्राणनी हिंसा करवी ते परड्रव्यहिंसा ठे तथा ते कायमा  
ममत्त्व करो रहेला जीवोना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, उप-  
योग विगेरे जावप्राणनो मिथ्यात, अज्ञान तथा कपाय वने घात  
वो ते जावहिंसा ठे अर्थात् मिथ्योपदेशादिवके कोइ जीवना  
गुणनो घात करी मिथ्यात्व रूप परिणमाववो, मन्यक्ज्ञानथी  
अज्ञान रूप परिणमाववो तथा क्रमा गुणनो घात करी  
तथा विनय गुणनो घात करी मान रूप परि-  
गुणनो घात करी भायरूप परि-

एमाववो, मुक्ति गुणनो घात करी लोज रूप परिणमाववो, ए विगेरे तेनी शुद्ध परिणतिनो घात करी अशुद्ध परिणामे परिणमाववो ते जावहिंसा ठे. तेमा पोताना जावप्राणनी हिंसा करवी ते निजजावहिंसा ठे अने परजीवना जावप्राणनी हिंसा करवी ते परजीव जावहिंसा ठे अने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद तथा योगनुं सेवन करवुं ते हिंसानां कारणो ठे ते कारणो सेववाथो हिंसा थाय ठे कष्ट ठे के “ कारण जोगे कारज निपजेरे, एहमां कोइ न वाद । पण कारण विणुं कारज साधीएरे, ते निज मति ऊन्माद ” एम स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित अव्यहिंसा तथा जावहिंसाना स्वरूपथी अजाण तथा तेना कारणोथी अजाण मिथ्यादृष्टी जीवो एक समय मात्र पण अहिंसाजावमा वर्त्ती शकवाने असमर्थ ठे तथापि मोहमयमां वेजान थयेखा हिंसामां वर्त्तता ठतां हमे दया पाखीए ठीए-दयालु ठीए एम पोताना जीवहायथी जल्पना तथा मनमां कल्पना करे ठे पण तेथी शुं ? साखी दया पाख्या शिषाय तेना परमोत्तम फल मोक्ष सुखने पामी शके नाहे.

पण जे स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित अव्यहिंसा तथा जावहिंसाना स्वरूपनुं तथा तेना कारणोनुं सम्यक्ज्ञान धरावे ठे-जे परमोत्तम फलना उत्सुक ठे, हिंसानु फल जे जवन्नमण तेथी उच्छिन्नजयजोत ठे एवा सम्यक्दृष्टी जीवोज अहिंसामां वर्त्ती शकवाने समर्थ ठे “ ( पढम नाण तउं दया ) ” जे जे अंशे अहिंसाजावमा वर्त्ते ठे तेने तेदसा अंशे अहिंसक कहिये माटे चोथा गुणस्थानथी मामनी उपला उपला गुणस्थानोमा अहिंसकदशानय प्रमाण अधिकी अधिकी वर्त्ते ठे पण हे जगवंत ! आप हिंसाना सर्वे कारणोथी दूर वर्त्ती होवाथी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदा अहिंसक जावमा वर्त्तो ठो, राग द्वेष रहित होवाथी सर्वे जीवो उपर एक सरखी रीते दया राखोठो, तेथी सर्वे

दयालु जीवोमा आप राजा समान शिरोमणि ठो, तेथी हे दयाल-  
 राय श्रीयुगमधर स्वामी । कङ्कणा निधान तथा समर्थ जाणी आप प्रति  
 विनंती उचारु तु कारणके दयालु तथा समर्थ होय तेज सेवकनी  
 विनंति मनोर्थने परिपूर्ण करे माटे मुज सेवकनी विनती करणा जावे  
 चित्तमा धारी—“ ए परपरिणति रगथी मुजने नाथ उगार”—हे नाथ !  
 हे स्वामी । अनादि विजाव वशे पुद्गल पर्याय जे शरीरादिक तेमा  
 अहपणु मानी ते उपर अत्यत राग करी तेमा तल्लीन थइ रह्यो तु  
 तथा ते शरीरादिकने प्रशस्त—हितकारी कुटुम्बी जनो मित्रवर्ग  
 नोकर चाकर तथा धन दान्य मणि औपधी आवास आदि अनेक  
 पुद्गल पर्यायोमा तथा पंचेंद्रिना अनेक मनोइ विषयमा राग वशे  
 तल्लीन थइ रह्यो तुं, तेने मेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करु तु,  
 अनेक विकल्प जाल रचु तु, तेनी तृष्णाकूपी आगमा निरतर प्रज्व-  
 लित थालु तुं, तेनो वियोग थाय ते माटे नय जोगवु तु, तेना वियोगे  
 शोक सताप आक्रद विगेरेनो जोक्ता वनु तु, अने पोतानी सहज अ-  
 नंत स्वतंत्र, अग्रथग् चूत स्वकेत्रवर्ती अविनश्वर सुख निदान आत्म  
 परिणतिथी वियोगी रहुं तुं माटे हे नक्त वत्सल प्रचु । एवी दुष्ट  
 परपरिणतिना रगथी मुजने हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक जोग्यतारे, में कीधी महारायरे, दयालराय ॥

पण तुज सरीखो प्रचु लहीरे, साची वात कहायरे, दया ० ॥ १ ॥

अर्थ—सर्वे अव्यो अस्तित्व, वस्तुत्व, अव्यत्व, प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व  
 अने सत्त्व स्वभाववत होवार्थी पोताना गुणपर्यायोना कर्त्त  
 व्यापक आदिपणे पोतानी सत्ताचूजिमा सर्वदा वर्त्ते।

“क्षेत्र काल जावानाम् एक समुदायि-

जावनुं एक समुदायिणु ते अव्यत्व वे  
 परस्पर अज्ञेद वे—अग्रथग् चूत वे तेथे

क्षेत्र काल जावमां प्रवेश करवा सर्वथा अस्मर्थ ठे माटे निश्चय नये कोइ इव्य अन्य इव्यजो कारक कर्ता, जोक्ता, ग्राहक, व्यापक, आधार, आधेय विगरे थइ शके नहि, तथापि जीवमां अनादि विज्ञाव स्वज्ञाव होवाथो हुं मिथ्यात अज्ञान वशे परपरिणति-पुद्गल पर्यायो विपे कर्ता, जोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी आत्मीक स्वतंत्र रिद्धिची वियोगी रह्यो पण हे युगमंधर स्वामी ! आपने संपूर्ण नये पोताना परिणामना कर्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण करनार तथा तेनोज आस्वादन-अनुभव लेनार होवाथी साचा प्रभु जाणी आप प्रति हुं मारी साचो कथा निवेदन करुं तुं ॥ १ ॥

यद्यपि मूल स्वज्ञावमेरे, पर कर्तृत्व विज्ञावरे ॥ दयालराय ॥ अस्ति धर्म जे माहरोरे, एहनो तथ्य अज्ञावरे ॥ दयालराय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ-अनादि कालची जो के माहरा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्म गुणमा परकर्तृत्वादि विज्ञावनो संश्लेष थयेलो ठे तेथी हुं अनादि-कालची परकर्तृत्वादि विज्ञाव रूप परिणमुं तु तो पण सत्तागते रहेला माह्रा अस्तिधर्ममा-सामान्य स्वज्ञावमा खरेखर ते विज्ञावनो अज्ञाव ठे कारण के सामान्य स्वज्ञाव सदा निरावरण ठे, माटे जो हुं माहरा अस्तिधर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा रूचि धरू तो निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विज्ञावनो समूल नाश करी संपूर्ण शुद्ध सुखनिधान अस्तिधर्मनो जोगी याउ, सादिअनतकाल सुधी प अवस्थामां अवस्थित रहु ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दगारे, लढि पर कारण योगरे, दयालराय ॥ चेतनता परगत अईरे, राची पुद्गल जोग रे, दयालराय ॥ श्री० ॥ ४ ॥



अर्थ—ज्ञानावरणादि ड्रव्यकर्म तथा ज्ञावकर्मना उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो तु, अर्थात् पर ड्रव्यना परिणामने पोतानो परिणाम मानु तु एटले मन वचन अने कायानी क्रियाने आत्म क्रिया मानु तुं तेथी मारी चेतनता पर परिणाममा व्यापी—परगत थई—पुद्गल पर्यायोने जोगववामा रावी—आसक्त थई— लीन थई—त्याज स्थित थई तेथी आत्म परिणामनो जोग लेवा अवकाश मळ्यो नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जरु अठेरे, वीर्य शक्ति विहीनरे ॥ ६ ॥

तु तो वीरज ज्ञानथीरे, सुख अनंते लीनरे ॥ ६ ॥ श्री ॥ ५ ॥

अर्थ—आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान, मिथ्यात अने कपाय रूप परिणमवामा शुजाशुज कर्मोदय वने पुद्गल ड्रव्य गुण पर्यायनो सब र ते निमित्त ठे पण ते शुजाशुज कर्मोदय, जरु—चेतनता रहित नेमज वीर्य शक्ति रहित होवाथी तेउ आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामा पोतानो भेले कारण बनवाने असमर्थ ठे, तथा कारण पद तो उत्पन्न पर्याय ठे माटे ज्यारे कर्ता कार्य साधवानो रुचोवत थइ तेने निमित्तमा वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय ठे “ए कारका कर्तुराधिना” जो आत्मा प्रमाद ज्ञावमां वत्ते तो ते शुजाशुज कर्मोदय अशुद्ध परिणामनुं निमित्त थाय पण पोते सवेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुजाशुज कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणामे नहि तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंजार घट कार्यनो रुचि वान थाय नहि, तथा दंरु चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंरु चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि पण हुं अनादि विज्ञाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी ड्रव्य टेवथी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणामु तु, तेथी

आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म बोर्ये अत्यंत हीन थइ रक्षो वुं,  
अर्थात् अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुखरूप अनुपम आत्म व्य-  
क्तिथी रहित कंगाल बनी अत्यंत पराधिन, दरिद्र-दयामणि अव-  
स्थाने जोगवुं तु पण हे प्रचु । तमे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण  
पणाथी-पूर्ण व्यक्तिथी सहज, अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंता-  
तीत, अव्यावाध आत्मीक सुखमां लीन-संतुप्त-निमग्न थइ रक्षा  
गे ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय क्योरे, मुज निज परिणति जोगरोद ॥

तुज सेवाथी नीपजेरे, जाजे जव जय शोगरोद ॥ श्री ॥ ६ ॥

अर्थ-तेथी न्याय युक्त ज्ञानद्रष्टी मने एवो निश्चय थयो ठे के  
हे जगवत । कर्म रूप रजथी सर्वथा निर्लेप स्फटीक समान तमारा  
सपूर्ण, निर्मल, पवित्र गुणोनु सेवन करतां-जक्ति करतां माहरी आत्म  
परिणति रूप अवाध्य अखूट स्वतंत्र पूर्णानंदमय सहज आत्म  
संपदाना जोगनी मने प्राप्ति थशे तथा “जाजे जव जय सोग” अना-  
दि कालथी चार गतिरूप जवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक दुःसह  
दुःखो तथा तज्जन्य जय, शोक, संताप, आक्रंद विगेरे सहुं तुं, तेनो  
सहज लीलामात्रमां नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदतारे, ध्रुव निस्सग स्वजावरे ॥ ६ ॥

सकल प्रदेश अमूर्त्ततारे, ध्यातां सिद्धि उपायरोद ॥ ७ ॥

अर्थ-अचल, अवाधित, निरावरण, शुद्ध परमात्म पद रमण-अनु-  
जवजन्य आनंदने तथा पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना अव्य क्षेत्र काल  
जावे सदा सत् (द्वय गुण समुदाज, खित्त ओगाह वट्टणा कालो ।  
गुण पज्ञाय पवत्ति, जावो निअ वत्थु धम्मो सो) अनंत अ-  
न्वय गुणनो पिक तथा निस्सग-सकल परजाव, परिग्रहथी अतीत

एवा आत्मजावने तथा अलेशी, अस्पर्शी, अगंधी, अदर्शी, अरसी, अक्रोधी, अमायी, अमानी, अलोजी, अवेदी, आदि अनेक व्यतिरेक गुणना समूह रूप सकल प्रदेश अमूर्ति पिरु आत्म ड्रव्यने सर्वे पर-ड्रव्यनी मूर्तार्थी पोतानी आत्म परिणति वारी पोतानी आत्म, जू-मिमा स्थित करी-लीन करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र चित्ते ध्याता अमूर्त्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय-ध्याता ध्ये-यनी एकता थाय ॥ ७ ॥

सम्यक्-तत्त्व जे उपदिश्योरे, सुणतां तत्त्व जणायरे ॥६०॥

श्रद्धा ज्ञाने जे ग्रहोरे, तेहिज कार्य करायरे ॥६०॥ श्री० ॥७॥

अर्थ-ड्रव्यना सर्व पर्यायना ज्ञान विनाना एकांत वादीयो ( मि-थ्या वादीयो ) ( एकांते होइ मिथ्यतो ) ना विडंबना रूप जव ब्रमणना हेतुचूत दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धातथी उपजता अज्ञानरूप अंधकारना समूहनो नाश करनार सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित म्याछाद युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असंज्ञादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोनु सत्य स्वरूप प्रतिपादन करनार जिनेश्वरना परम कल्याणकारी वचनो श्रवण मनन निधिध्यासन करता शसय विपर्यय अने अन्धवसाय रहित तत्त्व स्वरूपनुं सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरूप जाणीये-ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक वनी शकीए ज्यासुधी आत्मड्रव्यनु सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन ययु नथी त्यासुधी आदेशु चारित्र ते सम्यक् विशेषणने प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र विना कदापि काले मोक्षनी प्राप्ति थइ शके नहि कहु ठे के " विरञ्चा सावइज्ञाउं, कषाय हीणा महव्वय धरावी । सम्महिठी विहुणा, कयावि मुखव न पावति "

तथा “ नयगमं जंग पमाणेहिं, जो अप्पा सायवाय जावेण ।  
मुणइ मोख्ख सख्खं समदिठि सो नेउं” ॥ ७ ॥

कार्य रुची कर्ता अयेरे, कारक सवि पलटायरे ॥-६० ॥

आतम गते आतम रमेरे, निज घर मगल आयरे ॥ ६० ॥

अर्थ-ज्यांसुधी जोव मिथ्यात गुणस्थाने वत्तें ठे-सम्यक्दर्शननी प्राप्ति थइ नथी, त्यासुधी अनात्म वस्तुमा आत्मबुद्धि-अहंपणु माने ठे अर्थात् पुद्गल स्कंधोधी वनेसु चैतन्यशून्य जे शरीर, तेमा लोलीजतपणे परिणमि पोतानुं आत्म अग माने ठे तथा ते शरीरने जे प्रशस्त, हितकारी पदार्थो-स्त्री धन कुटुंबादिने पोताना हितकारी माने ठे, तेउंमा रागरसे रींके ठे, संसार त्रमण परिपाटीने वधारे ठे ( जो अपसत्थो रागो, वड्डईं ससार त्रमण परिवामी । विसया-इसु सयणाइसु, ईठत्तं पुग्गलाईसु ) अने ते शरीरादिने पोताना साध्य जाणी निरंतर तेने साधवा माटे अनेक प्रयास करे ठे-तेनेज पोतानुं कार्य जाणे ठे एम अज्ञान वशे पोते पर कर्तृत्व जावे परिणमे ठे तेथी कारकचक्र शुद्ध स्वजावथी विरूद्ध वाधकजावे परिणमे ठे पण ज्यारे आत्मा योग्य कारण वने सम्यक्ज्ञाननो लाज पामे, अनंत परमानंदमय संपूर्ण सुखना हेतु परमात्म पद रूप पोताना शुद्ध साध्यने उल्लेखे, त्यारे पर साध्य तरफथी अरुची थाय अने पोतानु शुद्ध साध्य साधवानी रूची थाय, शुद्ध कार्य करवानो अजि-लापी थाय त्यारे जे कारकचक्र वाधकजावे अर्थात् आत्माना ज्ञान दर्शन सुख वीर्यनी घात करवा रूप कार्ये परिणमतु हतु ते साधक जावे एटले शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्य साधवा रूप परिणमे एटले आत्मा पोताना शुद्ध परिणामे वत्तें-तेमां रमण करे-त्याज स्थित थाय एम यता आत्माना सर्वे प्रदेशे मगल थाय अर्थात् कर्म रूप रज गली जाय-अत्यंत सुख निधाननो लाज थाय ॥ ६ ॥

२३२ विंशति विहरमान जिनस्तवनानि वाखावबोध सहित

त्राण शरण आधार ठेरे, प्रजुजी जव्य सहायरे ॥ ६० ॥

देवचंद्रपदनीपजेरे, जिनपदकजमुपसायरे ॥ ६० ॥ श्री० १० ॥

अर्थ—हे प्रजुजी ! आप चार गति रूप जव प्रमणना छु खयो त्राण अर्थात् रक्षण करनार तथा महान् छु खदायी ज्ञानावरणादि प्रचरु अष्ट कर्म शत्रुंथी डरता जव्य प्राणींने शरण ठे तथा जव समुद्रमा बूरुता जव्य प्राणींने इस्तावलघन रूप ठे तथा जव्य जीवोने मोक्षसङ्घी वरवामा परम सहायजूत ठे, तेथी हे गुण सागर ! आपना निर्मल चरण कमलना पसायथी देवमा चंद्रमा समान परमात्मपदनी प्राप्ति थाय ए निर्विवाद ठे ॥ १० ॥ ( सपूर्ण )

॥ अथ तृतीय श्री वाहुजिन स्तवन ॥ सजवजिन

अवधारीये ॥ ए देशी ॥

वाहुजिणद दयामयी, वर्तमान जगवान ॥ प्रजुजी ॥

महाविदेहे विचरता, केवलज्ञान निधान ॥ प्रजुजी ॥ वा ० ॥ १ ॥

अर्थ—महाविदेह क्षेत्रमा विहरमान वर्तमान जगवान, सडण पण विघ्नस्तन धर्म युक्त पौद्गलीक शरीरथी अत्यंत विलक्षण महान् आत्म सत्ताजूमिमा ( अर्थात् जे जूमिमा अन्य कोड पण अव्यनो प्रवेश थइ शके तेम नथी तेथी वीलकुल संकराश वगरनी परम रमणीय स्वतंत्र एवी आत्म सत्ताजूमिमा ) निरंतर पोताना पर्यायोमा परिणमता पोताना गुण पर्यायो सहित सदा सत् लक्षणवत होवार्थी वर्तमान, आत्मीक अविचल अखरु लक्ष्मीना स्वामी होवार्थी जगवान, सामान्य केवलीश्रोमा इद्र समान हे श्री वाहुस्वामी ! आप सर्व प्रदेशे

सर्व काले सर्व जावे दयामयी ठे अर्थात् आपना सर्वे प्रदेशथी हिंसाना हेतुनो अजाव थएलो ठे तथा हवे ते हेतुठनो समूख 'क्षय होवाथी कोइ पण काले हिंसकभावे परिणमनार नथी तथा ज्ञानादि सर्वे धर्मों सर्वे नये पूर्ण पवित्र थया ठे तेथी कोइ पण जाव हिंसकजावे परिणमे तेमनथी. तेथी आप सर्वांगे सर्वोत्कृष्ट अनुपम दयात्ता जंडार ठे तथा जे ज्ञानमां जीवाजीव सर्वे ड्रव्यो पोताना त्रिकालवर्ती सर्वे पर्यायो सहित प्रत्यक्षपणे जासे ठे उक्तच तत्त्वार्थे—( सर्व ड्रव्य पर्यायेसु केवलस्य ) एहवा केवलज्ञानना निधान के० अखूट खाण ठे. कारण के ड्रव्य ते गुण पर्यायनुं जाजन ठे, उतीपर्याय तथा सामर्थ्यपर्यायनो आधार ठे तेथी कोइ पण काले ड्रव्य ते पर्यायथी हीण क्षीण थाय नहि. कारण के तीरोजावे रहेला पर्यायो ; आवीर्जावे थाय ठे अने ते पाठा तीरोचूत थाय ठे एम परावर्त्त चक्रे परिणमे ठे उक्तच— संमति ग्रंथे—“द्व पञ्जय विउअं, द्व वियुत्ताय पञ्जया नत्ति । उप्पायवय जंगाइ दविय लक्खणंयं” तथाच—पंचास्तिकाय समयसारे—“द्वं सल्लक्खणियं, उप्पादवय धुवत्त संजुत्तं । गुण पञ्जया सयं वा, जंतं जसुंति सबएहु ” ॥ १ ॥

ड्रव्यथकी उकायने, न हणे जेह लगार ॥ प्रचुजी ॥ जावदया परिणामनो, एहिज ठे व्यवहार ॥ प्रचुजी ॥ वा० ॥१॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए उ कायना जीवना ड्रव्यप्राणने हणवा हणाववा तथा हणतानी अनुमोदना करवी ए ड्रव्यहिंसा ठे. ते ड्रव्यहिंसामां जावहिसाना कारणनी जजना ठे तेथी जावहिंसानो त्यागो ड्रव्यहिंसा आदरे नहि—थथा दे नहि—सावचेत पणे वत्ते—समिति पूर्वक

२३४' विंशति विहरमान जिनस्तवनानि बाखावबोध सहित.

वर्त्ते, अर्थात्, तकायना जीवोनी, इव्यहिंसानो, त्याग, करवो ते जाव दयानो, तथा जावदयाना परिणामीनो व्यवहार ठे. इव्यअहिंसा ते जावअहिंसानो व्यवहार-कारण ठे ॥ २ ॥

रूप अनुत्तर देवधी, अनतगुणु अजिराम ॥ प्रजुजी ॥ जोतां पण जग जतुने, न वधे विषय विराम ॥ प्रजुजी ॥ वा० ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्वे जीवोने आ ससार जन्य जन्म जरा मरणादि रूप जयंकर डु खधी ठोनावी रत्नत्रय पमामी अनत आत्मीक परमानदना चोक्ता करुं एवी उत्कृष्ट जावदयाना योगे अत्यंत तीव्र शुच परिणाम वने-सर्वोत्कृष्ट पुण्यानुवधी पुण्यना उदये हे बाहु जिनेंइ । आपनु रूप लावण्य काति, विजय विजयत जयंत अपराजीत अने सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवो करता पण अनतगुणु अजिराम, अतिशययुक्त, सर्वोपरी, मनोहर, रमणीय, आहह्लादकारी ठे उक्तं-  
“ जाकी देहइतिसो दसो दिशा पवित्र जई, जाके तेज आगे सव तेजवत रुके है । जाको रूप निरखी थकित महा रूपवंत, जाकी वपुवाससो सुवास और लुके है ॥ जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनको सुख होत, जाके तन लडन अनेक आइ हूके है । तेइ जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि शुद्ध चेतनसों चुके है ॥ ” एवु अत्पत देदिप्यमान अनुपम औदारिक आपनुं मनोहर रूप जोता-निरखता उता पण विषयातुरताने अवकाश मखतो नथी परतु आपनी शात, दात, गंजीर अने निश्चल मुझानु दर्शन पामी विषयोधी उपशान्त चित्त थाय ठे ॥ ३ ॥

कर्म उदय जिनराजनें, जविजन, धर्म सहाय ॥ प्रजुजी ॥  
नामादिक सत्कारता, मिथ्या दोष विहाय ॥ प्रजुजी ॥ वा० ॥ ४

अर्थ:-“ संवि जीव करुं शासन रेसी, इसि जाव दया मुन  
उल्लसी ” एहवा अत्यंत तीव्र शुच राग युक्त जावदयाना, पण्डिणाम  
वडे बंधायला तीर्थकर नामकर्मना उदय वडे हे त्रिलोक, पूज्य । आ  
पारावार दुःखनिवान संसार समुद्रमां वृढता जव्य प्राणियोनो  
उद्धार करवा माटे सर्वे दूषणो रहित अने पात्रीश गुण सहित नय  
निक्षेप पद्म प्रमाण युक्त जीवा जीवादि तत्त्वनो सम्यक् प्रकारे उप-  
देश आपो ठो ए आपनो कर्म उदय निर्विवाद पणे “ ज्ञवि जन  
धर्म सहाय ” अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्म रज बने मलिन  
थएला-खिल थएला जव्य जीवोना आत्म धर्मने एवजूत नये प्राप्त  
थवा सहाय-निमित्तजूत ठे. तथा हे तीर्थनाथ । आपना नामादिक  
चार निक्षेप संज्ञारता-स्मरण करता-लक्षमां लेतां मिथ्यात्वादि दुष्ट  
दोषोनो तत्काल अत्यंत अज्ञाव थाय. “ तीर्थ-संसार निस्तरणो-  
पायं करोतीति तीर्थकृत् ” इति वचनात् जन्म मरण रूप संसार  
सागरंथी तरी जवानो उपाय जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ते तीर्थ  
ठे उक्तच तत्त्वार्थ सूत्रे “ ( सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष  
मार्गः ) ” ते रत्नत्रयरुप तीर्थने जव्य जीवोना हृदयमां स्थापन  
करनार पुष्ट निमित्त होवाथी आप तीर्थकर नामने संप्राप्त ठे. तथा  
आपना निर्मल असंख्यात् आत्म प्रदेशमां ते रत्नत्रय जरपूर अज्ञेय  
पणे वसी रक्षां ठे ते स्थापनानिक्षेपो. तथा आपनो आत्म जव्य ते  
ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जावनुं सर्वदा कारण ठे ते जव्यनिक्षेपो.  
अने घातीकर्मना क्षयथी अनंत चतुष्टय अनंत शुद्ध पर्याय पणे  
प्रगव्या ते आपनो जाव ते जावनिक्षेपो एम आपना चार निक्षेप  
आपथी तन्मय पणे एक क्षेत्रे रक्षा ठे उक्तच-“ इह जावोच्चिय  
वहु, तय सुनेहिं किंच सेसेहि, नामादयो विज्ञावा, जं ते विहु



वन्तु पञ्जाया ” तथा वली-“अद्वा वन्तुजिहाण, णामं ठव-  
णाय जो तयागारो । कारणयासे दधं, कज्जय वन्नं तयं जावो ॥

अने आप पण जीव डव्य ठो अने हुं पण जीव डव्य तुं माटे स्व-  
जाती तुं तेथी आपनु स्वरूप यथार्थ पणे जाणतां माहूरुं स्वरूप पण  
यथार्थ जणाय “ जो जाणइ अरिहंत, दध गुण पज्जवतेहिं ।

सो जाणइ अप्पाणं, मोहो खलु जाइ तस्स लय ” अने पो-  
ताना आत्म स्वरूपनी प्राप्ति घता मिथ्यात्व अज्ञान आदि दोषो  
तत्काल विलयमान थाय, कर्मबधनो नाश थाय, मोक्ष पदवीनी प्राप्ति

थाय. उक्तच-“ दर्शन मात्म विनिश्चित, रात्म परिज्ञान मिष्यते  
बोध । स्थिति रात्मनि चारित्रं, कुत एतेन्यो जवति बन्धः ॥”

तथा “ योगात् प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो जवति तूकषायात् ।  
दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं च । ” ॥ ४ ॥

आतम गुण अविराधना, जाव दया जमार ॥ प्रजुजी ॥

हायिक गुण पर्यायमें, नवि पर धर्म प्रचार ॥ प्रजुजी ॥

॥ वा० ॥ ५ ॥

अर्थ-ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनत आत्म गुणो ते जावप्राण ठे  
अने ते जावप्राणनो विषय कषायादिके घात करवो ते जावहिंसा ठे  
अने ते जावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर वने रक्षण करवुं घात  
न थाय एम अप्रमत्त जावमा वर्त्तवुं ते जावदया ठे ते जावदयाना  
आप जडार-निधान ठो कारण के जावप्राणना घातक मिथ्यात्वादि  
दुष्ट हेतुबनो आपना आत्म प्रदेशमाथी सर्वथा नाश थयो ठे, हायिक  
खन्धिने पाम्या ठो तेथी आपनी सत्ताजुमिमा मिथ्यात्वादि दोषोनो  
रच मात्र पण प्रवेश-प्रचार अई शके तेम नथी अने तेथी आपमा

जावहिंसानो वीलकुल अजाव ठे तेथी आप निर्विवाद पणे जाव  
दयाना जंकार ठे ॥ ५ ॥

गुण गुण परिणति परिणमे, बाधक जाव विहीन ॥ प्रजु०॥  
द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंसक पीत ॥ प्रजुजी ॥  
॥ वा० ॥ ६ ॥

अर्थ:-आपनो आत्म द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र दान धातु जोग  
उपजोगादि अनंत गुणनो पिंड ठे ( द्रव्य गुण समुदायो ) ते सर्वे  
गुणो बाधकजाव रहित पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे ठे. कारण के  
“ सव्वे सपज्जवा गुणा, अपज्जवे जाणणा नत्ति ” पण ते  
गुणो जो बाधकजावे पटले ज्ञान अज्ञानपणे, दर्शन अदर्शनपणे,  
चारित्र मिथ्याचरण रूप एम परिणमे तो आत्म स्वगुणनो रोध करे-  
शुचाशुच कर्मबध करे- आत्मीक सहज अबाधित सुखनी हाणी करे  
“ ( सायासायं डःख्वं, तद्विरहंमि य सुहं जउत्तेणं । देहिं-  
दियेसु डःख्वं,सुख्वं देहिंदिया जावो ) ” पण आपना सर्वे गुणो  
अबाधकजावे परिणमे ठे तेथी आत्म अनंत गुणना आनंदना  
जोक्ता ठे. ज्यांसुधी आत्मा बाधकजावे परिणमे त्यासुधी अशुद्ध ठे  
पण ज्यारे सर्वे परद्रव्यना राग-संग रहित वत्ते त्यारे शुद्ध ठे, अहिं-  
सक ठे, कर्मबधनो अकर्ता ठे तथा पोताना अनंत आत्म वीर्य वडे  
पुष्ट ठे. उक्तच “ परद्व रजं वइकइ, विरजं मुंचेइ अठ कम्महेहिं-  
एसो जिन उवएसो, समासजं वंध मोख्वस्स ” ॥ ६ ॥

क्षेत्रे सर्व प्रदेगमें, नहि परजाव प्रसंग ॥ प्रजुजी ॥  
अतनु अयोगी जावथी, अवगाहना अजग॥प्र०॥वा०॥१॥

॥ अर्थ — जेम सोनु खाणमा पथ्यर माटी विगेरे अनेक कुधातुर्तयी मलेखु होय ठे पण ज्यारे योग्य युक्ति वने तेने, सर्वथा जूडु पाडी गाली शुरू सोनुं करी लक्ष्प त्यार पठी ते सोनाने काट लागीं शके नहि

तेमज अनादिकालथी आत्म प्रदेशे लागेला ज्ञानावरणादि कर्मनो आपे शुक्लध्यान रूप अश्रिवडे सर्वथा नाश कर्यो ठे, सर्वे प्रदेशे शुरू निर्मल परम पवित्र थया ठो तेथी आपना कोइ पण प्रदेशे परजाव-राग द्वेषादिनो-विषय कपायादिनो रंच मात्र पण संश्लेष नथी, थवानो सज्जव पण नथो

ज्यासुधी आत्मा औदारिकादि शरीरमा तेमज मन वचन काय योगमा ममत्व करी वसे ठे तेथी ते चख पुद्गल योगे आत्म प्रदेश सकप थाय ठे पण ज्यारे सर्वथा तेनु ममत्व त्याग करे त्यारे शुद्धात्म जावे अरुपी ज्ञायक स्वरूप प्रगटे उक्तचः आचारागे-से एदीहे ए हस्से ए वडे ए तसे ए चउरसे ए परिममले ए किन्हे ए एीले ए लोहिए ए हाखिहे ए सुकिद्धे ए सुरहिगधे ए डुरहिगधे ए तित्ते ए कमुए ए कसाये ए अविखे ए महुरे ए कख्वने ए मजए ए गुरुए ए लहुए ए सीए ए उएहे ए पिधे ए लुख्व ए काऊ ए रुहे ए मग ए इत्थी ए पुरिसे ए अन्नहापरिसे सणणे उवमा ए विज्जए अरुवी सत्ता अपयस्स पय एथ्थि से ए सहे ए ज्वे ए गधे ए रसे ए फासे इच्चेतावात तिवेमि ” एम अतनु अयोगी आत्म अंग आत्म जावमा स्थिर थाय त्यारे कोइ पण आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचख थाय नहि अजग अवगाहनाने प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

उत्पाद् व्यय ध्रुव पणे, सहजे परिणति थाय ॥ प्रचुजी ॥  
ठेदन योजनता नहि, वस्तु स्वप्नाव समाय ॥ प्रचुप्वा ॥ ॥ ॥

अर्थः—स्वप्नाव जावे परिणमवामां अन्य ड्रव्यनी सहाय जोइति नथी जेम अग्नि सहजे दाहकजावे परिणमे ठे तेम सर्वे ड्रव्यो उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सदाकाल होवाथी सहजे पोताना स्वप्नाव पर्यायमां परिणमे. अन्य ड्रव्यनी मदद जोइए नहि. उक्तच “द्वि-यदि गच्छति तां, तां सव्जाव पञ्जयंजं, द्वियं तत्र-सुते अणसूद तु सत्तादो” वस्तुने सहजे परिणमवामां कइ पण दूर करवानी तथा कंइ पण संयोग करवानी आवश्यकता नथी कारण के ड्रव्य तथा पर्यायनो अजेद जाव ठे. जेम अग्निने दाहक परिणाम वग-रनी तथा अग्नि वगर दाहक परिणामने आपणे कदापी काले जोता नथी अर्थात् अग्निने ज्यारे जोइएत्यारे दाहक परिणाम सहितज होय ठे तेम सर्वे ड्रव्य सदाकाल पोताना परिणामे वर्तताज होय ठे. परिणाम वगर ड्रव्य अजाव-शून्यपणाने पामे. उक्तच—“ पञ्जय विजुदं दधं दध विजुदाय पञ्जयाणञ्चि दोएहं अणसूदं, जावं समणा परूविति ॥” वर्तमान पर्यायनो व्यय थाय अने नूतन पर्यायनो उत्पाद् थाय तो पण ड्रव्यार्थिक नये ड्रव्य सदा ध्रुव ठे जेम सोनानुं कहु जागी मुकुट वनावीए तेमां कफानो नाश अने मुकुटनो उत्पाद् यता ठता पण सोनुं ड्रव्य सदा ध्रुव ठे उक्तच—“ जावस्स एण्ठि-णासो, एण्ठि अजावस्स चैव उप्पादो। गुण पञ्जयेसु जावा, उप्पाद वये पकुवति।” ॥ ५ ॥

गुण पर्याय अनतता, कारक परिणति तेम ॥ प्रचुजी ॥

निज निज परिणति परिणमे, जाव अहिसक एम ॥

॥ प्रजुजी ॥ वा० ॥ ए ॥

अर्थ—ज्ञान ते सम्यक्ज्ञान रूप, दर्शन ते सम्यक्दर्शन रूप, चारित्र ते स्वज्ञावाचरण रूप एम ज्ञानानुयायी आपना अतत गुणो पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे ठे कारण के आपनु कारक चक्र ते शुद्ध श्रवाधक पणे सदा परिणमे ठे (१) स्वधर्म कर्ता ते कर्त्तापणुं (२) स्वधर्म परिणाम ते कार्य (३) स्वधर्मानुयायी चेतना शक्ति ते करण (४) साध्य गुण शक्तिनु प्रगटवु ते सप्रदान (५) पूर्व पर्यायितुं निवर्त्तन ते श्रपादान (६) स्वगुणनो आधार आत्म सत्ताज्ञमि ते अधिकरण—एम गुण पर्यायिनी तथा कारक परिणतिनी अततता ठे तेथी कोइ पण आत्म धर्मने विराधक पणे रंच मात्र—समय मात्र पण परिणमता नथी तेथी आप सदा अहिसक नामनुं सर्वोत्कृष्ट विरुद्ध धरावो ठो ॥ ए ॥

एम अहिसकता मयी, दीठो तु जिनराज ॥ प्र० ॥

रक्षक निज पर जीवनो, तारण तरण जिहाज ॥ प्र० वा० १०

अर्थ—एम स्वपर जीवना ड्रव्य जाव प्राणनुं रक्षण करनार तथा श्रगाध कपाय रूप जलथी नरेखा ससार समुद्रसार्थी तारण तरण जहाज रूप हे जिनेश्वर । हे कर्ण निधान । आ जगत् त्रयमां सर्वांगे दयामय में आपनेज जोया ॥ १० ॥

परमातम परमेसरु, जाव दया दातार ॥ प्रजुजी ॥

सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्रजुजी० वा० ॥ ११ ॥

अर्थ—आत्मानो परमजाव जे ज्ञान तेनी शुद्धता तथा सपूर्णताने सर्वे नये प्राप्त थयेला होवाथो परमात्मा तथा अतत अविनश्वर स्वाधीन परमानंद मय शुद्धात्म ऐश्वर्यताने प्राप्त थएला होवायी



जे-मुग्ध प्राणीं ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेजने तेनी कामना  
 याय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमा प्रवेश करी पोताना आत्म  
 जोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवार्थी शुद्ध-  
 शुद्ध-शाता अशाता बनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवार्थी  
 दुःख रूपज जुळगे तेथी आपने तेनी कामनानो वीलकुल सजव  
 नथी, निरतर निष्कामी ठो तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने  
 स्वाधिन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरतर तेमाज  
 रमण करवावाखा तथा तेनाज जोगमा परम संतुष्ट ठो एवी आपनी  
 परमोक्तुष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रुची थइ तथा ते  
 पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे वताव्यो तेथी खरेखर मारा  
 मनने परम विश्रामना हेतु आपजठो ॥ २ ॥

केवलज्ञान अनत प्रकाशी, जविजन कमल विकाशी रे ।

॥ प्र० ॥ चिदानदधन तत्त्व विलासी, शुद्ध स्वरूप नि-  
 वासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ-अनंत केवलज्ञान रूप सूर्यनो प्रकाश करी जव्य जीवोना  
 हृदयकमलने विकस्वर करनार ज्ञानानंदना समूह आत्म तत्त्वमां  
 विलास करनार तथा तेज शुरु स्वरूपमा निवास करनार ठो

—अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आच्छादित थयेला  
 अनत केवलज्ञान रूप जलहलाटमान अद्वितिय सूर्यने, कर्म फु-  
 लनो नाश करी संपूर्णपणे प्रकाशमान करी अज्ञानरूप अंधकार वने  
 आवृत थएला जव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे परम  
 प्रफुल्लित करनार ठो रूप रस गंध स्पर्शादि, परडव्यना पर्यायनो  
 जोग, रमण, आस्वाद, मूर्ठा, कामना विगेरेनो समूल नाश करी राग  
 द्वेषादि विजावनो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर ज्ञानसं-  
 मूह आत्म तत्त्वमा विलास करनार अर्थात् तेना जोगमां निमग्न ठो-

तेज शुद्धात्म स्वरूपमां सदा निवास करो ठे अर्थात् आपनो उपयोग त्यांथी समय मात्र पण चलतो नथी-परद्रव्यादि तरफ जतो नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हुं मोहादिके ठलियो, पर परिणतिशुं ञलियो रे ॥  
प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिव मलियो, तिणे सवि  
जवजय ठलियो रे ॥ प्रजु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ-जो के हुं मोहादि बने उगायो, परपरिणतिमां तल्लीन थइ रह्यो, पण हवे तमारा जेवा साहेवनी वाणी सांजली मने प्रतित थवाथी मारो सर्वे जवजय दूर थयो जो के मोह अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्टोए मने वश करी मारी ज्ञानादि सपदा उगी लीधी ठे, माहरा सहज अनुपम सुख जोगथी मने वियोगी कर्षो ठे, तेथी हुं ते दुष्टोना वशमां पडो अत्यंत कंगाल अवस्थाने जोगचुं तुं

परपर्याय-शरीर स्वजन परिजन तथा धन धान्यादिमां अहं ममत्त्व करी तेनेज सुख तथा सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम लींबडामा 'वसतो' कीडो लीमडाना रसनेज मधुर मानी तेमा तल्लीन रहे ठे, त्यांथी निकलवा चाहातो नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत थयो नहि, पण हवे हे करुणा निधे ! सर्वज्ञ अने वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति थई-आपनुं दर्शन पाम्यो तेथी अनंत रोग शोक जय क्रोध मान माया खोज अरति आदिके जरेखा जव समुद्रमां ज्रमण करवानो जय दूर थयो. कारण के ते जव ज्रमणनी हवे अवधि आवी उक्तंच-

“अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं हुज्ज जेहि सम्मत्तं, तेसिं अवह्व पुग्गल, परिअट्ठो चेव ससारो” ॥ ३ ॥

ध्येय स्वप्नावे प्रजु अवधारी, डुर्ध्याता परिणति वारी रे



॥ प्र० ॥ ज्ञासन वीर्य एकता कारी, ध्यान सहज संजारी  
रे ॥ प्र० ॥ श्रो० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अज्ञेदे, पर परिणति विठेदे रे ॥ प्र०

॥ ध्याता साधक जाव उठेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥

॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ.—प्रज्ञपदने पोतानु शुद्ध ध्येय जाणी पोताना हृदयमां  
स्थापन करी, दुर्ध्यान रूप परिणतिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी  
संपूर्ण एकता अज्ञेदता करनारू सहज आत्म ध्यान संजारे, तेथी पर  
परिणतिनो समूल विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता ध्येय समाधिमा तल्लीन  
थाय अने ध्येय पदनो सिद्धि प्राप्तिने वेदे—जोगवे त्यारे ध्यातामाथी  
साधकपद दूर थाय

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबंधी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान  
दर्शन चारित्र वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु  
स्वामीना परमात्म पदने शुद्ध ध्येय ( ध्यावना लायक वस्तु ) भारी—  
ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप ससार त्रमणना हेतु  
चूत, शुद्ध परिणतिथी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे—दूर करे,  
( कारण के ज्यासुधी दुर्ध्यान परिणाम वत्ते त्यांसुधी शुद्ध ध्यानने  
अवकाश मले नहि जेम मलीन वस्त्र उपर केसरनो रंग लागे नहि )  
अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र  
शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र परिणाममा आत्म वीर्यने एकत्र तल्लीन  
करे—अज्ञेद करे एवं सहज आत्म ध्यान आढरे, जेथी ध्येय समाधि  
अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र  
परम समाधिमा मग्न—तल्लीन थाय, ते वारे आत्म परिणति मनोझ  
अमनोझ कोड पण पर उठ्यमा राग द्वेष रूप अशुद्ध परिणामे वत्ते

(गमन करे) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुद्ध परमात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचक्ष अनंत जोग उपजोगनो स्वामी थाय. उक्तंच- एको मोक्ष पथोय एष नियतो, जगद्गति वृत्त्यात्मक; स्तत्रैव स्थिति मेति यस्तमनिशं, ध्यायेच्चतं चेतसि; तस्मिन्नैव निरंतरं विहरति ज्व्यान्तराण्य स्पृशन् । सोवश्यं समयस्य सार मच्चि- रान्नित्योदयं विन्दति

अर्थ:- सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्ष मार्गमां जे पुरुष स्थित थाय ठे, तेनेज जे निरंतर ध्यावे ठे वली तेनेज जाणे, ठे तेनेज अनुभवे ठे वली तेनाज विषे विहार करे ठे-प्रवर्त्ते ठे पण अन्य ज्व्यमां रंच मात्र स्पर्श करतो नथी ते अल्प कालमां नित्योदय परमात्म पदने पामे ठे त्यारे ध्यातामांथी साधक जावनो उच्छेद भाय ठे; कारण के ध्येयनी संपूर्ण सिद्धि थया पढी साधवानुं कंइ बाकी रंभुं नथी. ज्यांसुधी कंइ साधवानुं बाकी होय त्यांसुधी साधक जाव कहेवाय जेम (कारण पद उत्पन्न, कार्य थये न लह्योरी).॥४४५॥

ज्व्य क्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे.  
॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विज्ञावे राची, तिण नवि थाये  
साची रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-शुद्ध ध्येय जे परमात्म-मोक्ष पद तेनुं यथार्थ स्वरूप श्रद्धान पूर्वक में न जाणुं तथा साध्य सापेक्ष आचरणा न आदरी त्यांसुधी माहरी चित्त वृत्ति विज्ञावमां राची रही अर्थात् आ लोक सवधी पंच ईन्द्रियोना मनोइ जोग्य पदार्थों तथा परलोक संबंधी स्वर्गादिना जोगमां आशक्त रही-तेनी मनोकामना रही तेथी आपना सत्य प्रमाणिक आगममा वतावेली समिति गुप्ति परिपह महन तथा चारित्र तप नियमादि परमात्म पदनी साधन जूत ज्व्य

क्रियाउं पण विष गरल अने अन्योन्य अनुष्ठान रूप होवाची परमार्थ-  
मोक्ष पदने आपवा समर्थ थई नहि. ज्यांसुधी सम्यग्ज्ञाननी प्राप्ति  
थई नथी त्यांसुधी सर्वे क्रियाउं शुद्ध ज्ञाव विनानी अशुद्ध विष  
गरल अन्योन्य अनुष्ठान रूप जाणवी उक्तच “शुद्ध क्रिया तो  
सपजे, पुज्जल आवर्त्तने अर्द्ध रे” ॥ ६ ॥

पण जय नहि जिनराज पसाये, तत्त्व रसायण पाये रे  
॥ प्र० ॥ प्रज्जु जगतें निज चित्त वसाये, ज्ञाव रोग मिट  
जाये रे ॥ प्रज्जु० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ.-पण हवे मने जय नथी कारण के जिनराजना वचन पसाये  
तत्त्व रसायणनी प्राप्ति थई ठे तेथी माहरू चित्त प्रज्जुनी जक्तिमा वस-  
वाची ज्ञाव रोग मटी जशे पण हवे हे तरण तारण श्री सुवाहु जिने-  
श्वर ! वत्रीश दोष रहित तथा वाणीना पात्रीश गुण सहित परमा-  
मृत रूप आपना वचनोना पसाये ज्ञानावरणादि कर्म रोगने अत्यत  
दूर करी आत्म वीर्यनी संपूर्ण वृद्धि पुष्टि करनार देवतत्त्व, गुरु तत्त्व,  
अने धर्मतत्त्वनी मने प्राप्ति थई ठे तेथी माहरी चित्त वृत्ति मनोह  
अमनोह पर अव्यथी निवृत्त थई प्रज्जुनी आज्ञा पालवा रूप जक्तिमा  
लीन थशे तेथी माहरा ज्ञानावरणादि सर्वे ज्ञाव रोगो सूर्यथी जेम  
अंधकार नष्ट थाय तेम तत्काल विनाप्रयासे नष्ट थई जशे एवा  
निश्चयथी मारो जव ज्रमणनो अत्यत जय दूर थयो ठे ॥ ७ ॥

जिनवर वचन अमृत अनुसरिये, तत्त्व रमण आढरिये रे  
॥ प्र० ॥ अव्य ज्ञाव आस्रव परिहरिये, देवचक्र पद वरिये  
रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ८ ॥

अर्थ -जिनेश्वरना अमृत समान वचन अनुसारे वर्त्तीए, तत्त्व  
रमणना आढक थईए, अव्यास्रव तथा ज्ञावास्रवनो त्याग करीये तो  
देवमां चंद्रमा समान सिद्ध पद वरिये-

हे सुबाहु जिनेश्वर । आप सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी साचा  
 आस ठो. आपनांज वचन आ चार गति रूप अत्यंत जयंकर पारावार  
 जव समुद्रथी पार उतारी शिव स्थानके पहोंचारुवाने अद्वितीय  
 नौका समान ठे तथा दुष्ट ज्ञानावरणादि कर्म रोग वडे पीडाता  
 दुर्बल आत्म वीर्यथी हीण थएलाने ते रोग दूर करो आत्म वीर्ये  
 संपूर्ण पुष्ट करवाने अमृत समान ठे माटे जो आपना वचनने ह्मे  
 अनुसरीये-ते प्रमाणे वर्त्तीए अने शुद्धात्म तत्त्वनु रमण करोए-तेमां  
 लीन थईए तथा अज्ञिनिवेशादि पाच मिथ्यात्व, हिंसादि पाच अव्रत,  
 तथा क्रोधादिक कृपाय, विकथादि प्रमाद तथा औदारिक काय योग  
 आदि योगनो परिहार करीए-राग द्वेषादि विजावनो न्याग करोए  
 तो नवां कर्म आवतां बध थाय अने पूर्व संचिन कर्मनी निर्जरा थाय  
 तेथी देवमा चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय-अतींद्रिय  
 अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय उक्तंच “ पंचासव विरत्तां,  
 विषय विजुत्ता समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, मुण्णिणो सा-  
 हंति परमव्रं, ” ॥ ७ ॥ ( संपूर्ण )

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामीजिन स्तवन ॥

देहुं देहुं नणद हठीवी ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे, मन मो-  
 हना जिनराया । जिणे पूरण तत्त्वनिपाया, अव्यास्तिक नय  
 उहराया रे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वजाव समाया रे, मन  
 मोहना जिनराया । ज्ञानादिक स्व परजाया, निज कार्य करण  
 वरतायारे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थः—हे सुजात स्वामी ! सर्वे स्वपर्यायानु कारण ड्रव्य ठे पण ड्रव्यनुं कारण अन्य ड्रव्य होइ शके नहि तेथी आप स्वयं सिद्ध ठे, स्वयं बुद्ध ठे, सर्व पर ड्रव्यनी कामनाथी रहित परम सतुष्ट ठे, तथा अतींद्रिय, अव्याबाध, अनुपम, निरूपचरित, स्वाधीन, अपृथग्भूत, अनंत, सहज, आत्म सुखना निरंतर जोका, अनुभव खेनार ठे, सुखात्मा ठे, उक्तच "जादो सय स चेदा, सवण्हू सव जोग दर-सीय । पप्पोदि सुहमणंतं, अधवावाहं सगम मुत्त" ॥ माहरा चित्तने सुहंकर लाखा ठे, अनंत गुणना निधान थाप स्वजातिनु दर्शन यतां अपूर्व आनंद रूप जल वके माहरू चित्त सरोवर जरपूर थयु, अज्ञान कषायना पात्र पर ड्रव्यादिनी चाह दाहमां निरंतर प्रज्वलित यता शुद्धात्म अनुभव रूप सुगंधथी रहित हरिहरादि कुदेवोने करीरादि वृक्षोनी पेठे त्यागी शुद्धात्म अनुभव रूप अनंत सुगंधथी जरपूर आपना पद कमलमां माहरू मन मोहित थयुं ठे, त्यांथी रचमात्र पण खसवा चाहातुं नथी, माटे हे 'जिनेश्वर ! जगत् प्रयमां थापज जव्य जीवोना मन मोहन ठे जे आपे अनादि कालथी लागेला थात्म गुण रोधक ज्ञानावरणादि कर्म मलने बाह्य अन्यतर तप वके दूर करी पोताना आत्म तत्त्वनी पवंचूत नये सिद्धि करी ठे अर्थात् सर्वे आत्म गुणो संपूर्ण निर्मल तथा स्वाधीन करी लीधा ठे माटे हवे कंई पण करवानु आपने बाकी रह्यु नथी तेथी आप निष्क्रिय विरूढने संपूर्ण प्राप्त यया ठे, अनंतानंदना स्वामी यया ठे तथा आत्म धर्मने मलिन करवाना तथा जव प्रमणना निमित्त अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अने योगनो सर्वथा अज्ञाव कयों ठे तेथी आपनो कोइ पण गुण पर्याय हवे कोइ पण कासे रचमात्र पण मलिन थवानो नथी तथा तेमज ते सिद्धि अवस्थायी आप कोइ पण कासे च्यूत थवाना नथी. ड्रव्या-स्तिक नये आप सदा अवस्थित रही चेतनतामा समाता पोताना

शुद्ध अनंत पर्यायनुं राज्य जोगवो ठो. ज्ञानादिक सर्वे पर्यायोने स्वकार्य करवामां निरंतर प्रवर्त्तावो ठो अर्थात् ज्ञान गुण वडे अनंत ड्रव्यना त्रिकालवर्त्ती अनंत गुण पर्यायने समकाले प्रत्यक्ष पणे जाणो ठो, दर्शन गुण वडे सर्वे ड्रव्यना अस्तित्वादि सामान्य स्वज्ञावने सम काले देखो ठो, चारित्र गुण वडे सर्व परज्ञावथी निवृत्त पणे अनंत ज्ञानादिक स्वधर्ममां निरंतर रमण करो ठो अने आपनुं आत्म वीर्य ते पण ज्ञानादिक अनंत स्वधर्म परिणमाववामां वर्त्ते ठे. एम आपना सर्वे पर्यायो पोत पोतानुं कार्य करवामा स्वाधीन पणे वर्त्तावो ठो वली हे सर्वे नीतिमानमां शिरोमणि । ड्रव्यना यथार्थ स्वरूपनो बोध यवा माटे आपे ड्रव्यास्तिक अने पर्यायास्तिक ए वे मुख्य नयो उराव्या ठे जेमां सर्वे नयनो समावेश थई जाय ठे ते नयना यथार्थ ज्ञानवडे वस्तुनुं स्वरूप यथार्थ साक्षात् वत् जणाय ठे—जासे ठे॥१॥१॥

अंश नयमार्ग कहाया, ते विकल्प जाव सुणायारे ॥ मन ० ॥

नयचार ते ड्रव्य थपाया, शब्दादिक जाव कहायारे ॥ मन ० ॥ ३

अर्थ—नय ते पदार्थना ज्ञानने विषे ज्ञानना अंश ठे, वस्तु अनंत धर्मात्मक ठे अर्थात् जीवादिक दरेक पदार्थमां अनंता धर्म, ठे तेमांथी जे स्वाजिष्ट एक धर्मने मुख्यताए गवेषे ठे तेमां रहेखा बीजा धर्म, प्रति उदासिनता राखे ठे ते नय ठे उक्तंच—स्याद्वाद मंजरीमा “ नीयते परिच्छिद्यते एक देशे विशिष्टेर्थात् आत्रिरिति नीतयो नयाः तथा रत्नाकरे, नीयते येन श्रुताख्य प्रमाण विषयी कृतस्यार्थ स्याशस्तदितराशौद्रासी न्यतः स प्रतिपत्तुरत्रिप्राय विशेषो नय.” एम दरेक नयो वस्तुना स्वाजिष्ट एक अंशने प्रतिपादन करे ठे तेथी ते विकल्प मार्ग ठे. जे एकांते पोताना अजिष्ट धर्मनेज स्थापन करे ठे तेमां रहेखा बीजा

१५० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित.

धर्मोने तिरस्कारे ठे, ओळवे ठे, अपेक्षा राखतो नथी ते दुर्नय अथवा नयाजास ठे " स्वाजिप्रेता दशा दितरांशा पलापी पुनर्नया जास " अने जे वस्तुमां रहेला कोइ पण धर्मने तिरस्कारतो नथी

अर्थात् तेनी अपेक्षा राखे ठे एम घताववाने स्यात्पद युक्त अजिष्ट धर्मनु प्रतिपादन करे ठे ते सुनय ठे, स्याद्वाद ठे, प्रमाण वाक्य ठे, तेज हे जिनेश्वर ! आपना परम आगमनु बीज ( जीवन ) ठे, जे सर्वे एकांत वादे मचेला उन्मत्त हाथीउंना मदने जंजन करवाने सिंह समान ठे, वस्तुमुं यथार्थ सर्वांगे स्वरूप जाणवा दिव्य ज्ञानद्रष्टि ठे, उक्तच- स्याद्वादमजरौ-राग-उपेद्रवजा ॥ " सदेव सत्स्यात् सदिति त्रि-

धाद्यो, मीयेत दुर्नीति नय प्रमाणे, यथार्थ दर्शातु नयप्रमाण, पद्येन दुर्नीति पथं त्वमास्थः" अर्थ-सत्वज ठे, सत् ठे अने स्यात् सत् ठे एवी रीतनो त्रण प्रकारनो अर्थ अनुक्रमे दुर्नय, नय अने प्रमाण वने मापी शकाय ठे अने यथास्थित पदार्थने जोनारा एहवा हे प्रजु ! आपेज नय अने प्रमाणना मार्ग वने दुर्नय मार्गने दूर क्यों ठे ते नयना विस्तारथी अनेक जेद ठे ( व्यासतो नेक विकल्पः )

कारण के वस्तु अनंत धर्मात्मक ठे अने ते अनंत धर्मनु निरूपण करवाने वचन मार्ग पण अनंत होय माटे जेटलां वचन तेटला सर्व नयवाद कहेवाय " जावइया वयण पहा, तावइया चैव हुन्ति नयवाया " तो पण ते सर्वे नयवादोनो सम्ह करनारा एहवा सात अजिप्रायनी कल्पनाना छारे करीने सात नयो प्रतिपादन करेला ठे तेनां नाम- नैगम, संग्रह, व्यवहार, रूजुसूत्र, शब्द, समजिरूढ अने एवंचूत तेमाथी प्रथमना चार नयो अव्यार्थिक नयमा अने शब्दादि त्रण नयो पर्यायार्थिकमां समाय ठे ते त्रण जावनय ठे

"समासतो द्विजेद अव्यार्थिक पर्यायार्थिक तत्र अव्यार्थिक

श्रुतुर्धा नैगम, संग्रह, व्यवहार, रूजुसूत्र ज्ञेदात् पर्यायार्थि  
कस्त्रिधाः शब्द समञ्जिरुह एवंभूत ज्ञेदात् ”

श्री सिद्धसेन दिवाकर रूजुसूत्रनयने पर्यायार्थिकमां गणे ठे माटे  
तेमना अज्ञिप्राये नैगमादि त्रण नय द्रव्यार्थिक अने रूजुसू-  
त्रादि चार नय पर्यायार्थिक ठे द्रव्यने सामान्यपणे निरूपण  
करनारा प्रमाताना अज्ञिप्रायो जेशोनो आद्यना चार नयमा समावेश  
थाय ठे ते द्रव्यार्थिक ठे अने जे अज्ञिप्रायो शब्दना अर्थनी मूर्खता  
धरावे ठे ते शब्दादिक त्रण नय पर्यायार्थिक ठे माटे आदिना चार  
नय ते अविशुद्ध ठे अने शब्दादिक त्रण नय ते विशुद्ध ठे उक्तं-  
आद्य नय चतुष्टय मविशुद्ध पदार्थ प्ररूपणा प्रवणत्वात्  
अर्थ नया नाम द्रव्यत्व सामान्य रूपा नयाः शब्दादयो  
विशुद्ध नयाः शब्दावलंबार्थ मूर्खत्वात्

तथा च स्याद्वादमंजरौ “ये केचनार्थ, निरूपण प्रवणाः” प्रमात्र  
ज्ञिप्रायास्ते सर्वेऽप्याद्येनय चतुष्टयेऽन्तर्भवति ये च शब्दविचार  
चतुरास्ते शब्दादि नय त्रय इति ॥

॥ तथा रत्नाकरावतारिका ग्रंथे “ज्वति ज्ञोष्यति अड्ड-  
वत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः, सोऽस्ति यस्य  
विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः ”

“ पर्येति उत्पाद् विनाशौ प्राप्नोतीति पर्याय स एवार्थः स  
अस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः ” ॥ ३ ॥

डुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्त्व अज्ञेदे ध्यायारे ॥-मन० ॥  
ते सवि परमार्थ समाया, तसु वर्त्तन ज्ञेद गमायारे ॥-मन० ॥४



अर्थः—सुनयनुं लक्षण कहे ठे “स्वार्थ ग्राही इतरांशाप्रति-  
 क्षेपी सुनय इति सुनय लक्षणं” कुनयनु लक्षण कहे ठे. “स्वार्थ  
 ग्राही इतराशप्रतिक्षेपी दुर्नय इति दुर्नय लक्षणं” अर्थ—स्वा-  
 जिष्ट धर्मने गवेपतां बीजा धर्मोनी अपेक्षा नहि राखनार बीजा  
 धर्मोने ओलवनार जे दुर्नयो तेने दुर करी स्वाजिष्ट धर्मथी इतर सर्वे  
 धर्मोनी अपेक्षा राखी स्यात्पदे शोजता सुनय—अनेकांत वादनी  
 प्रवृत्ति करी ते अनेकांत—स्याद्वादने वस्तुनु संपूर्ण स्वरूप जाणी  
 सर्वे धर्मो वस्तुथी एकत्व तथा अनेद अर्थात् कोई काले जूदा  
 नहि पडे एम चित्तमां चिंतन करी धारणा करी ते सर्वे नयोने परमार्थ  
 पटले शुद्ध अव्यस्वरूपमा समाव्या, तज्जान्य एक शुद्धात्म अनुभूतिने  
 जोगववा लाग्या, नयोनी वर्तना रूप विकल्पनो नाश थयो उक्तं च—उ-  
 पेंद्रवजा

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यं  
 विकल्पजाल च्युत शान्तचित्ता, स्तएव साक्षादमृतं पिव-  
 न्ति ॥ ४ ॥

स्याद्वादी वस्तु कहीजे, तसुधर्म अनंत लहीजे रे ॥ मन० ॥  
 सामान्य विशेषनुं धाम, ते अव्यास्तिक परिणाम रे ॥  
 मन० ॥ ५ ॥

अर्थ—वस्तु अनंत धर्मात्मक ठे अर्थात् अनता धर्मो वस्तुमा तम-  
 काले होय ठे जेम स्वद्रव्यादि चतुष्टये वस्तु अस्ति स्वभाववत ठे, पर  
 द्रव्यादि अतुष्टये वस्तु नास्ति स्वभाववत ठे तेमज नित्य, अनित्य,  
 एक, अनेक, जेद, अजेद, जव्य, अजव्य, वक्तव्य अवक्तव्य, विगेरे  
 स्वभाववत वस्तु होयठे माटे जो तेमाथी स्वाजिष्ट एकस्वभावने एकाते

गवेषीये, निश्चय करीये तो वस्तुनुं ज्ञान यथार्थ थाय नहीं पण जो स्यात् अस्ति, स्यात् नित्य, स्यात् एक विगेरे अनेकांते गवेषीये तो वाकी रहेला बीजा धर्मोनी पण सूचना थाय एम सर्वे वस्तु स्याद्वाद अ-  
नंत धर्मात्मक ठे तेथी स्याद्वाद वने वस्तुमा रहेला अनंत धर्मनो बोध थाय.

वली अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रमेयत्व, सत्त्व, ए  
ठ मूल सामान्य तथा अस्तिस्वजाव, नास्तिस्वजाव, नित्यस्वजाव,  
अनित्यस्वजाव, एकस्वजाव, अनेकस्वजाव, जेदस्वजाव, अजेदस्वजाव  
जव्यस्वजाव, अजव्यस्वजाव, वक्तव्यस्वजाव, अवक्तव्यस्वजाव, परम  
स्वजाव विगेरे उत्तरसामान्य स्वजाव वस्तुमां अनता ठे तथा जीव-  
मां चेतनता अनुयायी अनेक विशेष स्वजाव ठे तेम धर्मास्तिकायमां  
गति सहायादि, तथा अधर्मास्तिकायमां स्थितिसहाय आदि तथा  
आकाशमां अवगाहदान आदि तथा पुद्गलमां पूरण गलनादि  
अनंत धर्मो ठे ते अनंत सामान्य स्वजाव तथा विशेष स्वजावनो  
आधारजूत जे अस्तित्वधर्म ते सर्वे द्रव्यमां सदाय समकाले परिणमे ठे.  
उक्तं. “ नित्यत्वादीनां उत्तर सामान्यानां परिणामिकत्वादीनां  
विशेष स्वजावानामाधारजूत धर्मत्वं अस्तित्वं ” विगेरे ॥ ५ ॥

जिनरूप अनंत गणीजे, ते दिव्यज्ञान जाणीजे रे ॥मन०॥

श्रुत ज्ञाने नय पथ लीजे, अनुभव आस्वादन कीजे रे ॥

मन० ॥ ५ ॥

अर्थः—जिनेश्वर निर्मल ज्ञानानुयायी अनंत रमणीय गुणना समूह  
अनंत धर्मे विराजमान ठे, अप्रतिहत् महान् तेजस्वी अखंड एक ज्ञान  
मूर्ति ठे, इंद्रिय विषयथी अतीत ठे, ज्ञानस्वरूपी ज्ञानगम्य ठे, तेथी  
तेओने रागद्वेष रूप मलीनताथी रहित मात्र शुद्ध दिव्यज्ञानवने जाणी  
शकीये. माटे जिनेश्वर ते अनंत गुणात्मक अर्थात् जिनेश्वरना अनंत

१५४ विंशति विहरमान जिनः स्तब्धानि षाळावबोध सहित.

गुणोने शुद्ध नये जाणवुं तेज सुंदर अनुपमज्ञान ठे ते माटे, अनत गुणात्मक जिनेश्वरने सम्यक्प्रकारे जाणवा माटे जवसमुद्रमा नौका समान सर्वज्ञ वीतराग प्ररूपित श्रुतज्ञानना प्रसादथी सुनय-स्याद्वाद मार्ग ग्रहण करीए अने शुद्ध नये जाणी तत्स्वरुपना अनुभवनो आनद पामीए-जोगवीए उक्तंच-राग-वसत तिलका वृत्तम्-“ नैकान्त संगत दृशा स्वयमेव वस्तु, तत्व व्यवस्थितिमिति प्रविलोक यन्त ॥ स्याद्वाद शुद्धि मधिका मधिगम्य सन्तो, ज्ञानी ज्ञवन्ति जिन नीति मलन्धयन्त ” जावार्थ-सर्वे वस्तु सहज अने कातात्मक ठे माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद न्यायने नहि उलंघन करता वस्तु, तत्त्वनी अनेकातात्मक व्यवस्था सन्मुख द्रष्टि राखी स्याद्वादनी अधिक शुद्धिने अंगीकार करी सतपुरुषो ज्ञानी वने ठे-ज्ञानपद धारण करे ठे ॥ ५ ॥

प्रभु शक्ति व्यक्ति एक जावे, गुण सर्व रह्या समजावेरे ॥

॥ मन० ॥ मादरे सत्ता प्रभु सरखी, जिन वचन पसाये

परखीरे ॥ मन० ॥ ७ ॥

अर्थ-हे त्रिलोकपूज्य प्रभु ! आपनी ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि सर्व शक्तिउं व्यक्त अर्थात् निरावरण येई ठे, अवाधित पणे पोताना शुद्ध कार्ये परिणमे ठे, आगामी अनंतकाल सुधी एमज परिणमवाने शक्तिमान ठे, कोइ पण काले क्षीणता पामे तेम नथी कारण के द्रव्यमा सामर्थ्य पर्याय तथा उती पर्याय अनंत ठे माटे आपनी शक्ति व्यक्ति एक जावे ठे तथा आप अमुक वर्तमान समये सर्वे द्रव्यना त्रिकालवर्ती पर्यायोने समकाले प्रत्यक्ष पणे जाणो ठो अर्थात् आ समये आवी रीते परिणमे ठे, आवते समये अमुक रीते परिणमशे पछी बीजे समये थनागतने वर्तमान पणे जाणो ठो अने वर्तमान

परिणतिने चूतपणे जाणो ठो एम उत्पाद् व्ययने जोगवो ठो पण आपनी कोइ पण शक्ति हवे आवृत्त नथी के जे हवे प्रगट व्यक्त थाय माटे सर्वे शक्ति व्यक्ति एक जावे ठे. तथा ज्ञान शुरू ज्ञानपणे, दर्शन शुरू दर्शनपणे, एम आपना सर्वे गुणो राग द्वेष मोह विगेरेथी रहित समजावे परिणमे ठे कारण के विषय परिणामना हेतु अज्ञान मिथ्यात्व कपायनो आपे समूल नाश कर्यो ठे वली जेस आप अचल सिरू स्वक्षेत्रमा वसी स्वतत्र पणे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अव्याबाधता, अटल अवगाहना, अगुरुलघुत्व, अमूर्त्तित्व, अजरता, अमरता, निर्जयता, निरामयता, निराकुलता, निर्दुःखता, निस्पृहता आदि अनंत गुण जन्य आनंद समूहना विलामी थया ठो तेमज हु पण संग्रह नये आप समान सत्ताधारी बु. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढावी तदनुसार सम्यक्पराक्रम वजावी सम्यक्-दर्शन ज्ञान चारित्रने आदरुं—सेवु तो आप सदृश परमानंद जोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच—“ तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप रमणं पर परित्याग रूपं चारित्रं येतज्जत्नत्रयी रूप मोह मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ” एम में आपना न्याय युक्त अवाध्य वचनना प्रसादे परिक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो ठे ॥ ७ । तुं तो निज संपत्तिनो जोगी, हुं तो पर परिणतिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिणे तुम प्रजु माहुरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखुट लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मढ्युं तेथी जंरुं चक्ष जंगत् जीवनी ऐठं, जलना परपोटा जेवी क्षणचंगुर,

पराधीन, चाहदाहृथी घालनार, माहराथी दूरवर्त्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावनार, तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राख नार, जेनो जोग किंपाकफलनी पेठे प्राण घातक, एवी जे पुद्गल परिणति ( पौद्गलीक विषयो ) तेमां हु जोग सुख मानी मग्न, तद्वलीन थई रह्यो, माहरी कर्तृत्व, जोकर्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान लाज, जोग, उपजोग आदि परिणतिने तद्गतकरी संसार परिपाटीने वधारी उक्तच—“ जो अपसथ्योरागो, वद्धइ संसार जमण परिवानी ।

विसयाइसु सयणाइसु, इच्छं पुग्गलाइसु ॥ ” माहरी अनुपम अखुट ज्ञानादिक सपदाथी वियोगी रह्यो पण हे जगवंत । आप तो आत्म सपदाना जोगमा अतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्चारित्र वडे समूल नाश करी अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख, अनतवीर्य अनतदान, अनंतलाज, अनंतजोग अनतउपजोग आदि स्वसपदानो लाज मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कंटक पणे ज्ञानादि अनंत अचल निरुपचरित अनुत्तर आत्म संपदाना जोगमां अत्यंत मग्न थया ठो तेथी हे प्रजु ! आपनेज माहरा स्वामी जाणुं तु, आपथीज माहरो मनोर्थ परिपूर्ण थशे आपनाज दर्शनथी मारी अखुट लक्ष्मी माहराउपर प्रसन्न थई माहरे स्वाधीन थशे माटे हु आपनी सेवाने निरंतर चाहनार आपनो सेवक आपनाज गुण ग्राममां संतोष वृत्ति धारण करु तुं ॥ ७ ॥

ए संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥  
मन० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा  
धरवी रे ॥ मन० ॥ ९ ॥

तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी ॥ इम तत्त्वा-  
खंवन करिये, तो देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थः—आपनी सेवामा जो माहरं चित्त एकाग्र थाय, अज्ञेद संवंध धारण करे तो तत्काल माहरा उपादानमां सिद्धिनुं कारणपद उत्पन्न थाय माटे में तो निश्चय कयों ठे के हे जिनेश्वर। अन्य सकल परद्व्यनी सेवा तजी आपनीज सेवामां निरंतर वस्तुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां निश्चल वृत्ति धारण करवी. ॥ ए ॥

कारण के हे जिनेश्वर। कोइ पण द्व्यनी कामना आपमां जणाती नथी तथा पोताना ज्ञानादि सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता चोक्ता होवाथी आप पूरण ब्रह्म ठो रूप रस गंध स्पर्श संस्थान आदि पुद्गल द्व्यना कोइ पण पर्यायनो आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी तेथी आप अरूपी ठो आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा छीन ठो—तद्रूप ठो माटे आपनुं अवलवन धारण करुं तुं कारण के जेम काष्टना अवलंवने लोहुं जलमां तरी जाय तेम हुं आपना अवलंवने आ जयकर जवारणवमाथी तरी देवमां चद्रमा समान शुद्ध सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रज्ञ जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेनाड हो मिसरि गकुरो महदरो ॥ ए देशी ॥  
स्वामी स्वयंप्रज्ञने हो जाठं जामणे, हरखे वार हजार ॥  
वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो, जावकृपा किरतार ॥  
स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थः—महान् अखूट वैजवधारी इन्द्र चंद्र चक्रवर्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वय बुद्ध, स्वयं आत्म लक्ष्मोना स्वामी श्री स्वयंप्रज्ञ स्वामीने हजारवार—वारंवार, निरंतर, जामणे जाठं—अत्यंत

५५० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि धालावबोध सहित.

प्रमोद जावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा जकिमा लीन थाजं. के जेनो “ वस्तु. धरम पूरण नीपन्यो ” अर्थात् अनादि कालथी ज्ञाना-  
वरणादि कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म धर्मों  
पोतानु कार्यं शुरु रीतेकरी शकता नहोता, परवश परानुयायी थइ रखा  
इता, कर्मवधनना हेतु थइ रखा इता, ते सर्वे धर्मों सपूर्ण प्रगट-  
व्यक्त थया ठे, तदन निरावरण थया ठे, अप्रतिहत् पणे पोताना शुरु  
कार्ये निरंतर परिणमे ठे तेथी अखड अचल अविनाशी परमानंद  
दशाने प्राप्त थया ठे परम निर्जय निराकुल दशामा अनंत शुद्धात्म  
अनुभूतिमा तल्लीन थइ रखा ठे तथा “ जाव कृपा किरतार ”  
अर्थात् चार गतिरूप अपरिमित जयकर जवाटवीमा विषय कपाय  
वशे जेदन जेदन तामन तर्जन तिरस्कार वियोग शोक जय आक्रद  
विगेरे अनेक प्रकारना असह्य शारीरिक तथा मानसिक दु.खो दीन  
अनाथपणे जोगवताने, अत्यंत कारुण्य जावनावडे सम्यक्दर्शन,  
ज्ञान, चारित्ररूप मोक्ष मार्गे दौरी, तेउना दु.खनो समूल नाश करी  
परमानंदमय शिवपुरीमा विराजमान करो ठो एज श्री स्वयंप्रभु  
स्वामीनी दया परमोत्कृष्टता धरावे ठे पण जे विषय कपायनी वृद्धि  
करनार उपदेश, तथा पदार्थों आपी, अज्ञानी जीवोनी विषय कपाय  
तथा हिसानी प्रवृत्तिने वधारे ठे—तेना कारणोने पुष्ट करे ठे अने हमे  
दया करीए ठीए एम कहेनार मिथ्याजिमांनी जीवो तो हे प्रभु ।  
दयाकु नहि पण वास्तविक न्याये आपना वचनानुसार हिंसाना  
अनुमोदक प्रतित थाय ठे ॥ १ ॥

अव्य धरम ते हो जोग समारवा, विषयाटिक परिहार ॥

आत्मगक्ति स्वजाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥

स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थ —प्राणातिगात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध

मान, माया, लोच, राग, द्वेष, कलह, अन्याख्यान, पैशुन्य, रति-  
 अरति, परपरिवाद, मायामृषावाद तथा मिथ्यात्वशब्द ए पापस्था-  
 नमा मन वचन कायाने न प्रवर्त्तावतां स्याद्वाद युक्त जिनेश्वरना  
 पवित्र कल्याणकारी वचनो बांचवा, सात्रलवा, विचारवामां तथा तेना  
 उपदेष्टा सदगुरू आदिना विनय वैयावच्चादिमा तथा ज्ञान दर्शन  
 चारित्रनी वृद्धि तथा स्थिति करवामा प्रवर्त्तावतां तथा “ विषयादिक  
 परिहार ” अर्थात् वीणा, सारंगी, डुडुजि, विगेरे वाजीत्र तथा  
 मेना, पोपट, स्त्री, किनरी आदिना ललित, मनोहर स्वर ते श्रवण-  
 इन्द्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुष पशु पक्षी बालक वाग वगीचा तथा  
 मनोहर आवास विगेरेना चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते  
 नेत्रइन्द्रिनो विषय, तथा पारिजातक, कुंद, कमल, मालति, गुलाब,  
 अरग, तगर, चंदन, केशर, मलयगर विगेरे पदार्थोनी मनोज्ञ सुगंध  
 ते घ्राणइन्द्रिनो विषय, तथा स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना  
 मनोज्ञ मधुरादि स्वाद ते जीव्हाडंन्द्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुषादिनां  
 मनोहर अंग तथा शय्या आसन विगेरे पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते  
 स्पर्शइन्द्रिनो विषय, ए पचेन्द्रिना विषयोने त्याग करवो अर्थात् ते  
 विषयोने इष्ट रम्य जोग्य सुहकर जाणी तेओमां राग, कामना, मूर्च्छा  
 करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा जोगववानुं सामर्थ्य होवा ठतां पण  
 ते विषयादिने स्वप्तावाचरणथी चुरुवाना हेतु तथा डु खना निंदान  
 जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग वे पण नहि मल्लंवाथी  
 न जोगववुं ते कई न्याग नथी, उक्तंच—( दश वैकालिके ) “—जे  
 यकते पिए जोग, लक्षे विपिठि कुबड ॥ साहीणे चयड जोग,  
 सेहु चाईत्ति बुच्चड ”—एम त्रिजोगनु समारवुं तथा विषयादिनो त्याग  
 ते आत्माना मलिन थयेला ज्ञान दर्शन चारित्र आदि स्वप्ताविक  
 धर्मेने शुद्ध प्रगट करवामां कल्याणकारी साधनो होवाथी इव्यधर्म



वे अर्थात् जाव धर्मना कारणो ठे. उक्तंच—“ कारण चासे द्रव ” अने कारण वगर कार्य सिद्धि थलज्य ठे, उक्तंच—कारण जोगे हो कारज नीपजेरे, एहमां कोइ न वाद । पण कारण विण कारज साधियेरे, ते निज मति उन्माद—माटे विषय परिग्रहादि जे रागादि अशुद्धोपयोगना हेतुथोठे तेनो त्याग करवो अने ज्ञान घ्यानादिक, जे रागादिनो नाश करी शुद्धात्म जाव प्रगट करवाना हेतुथो ठे ते आदरवा, जेथी कार्य सिद्धि थाय ॥ २ ॥

उपशम जावे हो मिश्र द्वायिकपणे, जे निज गुण प्राग्जाव ॥

पूर्णावस्थाने नीपजावतो, साधन धर्म स्वजाव ॥ स्वामी ० ॥ ३

अर्थ—एम त्रिजोगनुं समारवुं तथा विषयादिकनो त्याग, ए ज्ञानादि धर्मो प्रगट करवानां साधनो ठे ते उपशम द्वायोपशम तथा द्वायिकजावे प्रगट थपसा आत्म गुणोने पूर्ण शुद्ध अवस्थाने अर्थात् सिद्धदशाने प्राप्त करे ठे, जे कइ आत्म धर्म उपशमपणे द्वायउपशमपणे वा द्वायिकपणे प्रगट—प्राप्त थयो ते क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी शुद्धि करतो संपूर्ण शुद्धावस्थाने—सिद्ध अवस्थाने प्राप्त करवाने कारण रूप ठे, जेम समकित प्राप्त थयाथी विरतिनी प्राप्ति थाय, अने विरतिवके अप्रमत्त जावनी प्राप्ति थाय, तथा अप्रमत्त गुण वडे संपूर्ण कपायोना नाश थाय, कपायोना नाशवडे वीतरागता प्राप्त थाय ठे, अने वीतरागता वडे केवलज्ञान थाय एम क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी अधिक अधिक शुद्धि थइ संपूर्ण शुद्धि थाय. तेथी जे गुण प्राप्त थयो ते अधिक गुणनी प्राप्तिनो हेतु ठे, जेम कोइ माणस महान् व्याधिग्रस्त होवार्थी जरा पण खोराक लइ पचावी शकवाने असमर्थ होय, अत्यंत निर्बल होय पण ते कोइ रीते थोरुं बल पामे तो ते बलवडे धीमे धीमे अधिक खोराक पचावी अधिक अधिक बलवान थतो पूर्ण बलवा

प्रशमरति ग्रंथे—आर्या ऽन्द ॥ पूर्व करोत्यनंतानुबन्धि नाम्नां  
 द्ययं कषायाणाम् । मिथ्यात्व मोह गहणं, द्रपयति सम्यक्त्व  
 मिथ्यात्वम् ॥ सम्यक्त्व मोहनीयं, द्रपयत्यष्टावतः कषायांश्च ।  
 द्रपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेद मथतस्मात् ॥ हास्यादि  
 ततःषड्कं, द्रपयति तस्माच्च पुरुषवेदमपि ॥ संज्वलनानपि इत्वा,  
 प्राप्नोत्यथ वीतरागत्वम् । सर्वोद्घातित मोहो, निहत क्लेशो  
 यथाहि सर्वज्ञः॥जात्यनुप लक्ष्य राहंशोन्मुक्तः पूर्णं चन्द्रइव॥”  
 तेथी समकित प्राप्ति माटे अत्यंत उद्यम करी प्रथम समकितनी  
 प्राप्ति करवी जेथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट थाय. ॥ ३ ॥

समकित गुणथी हो शैलेशी लगे, आत्म अनुगत प्राव ॥  
 संवर निर्जरा हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥  
 स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थः—अनादि विज्ञाव योगे आत्म परिणति परानुगत थएली ठे  
 अर्थात् ज्ञानशक्ति परद्रव्यने जाणवामां, दर्शनशक्ति परद्रव्यने  
 देखवामां—निर्भार करवामां, चारित्रशक्ति परद्रव्यमां आचरण रमण  
 करवामा, एम सर्वे गुणो आत्मगुणना धाधकपणे परानुयायी प्रवर्त्ते  
 ठे पण ज्यारे समकितनो लाज पामे त्यारे परानुगत थएली आत्म  
 परिणतिने शुद्धात्म अनुगत पणे प्रवर्त्ताववानो अजिलापी थाय. शुद्ध  
 कार्य सन्मुख परिणति करे अर्थात् “ समकित गुणथी ” एटले  
 चोथा गुणस्थानथी माडी “ शैलेशी गुण लगे ” एटले चोदमा गुणस्थान  
 सुधी परानुगत थएली आत्म परिणतिने वारी क्रमे क्रमे अधिक अधिक  
 शुद्धताए वर्त्तावतो जाय. जेम जे परिणति अनात्म वस्तुने आत्म जाणवा—  
 सदहवा विगेरेमां प्रवर्त्तती हती ते चोथे गुणस्थाने आत्माने आत्मा  
 जाणवा—सदहवा विगेरेमां प्रवर्त्तावे तथा जे परिणति हिंसादि पांच

अव्रतमां वर्त्तती हती ते पाचमे ठठे गुणस्थाने अहिंसादि पाच  
 व्रतमा वर्त्तवे तथा मद विषय कपाय निंद्रा विकथामा जे परिणति  
 वर्त्तती हती ते वारी सातमे गुणस्थाने अग्रमत्त जावे आत्मगुण रम-  
 णमा वर्त्तवे एम आठमे गुणस्थाने रसघात स्थितिघात गुणसंक्रम  
 गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामा आत्म परिणतिने प्रवर्त्तवे, सज्वलन  
 क्रोध मान माया विगेरेथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने  
 ते कपाय रहित-अकपायपणे-समजावमा वर्त्तवे, सूक्ष्म लोभ शिवाय  
 वाकीना कपायथी आत्म परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक  
 शुद्ध समपरिणामे प्रवर्त्तवे, सर्वे कपायनो क्षय करी वारमे गुणस्थाने  
 वीतराग यथारयात् चारित्रमा वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल  
 क्षय करी तेरमा गुणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनन चारित्र,  
 अनत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वर्त्तवे-योग क्रियानी सकल चप-  
 खना वारी चौदमा गुणस्थाने अयोगी अवस्था करी पूर्ण परम  
 निवृत्ति पद पामे एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक  
 शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय एम दाव राखी साध्यने  
 आधारे साध्य सन्मुख उपादान-आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुए  
 वर्त्तवुं तेज सवर अर्थात् नवाकर्मनुं रोकवु तथा निर्जरा एटखे पूर्व  
 सचित कर्म क्षय थवानो हेतु ठे, उक्तंच-“ जो संवरेण जुत्तो,  
 अप्पठ प्रसाधगोहि अप्पाणं । मुण्डिण जादि णियदं, णाणं  
 सो संधुणोदि कम्मरयं” ॥ ४ ॥

सकल प्रदेशे हो कर्म अजावता, पूर्णानंद स्वरूप ॥ आत्म  
 गुणनी हो जे सपूर्णता, सिद्ध स्वजाव अनूप ॥ स्वामी ० ॥ ५ ॥

अर्थ -आपना आत्म अंगना सर्वे प्रदेशथी ज्ञानावरणादि कर्म मखनो  
 सर्वथा अजाव थयो ठे तेथी सर्वे प्रदेश स्फटिकमणि समान शुद्ध  
 सपूर्ण निरावरण थया ठे, कोइपण काले हवे कर्म मखनो रंच मात्र पण

संश्लेष यवानो सन्नव नथी, तेथी आत्म अंगमां वसता अनंत गुण पर्यायना सर्वे अविज्ञागो संपूर्ण शुद्ध यथा ठे, शुद्ध कार्ये परिणमे ठे तेथी हे जगवत । आप पूर्णानंद स्वरुप ठो अर्थात् जगत्जीव तो उपाधिना प्रतिकारथी आनंद माने ठे, परद्रव्यने जोग जाणी तेमा लयलीन थई रहे ठे तेथी जगत्जीवनो आनंद तो क्षणजंगुर अपूर्ण तथा जयसहित ठे, पण आप तो पोताना स्वाधीन अविनश्वर एक क्षेत्रावगाही गुण पर्यायोना चोक्ता ठो, तेमां रमण करो ठो, तेमासंतुष्ट तल्लीन थई आनंद जोगवो ठो तेथी आपनो आनंद कोईपण काले नाश थाय अथवा दूर जाय तेम नथी तथा स्वाधीन अने सहज होवार्थी जय आकुलता स्पृहा रहित ठे तेथी आपनोज आनंद एकातिक आत्यंतिक पूर्णपदने योग्य ठे जगत्जीवनो आनंदतो साचो आनंद नथी, अज्ञान वशे आनंद मनाय ठे. एम आत्मगुणनी संपूर्ण शुद्धता, कर्तृता, चोक्तता, परिणामीकता, ग्राहकता, व्यापकता आदि तेज आपनो अनुपम सिद्ध स्वभाव ठे. हवे कंईपण कार्य करवानुं शेष नथी, कंईपण आदरवानुं तेम ठोरुवानुं वाकी नथी तेथी अचल अबाधित शाश्वत परमानंदना स्वामी ठो ॥ ५ ॥

अचल अबाधित हो जे निःसंगता, परमात्म चिद्रूप ॥

आत्मजोगी हो रमता निजपदे, सिद्ध रमण ए रूप, ॥  
स्वामी ० ॥ ६ ॥

अर्थ.—आत्म परिणामने चल करनार जे राग द्वेष मोह परिणाम तेनो सर्वथा अज्ञाव होवार्थी अचल, तथा आत्म परिणामने शुद्धपणे परिणमवामा घात, स्वलना करनार ज्ञानावरणादिक घातीकर्मनो अज्ञाव होवार्थी अबाधित ठो तथा धन धान्य क्षेत्र वस्तु हिरण्य आदि बाह्य परिग्रह तथा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति जय शोक जुगुप्सा पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ए चौद

२६४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि धालावबोध सहित.

अन्यतर परिग्रह, एम घाह्य अन्यतर परिग्रह्यी सर्वथा रहित होवाथी निःसंगतो तथा ज्ञानानुयायी सर्वे धर्मो संपूर्ण शुद्ध निर्मल होवाथी परमात्मा ठो तथा संसार अवस्थामां कर्म संयोगे शरीरमां खोली-चूतपणे वसी शरीर रूपे पुद्गल रूपे संसारीजीव पोताने माने ठे पण आप तो शरीरथी सर्वथा अतित थयाठो तेथी मात्र ज्ञानरूप-ज्ञानमूर्ती ठो तथा पुद्गल जोगनु रमण तजी आप पोताना शुद्ध ज्ञान दर्शनादि गुणोमां रमण करवावाला आत्म जोगी ठो, शुद्ध स्वाधीन अविनश्वर सम्यमां रमण करो ठो तेथी आपनुं रमण संपूर्ण अने अविनश्वर होवाथी सिद्धपद धारण करे ठे ॥ ६ ॥

एहवो धर्म हो प्रजुने नीपन्यो, जाख्यो एहवो धर्म ॥  
जे आदरतां हो जवियण शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥  
स्वामी० ॥ ७ ॥

अर्थ - एम हे प्रजु ! आपना ज्ञानादि सर्वे धर्मो कर्म मलथी रहित शुद्ध प्रगट थया अचल, अविनाशी, अनत, अज, अक्षेशी, अवेदी, अकपायी, अचल, अक्रिय, नित्य, स्वाधीन, निर्द्वध, परमानंद दशाने प्राप्त थया ठो. अने जे रीते आप ए दशाने प्राप्त थया तेज उपाय, तेज धर्म, परम करुणा वने जव्य जीवोने आ संसार समुद्र-माथी पारंगत थई शिवचूमीए पहींचवा प्ररूप्यो-उपदेश्यो ठे ते सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म आदरतां-सेवतां जव्य जीवो जव्यकर्म, जावकर्म अने नोकर्म ए त्रण प्रकारना कर्मनो नाश करी परम पवित्र शुद्ध निरावरण थाय ॥ ७ ॥

नाम धरम हो ठवण धरम तथा, जव्य हेतुतिम काल ॥  
जावधर्मना हो हेतु पणे जला, जाव विना सहु आल ॥  
॥ स्वामी० ॥ ७ ॥ १

अर्थः—नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म, क्षेत्रधर्म, कालधर्म तथा ज्ञावधर्म एम धर्म स्वरूप अनेक प्रकारे ठे, पण नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र तथा काल ए जो ज्ञावधर्मना सन्मुख, ज्ञावधर्मना हेतु होय अर्थात् ज्ञावधर्म साधवामां कारणभूत होय तो प्रशंसनीय, कार्यकारी ठे पण जो ते ज्ञावधर्मनी अपेक्षा शून्य होय तो ब्याल अर्थात् निरर्थक धुल उपर लीपण जेवा जाणवा. “ज्ञाव शून्या क्रिया न फलन्ति इति” अथवा एकडा विनानां मीडां जेवा जाणवा पण जो ज्ञावधर्मनी सापेक्षताए होय तो एकडा उपरना मीडांनी माफक गुणकारी ठे ॥ ७ ॥

श्रद्धा जासन हो तत्त्व रमण पणे, करता तन्मय ज्ञाव ॥  
देवचंद्र जिनवर पद सेवतां, प्रगटे वस्तु स्वज्ञाव ॥  
॥ स्वामी० ॥ ९ ॥

अर्थः—शुद्धात्म तत्त्वनी श्रद्धा अर्थात् जो हु जिन प्ररूपित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप धर्म आदरुं तो हुं पण शुद्धात्म तत्त्वनो जोगी थई शकुं एम श्रद्धा करे, नय निक्षेप प्रमाण युक्त एम जाणे, तथा ते शुद्धात्म तत्त्वनेज पोतानुं रम्य जाणी तेमांज रमण करे, परद्रव्यादिमांधी रमणता टाले, तो आत्म स्वज्ञावमांज तल्लीन थाय— तद्रूप थाय. श्रीमान् देवचंद्र मुनिवर कहे ठे के एम जिनेश्वरना द्रव्यचरण ज्ञावचरणने सेवता आपणो आत्म स्वज्ञाव संपूर्ण शुद्ध प्रगटे, परमानंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ९ ॥

॥ संपूर्ण ॥



शुद्ध विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वासावबोध सहित.

॥ अथ सप्तम श्री रुषजानन जिन स्तवनम् ॥ वारी हुं

गोमी पासने ॥ ए देशी ॥

॥ श्री रुषजानन वंदिये, अचल अनंत गुण वास जिनवर ।

॥ ह्यायिक चारित्र जोगथी, ज्ञानानंद विलास जिनवर ॥

॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ.—धर्म धुरधर, धर्म तीर्थकर, अशरण शरण, श्री रुपजानन प्रभुने आ लोक परलोकना विषय सुखनी अचिखापा स्पृहा रहित तथा मान पूजाना लोच रहित, आ संसार समुद्रमाथी तारण तरण जहाज जाणी, अत्यंत विशुद्ध जावनाए परम आदर पूर्वक वंदिये—सेवा चक्ति करिये के जे प्रभु अचल अर्थात् प्रदेश मात्र पण दूर न धाय तथा राग द्वेष मोह जन्य चपलता रहित एहवा ज्ञानादि अनंत गुणना वास—निधान ठे तथा क्रोध मान माया लोच हास्य रति अरति जय शोक जुगुप्सा तथा प्रण वेद ए चारित्रमोहनीय प्रकृतिनो सत्ता सहित ह्य करी यथाख्यात् स्वजावाचरण ज्ञान दर्शन आदि अनंत स्वभाविक जोग जन्य आनंदमा अनंत ज्ञान सहित विलसे ठे ॥ १ ॥

॥ जे प्रसन्न प्रभु मुख ग्रहे, तेहिज नयन प्रधान जिनवर ॥

॥ जिन चरणे जे नामीये, मस्तक तेह प्रमाण जिनवर ॥

॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ—हे जगवत । आपना ज्ञान दर्शनादि सर्वे जोग उपजोगो आपने सदा स्वाधीन वसें ठे कोइ पण काले प्रदेश मात्र पण दूरवर्ती याव तेम नथी तेथी आप सदा-शोक रहित तथा ते जोग उपजोगने कोइ पण बाधा, पीका तथा हरण करी शके तेम नथी तेथी परम

निर्जय, तथा ते जोग उपजोगो पर ड्रव्यना जेल-मखिनता रहित  
सबा शुरु होवाथी आप गिलानी रहित, तथा ते जोग उपजोगो  
अखूट आनंद जनक होवाथी अरति रहित ठो, एम क्रोधादि सर्वे  
कपाय रहित होवाथी आपनुं मुखकमल सदा अम्सान परम  
प्रफुल्लित प्रसन्न ठे, दर्शनीय ठे. एहवा आप श्रीना आनंद वर्षक  
वदनकमलनु, जे नेत्र वडे दर्शन थाय तेज नेत्र प्रधान कल्याणकारी  
मानुं वु, तथा मोक्ष मार्गमां अति शोघ्रताए गमन करनार आपना  
चरण छयने, जे मस्तक वके स्पर्श थाय तेज मस्तक पान्युं प्रमाण  
गणु वु ॥ २ ॥

॥ अरिहा पदकज अरचीये, सलहीजे ते हथ्य जिनवर ॥

॥ प्रचु गुण चिंतनमें रमे, तेहज मन सुकयथ्य जिनवर ॥

॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थः—अनादि कालधी आत्म साम्राज्यने कषजे करि राखनार  
मोहादि दुष्ट शत्रुठेने जेमणे अति तिक्कण ज्ञान षाण वके गतःप्राण  
निर्वश करपा ठे एहवा हे श्री अरिहंत रूपज्ञानन जगवंत । माहरा  
मन मधुकरने अत्यंत विश्रामना स्थान, शुद्धात्म अनुचूति परिमलधी  
जरपूर आपना चरण कमलने, जे हाथ वके अर्धुं पूजु तेज हाथ सत्य  
लाजकारी समजुं वुं तथा हे प्रचु । शरद रूतुना पूर्ण चंद्र संमान  
आह्लादक शांति आपनार आपना अनंत निर्मल परम पवित्र 'गुण  
समूहना चिंतन मननमां जे मन रमे, प्रमोद सहित वत्ते तेज मन  
सुकृतार्थ—सर्व अर्थनी सिद्धि करनार मानुं वु पण जेम हरिणने तेना  
कान मनोह्र स्वरमां लुब्ध करी जाखमां फसात्री शस्त्र वडे प्राणनो  
वियोग करावे ठे तथा पतंगने जेम तेना नेत्रो मनोह्र वर्षमां मोहित  
करी अग्निनी ज्वालामां तेना देहने जस्मीचूत करावे ठे तथा मधु-



३६४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित

करने तेनी घ्राणेंद्रि कमलनी सुवासमां मोहीत करी ते स्थले घेरी राखी तेना बह्व्रज प्राणनो त्याग करावे ठे तेम जो माहरूं मन, इन्द्रियो तथा अंगोपाग विषय कपायना पदार्थो उपार्जन करवामा, मेलववामा, तेनुं सेवन, तेनी रक्षा करवामा रोकाय, स्वपर जीवना इव्य जाव प्राणनी हिंसा करवामा वत्ते—मददकारी थाय, पाप कर्मनुं उपार्जन करी जव ज्रमणना हेतु थाय, तो एहवामन तथा इन्द्रियोना लाजथी शुं? तथादश दृष्टाते दुर्लज एहवा मनुष्य जवनो लाज पण निष्फल—यद्युक्त—  
“यः प्राप्य दुःप्राप्यमिदं नरत्त्व, धर्मं न यत्ने न करोति मूढ.  
॥ क्लेश प्रबंधेन स लब्ध मब्धौ, चिंतामणिं पातयति प्रमादात्”  
॥ तथा “ते धत्तूर तर्कं वपति जवने प्रोन्मूल्य कल्पजुमम् ।  
चिंतारत्न मपास्य काचशकलं स्वीकूर्वते ते जनाः ॥ विक्रीय  
द्विरदं गिरींश्च सदृशं क्रीणति ते रासजं । ये लब्धुं परिहृत्य  
धर्ममधमा धावन्ति जोगाशया” ॥ ३ ॥

जाणो ठो सहु जीवनी, साधक बाधक जात जिनवर ॥ पण  
श्रीमुखथी साजली, मन पामे नीरांत जिनवर ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ—हे त्रिलोक पूज्य ! दर्पण तलनी माफक आपनी केवल—  
ज्ञान मय उच्छृष्ट ज्योतिमा सर्वे इव्यो पोताना त्रैकाक्षिक सपूर्ण  
पर्यायो सहित प्रयास विना यथावत् प्रतिबिंबित थाय ठे तेथी सर्वे  
जीवोनी साधक बाधक जाति आप जाणो ठो अर्थात् अमुक जीव  
आ समये सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष साधनमां वत्ते ठे  
के रत्न प्रयना प्रत्यनीक पणे जव ज्रमणना हेतु कर्म बंधनमां वत्ते  
ठे ए सर्वे वृत्तात हे करुणा निधि ! आप तो प्रत्यक्ष पणे जाणोठोज,  
पण जो आपना मुखारविंदथी हुं साधक जावमां वरुं तु एम

सांजलुं तो माहरं मन निरांत पामे, जव त्रमणना जयनो क्लेश शमे-  
दूर थाय ॥ ४ ॥

तीन काल जाणंग जणी, शुं कहिये वारंवार ॥ जि० ॥  
पूर्णानंदी प्रचुतणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥  
श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः—त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष पणे  
समकाले जाणवा देखवावाला प्रचु प्रत्ये वारवार शुं कहूं ? मने तो  
हे प्रचु ! स्वयंभूरमण समुद्रनी पेठे अखूट आनंद रसथी नरपूर  
आपनाज पदनुं ध्यान—आपना पदमां एकाग्रचित्त—तद्धीनता तेज  
जव समुद्रथी तरवामां उत्कृष्ट आधार जूत ठे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥  
पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी कीध प्रमाण ॥ जि० ॥  
श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री केवली जगवंत एम  
प्ररूपे ठे के योग्य कारणना योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके अर्थात्  
कार्यना स्वरूपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अजिखाषी कर्ता, उपा-  
दान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी शके. उपादान—जे  
पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा तेज संपूर्ण कार्य रूप थाय—कार्य  
सिद्धिए जेनी ह्याति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं जेम घटनु  
उपादन कारण माटी तथा पटनुं उपादान कारण रु अथवा सूतर,  
कारण के माटीनो पिंड थाय, पिंडथी स्थास कुसळादि पर्यायो थइ  
माटीज संपूर्ण घट रूप थाय, संपूर्ण घट थये पण माटीनी ह्याती ठे  
माटे माटी घटनुं उपादान कारण समजवुं माटीथीज घट उत्पन्न  
थइ शके पण अन्य वस्तुमांथी घट थइ शके नहि. उक्तं—“ यदात्मकं

कार्यं दृश्यते तदिह तद् द्रव्य कारणं उपादान कारणं च या  
तंतवः पटस्य इति”

निमित्त—जे उपादान कारणथी जिन्न होय ठे पण ते विना  
कार्यं सिद्ध थइ शकतु नथी कार्यं सिद्ध करवामां जेनी खास जरूर  
ठे ते निमित्त कारण ठे ते निमित्त कारण पद, कर्त्तानि आधिन वत्तें  
ठे जेम घटनु उपादान कारण माटी ठे थने माटीथी दड चक्र  
थीवर आदि चीघ्न ठे तो पण कुंजारने घट सिद्ध करवामां दंरु  
चक्रादिनी श्वश्व जरूर ठे, ते विना घट वनावी शके नहि, तेथी  
दड चक्रादि घटनां निमित्त कारण जाणवां पण ते दंरु चक्रादिने  
कुंजार ज्यारे माटीने घट रूप करवामां प्रवर्त्तवि ( उपयोगमा खे )  
त्यारेज तेउं ( दंरु चक्रादि ) निमित्त कारण कहेवाय पण कुंजार  
घट कार्यं करवामा दंरु चक्रादिने वापरतो न होय तो ते कारण  
कहेवाय नहि कार्यं करवा मांडता पहेला तथा कार्यं सिद्ध थइ गया  
पठी ते ददादिमां कारण पद नथी कारण के कार्यं कारण एक  
समये ठे पण जे कार्यान्तर तथा प्रथम अप्रयुक्त काखे दंरुादिकने  
निमित्त कारण कहे ठे ते मात्र नैगम नयनो मत जाणवो एम कार्यना  
स्वरूपनो जाणनार कार्यनो अजिखायी कर्त्ता साधा उपादान तथा  
निमित्तना योगे कार्यं सिद्धि पामे पण कारण वगर कार्यं सिद्धिनो  
आकाश पुष्पवत् अजाब जाणवो तेथी हे प्रचु । ज्ञान पूर्वक निर्धार  
करता माहरा परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुज  
शरण्य अगीकार करुं लु निमित्त कारणना वे जेद ठे ( १ ) पुष्ट-  
निमित्त ( २ ) अपुष्ट निमित्त “ कार्यस्य आसन्न निमित्तं  
इति तदेव पुष्टं ” “ दूर तरं कारण नैमित्तिक तत् अपुष्टं ”  
अर्थात् साध्य भर्म जेमां प्रगट—विद्यमान होय तथा जेमां कदापि

कार्यनो ध्वंसक जाव न होय ते पुष्ट निमित्त जाणवुं. जेम तीर्थंकर जगवंतमा परमात्म पद प्रगट-विद्यमान ठे तथा परमात्म पदना घातक जावनो जेमां सर्वथा अजाव ठे माटे तीर्थंकर जगवंत परमात्म पद साधवामां पुष्ट निमित्त ठे एम जाणवुं (पुष्ट हेतु जिनें-जोयं मोक्ष सझाव साधने)

अपुष्ट निमित्त-जेमां साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्तानी प्रेरणाथी कारण थाय ठे, वली तेमा ध्वंसक जाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त ठे जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त ठे कारणके दडमां घट पणु विद्यमान नथी वली कुंजार ज्यारे घट करवामा प्रवर्त्तवे तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंजार घट ध्वंस करवामां वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनु अपुष्ट कारण जाणवुं माटे हे ऋषजानन जगवंत ! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त ठो माटे आपनीज सेवाथी मारी सिद्धि थशे एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं वुं ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥

त्यां लगे जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥

श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अज्ञानरूप अंधकारनो अत्यंत नाश करनार तथा सम्यक्-ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त हो-वाथी जगत्गुरु तथा जगत्देव हे ऋषजानन स्वामी ! ज्यांसुधी शु-द्धात्म तत्त्वरूप स्वाभाविक अखंड अखूट अनुत्तर संपदानी मने संपूर्णपणे सिद्धि प्राप्ति न थाय स्यांसुधी हे दीन दयाल ! आपना उच्य जाव रूप चरणयुग्मनुं निरंतर सेवन करुं एम जावना जावुं वुं ॥७॥

कारज पूर्ण कर्या विना; कारण केम मूकाय ॥ जि० ॥  
 कारज रुचि कारण तणा, सेवे शुद्ध उपाय ॥ जि० ॥  
 श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:—जेम समूझ पार पामवानो इच्छक पुरुष जो समूझ वच्चे वहा-  
 णनो त्याग करे तो समूझ पार जइ शके नहि अने वच्चे कूवी जाय-  
 माटे हे जगवत । परमात्म सिद्धिरूप माहरं कार्य ज्यांसुधि सिद्ध  
 थयु नथी त्यासुधि पुष्टालक्षण रूप आपना चरण गुग्मनी सेवना  
 केम ठेरुं ? कारणके कार्य सिद्धिनो रुचिवत पुरुष कार्य सिद्ध  
 यता सुधी शुद्ध कारणोने यथार्थ पणे सेवे—आदरे ए नीति ठे ॥७॥

ज्ञान चरणसंपूर्णता, अव्यावाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र  
 पद पामीये, श्री जिनराज पसाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थ—स्तवन कर्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे ठे के तरण तारण  
 सामान्य केवलीओमां राजा समान श्रीरूपज्ञानन तीर्थकरना चरण  
 पसाये सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता तथा पूर्ण  
 अव्यावाध पणु तथा अमायी, अलेशी, अफदी, अलोत्तीपणा आदि  
 सर्वे आत्म गुणनी संपूर्णता रूप देवमां चंद्रमा समान परमात्म  
 पदनी सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थश्ये, अनत काल सुधि सहज  
 अखरु परमानंद विलासने पामीए. ॥ ९ ॥ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अष्टम श्री अनंतवीर्य जिन स्तवनम् ॥

चरणालो चामुडा रण चडे ॥ ए देशी ॥

॥ अनंत वीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंतरे ॥

॥ निज आत्म ज्ञावे परिणम्यो, गुण वृत्ति वर्तनावंतरे ॥

॥ मन मोह्युं अम्हारुं प्रभु गुणे ॥ १ ॥

अर्थ—सामान्य केवलीउमां राजा समान श्री अनंतवीर्य जगवंत । आपनुं “वीर्य” ज्ञानदर्शनादि सर्वे गुणोने वर्त्तवामां आधारभूत आत्मवीर्य ते “शुचि” पर परिणामिकताथी सर्वथा रहित अत्यंत निर्मल तथा “परम” जगत्वासी कोष्पण जीवोमां एवु आत्मवीर्य नथी तेथी सर्वोत्कृष्ट तथा “अनंत” ज्ञानादि अनंत गुणोमांथी कोष्पण गुणने वर्त्तवामां जरापण स्वलना (व्याघात) न पामे तथा कोष्पण काले हीण हीण न थाय तेथी अनंत ठे

एवुं श्रीअनंतवीर्य जगवंतनुं परम पवित्र परमोत्कृष्ट अनंत आत्मवीर्य तेफक्त ज्ञान दर्शनादि पोतानाज अनंत गुणने परिणमवामा निप्रयासपणे सहायरूप सदा परिणमे ठे एम श्री जिनेश्वरना, परजावरूप मलिनताथी सर्वथा रहित परम पवित्र ज्ञानादि अनंत गुणजोश्तेमां माहरुं मन मोह्युं—रत थयुं—लीन थयुं—गुणानुरागी थयु. ॥ १ ॥

॥ यद्यपि जीवं सद्दु सदा, वीर्य गुण सत्तावंतरे ॥ पण

कर्म आवृत्त चल तथा, बाल बाधक ज्ञाव लहंतरे ॥

॥ मन ० ॥ २ ॥

अर्थः—वीर्य ए जीवनो मूल गुण ठे तेथी सर्वे जीवो त्रणे काले वीर्य गुणनो सत्ता सहित ठे एटले कोष्पण जीव कोष्पण काले वीर्य वगरनो नथी, तथापि ससारी जीवोनु वीर्य अनादिथी कर्म पटल

बडे आवृत्त होवाथी आत्मगुणो सपूर्ण शुरू केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात् चारित्रादिरूप परिणमि शकता नथी अनेनेथी पोतानी अनत अव्याबाध आत्मोय सहज समाधिथी वियोगी रहे ठे. तथा "बल" अर्थात् ज्ञानादि आत्म परिणतिमां निश्चल-स्थिर नहि रहेतां राग द्वेष वशे अनेक पुद्गल-पर परिणतिमां चक्षायमान थइरहु ठे, पर कार्य-मां रोकाइ रह्युं ठे जेम कोइ पुरुष परकार्यमां पोतानी शक्ति रोके तो ते स्वकार्य साधी शके नहि तेमज ते वीर्य " बाल " हिताहितना ज्ञानथी रहित होवाथी " बाधक " अर्थात् पोताने अहितकारी पणे परिणमे ठे कारण के बाल बाधक वीर्य बडे जगत् जीवो अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप परिणमी अनेक प्रकारना कर्मों बांधि पोताने अत्यंत अहितकारी-डु ख समूह रूप जवोपाधि व्हेरी ले ठे पण जो पोताना वीर्य गुणने मात्र सम्यक् ज्ञानादि आत्म परिणाममांज वापरे तो अनंत सुखना स्वामी थाय ॥ २ ॥

अल्प वीर्य क्षयोपशम अठे, अविज्ञाग कर्णाणा रूपरे ॥

षड्गुण एम असंख्यथी, थाये योगस्थान स्वरूपरे ॥

॥ मन० ॥ ३ ॥

सुदम निगोदी जीवथी, जाव सन्नीवर पङ्कत्तरे ॥ योगनां

ठाण असंख्य ठे, तरतम मोदे पगयत्तरे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थ-सर्वे उद्मस्थ जीवोनु आत्म वीर्य क्षयोपशम जावे सदा होय पण सर्वथा आवृत्त थाय नहिं. जो सर्वथा आवृत्त होय तो चेतनतानो समूह अज्ञाव थाय तेथी उद्मस्थ जीवोनु पण वीर्य गुण क्षयोपशम जावे होयज अर्थात् उद्मस्थ जीवोने पण वीर्यांतरायनो सदा क्षयोपशम होय अने वीर्यांतरायना क्षयोपशम बडे उद्मस्थ जीवोने अल्पवीर्यनी प्रगटता होय ठे अने ते अल्पवीर्यनी प्रगटताना

कारणथी रत्नत्रयनी मलिनताने योगे पोताना कर्तृत्व स्वप्नावने लीधे कर्म ( क्रिया ) रंगे आत्म प्रदेश चलायमान करे ठे एटले “ आत्म प्रदेश परिस्पंदो योगः ” ए सूत्र प्रमाणे योगी बने ठे ‘यद्युक्तं- “उत्तमश्च वीर्य लेश्या संगे, अजिसंधिज मति अंगेरे ॥ सूक्ष्म शूल क्रियाने रंगे, योगी थयो उमंगेरे ॥” एम योग वशे कर्मनो ग्राहक थाय ठे ते योगनुं स्वरूप निचे प्रमाणे “ वीर्यांतराय द्वयोपशमोत्पन्नो मनो वचन काय वर्गणालंबनः कर्मादान हेतुचूत आत्मप्रदेश परिस्पंदो योगः ” वीर्यांतराय कर्मना द्वयोपशम वने उत्पन्न मन वचन अने काय वर्गणानुं अवलंबन करनार कर्म ग्रहण करवामां कारणचूत आत्म प्रदेशनुं परिस्पंद ( संचलन ) ते योग ठे. तिहां जघन्य वीर्यवालो जे जीवप्रदेश ते वली केवलीना तीक्ष्ण बुद्धि रूप शस्त्रे करी ठेदतां जे वीर्यांशनी वीजो विज्ञाग थई शके नहि ते वीर्य विज्ञाग ठे अने जावाणु पण तेनेज कहीये तेवा लोकाकाशथी असंख्यात गुणा जे वीर्याणू तेणे करी सहित जे जीवप्रदेश तेनो समुदाय एटले जीवप्रदेशनी श्रेणी ते प्रथम वर्गणा, तेथी एक वीर्य विज्ञागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजी वर्गणा, वे वीर्यविज्ञागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजी वर्गणा, एम एकेक वीर्यविज्ञागे अधिक वीर्यवाला प्रदेशनी श्रेणी ते घनीकृत लोकनी एक प्रदेशिक सूची श्रेणीने असंख्यातमे जागे जेटला आकाश प्रदेश होय तेटली वर्गणाए एक स्पर्धक थाय, ते प्रथम स्पर्धकनी उत्कृष्ट वीर्यांश वर्गणाथी एटले ठेह्नी वर्गणाथी एक वे अथवा सख्याते वीर्यविज्ञागे अधिका कोइ जीव प्रदेश नथी परंतु असख्य लोकाकाश प्रमाण वीर्यांशे अधिक जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा



जाणवी, वली तेथी एकेक वीर्यविजागे वधता वधता जीव प्रदेशनी वर्गणाए करी वीजो स्पर्धक थाय, तेथी वली असख्य लोकाकाश प्रदेश जाग प्रमाण वीर्यांशे अधिक वीर्यवंत जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा, एणी पेरे श्रेणी प्रदेश असख्येय जाग प्रमाण स्पर्धके पहेलुं जघन्य योगस्थानक थाय, तेथी अंगुलना असंख्यातमा जागना आकाश प्रदेश प्रमाण स्पर्धके वधतुं वीजुं योगस्थानक होय, तेथी वली तेटलेज स्पर्धके वधतु त्रीजुं योग स्थानक होय, एम असंख्याता योगस्थान थाय वीर्यांतरना क्षयोपशमना असख्य जेद ठे तेथी उपर प्रमाणे योगना पण असंख्याता जेद थाय अर्थात् सूक्ष्म निगोदीया लब्धिअपर्याप्ता जीवने जव प्रथम समये सहुथी जघन्य योग होय ठे अने सन्नि पंचेंद्रि पर्याप्ता मनुष्य सौथी उत्कृष्ट योग पामी शके ठे एम मोहनी तरतमता वशे ( वीर्यांतरायना क्षयोपशमना जेद वशे ) सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्ता जीवना जव प्रथम समयथी मांडी सन्नि पंचेंद्रिय मनुष्य सुधी असंख्यात योगस्थान जाणवां ॥ ३ ॥ ४ ॥

॥ संयमने योगे वीर्य ते, तुम्हें कीधो पमित दक्षरे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अजिसंधि रम्यो निज लक्षरे ॥ मन० ॥

॥ ५ ॥

अर्थ - ज्यासुधी सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थऽ नथी त्यासुधी ससारी जीव मिथ्यात अज्ञानवशे पौद्गलीक कार्यने पोतानु कार्य-मानी वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला आत्मवीर्यने असयममा अर्थात् स्वपर जीवनी वापरे ठे, पोताना वीर्यने बाल बाधक जावे प, वीर्य वडे कर्म-बंध करी जव त्रम धि आये सम्यक्दर्शन सम

वाल बाधक जावनो परिहार करी क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला वीर्यने संयम कार्यमां जोड्युं अर्थात् ज्ञानदर्शन चारित्र्यने निर्मलपणे परिणमवामां सहायकारी कर्युं मन वचन तथा काययोगने संयम कार्यमा जोड्या एम आत्मवीर्यने पंक्तिजावे तथा हितकारी जावे परिणमाव्यु. सच्चिदानंदमय शुद्धात्म ड्रव्यने पोतानुं शुद्ध साध्य जाणी तेना रसीआ-ते साधवाना उमंगी थइ अजिसंधिज वीर्यने ( जे मतिपूर्वक उपयुक्त वीर्य ते अजिसंधिज वीर्य) निज लक्ष्मां पटले अनंतसुख पिक जे शुद्धात्मपद ते साधवामां रमाव्युं-वापर्युं. एम अजिसंधिज वीर्यने शुद्ध कारक प्रवृत्तिमां जोमी अबंधक जावे परिणमाव्युं ॥ ५ ॥

॥ अजिसंधि अबंधक नीपने, अनजिसंधि अबंधक थायरे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वर्त्ततो, ते द्वायिक जाव समायरे ॥ मन० ॥ ६ ॥

अर्थ.-एम हे जगवंत ! आपनुं अजिसंधिज वीर्य अबंधक जावे वर्त्तवाथी अनजिसंधिज वीर्य पण अबंधक जावे परिणम्युं (मन चितना पूर्वक आहार विहारादिक जे करण व्यापार ते अजिसंधिज वीर्य कहीये अने जे मन चितना विना केवल वचन अने कायाना व्यापार ते अनजिसंधिज वीर्य कहीये) माटे जेनी मनोवृत्ति-अंतरंग उपयोग अबंधक जावमां वर्त्ते ठे तेनी वचन अने कायानी क्रिया पण अबंधक जावमांज गणाय, संवर हेतुज गणाय. “यद्युक्तं-जावास्त्रवाजावमयं प्रपन्नो, ड्रव्यास्त्रवेच्य. स्वत एव जिनः ज्ञानी सदा ज्ञान मयैक जावो, निरास्त्रवो ज्ञायक एक एव.” एम ड्रव्यसवर तथा जावसंवरना स्वामी थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल रत्नत्रयमां सहायचूत करी पोताना

निर्मल मुक्त्वा नत्वमा स्थिर तद्धीन पणे वर्त्ततां “ द्वायिक  
 चाव न्नाये” सुखान् परिणतिनो व्याघात करनार घातीया कर्मनो  
 ननुह इत्य कर्त्त अन्तज्ञान अनतदर्शन अनंतसुख अनतवीर्य रूप  
 पोतान्ति अन्तुम् अविनश्वर केवल लक्ष्मीने वर्या, तेरमा गुणस्थाने  
 विंगतिनात चग ॥ ६ ॥

१. चक्र न्याय सयोगता, तजी कीध अयोगी  
 चान्ते । अन्तरण वीर्य अनंतता, निजगुण सहकार  
 अन्तुम् ॥ ७ ॥

अन्तुम् चक्रमण न्याये अर्थात् चक्रने फेरववा माटे कुजार  
 अन्तुम् चक्र बाली बहु जोरथी एकदम चक्रने फेरवेठे तेथी ते घलना  
 जे जे चक्र काढो लीधा पठी पण फेटलीकवार सुधी चक्र फर्या करे  
 ते चक्र अनादि कालथी आत्मा अज्ञान वशे पर कार्यने पोतानुं कार्य  
 नन्ते नन्तव सहित योग क्रियामां प्रवृत्ति करे ठे तेथी केवल ज्ञान  
 अन्ते माग देन काढी लीधा पठी चक्र जेम फर्या करे ठे तेम तेरमा  
 गुणस्थाने पूर्व उदयवगे निर्ममक्षपणे योगक्रिया थाय ठे तेथी तेरमा  
 गुणस्थाने पण सयोगीपणुं ठे. ते चक्रमण न्याये रहेली सयोगता एटले  
 न्यायोगीपणानो पण हे जगवंत ! आप त्याग करी “ कीध अयोगी धामरे ”  
 अयोगी गुणस्थाने पधार्या-करणवीर्य एटले इंद्रियन्य वलवीर्यनो  
 त्याग करी अतींद्रिय अनत आत्मीक वीर्यनी प्रगटता करी जे वीर्य  
 नन्त ज्ञानादिगुण वर्षनामांज सहायकारी थाय पण अन्यजन्यनी  
 काननामां फदापिपाक्षे चलायमान थाय नहि. तेथी हे जगवंत ।  
 चार अकरण धीर्धना प्रजाव वने काम तथा  
 स्वतुपूति जस्य परमानदमां निरतर ।

॥ शुद्ध अचल निज वी

॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तेणे तुमहिज देव महंतरे

॥ मन० ॥ ७ ॥

अर्थः—सर्व विज्ञाव रूप संश्लेष रहित जे आत्म वीर्य ते शुरु ठे, तथा तेज वीर्य कामना रहित मात्र पोताना स्वगुण पर्यायमां वर्तवाथी परगुण पर्यायमां चलायमान थतुं नथी तेथी अचल ठे, एवा शुरु अने अचल वीर्यनी नैरूपाधिक अर्थात् स्वाभाविक अनंत शक्ति ठे अर्थात् ते वीर्य वने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन विगेरेनी वर्तना आय ठे माटे ज्यांसुधी वीर्यगुणमां अशुरुपणुं तथा चलपणुं ठे त्यांसुधी अल्पबल ठे, अनंत ज्ञानदर्शनरूप अनंत शक्ति होइ शके नहि. पण हे जगवंत ! ते शुरु अने अचल वीर्यनी स्वाभाविक अनंतशक्ति आपमां प्रगटपणे ठे एम में निसंवेह जाणुं कारण के एक समयमां सर्व पदार्थना त्रैकालिक पर्यायने प्रगटपणे जाणो देखो ठो तेथी हे जगवंत ! आपज देव ईजादिकने पूजवा लायक देवाधिदेव ठो, अनंत केवल लक्ष्मी वने सदा देदिप्यमान ठो ॥ ७ ॥

॥ तुज ज्ञाने चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समायरे ॥

॥ पंक्ति दायिकता पामशे, ए पूरण सिद्धि उपायरे

॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—हे जगवंत ! तमारा निरंतर शुरु परिणमता केवल ज्ञानादि गुणोने माहरी चेतना अनुगमे अर्थात् मारो चैतन्य उपयोग तदनुयायी वर्त्ते, केवलज्ञान केवलदर्शन रूप परिणमवानो रसीयो थाय तो माहरुं आत्मवीर्य “स्वरूप समायरे” राग डेषादि सर्व विज्ञाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुरायमान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायचूत पणे वर्त्ते एम माहरुं वीर्य पंडित जावे अबंधक पणे वर्त्ततां दायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे सिद्ध थवानो साचो उपाय ठे ॥ ८ ॥

३८० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आत्म सिद्धिरे ॥

॥ देवचञ्च पदसंपजे, वरपरमानद समृद्धिरे ॥ मन० ॥२०॥

अर्थ.—हे अनंत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमा सर्वेथी उत्कृष्ट अन तवीर्य आपनु होवार्थी आपज नायक ठो, वली जवसमुद्रमा सूवता जव्य प्राणीयोने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे वेसामी जवसमु-  
द्रमाथी तारवाने आपज समर्थ होवार्थी तारक ठो, वली मोहादि शत्रुठेथी रक्षा करवामा आपज समर्थ होवार्थी धणी ठो, तेथी हे जगवंत ! आपनेज सेववार्थी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां चंजमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा परमानदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे ॥ १० ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रज्ञ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कमखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे चिरकावनो मोह जीत्यो ॥ जाव स्याद्वादता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद जग वदीतो ॥ सू० ॥ २ ॥

अर्थ.—अनादिकालची लायेलो मोहरूप महान् शत्रु के जे दर्शन—  
मोहनीय प्रकृति वने आत्माना सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वने आत्माना क्रमा गुणनो, मान वने आत्माना मार्दव गुणनो, माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ वने आत्माना मुक्ति-  
निर्लोभ—निस्पृह गुणनो, एम अनेक गुणनो घात करी आत्माना शुद्ध सहज अपरिमित आत्मीय समाधिने नाश करी जवरूप जेखानामा त्रिलोकपूज्य आत्माने केद करी राखे ते.

(मोहनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत् शिरोमणी श्री सूर  
 अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्पराक्रमथी सम्यक् ज्ञान चारित्र रूप  
 त तीक्ष्ण मर्म जेदक शस्त्रो वडे विन्न जिन्न करी अल्प-  
 मां पराजय-समूल नाश कर्यो के जविष्यमा कोई पण काले  
 दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-सजीवन थाय नहि. अने  
 दि पंचास्तिनी शुद्ध स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण  
 दपणे शुद्ध निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला  
 त धर्मात्मक शुद्धात्म प्रव्यने कर्म मलयी रहित अत्यंत शुद्ध प्रगट  
 जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशंसनीय, आहादकारी, आदरणीय पर-  
 (मोह) पद निपजाव्युं-संप्राप्त कर्युं यद्युक्तं-शार्डूल विक्री-  
 म् ॥ “त्यक्त्वाऽशुद्धिं विधायि तत्किल परं ब्रह्मं समग्रं स्वयं;  
 व्रजे रति मेति यः सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंसं  
 त्य-नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छ्रल-त्रैतन्यामृतपूर-पूर्ण  
 मा शुद्धो जवन्मुच्यते” ॥ १ ॥

थम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण, प्रगट करि  
 णे अविरति पणाशी; शुद्ध चारित्रगत वीर्य एकत्वथी,  
 रिणति कद्रुषता सवि विणाशी ॥ ९ ॥ सू० ॥

अर्थः-हवे श्री सूरस्वामीए परमपूज्य परमात्म पद जे रीते सिद्ध  
 ते साधना क्रम सहित वखाणे ठे  
 प्रथम तो, जेना उदय वके आत्मा शुद्ध देवने अदेव, अदेवने  
 देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म,  
 ने अजीव, अजीवने जीव, मोहने अमोह, अमोहने मोह  
 ठे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रुतान जरे ठे तथा उत्कृष्ट सीतेर

१०२ विशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित.

कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिनो बध करे ठे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश करी चिंतामणि रत्न समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त करुं के जे उद्वेग, चक्रित्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षी पण अधिक दु.प्राप्य ठे उक्तंच—“इंदत्तं चक्रित्तं, सुरमणि कप्पहुमस्स कोणीणं । लाजो सुलहो उलहो, दसणो तीथ्यनाहस्स ॥”

तथा जे विना नवपूर्व सुधीनु ज्ञानपण अज्ञान कहेवाय ठे तथा जे विना दशमा पूर्वनु ज्ञान तो यतुज नथी, वली जे विना संसार परित्रमणनी सीमा आवती नथी, जे विना सम्यक्चारित्र-संयमनी प्राप्ति थई शकती नथी, जे विना उच्चचारित्र पालनार प्रथम गुणस्थाने वर्त्त ठे। माटे श्री जिनेश्वर, सर्व धर्मनुं मूल तथा मोहनु प्रथम पगथीठं कहे ठे यद्युक्त-श्रीमदजयदेव आचार्येण—“दंसण मूलो धम्मो, उवइठो जिणवरेहिं सीसाणं । तं सोउण सकन्ने, दंसण हीणो न वंदिबो ॥” लोकालोक प्रकाशक श्री जिनेश्वर देव पोताना शिष्यो

प्रत्ये सर्वे धर्मनु मूल सम्यक्दर्शनने बतावे ठे माटे दर्शन हीण पुरुषने वंदना करवी नहि उक्तंच—“सम्मत्त रयण ज्ञा, जाणंता बहु विहावि सत्ताइ । सुधाराहण रहिआ, जमंति तत्तेव तत्तेव ॥” सम्यक्दर्शनथी ब्रह्म पुरुष बहु प्रकारना शास्त्र जाणता ठतां पण शुद्ध आराधना रहित होवाथी संसार चक्रवालमा ज्या त्या ब्रमण कयां करे ठे कारणके सम्यक्दर्शन विना शुद्ध आराधनानी प्राप्ति होय नहि “शुद्ध क्रिया तो सपजे, पुग्गल आवर्त्तने अधरे” “जह मूलंमि विण्णे, इमस्स परिवार नत्ति परिवुद्धी । तह जिण दंसण ज्ञा, मूल विण्णा ए सिञ्जंति ॥”

जेम मूल विनष्ट वृक्ष शाखा परिशाखानी परिवृद्धि पामे नहि,  
तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन नष्ट थतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

“जिण पसुत्तं धम्मं, सहइमाणस्स होइ रयणमिणं ।  
सारं गुणं रयणाणय, सोवाणं पढम मोक्कस्स ॥”

गुण रत्नाकरमा सारचूत जे सम्यक्दर्शन ते श्री जिन प्ररूपित  
धर्मनी श्रद्धा राखनारने होय ठे अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त  
जिन प्ररूपित तत्त्वनी यथार्थ श्रद्धा ते सम्यक्दर्शन ठे जे माक्षनुप्रथम  
सोपान ( पगथीउं ) ठे.

“संजम रहिअं लिंगं, दंसण ञ्ठं न संजमं ञ्णियं ।  
आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ सव्वंपि ॥”

- साधुनो लिंग-वेश, संजम विना शोभा पामे नहि तथा फल पामे  
नहि अने सम्यक्दर्शन घट्टने संजम कहु नथी एम जिनेश्वरनी  
आणा रहित सर्वे धर्मक्रिया निरर्थक अर्थात् मोक्ष फल आपी शके नहि.

तथा योगनी वीशीमां कहुं ठे के “ एणण गुणेंहिं विहिणा,  
किरिया ससार वड्डणी ञ्णिया ” ज्ञान गुण वगरनी क्रिया  
ससार वधारनारी कही ठे कारणके सम्यक्ज्ञान वगर संवर थाय  
नहि, अने संवर विना सर्वे समये कर्मबंध थाय अने कर्मबंधथी सं-  
सार वृद्धि थाय ए स्पष्ट ठे तथा सम्यक्दर्शन रहितने व्रत पाक्षता  
वतां पण तत्त्वार्थसूत्रमां अवती कहे ठे “ निशट्यो व्रती ” मिथ्या-  
त्वशब्द, मायाशब्द, अने निदानशब्द रहित व्रतधारी होय ते व्रती-  
ठे. तथा वली श्रीमान् यशोविजयजी कहे ठे के “ रागमद्वार-जावी-  
जेरे समकीत जेहथी रुअडुं, ते जावनारे जावो मन करी परवडुं।  
जो समकीतरे ताजूं साजूं मूखरे, तो व्रत तरुरे दीये शिवपद अनु-



कूलरे । झूटक-अनुकूल मूल रसाल समकीत, तेह विण मति अंधरे ।  
जे करे किरिया गर्व जरिया, तेह जूगे धधरे ॥” माटे जो समकीत-  
मूल ताजुं होय तो व्रततरु शिव फल आपी शके माटे मोक्षफलना  
इच्छक पुरुषे सर्वथी पहेला समकीत रत्न प्राप्त करवानो उद्यम करवो  
ए झार ठे. माटे समकीत शी वस्तु ठे ते जाणवुं जोइये

“जिय अजिय पुसपावा-सव संवर बंध मुक्त निज्जरणा ।  
जेणीं सहहइ तयं, सम्मं खइगाइ बहु जेअं ॥”

जीवा जीवादिक नव तत्त्वनु स्वरूप श्री जिनेश्वरना आगम  
प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे यथार्थ जाणी सहइवु तथा हेय तत्त्वने  
वांगवानी रूची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रूची ते समकीत  
जाणवु तथा व तत्त्वार्थ सूत्रे-“ तत्त्वार्थं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्-”  
“ जीवाजीवास्त्वव बंध सवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्-” तेमां  
जीवतत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए चारतत्त्व  
उपादेय ठे तथा अजीव आस्त्वव वध ए त्रण तत्त्व आत्म गुणना  
रोषक होवापी हेय ठे माटे उपादेयने आदरवानी रूची तथा हेय  
तत्त्वने ओढवानी रूची होय तेनेज समकीती जाणवो पण मात्र  
जीव्हापे ओखवापी समकीत नथी. कारण के श्री जिनेश्वर समकी-  
तनां पांच लक्षण कहे ठे अने लक्षण विना लक्ष्यनो असदजाव  
होय ए न्याय ठे माटे “ उपशम, सवेग, निर्वेद, अनुकंपा अने  
आमिन्तिक्यता ” ए पाच लक्षणो जे जीवमा न होय ते जीवने  
समकीत ठे एम केम मनाय ?

• उपशम-क्रोधादि कपायोने उपशात करे.

• सवेग-सहज निरूपाधिक परमात्म पद प्रगट करवानी रूची

निर्वेद-संसारने तथा पौद्गलीक विषयोने हाखाहल विष समान जाणी तेथी निवृत्त थवानी श्ची..

अनुकंपा-स्वपर जीवना डव्य जाव प्राणं घांत करवानो परिणाम नहि.

आस्तिक्यता-अनंतज्ञानी अने वीतरागी आस श्री जिनेश्वरनुं एक पण वचन अन्यथा न होय एवी श्रद्धा.

एम सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रनुं मूल-कारण सम्यक्दर्शन ठे एम जाणी श्री सूर प्रजुजीए दर्शनमोहनीय प्रकृतिनो नाश करी अत्यंत शुद्ध निपुण द्वायिक समकीत प्रगट करा " अविरति पणाशी " पांच इंद्रिउं तथा मननो निग्रह नहि तथा पद्काय जीवना डव्य जाव प्राणनी हिंसानो त्याग नहि एवं वार प्रकारनी अविरति तेनो नाश कर्यो. पंच इंद्रिउंना त्रेवीश विषयोमां तथा मनना शुजाशुज संकटपोमां आत्म परिणामने विद्विस्त करवाथी तथा स्वपर जीवना डव्य जाव प्राणनी हिंसाथी ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध घाय ठे अने कर्मबंध वडे सहज आत्म समाधिनु. घात थड अत्यंत दुःखदायक आ संसार समुद्रमां परित्रमण करवुं पडे ठे. एम द्वायिकसमकीत वके जेणे श्रद्धा पूर्वक जाण्युं तेनो परिणाम अविरतिमां केम प्रवेश करे ? एम अविरतिनो नाश थवाथी परजाव राग द्वेष विजावादिकनो त्याग तथा ज्ञान दर्शन चारित्रादि स्वगुण-मा रमण रूप शुद्ध चारित्र्यथी पोताना आत्म वीर्यनी एकता करी अर्थात् सकल आत्म वीर्यने स्वजावाचरणमांज वर्त्तावी " परिणति कलुपता सवि विणाशी " आत्म परिणाममां कपायनो प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुपता परिणतिनो नाश कर्यो. ॥ २ ॥

वारि परजावनी कर्तृता मूलथी, आत्म परिणाम कर्तृत्व

शब्द विंगति विहरमान जिन स्तवनानि षाखावबोध सहित.

धारी । श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना  
प्रभु निवारी ॥ सूर० ॥ ३ ॥

अर्थ:-आत्म स्वरूपना अज्ञान बडे जीव, परजावनो कर्ता बने ठे  
अर्थात् अमुक पदार्थने में सुवर्ण कख्यो, अमुकने में कुवर्ण कयों,  
अमुकने में मनोइ रसवालो कयों, अमुकने में अमनोइ रसवालो  
कयों, अमुकने में सुगंधी कयों, अमुकने में दुर्गंधी कयों, अमुकने  
में मनोइ स्पर्शवालो तथा अमुकने में अमनोइ स्पर्शवालो कयों,  
तथा में सुदर असुंदर शब्दादिक कयों, पण रूप रस गंध स्पर्शादि  
जे पुद्गल ड्रव्यनो परिणाम तेने आत्मा कदापी काखे करी शके  
नहि ठता पर ड्रव्यना परिणामने अज्ञान बडे पोतानी क्रिया मानी  
छे ठे. तथा अमुक जीवने में सुखी कयों अमुकने में दु खी कयों  
एम परजीवना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी छे ठे मन वचन कायाना  
योगनी क्रियानुं ममत्व करी ते क्रियानो कर्ता पोताने माने ठे.  
तथा परजीवे मने सुखी वा दु खी कयों एम पोताना कर्मफलने  
परजीवनी क्रिया मानी छे ठे एवा मिथ्याजिमानबडे ज्ञानावरणादि  
कर्मनो बध करे ठे पण श्री सूरस्वामीए सन्यक्ज्ञानबके एवा मिथ्या-  
जिमाननो नाश करी पोतानी सहज आत्मोय ज्ञानादि क्रियामा  
पोतानुं कर्तापणुं आदर्युं, यद्युक्तं-“आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं,  
ज्ञानादन्यत् करोति किम ? परजावस्य कर्ताऽत्मा, मोहोयं  
व्यवहारिणाम् ॥” माटे वस्तुत परड्रव्यनो कोइपण कर्ता थइ शके  
नहि ए न्याय ठे-“यःपरिणमति स कर्ता, यःपरिणामो नवेत्  
तु तत्कर्म । या परिणतिः क्रिया सा, त्रयमपि जिह्नं न वस्तुतया”

अर्थ -जे परिणमे ते कर्ता ठे अने परिणाम ते तेनुं कर्म ठे अने  
परिणति ते तेनी क्रिया ठे एम ए त्रये जाव वस्तुत अजेद ठे.

तथापि—“आ संसारत एव धावति परं, कुर्वेऽह मित्युच्चकै-  
र्दुर्वारं न तु मोहिनामिह महाहंकार रूपं तमः । तद्भूतार्थ परि-  
ग्रहेण विद्वयं यद्येकवारं व्रजेत्, तत्किं ज्ञान धनस्य बन्धन  
महोज्ञयो जवेदात्मनः”

अर्थ.—आ जगत्मां मोही अज्ञानी जीवो जाणे ठे के “हं पर  
द्रव्यने करुं तुं” एवो पर द्रव्यना कर्तृत्वना अहंकाररूप अतिशय  
दुर्वार अज्ञान अंधकार अनादिकालथी चाट्यो आवे ठे पण जो  
तेनो शुरु निश्चय ज्ञानवडे एकवार पण समूल नाश करी नांखे तो  
शुरु केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पठीथी कदापि एवा अज्ञान  
अंधकारने न करे—कर्मबंध करे नहि. तथा “श्रेणी आरोहतां”  
कृपक श्रेणीए चढतां हास्य रति अरति शोक जय जुगुप्सा ए हा-  
स्यादि षट्क तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसकवेद, एम नव नोक-  
षायमांथी पोतानी आत्म परिणतिने वारी अकषाय जावमां—शुरु  
स्वरूपमां तल्लीन करी. ॥ ३ ॥

जेदज्ञाने यथा वस्तुता उलखी, द्रव्य पर्यायमें अइ  
अजेदी । जाव सविकल्पता वेदि केवल सकल, ज्ञान  
अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० ॥ ४ ॥

अर्थ:—“द्रव्यना सर्वे धर्मो तेना परमगुणना अनुयायीपणेजवर्त्ते”  
ए न्यायानुसारे आत्मानो परमगुण जे चेतनता तदनुयायीपणे वर्त्तता  
ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यादि परिणामोने पोताना परिणाम  
जाण्या सहहा अने एथी त्रिपरित, चेतनताने अनुयायीपणे नहि  
वर्त्तता, रुप रसगंध स्पर्शादि तथा चलन सहायादिक परिणामोने  
पर द्रव्यना परिणाम जाण्या सहहा. एम जेदविज्ञानना प्रवल  
पराक्रम वने पोताना गुण पर्याय तथा पर द्रव्यना गुण पर्यायने

१८७ विंशति विह्वरमान जिन स्तवनानि बाष्पावबोध सहित.

यथार्थं जिन्न जिन्न जाणी पर ड्रव्यना गुण पर्यायमांथी अहंमत्त्व  
जगावी राग द्वेषादि विजाव परिणामने दुःखदायक तथा कर्मबंधना  
हेतु जाणी, पोतानी आत्म जूमिमांथी तेनो तदन अजाव क-  
री, पोताना गुण पर्यायने पोताथी अजेद स्वरुप जाणी तेमाज  
अजेदपणे तद्धीन थया. सकल्प विकल्प रुप समल परिणामने  
तजी निर्विकल्प-अचल परिणामरुप यथाख्यात् चारित्र-छादशम  
गुणस्थान पामी अत्तर मुहूर्त्तमां घातीकर्मनो नाश करी श्री सूरस्वामी  
अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्यना स्वामी तथा  
चोका थया यद्युक्तं

मालिनी वंद-निज महिमरतानां जेदविज्ञान शक्त्या;  
जवति नियतमेषां, शुद्ध तत्त्वोपलम्भः । अचलित मखि-  
लान्य ड्रव्य दूर स्थितानां, जवति सति च तस्मिन्न ह्यः  
कर्म मोक्ष ॥

अर्थ.-जे पुरुष जेदविज्ञाननी शक्तिवडे आत्म स्वरुपनी महिमामां  
लीन थाय ठे तेने निश्चय शुद्ध तत्त्वनी प्राप्ति थाय ठे, अने शुद्ध  
तत्त्वनी प्राप्ति थवाथी सर्व परड्रव्य तथा परड्रव्यना परिणामथी दूर  
वर्ते ठे, अक्षय मोक्ष अवस्थाने प्राप्त थाय ठे. माटे ज्यांसुधी जेद  
विज्ञाननी प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी अवश्य सर्वे समय कर्मबंध थाय  
ठे अने जेदविज्ञानवने कर्मबंधथी मुक्त थवाय ठे

“जेद विज्ञान तं सिद्धा, सिद्धा ये किल केच न । तस्यैवा  
जावतो वक्ष, वक्ष ये किल केच न”

अर्थ -जे कोइ सिद्ध थया ते जेदविज्ञान वनेज सिद्ध थया ठे अने जे  
कर्मथी बंधाय ठे ते जेदविज्ञानना अजावथीज बंधाय ठे माटे जो  
कर्मबंधनो अजाव करवानी रूची होय तो जेदविज्ञान-सम्यक्  
ज्ञाननी प्राप्ति करवी ए सार ठे ॥ ४ ॥

वीर्यं क्षायिकवल्लं चपलता योगनी, रोधि चेतन कर्षो शुचि  
अलेशी; ज्ञाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, दय करी चार  
तनु कर्म शेषी ॥ सूर० ॥ ५ ॥

अर्थ—एम श्री सूरस्वामी अनंत चतुष्टयने प्राप्त करी तेरसा गुण-  
स्थाने तीर्थकर नामकर्मना उदये ज्ञव्य जीवोने आ दुःखदायक  
जव समुद्रमाथी तारनार स्याद्वाद नय युक्त जीवाजीवादि तत्त्वनो  
उपदेश आपी—पठी प्राप्त करेला क्षायिकवीर्यना बल बने, करण  
वीर्य बने थती चपलता दूर करी मेरू पर्वतनी पेठे निःप्रकंप—शैलेशी  
करण करी, मन वचन अने कायानी क्रियानो त्याग करी पोताना  
आत्म डव्यने पवित्र—पुद्गल परिणामना संश्लेष रहित—अलेशी  
करी परम अक्रिय अवस्था धारण करी, बाकी रहेला वेदनीय, नाम,  
गोत्र, अने आयु ए चार अघातीया कर्मनो सर्वथा नाश करी  
“पूर्व प्रयोगादसंगत्वाद्धन्धवेदा तथा गति परिणामाच्च”  
पूर्व प्रयोगना हेतुए असंग होवार्थी कर्मवधनो सर्वथा नाश होवार्थी  
तथा गति परिणामबने तुंबीना डष्टांते आठमी इशिप्रज्ञारा पृथ्वी  
अर्थात् सिद्ध अवस्थामां विराजमान थया ॥ ५ ॥

वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, योग तनु संग  
विनु जिन अरूपी । परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी,  
तत्त्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी ॥ सूर० ॥ ६ ॥

अर्थ—श्री सूरस्वामी सिद्ध अवस्थाने प्राप्त थया ते सिद्ध स्वरूप  
केवु ठे—पांच प्रकारना वर्ण, पांच प्रकारना रस, वे प्रकारनी गंध, आठ  
प्रकारना स्पर्श, ठ प्रकारनां संस्थान, त्रण प्रकारना योग, पांच प्रकारनां-  
शरीर तथा अंतरंग अने बाह्य ए वे प्रकारना परिग्रहथी रहित तथा  
राग द्वेषादि विज्ञावथी पण रहित होवार्थी सर्वे नये अरूपी अवस्थाने

१९० विशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित.

सप्राप्त ठे कारणके जीवनु शुद्ध स्वरुप वर्णादि तथा रागादि जावथी रहित के यद्युक्तं—“ तत्त्व ज्ञे जेवाणं, संसारत्याण होंति वस्साइ । ससार पमुक्काणं, एत्थिहु वस्सादञ्चो केइ ॥ जीवस्स एत्थि वस्सो, एवि गंधो एवि रसो एविय फासो । एवि ऋवं ए सररीर, एवि संताणं ए संहणणं ॥” पण संसार अवस्थामा जीव कर्मबंधयुक्त होवथी शरीरादिमा अहंमत्त्व करी वसे ठे तेथी व्यवहार नये रुपी कहेवाय ठे. जेम जे घडामां घृत जरेखु होय ते घोनो घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोता घनो काई घीनो नथी साटीनोज ठे यद्युक्तं—“ पक्कतापक्कतय, जे सुहुमा वायराय जे चेव । देहस्स जीव सणा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ ” पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, वादर, एकेन्द्रिय वेद्दन्द्रिय विगरे शरीरने जे जीव सजा कही ठे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी. कारण के चोदे जीवस्थान ते पुद्गल सगे ठे, जीवनो मूल स्वभाव नथी पण श्री सूरस्वामी तो कर्मवधथी—संसार अवस्थाथी सर्वथा मुक्त होवथी व्यवहार तथा निश्चय बने नये अरूपी अवस्था जोगवे ठे तथा “ परम आनद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी ” परम आनद—सर्वोत्कृष्ट आनद जेनु था त्रिलोकमा कोई उपमान नथी एवा परमानदने तथा जे सुखनो कोईकाले अत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुपचरित सुखने सप्राप्त—ते सुखने सदा निष्कंदक पण अनुभवे ठे—तेमाज निमग्न ठे तथा पोताना शुद्धात्म तत्त्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अर्थात् अखंड अनत ज्ञान स्वरुपमा सदा सादिअनत जागे अवस्थित थया ठे. ॥ ६ ॥

तादर्री गूरता धीरता तीटणता, देखी सेवक तणो चित्त

राच्यो । राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी अद्-  
च्युतपणे जीव माच्यो ॥ सूर० ॥ ७ ॥

अर्थः—उपसर्ग परिसहादि तथा अनेक प्रकारना शुचाशुच कर्म  
उदय आवता ठतां पण अत्यत धैर्य आदरी आत्म सत्ताचूमिमां  
निर्जय निष्कपपणे अकोल रही अतिशय शौर्य पूर्वक ज्ञान वाणना  
प्रहार वडे तथा अपरिमित आत्म वीर्यनी तीक्ष्णता वडे मोहादि कर्म  
शत्रुओने निर्वश कर्या ते आपनी शूरता, धीरता अने तीक्ष्णता  
जोई हुं सेवकनुं चित्त तेमां राच्युं—रत थयुं

तथा आपना सर्वोपरी कल्याणकारी अद्च्युत ज्ञानादि आत्मगुणो  
जोई अत्यत आश्चर्यता पामी सुप्रशस्त राग वडे आपना गुणमां  
माहरो आत्मा माच्यो, कारणके आलोक परलोकना विषयसुखनी  
आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्ठी तथा आगम, साधर्मीक  
उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो,  
ते जोके पुण्यबंधनो हेतु ठे तथापि ठता आत्मगुणने स्थिर थवानो  
तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु ठे. यद्युक्तं “ नाणाइसु गुणेषु,  
अरिहताइसु धम्म ऋवेषु । धम्मोवगरण साहम्मिएसु ध-  
म्मत्तं जोय गुण रागो ॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म संयोग  
कारणो गुणदो । पढमं कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ  
तं सव्वं ” ॥ ७ ॥

आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति  
निर्वाण थावे । देवचंइ शुद्ध परमात्म सेवन थकी, परम  
आत्मीक आनंद पावे ॥ सूर० ॥ ७ ॥

अर्थः—ज्ञानादि अतत आत्म गुणोने शुद्ध संपूर्णपणे प्रगट कर-  
वानी रुची थाय तोज ते पुरुष तत्त्व साधनानो रसीठ थइ संपूर्ण



सप्राप्त ठे कारणके जीवनु शुरू स्वरूप वर्णादि तथा रागादि जावथी रहित ठे यद्युक्तं—“ तत्त्व ज्वे जीवाणं, संसारत्याण हींति वणाइ । ससार पमुक्काणं, एण्थिहु वणादच्चो केइ ॥ जीवस्स एण्ठि वणा, एवि गधो एवि रसो एविय फासो । एवि ऋवं ए सरीरं, एवि संठाणं ए संहणणं ॥” पण ससार अवस्थामा जीव कर्मबंधयुक्त होवथी शरीरादिमा अहंमत्व करी वसे ठे तेथी व्यवहार नये रुपी कहेवाय ठे जेम जे घडामा घृत जरेखु होय ते घोनो घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोता घनो काई घोनो नथी साटीनोज ठे यद्युक्तं—“ पज्जतापज्जतय, जे सुहुमा वायराय जे चेव । देहस्स जीव सणा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ ” पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, वादर, एकेंद्रिय वेद्दिय विगेरे शरीरने जे जीव सज्ञा कही ठे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी कारण के चोदे जीवस्थान ते पुद्गल सगे ठे, जीवनो मूल स्वभाव नथी पण श्री सूरस्वामी तो कर्मबंधथी—संसार अवस्थायी सर्वथा मुक्त होवथी व्यवहार तथा निश्चय वने नये अरूपी अवस्था भोगवे ठे तथा “ परम आनद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्व तन्मय सदा चित्स्वरूपी ” परम आनद—सर्वोत्कृष्ट आनद जेनु आ त्रिलोकमां कोई उपमान नथी एवा परमानदने तथा जे सुखनो कोईकाले अत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुभवरित सुखने सप्राप्त—ते सुखने सदा निष्कंटक पण अनुभवे ठे—तेमाज निमग्न ठे तथा पोताना शुद्धात्म तत्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अर्थात् अखंड अनत ज्ञान स्वरूपमां सदा सादिअनंत जागे अवस्थित थया ठे. ॥ ६ ॥

ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक तणो चित्त

खेनार श्री विशाल देवनी तत्त्व समाधि सहज अर्थात् स्वभाविक सर्व पर द्रव्यनी अपेक्षा वगर मात्र पोतानाज द्रव्यथी उत्पन्न, तथा अकृत-पर द्रव्ये जेने उत्पन्न करी नथी एवी, तथा निरूपाधि अर्थात् पौद्गलीक विषयो जोगवतां अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक व्याधिर्त्त उपजे ठे, पर रमणरूप मिथ्या चारित्र होवाथी आत्मगुण घातक अनेक प्रकारनां दुष्ट कर्म बंधाय ठे पण श्री विशाल देवनी समाधिमां कोइपण प्रकारनी उपाधिनी सद्भाव तथा उपजवानो संजव नथी तेथी निरूपाधि ठे माटे हे गुणानुरागी जव्य जीवो ! निरुपचरित, निस्संग, निःप्रयासिक, निर्द्वंद्व, एकांतिक, आत्यंतिक अने स्वतंत्र समाधिमय श्री विशालस्वामीना अगिंहंत पदने आपणो आत्मा निर्मल करी जव ज्रमणथी मुक्त थवा निमित्ते वंदीये-तेमां लीन थइए, वली श्री विशाल स्वामी के जे ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीना स्वामी तथा जन्म जरा मरण तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा विगेरे कषाय, अज्ञान जलथी जरपूर आ अपार पारावार जयंकर जव समुद्रथी उद्गारी अचल अव्यावाध अरुज आत्मीय अनंत सुखना स्थानक मोक्ष महेलमां धरनार, सर्वे प्राणीर्त्तना अघातक, करुणा सागर, तथा अनंतगुणना पात्र महान् धर्मात्मा ठे तेमने स्तवो-स्तुति करो-तेमना गुणोत्तं गान, स्मरण, चिंतन, अनुभव करो. ॥ १ ॥

जव उपाधि गद टालवा, प्रजुजी ठो वैद्य अमोघरे ॥

रत्नत्रयी औषध करी, तुम्हें तार्या जविजन उधरे ॥

॥ तुम्हें ० ॥ अरि ० ॥ १ ॥

अर्थ:-महान् दुष्ट शत्रुरूप कर्मराजाना जवरूप कारागृहमा वसतां अज्ञान कषाय अने मिथ्यात्वरूप मिथ्याआहार विहारना सेवनथी, आत्म द्रव्यना ज्ञानदर्शनादि परिणामो दूषित थवाथी

१६२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

आत्मतत्त्वनी सिद्धि-निर्वाण पद पामे. देवचंद्र मुनि कहे ठे के गुरु  
परमात्मपदना सेवन थकी अत्यंत उत्कृष्ट सहज अनुपचरित अव्याबाध  
आत्मीक परमानंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ दशम श्री विशालजिन स्तवनम् ॥

॥ प्राणी वाणी जिन तणी ॥ ए देशी ॥

देव विशाल जिणंदनी, तमे ध्यावो तत्त्व समाधि रे  
चिदानंद रस अनुभवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥

॥ स० ॥ अरिहंत पद वंदीये गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत  
महंत स्तवो जवतारणो जगवंत रे ॥ ए आकणी ॥

अर्थ-साधु, आचार्य, गणधरो विगेरेमा प्रधान शिरोमणि अनंत  
दूषण रहित तथा अनंत आत्मीय गुणवडे देदिप्यमान महाविदे-  
हमा विचरता श्री विशाल स्वामीए पोताना आत्म तत्त्वने एवंजुत  
नये सिद्ध-प्रगट करी जे शुद्धात्म तत्त्व जन्य समाधि-निवृत्ति  
प्राप्त करी ठे ते अद्भुतिय अनुपम समाधिने हे जव्यात्माथ्यो । तमे  
एकाय चित्ते ध्यावो-राग द्वेषादि सकल विजावथी आत्म परिणामने  
वारी नदनुगत करो “चिदानंद रस अनुभवी” केवल ज्ञान  
वडे त्रैकालिक पर्यायो सहित सर्व ड्रव्यना युगपत् प्रत्यक्ष ज्ञाता  
होवाथ्यो पोताना आत्म ड्रव्यने सर्वदा अखरु अव्याबाध ज्ञानदर्श-  
नादि गुणे सदा परिपूर्ण, कोइपण ड्रव्य जेने कोइपण काले बाधा  
करी शके नहि माटे अबाधित जुए ठे, तेथी तज्जन्य निर्जयता-नि-  
गकुलता स्वाधीनतामय ज्ञानानंद रसना अनुभवी-आस्वादन चोग

आ जयंकर जवसमुद्धयी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न  
थाय—सदा शाश्वत रहेनार एवुं शिवनगरनुं निष्कंटक राज्य पामी  
एकांतिक शाश्वत सहज परमानंदना स्वामी थइए ॥ ३ ॥

जव अटवी अति गहनथी, पारग प्रचुजी सठवाहरे ॥  
शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग क्षेमंकर नाहरे ॥ योग० ॥  
॥ अरि० ॥ ४ ॥

अर्थः—आ जवरूप अटवी—जंगल के जेमां अमारो आक्रंद  
परिताप जोइ करुणा रसवने जेनु हृदय जिजे तथा अमारी दया  
करे एवा सदगुरुरूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य ठे  
तेथी निर्जन, तथा जेथी पारंगत थवानो साचो—सुगम मार्ग  
पामवो अतिशय मुश्केल होवाथी अत्यंत गहन—घोर, तथा  
जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि अमूल्य आत्म संपदाने लुंटी लेवावाला  
तीव्र अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वभावना धारक कुगुरु रूप लुंटायाओ  
वसे ठे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि आत्मप्राणनो घात करनार  
क्रोध मान माया लोभ विगेरे निर्दय श्वापदो वसे ठे एवा घोर जंग-  
लमां जूलो पकेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना वियोग  
वडे दयामणी अवस्थामां जय, त्रास, रोग, शोक, वियोग, तृष्णा,  
आताप विगेरे परितापो सहन करूं तुं, शांतिप्रद संवर रूप जलना  
अभाव वने अत्यंत तृष्णा क्लेश सहं हुं तेथी ( जवाटवीथी ) पारं-  
गत थइ आत्म लक्ष्मी वने परिपूर्ण शिवनगरे दोरी लइ जनार  
आपज समर्थ सार्थवाह ठो कारण के आपज शुरू—अविसंवाद  
मार्गना बताववावाला, कल्याणकारी सिद्धिपद योगना नाथ—माळीक-  
प्रणेता यथार्थपणे प्रगट करनार ठो. तथा हे नाथ ! आपना मन  
वचन अने काय ए त्रणे योग क्षेमंकर, कल्याणकारी, पाप क्लेशथी

शष्प विंशति विहरमान जिन स्तवनाति वाखावबोध सहित.

आत्माने तीक्ष्ण शल्य तुल्य असह्य दुःख क्लेश आपनारा क्रोध  
मान माया लोभ शोक वियोग मिथ्यात्व अज्ञान-विगेरे महान्  
दुर्निवार सन्निपातिक रोगो उपजे ठे जे रोगोना प्रजाव वडे बखी  
ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, जगदर, क्षय, कुष्ठ, प्रमेह, उप-  
दश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, विगेरे अनेक शारीरिक रोग जन्य  
वेदनाउं जोगववी पडे ठे पण हे विशाल प्रजुजी । आपेज सम्यक्  
दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रनी ऐक्यतारूप अमृत औपधीनु  
दान करी ते सर्वे सन्निपातिक रोगोथी जव्य जीवोना समूहने मुक्त  
करी अनत आत्म वीर्ये जरपूर तुष्ट पुष्ट करी आगामि कोइ पण  
काले ते रोग पुन उत्पन्न न थाय एवा अत्यंत निरोगी कर्या माटे  
हे प्रजुजी । आ जववनत्रयमा नि सदेहपणे अमोघ-साचा-सफल  
( जेनो उपाय निष्फल जाय नहि एवा ) वैद्य आपज ठो. ॥ १ ॥

जवसमुद्र जख तारवा, निर्यामक सम जिनराजरे ॥

चरण जहाजे पामीए, अक्षय शिवनगरंनु राजरे ॥

॥ अक्षय ० ॥ अरि ० ॥ ३ ॥

अर्थ.-राग रूप जखे परिपूर्ण दुस्तर आ जयानक जवसमुद्र  
के जेमा हुं अनादिकालथी निराधारपणे ज्या त्या ज्रमण करी  
दु सह जय क्लेश रोग शोक वियोग तृष्णा आक्रंद विगेरे अनेक  
दु खो सहन करु तु, अत्यंत सहज समाधिप्रद माहरी शुद्धात्म  
जूमिक्क शिवनगरथी अत्यंत दूरवर्ती-वियोगी थइ रह्यो तु ते जव  
समुद्रथी पारगत करी निर्विघ्नपणे शिवनगरे पहुँचामवा माटे हे  
विशालप्रजु जिनेश्वर । आप निर्यामक अर्थात् जहाजना सौथी अग्ने-  
सर चलावनार ठो माटे जो बीजा सर्वनी आकाक्षा ठोनी आपना  
स्वजावाचरणरूप पचमहावतरूप जहाजनो आश्रय खइए-तेमा  
अमारा आत्माने स्थापन करीए तो सहजे लीखामात्रमा नि प्रयासे

बचाववा माटे तथा ते मोहने नाश करवानो साचो उपाय वतावनार  
तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ  
शुचट ठो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज ठो

तथा अत्यंत दुःखदायक जवाटवीमांथी नोकळी अत्यंत  
कठ्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा मार्गें  
गमन करनार, क्रोध मान माथा लोच आदिने दूर करी सम परिणामे  
वर्तनार जे श्रमण समूह तेनी आप रक्षा करनार ठो, कारण के मोक्ष  
मार्गमां विघ्न करनार मिथ्यात्व कपाय आदि चोर लुटाराउने वरोवर  
उलखावनार तथा तेउ विघ्न नहि करी शके एवा उपायो वतावनार  
तथा आगेवान अश् पोताना अत्यंत बल वीर्य वडे तेउने निर्विघ्नपणे  
मोक्ष नगरे पहुँचाडनार होवाथी हे परमेश्वर । आपज अछीतिय  
गोप तथा ईश्वर ठो ॥ ५ ॥

जाव अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अ-  
हिंसक नीपन्यो, माहण जगदीश विशेषरे ॥ माहण० ॥

॥ अरि० ॥ ६ ॥

अर्थ!—हे जगदीश्वर । आपना सर्वे ज्ञानदर्शनादि जावो पूर्ण  
अहिंसकपणे वत्ते ठे तथा संसारो जीवोने पण स्वपर जीवना डव्य  
जाव प्राण न हणवा एवो उपदेश आपो ठो तथा कोशपण, जीवना  
डव्य जावप्राणनी हिंसाना कर्त्ता न थाय एवा केवलज्ञान केवलदर्शनादि  
अनंत धर्मो सपूर्ण शुद्ध प्रगट—व्यक्त थया ठे. तेथी आप अछीतिय  
माहण—अहिंसक पदवीना धारक ठो. ॥ ६ ॥

पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनिचंदरे ॥

मोचक सर्व विजावथी, झीपावे मोह अरींदरे ॥ झी० ॥

॥ अरि० ॥ ७ ॥

श्लोक विंशति विहरमान जिन स्तवनानि वाखावबोध सहित.

मुक्त करनार ठे अने ससारी जीवोए मन वचन काया स्त्री पुत्र धन कुटुंबादि अनेक योग कर्यां ते योग बहु वार विनाश थया-हेम कुशल न रह्या. पण प्रजुजी शुद्धात्म अनुभव योग करावी शाश्वती केवलज्ञानादि लक्ष्मीनो शिवयोग करावो ठो माटे योगहेम- कर ठो ॥ ४ ॥

रहक जिन ठ कायना, वली मोह निवारक स्वामी रे ॥  
श्रमण संघ रहक सदा, तेणे गोप ईश अजिरामरे ॥  
तेणे० अरि० ॥ ५ ॥

अर्थ-जे अज्ञान विषय अने कपायादि दोषोधी निवृत्त थया नथी एवा कुदेवादि "अहिंसक" पदने योग्य नथी कारण के तेउ सर्वे जीवस्थान तथा सर्वे जीवोना अव्यजाव प्राणने तथा अव्य जाव प्राणनी हिंसाना हेतुने तथा ते हेतुनेना प्रतिकारने यथार्थ जाणता नथी तथा विषय कपायादि सहित होवाथी प्रमाद अव-स्थामा अनेक जीवना अव्यजाव प्राणने हणी परने तथा पोताना आत्माने दुःखदायक थाय ठे पण हे विशालप्रजु! आप तो अज्ञान विषय अने कपायादि दोषोधी सर्वथा निवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अणुकाय, तेज काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, तथा त्रसकाय ए ठ कायना जीवोना अव्यजाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता ठो तथा विषय कपायादि दोषोए रहित होवाथी निरतर अप्रमाद अवस्थामा अव-स्थित रही कोशण जीवना अव्यजाव प्राणोने रच मात्र पण दुपवता नथी माटे सत्य न्याये आ त्रिजुवनमा "जीव रहकनु" विरुद आपनेज लायक ठे

तथा स्थितिवंध अने रसवधनो हेतु सर्वे कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोना अजीत शत्रु एवा मोहरूप महान् शत्रुथो ससारी जीवोने

॥ अथ एकादशम श्री वज्रंधर जिन स्तवन ॥

॥ नदी यमुना के तीर ॥ ए देशी ॥

विहरमान जगवान सुणो मुज विनती, जगतारक जग-  
नाथ अगे त्रिजुवन पति: जासक लोकालोक तिणे जाणो  
वती, तो पण वीतक वात कहुं तुज प्रति ॥ १ ॥

अर्थ:-महा विदेहमां विचरता, जव्यसमुहने जवाब्धिथी उद्धार.  
नार, सर्वे प्राणीओना हितचितक तथा रक्षा करनार, त्रिलोक पूज्य,  
त्रिलोक स्वामी, हे श्री वज्रंधर जगवंत! आपने जीवाजीवादिक कोई  
पण पदार्थ उपर रचमात्र पण राग, द्वेष, मोह वा ममत्व परिणाम नथी,  
तेथी कोईपण ड्रव्य आपना सहजे परिणमता ज्ञान प्रकाशने व्याघात  
करी शके तेम नथी, तेथी आप कोईपण ड्रव्य, कोईपण क्षेत्र, कोई  
पण काल वा कोईपण जावमां स्वलना नहि पामतां स्वक्षेत्रे स्थिर  
रही सकल लोकालोकना त्रैकालिक जावने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष  
समकाले जाणो गो. यद्युक्तं-महा जाण्ये, "सर्वं ड्रव्य गतान् सर्वा-  
नपि पर्यायान् केवलंज्ञानं जानाति" तथा तत्त्वार्थ सूत्रे,-"सर्व  
ड्रव्य पर्यायेषु केवलस्य " तोपण हुं मोहवशे अजाण, होवाथी  
अविवेकी तथा अधीर थई में चार गतिरूप घोर जवाटवीमां जमतां  
जे जे डुराचरण तथा दु:ख क्लेशादि सेव्या ते सर्वे आपने अशरण  
शरण विलोकी आप प्रति सनमृता निवेदन करहुं ते कर्णणा पूर्वक  
सांजलशो, लक्ष्मा लेशो. ॥ १ ॥

हुं स्वरूप निज ठोनी रम्यो पर पुद्गलें, ऊँल्यो ऊँलट  
आणी विषय तृण्णा जले; आस्रव बंध विजाव करुं रुचि  
आपणी, नूँल्यो मिथ्यावाम दोष द्यु परजणी ॥ २ ॥



१९८ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि धालावबोध सहित.

अर्थ—सत्तागते रहेला अनंत आत्मधर्मोने सपूर्ण शुद्ध प्रगट करवामां अर्थात् आ ससार समुद्रथी पारंगत थइ मोक्ष अवस्था प्राप्त करवामा हे विशालप्रज्नु अरिहंत ! आप पुष्टकारण—अनंतर कारण ठो उक्तंच—सिद्धसेन पूज्यै “ पुष्ट हेतुर्जिनेजोयं मोक्ष सद्भाव साधने ” तेथी सर्वे मुनिउं—ज्ञानीउंमां चद्रमा समान प्रधान लोकालोफना ज्ञायक आपज आ जयंकर नवसमुद्रमांथी तारनार ठो, तथा राग द्वेष मोह विगेरे सर्वे विजावथी मुक्त करवावाला तथा सर्वे शत्रुउंमां श्रेष्ठ अत्यंत बलवान् मोह शत्रुथी जीताववावाला ठो ॥ ७ ॥

कामकुंज सुरमणि परे, सहजे उपगारी थाय रे । देवचंद्र  
सुखकर प्रज्नु, गुण गेह अमोह अमायरे ॥ गुण० ॥  
॥ अरि० ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम कामकुंज तथा चिंतामणी रत्न, विनास्वार्थे अन्य जीवोने वाठित फलना दातार थाय ठे, तेमज हे प्रज्नु ! आपपण संसार जन्य सकल क्लेशथी नव्य जीवोने मुक्त करवामां विनास्वार्थे सहजे मददकारी थाउं ठो ए आपनी परम सज्जनता सुचवे ठे, देवचंद्रमुनि कहे ठे के हे प्रज्नु ! आप नि प्रयासिक अने निरुपचरित सुखना करवावाला तथा ज्ञानादि अनंत गुणना गेह—निधान ठो, तथा परिवार सहित मोहराजानो समूल ध्वंस करी नांख्यो ठे तेथी अमोही, तथा अमाय कहेता कपट रहित शुद्ध स्वरुपना प्रकाशक ठो. ॥ ८ ॥ ॥ सपूर्ण ॥

सुखथी परोक्ष-विपरीत जे विषय जोग वास्तविक रीते दुःख ठे तेने सुख मानी सेवे ठे तथा जे जलना प्रवाह तथा विजलीना चमत्कारनी पेठे क्षणीक ठे तेथी अवश्य जेनो वियोग थवानो ठे एवा महान् शत्रुरूप पुद्गल विषयोनी तृष्णारूप जलमां हुं सदा हर्ष पूर्वक क्रिणा-करतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरूपने चूली शुद्धात्म स्वरूपथी परा-ङ्गमुख थई अत्यंत दुःखदायक जवसमुद्रमां त्रमण करावनार ज्ञाना-वर्णीयादि कर्मना आस्रव ( पांच प्रकारना मिथ्यात्व, वार प्रकारनी अविस्ती, पचीस कपाय तथा पंदर योग ) तथा प्रकृति, स्थिती, अनुज्ञाग अने प्रदेशबंधना हेतु राग द्वेष मोहादि विज्ञाव तरफ में रुचि करी तथा मिथ्यावासमा अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने वसतां मिथ्यात्वना आवेशमा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय आत्म स्वरूपने चूली अनेक प्रकारनां कर्म वांधी तेना दुष्ट फलनो जागी थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहरा पूर्वकृत कर्मनो दोष न विचार्यो, अने “सधे पुत्र कयाणं, कम्माणं पावए फल विवागं । अवरारहेसु गुणेषु अ, निमित्त मित्तं परो होइ ” आ अमूढ्य जिनवचननु विस्मरण करी अमुके मने क्रोध उपजाव्यो, मानमा पाड्यो, माया तथा लोभमां प्रवृत्त कर्यो तथा शोक, जय, अरति, जुगुप्सा विगेरे कषायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो. आन जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लाकमीने करडवा तथा जसवा मांके ठे तेम में पण मारा पूर्वकृत दुष्ट कर्म तरफ लक्ष नहि देतां निमित्तमात्र जे परडव्य तेने दोष दीधो अने हाल पण तेमज वचुंठु “ जो कत्ता सो ज्ञोत्ता, ” एवा जगजाहेर तथा सर्वमान्य जिनेश्वरना वचननो निरादर कर्यो, ॥ ३ ॥

अवगुण ढाकण काज करुं जिन मत क्रिया, न तजुं अव-

अर्थ - अचल, अबाधित, निरुपाधि, स्वतत्र अने सहज परमानन्द-मय मारा आत्मस्वरूपने अनादि अज्ञानवशे नहि जाणता सहज आत्मीय परमानन्दनो वियोगी रही मारा आत्म द्रव्यथी पर, द्वाण-जगूर, तथा अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेमा सदा आसक्त-लीन रह्यो तथा जे पौद्गलोक विषयो-शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्-“ जुंजंता महुरा विवाग विरसा, किवाग तुद्धा इमे । कञ्चक्रंमु अण्णं व डःख जणया, दाविति बुद्धिं सुहे ॥ मज्जणहे मय तिण्णिद्वय सययं, मित्राजिसंधिप्पया । जुत्ता दिति कुजम्म जोणि गहणं, जोगा महा वेरिणो ” अज्ञानवशे जोगवता मधुर-प्रिय लागे ठे पण विपाक काले किपाकफलनी पेठे विरस, प्राणघातक ठे, तथा जेम खसने खणता शांति यती नथी पण उलटी चेल वधे ठे, तेम विषयो जोग-वता शांति-तृप्ति यती नथी पण उलटी तृष्णा वधे ठे तेथी परिणामे डु खवर्धक ठे, तथा ते विषयोमा लीन यतां मृगतृष्णानी पेठे निरंतर डुष्ट अतिप्रायो उपजे ठे तथा ते जोगव्याथी अनेक प्रकारे कर्मवध यवाथी नरकादि डु खदायक कुगति, कुयोनिनी प्राप्ति थाय ठे तथा गाथा-विषय रसासव मत्तो, जुत्ताजुत्तं न जाणई जीवो ॥ ऊरइ कसुण पत्ता, पत्तो नरयं महाघोर ॥ जह निव डुम्म पत्तो, कीमो कमुअंपि मज्जहे महुरं । तह सिद्धि सुह पशुका, ससार डुह सुह त्रिति ॥ ” विषय रस रूप मदिगमा मदोन्मत्त यता योग्य अयोग्यनु-हेयादेयनु ज्ञान नष्ट थाय ठे अने तेथी ज्यारे महा डु.खमय घोर जयकर नरकादि गतिनी प्राप्ति थाय ठे त्वारे अतिशय पश्चात्ताप जोगववो पके ठे जेम लीबडामा वसतो कीडो लीबडाना कटुक रसने पण मधुर मानी सेवे ठे, तेमज मिथ्यादृष्टी वने मोक्ष

ज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादेयनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा  
 आस्रव तत्त्व तथा बंध तत्त्व उपर त्याग जाव अने जोवना गुण जे  
 सवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व उपर उपादेय परिणाम ते जाव ठे. माटे  
 शुद्धात्म जाव सन्मुख अर्थात् आपणा आत्माने राग, द्वेष, मोहृथी  
 मात्र निवृत्त करवाना परिणाम सहित जो आवश्यकदि करणीउं  
 करवामा आवे तो ते अवश्य मोक्षनु कारण थाय. वली  
 “सम्मत्तेणं सुधो, सच्चसु किच्चो इवइ सिव हेऊ,  
 संवर बुद्धी तद् निज्जराय धम्म मूलं च सम्मत्तं ॥” तथा-  
 “मूलं दारं पइछाणं, आहारो जायणं निहि; इसुक्कं साविधम्म-  
 स्स, सम्मत्तं परिकित्तिं ॥” शुद्ध समकित तेज शिवनो हेतु,  
 तथा संवरनी वृद्धि करनार, निर्जरानुं कारण होवार्थी सर्वे धर्मनुं मूल,  
 तथा मोक्ष महेलमां प्रवेश करवा माटे द्वार समान, चारित्र महेलनी  
 पोठिका, तथा रत्नत्रयना जाजन रूप ठे. एहवां आपनां पवित्र  
 वचनो वांची सांजली में समकितने अमृत्य रत्न समान तो जाणुं  
 पण हे जगवंत ! आप तो “ नय जंग पमाणेहिं, जो अप्पा साय-  
 वाय जावेण, जाणइ मोक्क सरूवं, सम्मदिठिउ सो नेउ ”  
 नय जग पद्म प्रमाण सहित स्याद्वादने जीवादि तत्त्वने यथार्थ  
 जाणे ते तेमज श्रद्धा करे ठे तथा हेयने त्याग करवानी तथा लपा-  
 देय जावने आदरवानी रूचि होय तेने समकीती कहो ठो. पण ते  
 प्रमाणे तो में स्याद्वादने आत्म तत्त्वनु स्वरूप यथार्थ जाणु, सदहं  
 नहि तथा समकितना जे सरुसठ ( चार सदहणा, त्रण लिंग, दश  
 प्रकारे विनय, त्रण शुद्धि, पांच दूषणनो नाश, आठ प्रकारे प्रजाविक  
 पण, पांच नूषण, पांच लक्षण, ठ यतना, ठ आगार, ठ जावना तथा  
 समकितना ठ स्थानक ) वोल आपे कइया ठे ते जाणया शिवाय तथा

गुण चाल अनादिनी जे प्रिया; दृष्टि रागनो पोष तेह  
समकीत गणु, स्याद्वादनी रीत न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥

अर्थ.—अनादिथी अज्ञान वशे प्रिय थइ पकेली, कुदेव, कुगुरु  
अने कुधर्मने सन्मानवा आदरवा रूप मिथ्यात्व अज्ञाननी तथा  
क्रोध, मान, माया, लोच, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा  
तथा वेदराग विगेरेनी दुष्ट चाल प्रकृतियो तो त्याग कथ्यो नहि  
अने कदाच श्री जिनेश्वरे वतावेली सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण,  
वदन, स्तवन, पूजा विगेरे क्रियाउं, अपमान निंदा तथा डुराचरण  
ढाकवा माटे, आलोक परलोकना विषयज्ञोगनी आकाक्षा सहित,  
तथा माया मिथ्यात्व अने निदानशक्य सहित आदरी. “ वैराग्य  
रगो पर वंचनाय, धर्मोपदेशो जन रंजनाय ” एम विष गरल  
अने अन्योन्यानुष्ठान सेवता ससारीक डुरथी मारी निवृत्ति  
थइ नहि. कारण के “ निञ्जुन्नो तवोलो, पासेण विणा न होइ  
जह रंगो; तह दाण सील तव जावणाउं अहलाउं जाव  
विणा ” जेम चुना विना ताबूल, अने पास विना वस्त्र रंग पामे नहीं  
तथा जेम अक विना मींढा निष्फल थाय तेम शुद्धात्म जाव रहित  
दान, शील, तप अने जावना संसारथी मुक्त करी शके नहीं. जल  
विना जेम सरोवर, सुगंधी विना जेम कमल, चंद्रमा विना जेम  
रात्री, सूर्य विना जेम दिवस तथा जीव विना जेम शरीर शोभा  
पामतां नथी, तेम जाव वगर साध्य निरपेक्ष क्रियाउं शोभा पामती  
नथी पण जो ते आवश्यक आदि करणीउं जावपूर्वक करवामां  
आवे तो ते मोक्षनु कारण थाय जेम अक सहितनां मींढां दशगुणी  
संख्या वधारनार थाय ठे माटे जावनु स्वरूप जाणवु जोईए  
“ उवओगो जाव इति ” अर्थात् सूत्रनी साखे वीतरागनी आ-

विनिवृद्ध—“ बहु विह नय जंगं, बहु णिच्चं अणिच्चं । सद सदन-  
त्रिलप्यं, लप्यमेगं अणोगं ” तेमें एकांत—मिथ्यात्व वशे न जाण्या-  
एम मिथ्यात्व जावमां फली रह्यो अने तेथो इंद्रगणे वंदित, त्रिलोक  
पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेउने लौकीक रीते अर्थात् अज्ञान  
अने राग सहित, परजावना कर्ता हर्ता जाणी आलोक परलोक  
संबधी विषयोनी प्राप्ति अर्थे, तथा मान पूजा आदि अर्थे नमुं तुं-  
वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करुं तु पण तेथी जिनेश्वरे वतावेलो जे  
अत्यंत दुर्लज सिद्ध स्वजाव तेनी प्राप्ति केम चाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मजार के तारक जिनवरु, श्री वज्रधर अरिहंत  
अनंत गुणाकरु । ते निर्यामक श्रेष्ठ सही मुज तारशे,  
महा वैद्य गुणयोग रोग जव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थः—महाविदेह क्षेत्रमां विचरता आ चीम जवारणवमांथी जव्य  
समूहनो उद्धार करनार, सर्वे केवलीउमां इंद्र समान, शिरोमणी,  
ज्ञानादि अनंत गुणना आकर—निधान हे वज्रधर अरिहंत । आप,  
चरण जहाजने चलावनाराउमां अग्रेसर—प्रधान सर्वोत्तम निर्यामक  
होवाथी आ जयंकर जवाब्धिमांथी नि.संदेह अति त्वराए माहरो  
उद्धार करशो तथा महावैद्यरुप थइ माहरा आत्म परिणामेमां  
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रनो योग करी मिथ्या आचरण वडे उप-  
जेसा जवरोगनो वेगे समूख विनाश करशो एवी माहरा चित्तने उद  
प्रतिष्ठे ॥ ५ ॥

प्रभु मुख जव्य स्वजाव सुणुं जो माहरो, तो पामे प्रमोद  
एह चेतन खरो । थाये शिवपद आश राशि सुख चंदनी,  
सहज स्वतंत्र स्वरूप खाण आणंदनी ॥ ६ ॥

अर्थः—“ जवन व्यय विणु कार्य न निपजे हो, जिम

जे होवा जोइए तेनी मारामा प्रगटता थइ ठे के नहि, तेनो विचार कस्या विना, समकीतना लक्षणोनी प्राप्ति विना, मात्र दृष्टी-रागना पोपने अर्थात् नय, निक्षेप, पक्ष, प्रमाण वडे परीक्षा कर्या शिवाय कुलक्रमानुगत देव गुरू धर्मनी इव्यपरंपराए श्रद्धाने समकित गणी क्रियानुष्ठान सेव्यां पण निश्चय समकीत विना मने मोक्ष फलनी प्राप्ति थइ नहि ॥ ३ ॥

मन तनु चपल स्वप्नाव वचन एकातता, वस्तु अनंत स्वप्नाव न जासे जे ठता । जे लोकोत्तर देव नमुं लोकी-कथी, डुर्लभ सिद्ध स्वप्नाव प्रज्ञो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थ—जेम पुंगोना स्वरमा लीन थइ नाग पोताना मस्तकने पुगी प्रमाणे डोलावे ठे तेम हु पण पाच ईंद्रियोना विषयोमा लीन थइ माहरा आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमा फसायो “चलइ फदइ” तथा मिथ्यात्वना आवेशमा अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने सुरयतया वखाणता वाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा नहि राखवा रुम एकात वचन अर्थात् डुर्न यने ग्रहण कर्यो, ते प्रमाणे मे वस्तु स्वरूप सद्वहु तथा वीजाने पण तेमज एकाते उपदेश आप्यो “दोहिवि एयेहि एीथं सत्य मूलसु तहवि मिच्छतं, जस्स विसयप्पहाण, तणेणं अणुणणा निरवेक्कं” इति विठोपावउयके—पण अनंत धर्मात्मक वस्तु स्वरूपने में यथार्थ जाण्युं नहि “अजिलाप्ये ज्ञावेच्य अनजिलाप्या अनंत गुणा” एम अनंत गुण पर्यायनो जाजन ते इव्य-वस्तु ठे माटे दरेक वस्तुमा अनंत ज्ञाव ठता ठे—मा-

वलग्या जे प्रज्जु नाम धाम ते गुण तणा, धारो चेतन  
राम एह थिर वासना ॥ देवचंड जिनचंड हृदय स्थिर  
थापजो, जिन आणा युत ञक्ति शक्ति मुज आपजो ॥७॥

अर्थ.—हे जगवंत ! जे पुरुषो आपना स्मरण, कीर्तन, ञक्ति विगेरेमां  
सीन ठे तेज पुरुषो गुणना धाम कहेतां ञाजन ठे. माटे हे चेतनराम !  
निरतर प्रज्जुना स्मरणमां थिर वासकर, एक पण समय प्रज्जुपदने  
विसार नहि. देवचंड मुनि कहे ठे हे जिनेश्वर देव ! मने लब्धि  
वीर्यनुं दान करी आपनी आझा प्रमाणे आपनी ञक्ति करवानी मने  
शक्ति आपो कारण के आपनी आझाथी विपरीतपणे करेला सवें  
क्रिया अनुष्ठान निष्फल ठे “जो कोइ आणा रहिउं, पूआ पमुहं  
करेइ तिक्कालं । तस्सवि सबम सुहं, आणावज्जं अणुछाणं ॥”  
जे कोइ पुरुष आझा रहित पणे ञणे काल पूजा प्रमुख करणी करे  
तो पण आणा रहित होवाथी तेनुं सवें अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं  
“जहुत्तुस खंणण मय मंणणाइ ञणणाइ सुन्न रन्नंमि ॥ विह-  
लाइ तह जाणसु, आणा रहियं अणुछाणं” जेम तुस-कुस-  
कानु खांडवुं, मुडदाने शणगारवुं तथा सुना बगडामां विलाप करवो  
निष्फल ठे तेम जिन आझा वगरनुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं.  
“जह ञोयण मविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई;  
तह अविहिकउं धम्मो, देइ ञवं विहिकउं सुक्कं” जेम अवि-  
धिए करेलुं ञोजन विनाश करे तथा विधिए करेलु ञोजन जीवन.  
आपे तेमज अविधिए आदरेलो धर्म ञवन्नमण आपे अने विधिए  
आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे, माटे आपनी आझानुं ज्ञान तथा  
ते आझामां वसवा रूप सदाचरण ए वंनेनुं हे करुणा निधान ! मने  
दान आपो. ॥ ७ ॥ ॥ सपूर्ण ॥



दृशदेन घटत्व” तेमज जेमा जव्य अर्थात् पलटन स्वजाव नथी एटले जे जीवमा मिथ्यात्वथी पलटी समकीत जावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी तेने अजव्य कहीए तथा अविरतीथी पलटी विरती-जावे परिणमवानु सामर्थ्य नथी तथा प्रमाद जावथी पलटी अप्रमाद जावे पलटवानु सामर्थ्य नथी, तथा कपाय जावथी पलटी अकपाय (शम) जावे परिणमवानु सामर्थ्य नथी (एटले पूर्व अहितकारी) पर्यायनो व्यय, नवा प्रशस्त पर्यायनुं जवन करवानुं सामर्थ्य जेमां नथी तेनुं कार्य थाय नही, ए विगरे विजावथी पलटी स्वजाव रूपे परिणमवानु सामर्थ्य नथी एवा अजव्य जीवो अनन कालसुधी अनत उपाय करता ठता पण “कोटी जतन करी निगदिन धोवत उजरी न होवत कामर कारी” ए प्रमाणे आ ससार चक्रवाल-मार्थी मुक्त थई सिद्धि सुख पामी शके नहीं कारण तेथो व्रत, समिति, गुति आदि पालता ठता पण मिथ्यात्व, अज्ञान अने पराचरण (मिथ्या-चरण)नां सेवक ठे उक्तच “वद समिदी गुत्तीऊ, सील तवं जिण-वरेहि पसुत्तं, कुवंतोवि अजवो, अस्साणी मिठदिठीऊ” कारणके अजव्य जीवोनो स्वजावज एवो ठे के श्रुत अन्यास करे, ज्व्यथी पचमहाव्रत आदरे पण आत्मतत्त्वनी यथार्थ श्रद्धाविना कोई, पण काले प्रथम गुणस्थानने मूकी शके नहि माटे तेथो सिद्धिपद पाम-वाने योग्य नथी पण हे जिनेश्वर! आपनी आज्ञा प्रमाणे आ ससा-रथी निवृत्त थई मोक्ष स्वरूप साधवानी मने रुचि ठे, जवज्रमणथी ज्येजीत तु, तथा सत्य न्यायने स्विकारु तु, ए आदि केटलाक जाव-वडे “हु जव्य तु” एवुं अनुमान थायठे तो पण हे सर्वज्ञ देव! आपना मुखारविंदथी “तु जव्य तु” एवुं वचन साजलु, तो माहुरा जव्यत्वंनी मने सपूर्ण पणे प्रतीत थाय अने सहज स्वतंत्र सच्चिदा-नन्दमय अनंत सुख समूहरूप शिवपद प्राप्तिनो जरोसो थाय ॥ ६ ॥

समर्थ एवी तत्त्वोपदेशरूप निर्मल चांदनीने आ चूमंरुलमां फेलावनार हे जगत् चूडामणि चंद्रानन जिनेश्वर । अज्ञान तथा कषाय जन्य दुःखधी जयजीत थएलो हु जवजीरु आप प्रति विनंती करुं तुं ते कृपाकरी साजलो-श्रवधारो.

चरतक्षेत्र मानवपणोरे, लाध्योऽःसम काल ॥ जिन पूर्वधर  
विरहथीरे, डलहो साधन चालोरे ॥ चंद्रानन ० ॥ १ ॥

अर्थ:-मेरुपर्वत जेटला राइना ढगलामां पडी गयेलो सरसवनो दाणो मखी शकवो जेम अत्यंत मुश्केल ठे तेमज मनुष्य जव पण आ जवसमुद्रमां त्रमण करतां पामवो अत्यंत दुर्लज ठे तेम ठतां कदाच मनुष्य जवनी प्राप्ति थाय तो, आर्यक्षेत्र, लांबु आयुष्य, नीरोगता, उचकुल विगेरे उत्तरोत्तर अतिशय दुःप्राप्य ठे ठतां ते सर्वे सामग्रीठ कोईमाहारा महत् पूण्य प्रसादे आ दुःषमकालमां (पांचमा आरामां) हे चंद्रानन प्रभु । मने प्राप्त थइ पण केवलज्ञानी, चौद पूर्वधर, दश पूर्वधर, तथा प्रत्येक बुध के जेठ तत्त्वना यथार्थ ज्ञाता उपदेष्टा ठे, जेनां वचनो प्रमाण जूत ठे, निशंकपणे विश्वास पात्र ठे, जेना वचनानुसारे सर्वेनां वचनो परखी शकाय ठे, एवा गुण समुद्र पूज्य पुरुषोना वियोग वडे सहजानंदरूप मोक्षपद साधवानो साचो मार्ग अतिशय दुर्लज थइ पड्यो ठे- ॥ १ ॥

अव्य क्रिया रुचि जीवना रे, आव धर्म रुचि हीन ॥ उपदेशक  
पण तेहवारे, शुं करे जीव नवीनरे ॥ चंद्रानन ० ॥ २ ॥

अर्थ:-हे जठ्यो । अनादिकालधी आपणो आत्मा जे अज्ञान, मिथ्यात्व, अने कषाय वडे मखीन होवारी आ जयानक जवसमुद्रमां त्रमण करतां जन्म जरा मरण रोग-शोक वियोग ताडन तर्जन आदि अनेक प्रकारनां शारीरिक तेमज मानसिक दुःखो सहन करे ठे,

॥ अथ श्री द्वादश श्री चंजानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचादक्षा ए देशी ॥

चंजानन जिन साज्जलिये अरदासरे, मुज सेवक जणी, ठे  
प्रचुनो विश्वासरे चंजानन जिन ॥ १ ॥

अर्थ—हे जगवंत ! आप ङ्गी तेमज अरुपी, निकटवर्ती तेमज दूरवर्ती, सूर्य तेमज स्थूल, सर्वे पदार्थोंने तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक समयमा हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाची सर्वज्ञ, तथा अनंत आनदमा पोताना गुणपर्यायोमां निरंतर तक्षीन—स्थिर होवाची अन्य कोर्षण डव्य पर्यायमा आपनो राग द्वेषरूप परिणाम थतो नथी तेथी वीतराग ठे, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाची आपनी दिव्य वाणीमा प्रत्यक्ष परोक्षादि कोर्षण प्रमाणवके विसंवाद आवी शकतो नथी, कोर्षण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश मळतो नथी, माटे हे प्रचु ! आपज आ जीपण जवसमुद्रमाथी जव्य समूहने उद्धारवा समर्थ ठे पण आपथी विमुख बुध कपिष्ठादि अन्य तीर्थीओ केजे तेथोना आचरण तथा वाणीवके अज्ञान तथा राग द्वेषादि दूषणोयुक्त जरपूर कलंकित प्रतीत थाय ठे, जवसमुद्रमा निमग्न जणाय ठे, अने तेथी तेथोना वचनमा प्रत्यक्ष परोक्षादि प्रमाणवके अनेक दूषणो उद्दिगोचर थाय ठे, तेथो जवसमुद्रमाथी केम उद्दारी शके ? “जे नवि जव तर्या निर्गुणी तारशे किणपरे तेदरे” माटे पोते बूडनार तथा आश्रितने बूढावनार पत्थरनी नावनो केम विश्वास रखाय ? तेथी हे त्रिलोक पूज्य ! आ जवसमुद्रमाथी मुक्त थवा माटे हुं सेवकने आपनोज विश्वास—आधार ठे, माटे समतारुप अमृत समुद्रने वृद्धिंगत करनार, तथा जव्यरूप कुमुद समूहने विकश्वर करनार, तथा कयाय तापने समाववामा, आत्मवीर्यनी वृद्धि करवामां

गेड्या पण ते द्रव्यविग, समकित रहित तथा साध्य निरपेक्ष  
 होवाची सिद्धिना हेतु थइ शक्या नहि. जेम घटनो ईच्छक कोइ  
 कुंजार घट उत्पन्न करवानां साधनो जे दंरु चक्रादि तेनो रात दिवस  
 निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य जे घट ते सिद्ध करवा तरफ  
 जो लक्ष्मि आपे नहि अर्थात् माटीने चक्र उपर मूकी तेमांथी स्थास  
 कुसल बुझादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण काले घट सिद्ध  
 थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष्मि स्थापी स्थास  
 कुशल बुझादि पर्यायो उपजाववामां दंरु चक्रादिनो योग्य व्यापार  
 करे तो अवश्य घट सिद्ध करी शके अने त्यारेज तेनो दंरु चक्रा-  
 दिनो सर्वे व्यापार सफल कहेवाय—तेमज जवत्रमणथी उद्विग्न थएल  
 जव्य जीव शुद्धात्म जाव सिद्ध करवानी रूचि धरी ते तरफ पुरतो  
 लक्ष्मि स्थापी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम  
 समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं  
 प्रथम पगथीउं ठे “ जिन पप्सुत्तं धम्मं, सद्दहमाणस्स होइ रयण  
 मिण ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोक्कस्स ” पठी देश  
 विरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पठी अप्रमत्तादि गुण  
 स्थान प्राप्त थवानो योग्य ( आगम प्रणीत ) व्यवहार आदरे तो केवल-  
 ज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी थाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म  
 ( निर्वाण ) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पंचस्वाण  
 प्रतिक्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कव्याणकारी कहेवाय. पण हे  
 चंडानन प्रभु ! अनादि कालथी पुद्गल द्रव्यना गुण पर्यायोने  
 अनुभवता, तेमांज तल्लीन थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन  
 ज्ञान चारित्र रूप जावधर्मनी रूचि क्यांथी थाय ? जो कदाच एम  
 पोतानी मेळे थवी मुश्केल तो सद्गुरूना उपदेश वडे पण थइ शके  
 पण थ्या निकृष्ट पंचम आरामां जावधर्ममां स्थापन करनार परमो-

पोतानी अनत आनदमय दशार्थी दूरवर्ती थइ रखो ठे, तेथी अज्ञान मिथ्यात्व अने कपायादि दूषणोधी मुक्त करी, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय परम निर्मल शुद्ध सिद्ध पदमा विराजमान करवो अर्थात् पूर्ण शुद्धात्म जाव प्रगट करवो—प्राप्त करवो, एज आपणुं परम कर्त्तव्य ठे तथा एज आपणु सर्वोत्कृष्ट अनंत सुखप्रद अविनश्वर साध्य ठे. पण मोहनिय कर्मना प्रबल उदय वडे पोताना सर्वोत्कृष्ट साध्य साधवानो रुचिथी पराङ्मुखपणे धर्मनु मूल जे समकीत (सम्मत्तेणं सुधो, सच्चसु किञ्चो ह्वइ सिवहेउ, संवर वुह्ठी तइ निज्जरा य धम्म मूलं च सम्मत्तं) ते प्राप्त कर्या वगर पोताना दुष्कृतो ढाकवा माटे, अथवा मान पूजाने अर्थे, अथवा आ जव संबधी कामजोगना पदार्थो मेलववा माटे, अथवा देवा-दिक गतिना मनोहर विपुल जोगो प्राप्त थवा माटे घणा जीवो सामायिक, प्रतिक्रमण, पञ्चखाण, तथा समिति परिसहसहनादि अनेक अव्य क्रियाउं रुचि सहित आदरे ठे पण हे जगवत । ते सर्वे क्रियाउं शुद्ध साध्य निरपेक्ष अर्थात् परमार्थ विमुख होवाथी त्रिप, गरल, तथा अन्यानुष्ठान रूपे आसव हेतु थइ पडे ठे यद्युक्तं श्री आचारांग सूत्रे “जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा” माटे ते वासकनी क्रियावत् निर्वाण पद आपवाने असमर्थ ठे, उक्त च परमच्छिद्विश्रुतिदो जो कुणइ तव वयच धारेइ, त सव वास तव, वासवये विति सबएहू ॥ वयणियमाण धरंता, सीलाणि तहा तवं-च कुवंता । परमछ बाहिरा जे, निवाण तेष विति ॥ तथा उपदेश माळा-याम्—संसार सागरमिणं, परिज्जमंतेहि सव्व जीवेहिं । गहियाणि अ मुक्काणिय, अपांतसो दइ विगाइं—अर्थ—अरे आ संसार समु-द्रमा परिज्जमण करतां जीवोए अव्यलिंग अनतीवार ग्रहण कर्या

तथा उपदेश माहायाम्. "जह जह बहु सुअसमउं, सीस गण  
संपरिवुहोय; अविणीचिउं असमए, तह तह सिअंत परिणीउं."

आणा साध्य विना क्रियारे, लोके मान्यो रे धर्म । दर्शन  
ज्ञान चरित्तनोरे, मूल न जाण्यो मर्मरे ॥ चंद्रानन ० ॥ ५ ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्रनो मूल मर्म जाण्यो नहि अर्थात्  
सत्ताए अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र मय सिद्ध समान सर्वे जीवो ठे, पण  
अनादिथी कर्म मल संबंधे अशुद्ध होवाथी ज्ञान दर्शन अने चारित्र  
रूप शुद्धात्म स्वभावथी विपरीतपणे मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपाय  
रूप परिणमे ठे, पोताना आत्मवीर्यने तेमा वापरे ठे अने तेथी  
निरंतर सात आठ प्रकारनां कर्म बांधी जवसमुद्धमां परित्रमण करतां  
अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक असह्य वेदनाउं जोगवे ठे.  
पण ते मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपायने तीव्र दुःख दांतात तथा  
अलूट सहजानंदने लूंटनार महान् शत्रुउं जाणी तेमां पोताना आत्म-  
वीर्यने नहि वापरतां जीवादि तत्वोना यथार्थ अज्ञानरूप सम्यक्-  
दर्शन, तथा ते जीवादि तत्वोने नयनिक्षेप पद्म प्रमाणादि सहित  
संशय, वित्रम अने विमोह रहित अज्ञान पूर्वक जाणवा रूप सम्यक्-  
ज्ञान, तथा रागादिक कपाय अने सावय योगना परिहार रूप सम्यक्-  
चारित्रमां प्रयुंजी संसार समुद्धथी आपणा आत्मानो उद्धार करवो.  
(यतः-गाथाः-जीवादी सहृदणं, सम्मत्तं तेसि मधिगमो णाणं;  
रागादी परिहरणं, चरणं एसो इ मोक्षपहो) दश ऋतांतं,  
दुर्लभ, रत्न विंतामणी समान मनुष्य जव त्यारेज सफल जाणवो;  
कारणके पंचेछिउंना विषय जोग तो देवादि गतिमां मंळी शकें ठे  
पण परमात्मपद—मोक्षपद तो आ मनुष्य जवमांज साथी शकाय ठे.  
माटे आपणा आत्माने रत्नत्रयमां जोडवो, मोक्षमार्गमां प्रवृत्त थवुं,

पकारी सद्गुरुनी अतिगय त्रिलता अने जावधर्म एक कोरे मूकी  
साध्य शून्य इव्यक्रियामां लगाडनार उपदेशको घणा ए विषे न्याय  
विशारद श्रीमद्यशोविजयजी कहे ठे—“ज्ञान दर्शन चरण गुण विना,  
जे करावे कुलाचाररे, लुटीया तेणे जन देखतां, किहां करे लोक  
पोकाररे ॥ काम कुंजादिक अधिकनुं, धर्मनु को नवि मूलरे, दोकमे  
कुगुरु ते दाखवे, शु थयु एह जग शूलरे ॥ अर्थनी देशना जे दिये,  
उलवे धर्मना ग्रंथरे, परम पदनो प्रगट चोरथी, तेहथी केम वहे  
पथरे ॥ विषय रसमां गृही माचीया, नाचीया कुगुरु मद पूरे, धूम  
धामे धमाधम चली, ज्ञान मारग रसो दूरे ॥ कलहकारी कदाग्रह  
ज्यां, थापता थापणा बोखरे, जिन वचन अन्यथा दाखवे, आज तो  
धाजते ढोखरे ॥ केड निज दोपने गोपवा, रोपवा केड मत कदरे,  
धर्मनी देशना पाखटे, सत्य नाखे नहि मदरे ॥” आचार्य कहे ठे  
“ किं जणिमो कि करिमो, ताणह आसाण धिष्ठड्ठाण । जो  
दंसिऊण लिगं, खिचिंति एरयम्मि मुद्धजणं ॥” तो हे जगवत ।  
नवा जीवो जिन दर्शित शुद्धात्म धर्मने शीरीते पामी शके ? ॥ ३ ॥

तत्त्वागम जाणग तजीरे, बहु जन सम्मत जेह । मूढ  
हठी जन आदर्योरे, सुगुरु कदावे तेहरे ॥ चक्षानन ० ॥ ४

अर्थ—वली हे प्रभु । आपना नाखेला आगमनुं पथार्थ रहस्य  
जाणनारने तो आ पंचम कालमां मूढ पुरुषो तजो दे ठे—उवेखे ठे,  
अने तत्त्व ज्ञानथी विमुख, मूर्खना टोळाने समत तथा मूढ अने  
कदाग्रही पुरुषोप आदरेला सन्मानेला एहवा कुगुरुळ, सुगुरु नाम  
घरावे ठे, पण पत्थरनी नाव जेवा प्रगटपणे जिनशासनना वैरी रूप  
कुगुरुळ जवसमुद्धमांथी केम उझारी शके ? मोक्षमार्गे शी रीते दोरी-  
शके ? उक्तंच—जिम जिम बहु श्रुत बहुजन समत, बहु शिष्ये  
परिवरिळ, तिम तिम जिनशासननो वैरी, जो नवि निश्चय दरियोरे—

एज चारित्र ठे अर्थात् जिनाज्ञानुं पालवुं एज चारित्र ठे. तो जेणे जिनेश्वरनी आज्ञा चांगी तेणे शुं न चांग्युं ? हे प्राणी, जो तुं जिनेश्वरनी आज्ञाने उलंघन करे ठे तो तुं कोना आदेशथी क्रियानुष्ठान करे ठे ? तथा उपदेश सिद्धांत रत्नमालायाम्—“ जगगुरु जिनस्स वयणं, सयलाण जियाण होइ हिय करणं, ता तस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया ” जगत्गुरु श्री जिनेश्वरनुं वचन सर्वे जीवोने हित करनार ठे तो ते वचनने विराधतां केवो धर्म अने केवी जीव दया ? ॥ ५ ॥

गच्छ कदाग्रह साचेवरे, माने धर्म प्रसिद्ध; आतम गुण अकपायतारे धर्म न जाणे शुद्धरे ॥ चंजानन ० ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप शुद्धात्म गुणनो, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कपायो बडे घात न करवो, अकपाय जावमां, शुद्ध परिणामीक जावमां वर्त्तवुं तेज साचो धर्म ठे. कारणके “ वत्थु सहावो धम्मो ” एवं श्री जिनेश्वरनुं पवित्र वचन ठे—तथा ते कपायोज कर्मबंधना हेतु ठे. “ जोग निमित्तं गहणं, जोगो मण वयण काय सजूदो; जाव निमित्तो बंधो, जावो रदि राग दोस मोह जुदो ” तथा अकपायमां वर्त्ततो—पोताना ज्ञानादि जाव प्राणोनी रक्षा करनारो ज्ञानी अप्रमादी मुनि पोताना तथा परना अव्यजाव प्राणनो हिसक केम थाय ? अने जे अशुद्ध अव्यवसायमां वर्त्ते ठे ते हिसा नहि करता ठता पण हिसक ठे यतः—“ अहणंतो विहु हिंसो, उठतणुजं मजं अहिमरोव, वाहितो नवि हिंसो, सुद्ध तणुजं जहा विज्जो ” माटे अकपायमा वर्त्तवुं तथा अहिंसामा वर्त्तवुं ए वेनी परमार्थे एकताज ठे अने अहिंसा धर्मनु पालन करनार सर्वे धर्मनु पालन करनार ठे, कारण के सर्वे



एज अप्पाणं सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य ठे, अने तेज धर्म ठे—यत ( सहृष्टीज्ञान वृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदु, यदीय प्रत्यनीकानि, जवन्ति जव पद्धति ) तेज जगतवत्सल देवाधिदेव तीर्थंकर जगवंतनी आझा ठे—

“ मोस्क पद्दे अप्पाणं, ववेहि तं चेव झाहि तं चेय, तत्थेव विहर णिच्च, मा विहरसु अप्पाणं दवेसु”—हे जव्य ! तु मोक्षमार्गमा पो-  
ताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनु ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुभवगोचर कर, अने तेज परमात्म जावमां निरतर विहार कर, अन्य डव्य पर्यायमा विहार करीश नहि, तेमा इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेषरुप परिणाम करीश नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तज्जी परमात्मपदनी साधनामा मग्न था

पण हे चंजानन प्रभु ! आ दु'पमकालमा ते परमात्म पदनु यथार्थ स्वरुप जाणयावगर तथा तेनी साधनारुप जिनेश्वरनी आझानी अपेक्षा तरफ लक्ष राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाथोनेज धर्म मानी लीधो, तेमाज रत थया, तेज करी पोताने कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य मानी साचा कार्यथी विमुख थई रहा, पण जिनेश्वरनी आझार्थी विमुखपणे वर्त्तता सिद्धि थाय नहि कारणके जिनेश्वरनी आझानी अपेक्षा वगरना सर्वे क्रियानुष्ठान निरर्थक ठे—श्रीमद् अजयदेव सूरि कहे ठे—“ सजम रहिय खिगं, दंसण जठं न सजमं जणिय, आणा हीण धम्म, निरत्थयं होइ सबपि ” तथा “ जो पूशुजाइ देवो, तवयण जे नरा विराहति, हारति बोहि छाज, कुदिधि राएण अज्ञाणी ” तथा “ पूआ पच्चरकाणं, पोसह उववास दाण सीलाइ सबपि अणुष्ठाण, निरत्थय कणय कुसुमव ” तथा श्री धर्मदास गणी उपदेशमालामा कहे ठे “आणाइच्चिय चरणं, तज्जगे जाण किन्न जग्गति, आणं च अडकंतो, कस्तापसा कुणइ सेस, निश्चये आझा

एष पोते आदरेण वाह्यं लिङ्गं तथा वाह्यं करणीने परमार्थं मोक्षं  
कारणं मानी अमे साचो धर्म आराधीए ठिये, अमारो धर्म प्रशंसनीय  
ठे, एष जे पोतानी जीवहाये जल्पे ठे अने ते माटे लांबा लांबा  
वितंडावादो मांडी वेसे ठे, समतारुप अमृतने तजी कषायरूप हाहा-  
हृदयविपने जक्षण करे ठे; एहवा एकातवादी पुरुषो नो डुराग्रह नाश  
करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धागमनु रहस्य प्रगट करता श्री  
मद् यशोविजयजी अध्यात्मसारमा कहे ठे.—“ अतो रत्नत्रयं मोक्ष-  
स्तदज्ञावे कृतार्थता; पाखंडीगण लिङ्गेश्च, गृह लिङ्गेश्च कापिन। पाखंडी  
गण लिङ्गेषु, गृह लिङ्गेषु ये रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातारो बाल  
बुध्यः। जाव लिङ्ग रतायेषु, सर्वसार विदोहिते, लिङ्गस्था वा गृहस्था  
वा; सिध्यन्ति धूत कदमपा। जावलिङ्गं हि मोक्षाङ्गं, उच्यते लिङ्ग मका-  
रणं; उच्यं नात्यतिकं यस्मान्नाप्येकांतिकं मिष्यते । ” आवोज जाव  
दिगम्बर आचार्य श्री कुंडकुंदाचार्य समयपाहुडमां कहे ठे—गाथा—  
“ पाखंडी लिङ्गेषु व, गिहिलिङ्गेषु बहुप्पयारेसु,  
कुर्वन्ति जे ममत्तं, तेहि ए याणं समयसारं—एवि एस मोक्ष-  
मगो, पाखंडी गिहि मयाणि लिङ्गाणि. दंसए एणए चरित्ताणि  
मोक्ष मगं जिणा विति ” अर्थ—पाखंडी साधुलिङ्गमा वा गृहस्थ  
लिङ्गमां वा बहु प्रकारना लिङ्गमां जे ममत्व करे ठे ते समय सारने  
जाणता नथी पाखंडीसाधुनो लिङ्ग, वा गृहस्थनो लिङ्ग विगरे मोक्ष  
मार्ग नथी पण श्रीजिनेश्वर सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्रने मोक्षनोमार्ग  
कहे ठे—“ तहा जहित्तु लिङ्गं, सागार अणगारएहि वा गहिण;  
दसएणाए चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्षपहे ” अर्थः—ते माटे  
सागार अने अणगारना लिङ्गनुं ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दर्शन  
ज्ञान चरित्र रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव—जोड. तेमज वली

महाव्रतो, तथा द्दमादिक दश धर्मों, तथा परिसद् सहन, तथा तप, संयम विगरे-सर्वे धर्मों अहिंसानाज अंग ठे, तेनाज कारणो ठे, माटे सर्वे धर्मोंनो अहिंसामा समावेश थाय ठे

“ सवाश्रोवि नश्च्यो, जह सायरमि निवडति, तह जगवई अहिंसिं, सवे धम्मा समिह्वन्ति, ” तथा बली “ अहिंसा सर्व जीवानाम्, सर्वज्ञै परिजापिता, इद हि मूल धर्मस्य, शेषस्तस्यास्ति विस्तर ” माटे अकपायमा वर्त्ततो मुनि, नवा कर्मवधने अटकावतो, पूर्वे वा-धेखा कर्मनी निर्जरा करतो, जन्म मरणादि डु खनो क्षय करी पर-मानदपदने-भोक्षपदने प्राप्त करे ठे यद्युक्तं-आचारांग सूत्रे त्रीजा अध्यायने “ जे क्रोवने ठोडे ठे ते मानने ठोके ठे, जे मानने ठोडे ठे ते मायाने ठोडे ठे, जे मायाने ठोके ठे ते लोचने ठोके ठे, जे लोचने ठोडे ठे ते रागने ठोडे ठे, जे रागने ठोडे ठे ते द्वेषने ठोके ठे, जे द्वेषने ठोडे ठे ते मोहने ठोके ठे; जे मोहने ठोडे ठे ते गर्जथी मुक्त थाय ठे गर्जथी मुक्त थाय ठे ते जन्मथी मुक्त थाय ठे, जे जन्मथी मुक्त थाय ठे ते मरणथी मुक्त थाय ठे, जे मरणथी मुक्त थाय ठे ते नरकथी मुक्त थाय ठे, जे नरकथी मुक्त थाय ठे ते तिर्यच गतिथी मुक्त थाय ठे, जे तिर्यच गतिथी मुक्त थाय ठे ते डु खथी मुक्त थाय ठे, ” एहवा अकपायरूप शुरु धर्मने नहि जाणनारा, तेनी अपेक्षा नहि राखनाग, एकाते वाह्य क्रियानी इठ धरनारा पुरुषो मात्र वाह्य क्रियानेज मोक्षनु कारण मानी, पोनाना गच्छ प्रमाणे वर्त्ती ते वाह्य क्रियानेज परमार्थ उराववा प्रयत्न करे अने कहे के आवु पात्र, वा आवी मुहपत्ती, विगरे रागवा अने आवीज रीते प्रतिक्रमणादि क्रि-माकरवी तेज मोक्षनु कारण ठे अमाराथी प्रकारातरे जे उपकरणो तथा प्रतिक्रमणादि वाह्य क्रियाउं आदरे ठे ते मोक्ष पामी शके नहि.

अर्थः—देवाधिदेव श्री तीर्थकरना चरणकमल के जे शुद्धात्म अनु-  
 चवक्षुप सुगंधे जरपूर तथा विषय कपायनी चाह दाहने शमन कर-  
 नार, मोक्ष लक्ष्मीनु अतिशय प्रिय निवासस्थान ठे. तेने वंदन करवानो—  
 पूजवानो ज्रमरनी पेठे तेमां लीन थवानो, माहरा मनमां अतिशय  
 उमेद—उमंग ठे पण आ जवचक्रमा ज्रमण करतां अनेकवार मनुष्य-  
 जव पाम्यो, पण विषय कपायादिकमां मोहित रही रत्नचितामणी  
 समान मनुष्यजव वृथा गुमावी दीधो, पुण्यानुबंधी पुण्यना वियोगे  
 जिनेश्वरनी सेवामां रग लाग्यो नहि, तद्धीनता थई नहि. करीयातु  
 कडवुं ठतां जेम मोढानी करुवासनो नाश करे ठे तेम जिनेश्वरनी  
 लोकोत्तर सेवारूप प्रशस्त राग, ते राग नाश करवानो तथा आत्मगुण  
 प्राप्तिनो हेतु ठे. यत.—गाथाः—“नाणाइसु गुणेषु, अरिहंताइसु धम्म  
 श्वेषु. धम्मोवगरण साहम्मिएसु धम्मथ्यं जोय गुणरागो ॥  
 सो सुपसथ्यो रागो, धम्म संयोग कारण गुण दो, पढमं काय-  
 धो सो, पत्त गुणे खवइ तं सधं ॥” जावार्थः—ज्ञानादि गुणो उपर,  
 अरिहंतादि धर्मात्मा उपर, तथा धर्मना साधनो उपर, तथा साधर्मी  
 उपर गुणावलवने जे राग करवो ते प्रशस्त राग, धर्म संयोगनुं तथा  
 गुण प्रगट थवानुं कारण ठे. ॥ ७ ॥

जगतारक प्रज्जु वांदियेरे, महाविदेह मझार ॥ वस्तु धर्म  
 स्याद्वादतारे, सुणि करिये निरधार रे ॥ चंजानन ७ ॥ ए ॥

अर्थः—संसार समुद्रमांथी उद्धारवा माटे समर्थ, महाविदेहमां  
 विचरता श्री चंजानन प्रज्जुनुं निर्मल जावे वंदन करीए. सूत्रमां “ वंद-  
 ननुं फल श्रवण ” एम प्रगट वचन ठे, माटे जगवंतने वंदन करतां  
 अनत धर्मात्मक वस्तुनुं स्वरूप स्याद्वादनये सांजलवानो लाज मले, ते  
 सांजली वस्तु स्वरूपनो निर्धार करी शुरू धर्ममां प्रवृत्त थईए. ॥ ए ॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य कहे ठे “ येत्वेन परिहृत्य सवृत्ति पथ, प्रस्थापि तेनात्मना, विंगे ड्रव्यमये वहन्ति ममतां, तत्वावबोध च्युता । नित्योद्योत मखंड मेक मलुला, लोकं स्त्रजाव प्रजा, प्राग्जारं समयस्य सार ममल, नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥ ” अर्थ—जे पुकपो परमार्थ स्वरूप मोक्षमार्गने ठोनी बाह्य व्यवहारमा पोताना आत्माने स्थापी ड्रव्यखिगनी ममता धरे ठे, तेनेज मोक्षनु कारण माने ठे, ते पुकपो तत्त्वज्ञानथी विमुख ठे वली ते पुकपो नित्योदित, अखड, एक, अनुपम, अपराजित, अतुल प्रकाशवंत अने पवित्र परमात्म स्वरूपने अथवा जिनेश्वरना पवित्र समय सारने इजु सुधी पण ( मुनीनो वेप धारण कर्या ठतां पण ) जाणता नथी, प्राप्त थता नथी माटे एकात बाह्य क्रियानो हठ ठोडी, परमार्थ समजी, शुरू साध्य तरफ लक्ष राखी शुद्धात्म पद जेथी सिद्ध थाय एहवो प्रशस्त व्यवहार आदरी, आपणा आत्माने अत्यंत परमानंदमय परमात्मपदमा स्थित करो ॥ ६ ॥

तत्त्वरसिक जन थोळजारे, बहुलो जन संवाद ॥ जाणो ठो जिनराजजीरे, सघलो एह विवादरे ॥ चंजानन० ॥ ७ ॥

अर्थ—हे चंजानन प्रभु ! आ दुपमकालमा अमारा जरतक्षेत्रमा सद्गुरूनी विरलता वने शुद्धात्म तत्व साधवाने रसिआ पुरूषोनी संख्या तो रत्न मणिनी पेठे अतिशय अल्प, अने पोतानो मत कदायह स्थापन करवाने तत्पर एहवा काचना करुका जेवा पुरूषो घणा, एवो अमारी दयामणी दशानु वर्णन हे जिनेश्वर ! आप सर्वथा जाणो ठो ॥ ७ ॥

नाथ चरण बंदन तणोरे, मनमा घणो डुमग ॥ पुण्य विना किम पामीएरे, प्रभु सेवननो रग रे ॥ चंजानन० ॥ ८ ॥

॥ अथ त्रयोदशम चंद्रवाहु जिन स्तवनम् ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए राग ॥

॥ चंद्रवाहु जिन सेवना, जव नाशिनी तेह ॥ पर  
परिणतिना पासने, निष्कासन रेह ॥ चंद्र० ॥ १ ॥

अर्थ.—अज्ञानादि अष्टादश दूषण रहित तथा अनंत चतुष्टय सहित तथा शुद्ध नये आत्मधर्मनो उपदेश आपी जव्य समूहने मोक्ष-  
मार्गे दोरनार, विदेह क्षेत्रमां विहरमान श्री चंद्रवाहु जिनेश्वरनी  
शुद्ध ज्ञावे (आलोक परलोक संबंधी विषय जोगना आकांक्षा रहित  
शुद्धात्म ज्ञाव प्रगट करवाना हेतुरूप) करेली सेवा, सूर्य जेम अंध-  
कारनो शीघ्रमेव नाश करे ठे तेम लीला मात्रमां जव त्रमणनो नाश  
करनार ठे तथा “पर परिणतिना पासने निष्कासन रेह” जेम हरण  
शब्दना विषयमां मोहित थइ विविध प्रकारना वार्जांत्रिना मधुर  
कोमल स्वरना राग वशे पारधीये नांखेली जाळमां आवी फसे ठे,  
पोतानी स्वतंत्रताने गुमावी पराधीन थइ जीव जोखममां आवी पने  
ठे तेमज संसारी प्राणीं शब्दादिक विषयना राग वशे मोह-पट्टी-  
पतिए पाथरेली अतिशय विस्तीर्ण अने द्रढ कर्मजाळमां आवी  
फसे ठे, पोताना सहज स्वतंत्र अव्यावाध आत्म जोगने गुमावी वेसे  
ठे, पराधीन दोन थाय ठे, पोताना शुद्ध ज्ञानादिक प्राणना जोखममां  
आवी पने ठे, कपायात्रिमां (दग्धमान) पच्यमान थाय ठे, बलता  
रहे ठे, एहवा पर परिणतिना रागरूप बधनने ठेदवा माटे चंद्रवाहु  
जिनेश्वरनी सेवना तीक्ष्णधारा समान ठे, तेथी मुक्त करवा अत्यन्न  
सामर्थ्यवंत ठे ॥ १ ॥

पुद्गल ज्ञाव आशंसना, उद्घासन केतु ॥ सम्यक्दर्शन  
वासना, ज्ञासन चरण समेत ॥ चंद्र० ॥ २ ॥

तुज करुणा सहु ऊपरेरे, सरखी ठे महाराय ॥ पण अवि-  
राधक जीवनेरे, कारण सफलु थायरे ॥ चंजानन० ॥ १० ॥

अर्थ.—हे चंजानन प्रभु ! आप राग रूपी समुद्रने उलंघी गया  
ठो, वीतराग जूमिमा विराजमान ठो तेथी आप तो शत्रुमा तेमज  
मित्रमा, सेवकमां तेमज असेदकमा, निदकमा तेमज स्तुतिकारमा  
समान वृत्तिवाला ठो, सर्वे जीवो उपर आपनी करुणा तो हीणा-  
धिकता रहित एक सरखी ठे, ससार समुद्रथी तरवा माटे सर्वेने  
एक सरखो उपदेश आपो ठो तो जे जीवो आपनी आज्ञाना विराधक  
होय ते न तरी शके ते तेमनोज दोष ठे “पत्र नैव यदा करीर  
विटपे, दोषो वसंतस्य किम्. नो लूकोप्यवलोकते, यदि दिवा  
सूर्यस्य कि दूषणं ” पण आपनी आज्ञाना आराधक जीवो आ  
संसार समुद्रथी तरी शके, आपनु निमित्त तेठनेज सफल थाय ॥१०॥

एहवा पण जिवि जीवनेरे, देव जक्ति आधार ॥ प्रभु  
समराणथी पामीएरे, देवचड पद साररे ॥ चंजानन० ॥ ११ ॥

अर्थ.—एहवा आराधक जव्य जीवने पण देवाधिदेव हे चंजानन  
प्रभु ! आपनी जक्तिनोज आधार ठे, ससार समुद्रमाथी तरवामा  
प्रवहण समान पुष्ट अवलवत ठे माटे हे प्रभु ! देवमा चडमा समान  
सर्वोत्कृष्ट परमात्मपद, आपना गुणनु स्मरण तथा ध्यान करवार्थी  
प्राप्त थशे ॥ ११ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम चंद्रवाहु जिन स्तवनम् ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए राग ॥

॥ चंद्रवाहु जिन सेवना, जव नाशिनी तेह ॥ पर  
परिणतिना पासने, निष्कासन रेह ॥ चंड० ॥ १ ॥

अर्थः—अज्ञानादि अष्टादश दूषण रहित तथा अनंत चतुष्टय सहित तथा शुद्ध नये आत्मधर्मनो उपदेश आपी जव्य समूहने मोक्ष-  
माणे दोरनार, विदेह क्षेत्रमां विहरमान श्री चंद्रवाहु जिनेश्वरनी  
शुरू जावे (आलोक परलोक संबंधी विषय जोगना आकांक्षा रहित  
शुद्धात्म जाव प्रगट करवाना हेतुरुप) करेली सेवा, सूर्य जेम अंध-  
कारनो शीघ्रमेव नाश करे ठे तेम लीला मात्रमां जव त्रमणनो नाश  
करनार ठे तथा “पर परिणतिना पासने निष्कासन रेह” जेम हरण  
शब्दना विषयमां मोहित थइ विविध प्रकारना वार्जात्रना मधुर  
कोमल स्वरना राग वशे पारधीये नांखेली जाळमां आवी फसे ठे,  
पोतानी स्वतंत्रताने गुमावी पराधीन थइ जीव जोखममां आवी पने  
ठे. तेमज संसारी प्राणीउं शब्दादिक विषयना राग वशे मोह पट्टी-  
पतिए पाथरेली अतिशय विस्तीर्ण अने डढ कर्मजालमां आवी  
फसे ठे, पोताना सहज स्वतंत्र अव्यावाध आत्म जोगने गुमावी वसे  
ठे, पराधीन दीन थाय ठे, पोताना शुरू ज्ञानादिक प्राणना जोखममां  
आवी पने ठे, कपायाग्निमां (दग्धमान) पच्यमान थाय ठे, बलता  
रहे ठे, एहवा पर परिणतिना रागरूप वधनने तेदवा माटे चंद्रवाहु  
जिनेश्वरनी सेवना तीक्ष्णधारा समान ठे, तेथी मुक्त करवा अत्यंत  
सामर्थ्यवंत ठे ॥ १ ॥

पुद्गल जाव आशंसना, उद्घासन केतु ॥ सम्यक्दर्शन  
वासना, जासन चरण समेत ॥ चंड० ॥ २ ॥



३२१ विशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

अर्थ.—अनादिकालથી कर्म जालमां फसेलो पराधीन थएलो आत्मज्ञाना ज्ञान तथा आस्वादननो वियोगी पुद्गलना रुप रस गंध स्पर्शादि विषयज्ञोगमा मग्न थएलो ससारीजीव निरतर पुद्गल विषयोनी आशसना—तृष्णाने वश वत्ते ठे ते तृष्णाने ठेदवाने चडवाहु प्रचुनी सेवा केतु समान ठे तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्ररुप आत्मस्वभावमा वास कराववावाली ठे, आत्मगुणनी सुवासमा सतुष्ट करनार ठे ॥ १ ॥

त्रिकरण योग प्रगंसत्ता, गुणस्तवना रग ॥ वंदन पूजन  
भावना, निज पावना अंग ॥ चंड० ॥ ३ ॥

अर्थ—मन वचन अने काया ए त्रियोगनी शुद्धिए ( कपायादि अप्रशस्त परिणाम रहित ) देवाधिदेव श्री तीर्थंकर जगवतनो यश-वाद बोलवो, तेमना ज्ञानादिक पवित्र गुणनी स्तवना करवी, गुणानु-राग करवो, वंदन पूजन विगेरे करवु, तेमना ज्ञानादि शुद्धजाव अनुगत आपणो आत्म परिणाम करवो, ते सर्वे आपणा आत्माने ज्ञाना-वरणादि पापथी मुक्त, पवित्र करवानां तथा शुद्धात्मपद प्राप्तिना अंग ठे ॥ ३ ॥

परमात्मपद कामना, काम नाशन तेह ॥ सत्ता धर्म प्रका-  
शना, करवा गुण गेह ॥ चंड० ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शनादि अनंत गुणपिंड आपणा शुद्धा-त्मपदनी कामना, ते साधवानी रुचि, ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यनी कामना तृष्णाने नाश करवानो हेतु ठे कारणके आपणो आत्माज परमात्मपदनु उपादान ठे, तेज परमात्म जावे परिणमनार ठे माटे परमात्मपदे क्षेत्रातरे नथी अने क्षेत्रातरे रहेली वस्तुनी कामनाज हु खदायी ठे माटे परमात्म पदनी कामना थवाथी अन्य सर्व काम-

नानो उद्वेद थाय ठे. ते परमात्मपदनी कामनाना हेतु श्री जिनेश्वर  
 जगवंत ठे तेथी तेमनी सेवा सत्तामां रहेली ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीने  
 प्रगट झप्टीगोचर करवाने तथा आपणा आत्माने गुणनिधान पूज्य  
 पद आपवाने पुष्ट हेतु ठे. ॥ ४ ॥

॥ परमेश्वर आलंबना. राच्या जेह जीव ॥ निर्मल साध्यनी  
 साधना, साधे तेह सदीव ॥ चंड० ॥ ५ ॥

अर्थः—जगत् चूर्णमणि तरण तारण परमेश्वरनो आश्रय जे ज्ञव्य  
 जीवोए श्चि बहुमान पूर्वक ग्रहण कर्यो ठे तेज पुरुषो निरंतर पो-  
 ताना शुद्ध साध्यने साधवावाला ठे परमात्मपद जेमां प्रगटपणे ठे  
 एवा तीर्थंकर जगवंत परमात्मपद साधनाना पुष्ट हेतु थइ शके पण  
 अन्य कुदेवादिक जे पोते अशुद्ध आत्मजावमां षर्ते ठे ते मोक्षना  
 हेतु केम वनी शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुजसम तारक  
 सेवतां, पर सेवन थाय ॥ चंड० ॥ ६ ॥

अर्थः—ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद पद—मोक्षपद  
 प्राप्त करवामां आपज पुष्ट उपाय ठे.

“पुष्ट हेतु जिनेजोयं, मोक्ष सद्भाव साधने”

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां अन्य जीव तथा  
 पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुद्धात्म संपत्ति तणा, तुम्हे कारण सार ॥ देवचंड  
 अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ चंड० ॥ ७ ॥

अर्थः—अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्यरूप  
 परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन अखूट लक्ष्मी प्रगट—प्राप्त

३३४ विशति विहरमान जिन स्तवनानि बालावबोध सहित.

करवाना, हे जगवत ! आपज साचा कारण ठो, कारण के ते केवळ ज्ञानादि लक्ष्मीने आप सपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी निरतर जोगवो ठो, तज्जन्य परमानंदमां मग्न ठो एवं आपनु स्वरूप द्रष्टि गोचर यतां मने पण एवं ज्ञान अयुं के ए अनुपम विभूतिना इश्वर माहरी स्वजाति ठे, तेथी हं पण आप समान लक्ष्मीनो स्वामी थवाने सत्तावत तुं, एम जासन यता आप समान परात्मपद साधवानी मने रुचि थइतेथी आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छे जो आपना परमानंदमय स्वरूपनुं मने दर्शन न थयु होत तो मने परमात्म पद साधवानी रुचि पण थती नहि अने रुची थयाविना कार्य साधनामा उद्यम प्रवृत्ति थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय नहि माटे न्यायद्रष्टिण जोता आपनु सिद्धपद माहरी सिद्धिनु कारण प्रतिष्ठ आय ठे ॥ उक्तच विशेषावश्यके ॥ “ सर्वेपि बुद्धौ संकल्प्य कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्ध्याद्बुधवसितस्य कुंजस्य चिकीर्षितो मृन्मय कुंजस्तद्बुध्यालंबन तथा कारण ज्वति ” तथा बली ते परमात्मपद साधवानो यथार्थ मार्ग वतावनार पण आपज ठो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण ठो माटे सर्वे देवोमा चक्रमा समान हे अरिहृत जगवत ! आपनीज सेवा सर्वे क्लेशथी मुक्त करी परमानंद परम सुखनी दातार ठे ॥ १ ॥ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्दशम श्री शुजग स्वामी जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी ॥ लूथरनी ॥

पुष्कलावह विजये हो, के विचरे तीर्थपती । प्रभु चरणने सेवेहो, के सुरनर असुर पती । जसु गुण प्रगट्या हो, के

सर्व प्रदेशमां । आत्म गुणनी हो, के विकसी अनंत  
रमा ॥ १ ॥

अर्थः—पुष्कलावर्त विजयमां विचरता सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र  
रूप तीर्थना प्रगट करनार, फेलावनार तीर्थपति श्री जुजंग स्वामी  
प्रतुने कषाय तथा अज्ञानथी वीलकुल रहित, परम पवित्र परमानंद  
स्वरूप जाणी, मोक्ष मार्गमां गमन करवा कुशल तेमना पवित्र चरण  
युगलने महान् रिद्धि सिद्धिना धारक सुर असुर तथा मनुष्यना  
इन्द्रो, विषय तथा कषायजन्य जव समुद्रथी मुक्त थवा, बहु सन्मान  
सहित सेवे ठे जे जगवंतना दरेक प्रदेशे रहेला ज्ञानादि अनंत  
गुणो सपूर्ण पणे निर्मल प्रगट थया ठे, ते गुणनो व्याघात करनार  
ज्ञानावरणादि घाती कर्मनो सत्ता सहित नाश कयों ठे अने तेथी  
ज्ञानादि आत्म गुणनी सहज, अकृत्रिम, स्वाधिन, अने अविनश्वर  
अनंत अनुभूति ( लक्ष्मी ) प्रगट प्राप्त थइ ठे, निरंतर तेना स्वामी  
तथा जोक्तापणे वर्त्ते ठे—परमानदमां निमग्न ठे ॥ १ ॥

सामान्य स्वजावनी हो, के परिणति असहायी । धर्म  
विशेषनी हो, के गुणने अनुजायी ॥ गुण सकल प्रदेशे हो,  
के निज निज कार्य करे । समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ता-  
जाव धरे ॥ २ ॥

अर्थः—सामान्य स्वजाव विना वस्तुनी ठती नहि अने विशेष  
स्वजाव विना कार्य नहि, पर्याय प्रवृत्ति नहि, माटे पंचास्तिकाय ते  
सदा सामान्य विशेष स्वजावमयी ठे.

जे स्वजावमां एकपणुं, नित्यपणुं, निरवयवपणुं, अक्रियपणुं, अने  
सर्वगतपणु होय ते सामान्य स्वजाव जाणवा ( एगं निच्चं निरवय-  
वमक्रियं सध्वगं च मामन्नं ) एवा मूलसामान्य स्वजाव ठ ठे—

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वं, सत्त्व अने अगुरुलघुत्वं, तथा उत्तरसामान्य स्वज्ञाव वस्तु मध्ये अनंता ठे. ते सामान्य स्वज्ञावो सर्व द्रव्यमां सर्वे समय निज परिणामीकताए परिणमे ठे, तेथी हे जगवंत । आपना सर्व सामान्य स्वज्ञावो सदाकाल असहाये परिणमे ठे अने हे जगवंत । आपना सर्व विशेष धर्म पोताना परम गुणने अनुयायीपणे परिणमे ठे “ यद्युक्तं-जिन्न जिन्न पर्याय प्रवर्त्तन स्वकार्य करण सहकार भूता पर्यायानुगत परिणाम विशेष स्वज्ञावा ” वस्तुमां जे जिन्न जिन्न पर्याय ठे तेनु कार्य कारण पणे जे प्रवर्त्तन तेना सहकारभूत जे पर्यायानुगत परिणामी एवा जे स्वज्ञाव ते विशेष स्वज्ञाव ठे

जीव द्रव्यमां ज्ञायकता कर्त्तृता चोम्तृता, ग्राहकता आदि अनंत विशेष स्वज्ञाव ठे, तेमज धर्मास्तिकायमा गमन सहकारतादि, अधर्मास्तिकायमा स्थिति सहकारादि, आकाशास्तिकायमां श्वगाहदानादि, पुद्गलास्तिकायमा पूरणगलनादि, एम पंचास्तिकायमा अनंत विशेष स्वज्ञाव ठे

बलो हे जगवंत ! आप स्वतंत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशा कर्त्ता ठे माटे आप परमेश्वर ठो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यमा कर्त्तापणुं नथी ( कर्त्तृत्वं जीवस्य नान्येषाम् ) कारण के “ गुण सकल प्रदेशे हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्ते हो के कर्त्ता जाव धरे ” आपना सकल प्रदेशे रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेठे पण ते सर्वे प्रदेशे समुदाय मळीने एकठी प्रवृत्ति करेठे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता ठो ॥ ३ ॥

जरु द्रव्य चतुष्के होके कर्त्ता जाव नहि, ॥ सर्व प्रदेशे

हो, के वृत्ति विभिन्न कही ॥ चेतन डव्यने हो, के सकल  
प्रदेश मीले ॥ गुणवर्तना वर्ते हो, के वस्तुने सहज बले ॥३॥

अर्थ.—पण हे जगवंत ! जडद्रव्य चतुष्कमां कर्ता जाव ठरी शकतो  
नथी, कारणके जो के ते जड द्रव्यना धर्म प्रदेशे प्रदेशे वर्ते ठे परंतु  
सर्वे प्रदेशोनुं एक समुदायीपणे कार्य प्रवर्तन नथी, जिन जिन प्रदेशे  
जिन कार्य होई शके ठे जेम धर्मास्तिकाय कोई प्रदेश वने अमुक  
पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे अने तेथी बीजा प्रदेशे बीजा  
पुद्गलने चलनसहायी थाय ठे एम जिन प्रदेशे जिन वृत्ति होवाने  
लीधे जड द्रव्यमां कर्तापणुं ठरी शकतुं नथी.

पण हे जगवत ! जीव द्रव्यनो सहज स्वजाव एवो ठे के तेना ज्ञान  
दर्शनादि सर्वे गुणोना अविज्ञाग पर्याय दरेक प्रदेशे ठे, ते सर्वे प्रदे-  
शना गुणाविज्ञाग एक समुदाये आबीर्जावे थई कार्य करे अर्थात्  
एक कार्ये परिणमवामां सर्वे प्रदेशना गुणाविज्ञाग सामर्थ्य पणे  
परिणमे, कोइ पण प्रदेशना गुणाविज्ञाग ते कार्यमा जोडाया  
शिवाय रहे नही, एम जीव द्रव्यना सर्वे प्रदेश मली एक समुदायि  
पणे एक कार्ये परिणमे ठे ॥ ३ ॥

शंकर सहकारी हो, के सहजे गुण वरते ॥ डव्यादिक परि-  
णति हो, के जावे अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के  
न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी  
वृत्ति घना ॥ ४ ॥

अर्थ:—एम दरेक सर्वे प्रदेशना गुणाविज्ञागो एकत्र एक बीजाने  
सहकारीपणे सदा परिणमे, वली द्रव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते द्रव्यना  
परमजावने अनुसारे वर्ते ठे. जेम जीव द्रव्यनो जाव चैतन्यता ठे  
माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिड ते जीव द्रव्य ठे, अने चैतन्य  
गुणने रहेवानुं असंख्यात प्रदेशमय म्यानक ते जीव द्रव्यनुं क्षेत्र ठे,

अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव ड्रव्यनो काल ठे यद्युक्तं—  
 “ गुण समुदायो दवं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण  
 पज्जाय पवत्ति, जावो नियवत्थु धम्मो सो ॥” दान धान जोगादि  
 लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्ती शके नहीं पण हे जगवंत ।  
 आपतुं वीर्य क्षाधिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहनेश्वकंपणणे सह-  
 कारी थई शके ठे तेथी आप हमेशा अवध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां  
 वत्तो ठो, कारण के “ चलइ स फंदई ” ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥ वरते तेहने  
 हो, के जिनवर गुण पज्जणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो के  
 वर्तना जीव प्रते ॥ धर्मादिक ड्रव्यने हो, के सहकारे  
 करते ॥ ५ ॥

अर्थ—त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे ठे के एक कार्य  
 पणे परिणमनारा अनंता वती पर्यायनो समुदाय ते गुण ठे जेम  
 जाणवारुप सामर्थ्य ठे जेमां एवा अविज्ञागी पर्यायनो समुदाय ते  
 ज्ञान गुण, देखवारुप सामर्थ्य ठे जेमा एवा अविज्ञाग पर्यायनो समु-  
 दाय ते दर्शन गुण, परिणामाखवन रुप कार्य सामर्थ्य ठे जेमा एवा  
 अविज्ञागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक ड्रव्यना  
 प्रति प्रदेशे पोतपोतानुं एक कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनता  
 अविज्ञागरुप पर्यायनो समुदाय ते गुण ठे जीवड्रव्यना दरेक प्रदेशे  
 जाणवा रुप कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनता अविज्ञाग पर्याय  
 ठे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण, एम ज्ञानादि अनंत गुणनी वर्तना  
 जीव ड्रव्यमा ठे यद्युक्तं—नय चक्र सारे—“ तत्रैकस्मिन् द्रव्ये  
 प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रूपा अनंता  
 अविज्ञाग रुप पर्याया स्तेपा समुदायो गुण जिन कार्य

करणे सामर्थ्यरूपा जिन्न गुणस्य पर्यायाः एवं गुणा अप्य-  
 नन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविज्ञाग रूपाः अनन्ता  
 स्तुल्याः प्रायीइति ते चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनन्ता  
 स्ततो नत गुणाः सामर्थ्यं पर्यायाः ” अने धर्मादिक जड द्रव्य-  
 मां ज्ञान गुणथी अनिरिक्त चलनसहकारादि गुणो वर्त्ते ठे ॥ ५ ॥  
 ग्राहक व्यापकता हो, के प्रच्युतुम धर्म रमी ॥ आतम अनु-  
 चवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनन्ती हो,  
 के गाताने ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो, के थाये गुण  
 रमतां ॥ ६ ॥

अर्थः—हे प्रच्यु ! जेद विज्ञाननी पूर्णता वडे आप निरंतर ज्ञाना-  
 दिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक ठो तेथी अतिरिक्त विषय कषायने  
 ग्रहण करवाथी आप मुक्त थया ठो, तेमज आपनी व्यापकता पण  
 ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे ठे पण विषय कषायमां  
 कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा परजावथी अव्याप्त ठो  
 तथा नित्य शाश्वत स्वाधीन अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म  
 द्रव्यनी अनुच्युतिनो निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तेमांज विद्यासी  
 षड् पौद्गलीक विच्युतोनुं कर्त्तापणुं जोक्तापणुं तथा रमणपणुं  
 वमननी पेठे सर्वथा प्रकारे तजी दीधुं कारणके शुद्धात्म अनु-  
 चवरूप अमृतपानमां मग्न पुरुष, पौद्गलीक विषय कषायरूप  
 हावाहल विष पीवाने केम उच्छे ? हे प्रच्यु ! “अजमत्वात्मिका  
 चितिशक्तिः, अनाकारोपयोगमयी दृशिगक्तिः साकारोपयो-  
 गमयी ज्ञानशक्तिः, अनाकुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप  
 निर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः, अखणित प्रताप स्वातन्त्र्य



शास्त्रित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्ति, क्रमाक्रमवृत्ति वृत्तलक्षणो-  
त्पाद व्यय ध्रुवत्वशक्ति " तथा कर्तृत्वशक्ति, ज्ञोक्तृत्वशक्ति, परि-  
णामशक्ति, स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति, तत्त्वशक्ति,  
एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारणशक्ति, सप्रदानशक्ति, अपादानशक्ति,  
अधिकरणशक्ति, सवधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति आपमा समवाय  
संबंधे रहेली ठे ते शक्तिओनु स्मरण तथा ध्यान करता तथा शुद्धा-  
त्मगुणमा रमण करतां सत्तागते रहेली आप समान माहरी सर्वे श-  
क्तिओ प्रगट थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण जोगी हो, के स्वामी जुजंग मुदा ॥ जे नित  
वेदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचड प्रभुनी हो, के पुण्ये-  
भक्ति सधे ॥ आत्म अनुभवनी हो, के नित नितं शक्ति  
वधे ॥ ७ ॥

अर्थ - एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरतर जोगवनारा परमानंद  
समूह हे श्री जुजंग स्वामी । पवित्र जाव वने जे आपनुं नित्यवंदन  
स्मरणादि करे ठे तेज पुरुषो आ जगत्त्रयमा धन्य ठे । तेज पुरुषो  
स्तुति पात्र ठे, तेज पुरुषो कृतार्थ ठे, हे देवाधिदेव ! आपनी शक्ति  
महतपुण्यना योगेज साधी शकाय ठे वली आपनीज शक्तिना  
पसाये बीजना चद्रमानी पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति दिन प्रतिदिन  
वृद्धिगत थाय, आखरे पूर्णानदनी प्राप्ति थाय ॥ ७ ॥ सपूर्ण ॥

॥ अथ पचदशम श्री ईश्वरदेव जिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनतानत ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणे इश्वरता हो, निज अद्भुत वरी,  
तीरोजावनी शक्ति, आवीर्जावे हो, सहु प्रगट करी ॥ १ ॥

अर्थ—महाविदेहमा विहरमान हे श्री ईश्वरदेव ! आपे सर्व जगत्  
जपने आश्चर्य तथा परमानंद पमाडे एवी ईश्वरता प्रगट—संप्राप्त  
करी ठे, ते ईश्वरता केवी ठे—पोताना शुद्ध गुण पर्यायोमां वरते ठे  
तेथी पूर्ण पवित्र स्वाधीन तथा अविनश्वर ठे परद्रव्यना रागथी  
रहित होवाथी राग द्वेष जय तथा कामनाथी रहित ठे माटे अत्यंत  
सुख समूह रूप ठे, परमानंदमय ठे

अनादि विज्ञावने लीधे आत्मा राग द्वेष रूप अशुद्ध जावे  
परिणामी ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारनां कर्म बंधन वने पोतानी  
ज्ञानादि अनंत विशेष शक्तियोने आच्छादित करे ठे, पोताना स्वा-  
जाविक परमानंदथी विमुख रहे ठे पण हे परमेश्वर ! आपे पोताना  
आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना  
स्वरूपने सुखनिधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी  
परकर्तृता, परजोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे  
अनंत विज्ञावनो परित्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि वने  
ज्ञानावरणादि कर्ममलने जस्मीजूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम  
प्रकाशमान् अनंत परमानंदभय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिं  
“ आवीर्जावे प्रगट करी ” प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी  
राग द्वेष मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराज-  
मान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कंटक-  
पणे जोगवो ठो. तेथी हे परमेश्वर ! आपमां साची ईश्वरता जोई पर-  
माह्लादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यजावथी सेवा करीए.  
द्रव्य जाव सेवानु स्वरूप—“ द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन  
वली गुण ग्रामोजी । जाव अजेद थवानी ईहा, परजावे  
निःकामोजी ” ॥

अर्थ—सर्व परजावनी कामना रहित जिनेश्वरना पवित्र गुणोमां बहु सन्मान धरी ते समान पवित्र गुणो प्रगट करी अरिहत समान पोतानु परमात्म पद साधवुं ते जावसेवा ठे तथा ते जावसेवाना कारणरूप, जावसेवाने प्रशस्त, परमपूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनु स्मरण तथा गान करवु तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान मूर्तिने वदन नमनादि करवु ते डव्यसेवा ठे ॥ १ ॥

अस्तित्वाटिक धर्म, निरमल जावे हो सहुने सर्वदा ॥

नित्यत्वादि स्वजाव, ते परिणामी हो जरु चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थ:—अस्तित्त्व, वस्तुत्त्व, डव्यत्त्व, प्रमेयत्त्व, अगुरुलघुत्त्व तथा सत्त्व ए ठ मूल सामान्यस्वजाव सर्वे डव्यमां सदाकाल निरावरणपणे वृत्ते ठे तथा सर्वे जरु तथा चेतन डव्यो नित्यत्वादि स्वजावे निरतर परिणमे ठे माटे ए सामान्यस्वजावनी निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम वडे तो हे ईश्वर देव । आपने परमेश्वरपणानी पदवी प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्ता चोक्ता जाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥

गुण पर्याय अनत, पाम्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥

अर्थ—कर्तापणु, चोक्तापणु, कारकपणु, ग्राहकपणु, ज्ञान, चारित्र, विगरे अनत गुणपर्याय ते पूर्ण पवित्र थया ठे, सदाकाल पूर्ण पवित्र पणे वृत्ते ठे, ए कारणमाटे आपमा परमेश्वर पदनी प्रतीत थाय ठे. अनादि अज्ञान वशे जीव परजावनो कर्ता वने ठे अर्थात् में घर वनाव्यु, में नगर वनाव्यु, मे अमुक पदार्थने सुगंध वनाव्यो, अमुक पदार्थने सुगंध वनाव्यो, अमुक पदार्थने सरस रसवाळो वनाव्यो, अमुक पदार्थने मनोहर स्पर्शवाळो वनाव्यो, विगरे परजावना कर्तापणाना अजिमान वडे ज्ञानावरणादि कर्मनो कर्ता वने ठे एम

द्रव्यकर्म, नोकर्मादिकनो कर्त्ता वनी पोताना शुद्ध ज्ञानादि परिणामे परिणमवा रूप शुद्ध कर्त्तापणार्थी विमुख रहे ठे. पण ज्यारे सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति थाय, तत्त्वरुची थाय, त्यारे परज्ञावना कर्त्तापणाने तजी स्वाभाविक कार्यमां पोतानी शक्तिने जोमे, शुद्धज्ञान दर्शन चारित्रनो कर्त्ता थाय, तेमज अज्ञान वशे परज्ञावनो जोक्ता वने ठे अर्थात् वर्ष गंध रस स्पर्श स्त्री पुरुष वस्त्र खादिम स्वादिम पदार्थने मे जोगव्या, हुं जोगवुं तुं, हुं जोगवीश, एम परज्ञावना जोक्तापणानुं अजिमान करे ठे. पण ज्यारे सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि शुद्ध गुण पर्यायने पोताना जोग उपजोग जाणी ते जोग-वनो कामी थइ तेना जोगमां मग्न थाय, परज्ञावनुं जोक्तापणुं दूर थाय तेमज अनादि विज्ञाव वशे अशुद्ध कारक प्रवृत्तिमां पोताना आत्म परिणामने थिर करे ठे, तेमज परज्ञावमां व्यापक अर्थात् तल्लीन-तद्गत थइ रहे ठे, तेमज अशुद्ध ज्ञाने परिणामे ठे अर्थात् देहने आत्मतत्त्व जाणे ठे, पौद्गलीक जोगने आत्म जोग जाणे ठे, पौद्गलीक विषय सुखमां सुख जाणे ठे, शारीरिक वीर्यने आत्मवीर्य जाणे ठे, तेमज पौद्गलीक परिणाममां पोताना आत्माने स्थित करे ठे, एम अज्ञान वशे संसारी आत्मा पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वज्ञावने अशुद्धपणे परिणमावी अनेक प्रकारनां ज्ञानावरणादि कर्म बाधि पोतानी ज्ञानादिक अनंत सपदाना ईश्वरपणार्थी दूर वत्ते ठे पण हे ईश्वरदेव ! आपे ते पोताना सर्वे कर्त्तृत्वादि स्वज्ञावने शुद्ध जावे परिणमाव्या-पूर्ण पवित्र थया. हवे कोशपण काले अशुद्धताए परिणामशे नहि माटे आप श्री एवचूत नये पोतानो ज्ञानादि निष्कलक, अविनश्वर लक्ष्मीना स्वामी-ईश्वर थया छो माटे आपज साचा ईश्वर ठो ॥ ३ ॥

पूर्णानंद स्वरूप, जोगी-अयोगी हो उपयोगी सदा ॥

शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रचुनी हो जे न चले  
कदा ॥ ४ ॥

अर्थ—वली हे जगवत ! आप पूर्णानंद स्वरूप ठो जगत्वांसी जीवो धन स्त्री आदि ईष्ट पदार्थोंनी अधिकतर प्राप्ति बने पोताने पूर्णानंद माने ठे, पण ते समुद्रना कल्लोलनी पेठे अवास्तविक ठे, ऋणजंगूर ठे, तृष्णा रूपी आगने बधारनार ठे, तथा स्वाभाविक सपदानो घात करनार ठे पण आपनी ज्ञानादिक संपदा ते आपथी प्रदेशातरे नथी तेथी ते दूर थवानो कदापि नय नथी, वली एक क्षेत्रावगाही होवाथी चाह दाहथी अतीत ठे, वली ते ज्ञानादि सपदा सहज स्वाभाविक ठे माटे ते राखवानो अथवा मेलववानो प्रयास करवो पडे तेम नथी, वली ते आपने सहज संबंधे ठे तथा परडव्यथी अग्राह्य ठे माटे तेने कोश भागी लुटी शके तेम नथी तेथी हे जगवंत ! आपज पूर्णानंद ठो यद्युक्त—

श्लोक—“ पूर्णता या परीपाधेः सा याचितक मंनं ॥ या तु  
स्वाभाविकी सैव जात्यरत्नविज्ञानिजा ॥ अवास्तवी  
विकल्पै स्यात् पूर्णताब्धे रिवोर्मिञ्जि ॥ पूर्णानंदस्तु जग-  
वांस्तिमितोदधिसन्निज ॥ ”

तथा हे जगवत ! आप स्वरूप जोगी ठो, मात्र ज्ञानदर्शन चारि-  
त्रादि पोताना शुद्ध निरूपाधिक गुण पर्यायने जोगववा वाला ठो  
तेथी आप सदा निष्कटक ठो, तथा हे जगवंत ! आप मन वचन  
तथा कायानी क्रियाना अकर्त्ता थया ठो, योगनुं ममत्व सर्वथा दूर  
कीधु ठे तेथी आप अयोगी ठो, वली आप सदा उपयोगी ठो, ज्ञानो-  
पयोगनो घात करनार ज्ञानावरणीय कर्म तथा दर्शनोपयोगनो घात  
करनार दर्शनावरणीय कर्म ए बनेनो आपे सत्ता सहित सर्वथा नाश

क्यों ठे माटे हवे आपना उपयोगने कोइ पण स्वलना पमारुनार  
 नथी तेथी आप सदा उपयोगी ठो, सर्वे समय शुद्ध ज्ञानदर्शनो-  
 पयोगमां निरंतर वर्त्तो ठो; एम हे जगवंत । ज्ञानादि सर्वे शक्तिउं  
 आप पोताने स्वाधीन वर्त्तावो ठो वली सर्वे कर्मनो अजाव करी  
 आपे ते शक्तिउं पोताने स्वाधीन करी ठे माटे ते हवे आपथी कोइ  
 पण काले कृणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा काल आपमां  
 अचल पणे रहेशे तेथी तज्जान्य आनदमा आप सदा मग्न ठो ॥ ४ ॥

दास विजाव अंनत, नासे प्रजुजी हो तुज अवलंवने ॥

ज्ञानानंद महंत, तुज सेवाथी हो सेवकने वने ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी त्यांसुधी अनादि विजाव  
 स्वजाव होवाने लीधे आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमता अज्ञानपणे  
 परिणमे ठे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां मिथ्यादर्शनपणे परि-  
 णमे ठे, स्वस्वरूपमां रमण नहि करतां विषय कषायमां रमण करे ठे  
 पडितजावे वीर्य नहि फोरवतां वाल वाधक जावे फोरवे ठे, सूक्ष्म  
 तथा स्थूल क्रियानो रागी थई कर्म बंधन करे ठे, शुद्ध स्वजावनो  
 कर्ता नहि वनतां परजावनो कर्ता वने ठे, शुद्ध स्वजावनो जोक्ता  
 नहि वनतां परजावनो जोक्ता वने ठे, शुद्ध ज्ञानादि गुणनो ग्राहक  
 नहि थतां परगुण पर्यायनो ग्राहक थाय ठे, शुद्ध स्वजावमां नहि  
 व्यापता परजावमां व्यापे ठे, एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुद्धपणे  
 परिणमावगारूप जे अनंत विजाव हुं सेवकने बलगेलो ठे ते सर्व  
 विजाव हे परमेश्वर । आपना अवलवनवडे समूल नाश थशे वली  
 हे परमेश्वर । आपनी पवित्र आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी  
 हुं सेवकने अखूट अचल अविनश्वर ज्ञानानंद प्राप्त थशे. ज्ञानानंद  
 तेज साचो आनंद ठे विषय कषाय वने मनायेवो आनंद ते अवा-  
 स्तविक कल्पित तथा दुःख निदान ठे । ५ ॥

॥ धन्य ! धन्य ! ते जीव, प्रचु पद बंदी हो जे देगन सुणे ॥

॥ ज्ञान क्रिया करे शुद्ध, अनुभव योगे हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥

अर्थ - धन्य ठे ते जीवोने । धन्य ठे ते जीवोने । के जे हे परमेश्वर । आपना पवित्र चरणकमलने बंदी सर्वे जीवने सुखकारी संसार समुद्रमार्थी तारनार धर्मदेशना रुची पूर्वक श्रवण करे, महत्पुण्यना योगे आप श्रीनी दिव्यवाणीनो साज मले ठे रत्नचिंतामणीथी अत्यंत दु.प्राप्य अमूढ्य आपनी देशनानो यथार्थ रहस्य पामी चोताना शुद्धात्म पदना साधकपणे शुद्धात्म अनुभव योगे ज्ञानशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि आदरे “ज्ञानशुद्धि”-सशय विभ्रम अने विमोह रहित शुद्ध तत्त्वनु जाणवु ते शुद्धज्ञान ठे, ते शुद्धज्ञान सर्व दोषथी रहित केवलज्ञानदिवाकर श्री अरिहंतादिना सद्गुपदेशद्वारा तथा तेउना प्ररुपेला सदागमद्वारा वाचना, प्रिच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा तथा धर्मकथा विगेरे साचा निमित्तथी शुद्धज्ञाननी प्राप्ति थाय ठे माटे तेउनुं अतिचार रहित निरंतर सेवन करवुं जेथी ज्ञानशुद्धि थाय. “क्रियाशुद्धि”-क्रियावे प्रकारे ठे बाह्यक्रिया अने अंतरगक्रिया-शुद्धा द्वारादिकनु ग्रहण करवुं तथा इर्या जापादि समितिनुं पाखन करवुं विगेरे बाह्यक्रियाशुद्धि ठे तथा स्वसमय परसमय, स्वद्रव्य परद्रव्यने जिन जिन यथार्थ जाणवामा वर्तवुं तथा शुद्धात्म स्वरूपनो घात करनार क्रोधादिक कपायोनो जेदविज्ञान रूप तीक्ष्ण घाणवडे नाश करवो, तेथोनो आत्म सत्ताचूमिमां प्रवेश थवा ठेवो नहि, एम शुद्धात्म स्वरूपनु रक्षण करवुं, शुद्धात्म अनुभवमा विवरवुं ते अंतरग क्रियाशुद्धि ठे यद्युक्त-द्रव्यानुयोग तर्कणायाम् “बाह्य क्रिया आवस्यकादि रूपा वहिर्योगोस्ति च पुन अंतरग क्रिया च स्वसमय

परसमय परिज्ञान रूपा ज्ञानक्रिया अपरो ऽव्यानुयोगोस्ति”  
 अंतरंगक्रियाशुद्धिनी प्राप्ति माटेजे बाह्यक्रियाशुद्धि आदरणीय,  
 प्रशंसनीय ठे, संवर हेतु ठे, पण अंतरंगक्रियाशुद्धिनी अपेक्षा  
 वगरनी बाह्यक्रियाशुद्धि ते बंध हेतु ठे—“शुद्धात्मं अनुभव  
 विना, बंध हेतु शुद्ध चाल ॥ आत्म परिणामे रम्या,  
 एहज आस्रव पाल ॥” माटे बाह्यक्रियाशुद्धिमा प्रवृत्त यतां  
 अंतरंगक्रियाशुद्धिची चूकवुं नहि अने अंतरंगक्रियाशुद्धिनी  
 कारणरूप बाह्यक्रियाशुद्धिनी उपेक्षा करवी नहि माटे क्रियाशुद्धि  
 तथा ज्ञानशुद्धि ए वनेनुं जिनाज्ञा प्रमाणे पालन करतो स्याद्वादमां  
 कुशल एवो ज्ञानी शुद्ध निरामय निर्वाणपदने प्राप्त थाय ठे.

यद्युक्तः—वसंत तिलका “स्याद्वाद कौशल सुनिश्चल  
 संयमाच्यां, यो जाव यत्य हरदः स्वमिहोपयुक्तः । ज्ञान  
 क्रिया नय परस्पर तीव्र मैत्री, पात्री कृतः श्रयति चूमि  
 मिमा स एकः ”

अर्थः—जे पुरुष स्याद्वादमां कुशल अर्थात् जीवादि तत्त्वना शुद्ध  
 ज्ञानपूर्वक समिति गुप्तिरूप संयम आदरतो शुद्धात्म स्वरूपने निरंतर  
 जावे ठे ते ज्ञानी पुरुष ज्ञाननय अने क्रियानयनी तीव्रमैत्रीनुं पात्र  
 यतो शुद्धात्मचूमि—निरवाण पदने प्राप्त थाय ठे. ॥ ६ ॥

वारवार जिनराज तुजपद सेवा हो होजो निरमली ॥ तुज'  
 शासन अनुजाइ, वासन जासन हो तत्त्व रमण वली ॥७॥

अर्थः—माटे स्याद्वाद वाणीना उपदेष्टा हे परमेश्वर ! आ जीपण  
 जवसमुज्जमांधी तारवाने समर्थ एवी आपना चरण युग्मनी सेवानो  
 निरंतर मने लाज मलजो, वली हे परमेश्वर ! आपनी ज्ञाने न्याय



३३० - विंशति विहरमात्रजिन स्तवनानि वाखावबोध सहित.

अने दया युक्त पवित्र शासननी रुची, ज्ञान तथा शुद्धात्म तत्त्वमा  
रमण ए सर्वे सदाकाल माहुरा आत्म परिणाममा वास करजो ॥७॥

शुद्धात्म निज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति पसाये हो दोशे व्यक्तता ॥ ७ ॥

अर्थ-शुद्धात्म धर्म (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारि-  
प्रादि) नी रुची तथा अनुभव जे वडे थाय ते सर्वे साधनो सत्य ठे,  
तथा हितकारी ठे शुद्धात्म धर्मना अनुभवना हेतुरूपे आदरेला सर्वे  
बाह्य योगरूप साधनो सत्य तथा हितकारी ठे श्री देवचंद्र मुनि  
कहे ठे के हे जिनचंद्र ! आपनी भक्ति पसाये अर्थात् आपनी आज्ञानु  
सेवन करवाथी (आणाकारी जत्तो, आणा ठेइओ सो अजत्तोत्ती)  
मारी सर्वे शुद्धात्म सपदा प्रगट थशे ॥ ७ ॥ (संपूर्ण)

॥ अथ श्री षोडशम नमिप्रज्ञ जिन स्तवनम् ॥

अरज अरज सुणोने रूना राजीया हो जी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रज्ञ नमिप्रज्ञ प्रचुजी विनवुं हो जी, पामी पामी वर

प्रस्ताव ॥ जाणोठो जाणोठो विण विनवे हो जी, तोपण

दास स्वजाव ॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ १ ॥

अर्थ:-हे नमिप्रज्ञ ! आपने आ जगत्त्रयमा प्रचु अर्थात् मालीक  
जाणी अति दु प्राप्य आ मनुष्य चक्ररूप उत्तम अवसर पामी आप  
प्रति विनंति करुं तु. हे देवाधिदेव ! आप अतत ज्ञानयुक्त होवाथी  
अमारा विनव्या वगर पण अमारी जणे काखनी सर्वे हकीकत प्रत्यक्ष  
पणे, जाणो ठो तोपण सेवकनो स्वजाव ठे के स्वामी आगल पोतानुं  
दु ख दूर थमा माटे विननि करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परजावनो हो जी, चोक्ता पुद्गल रूप ॥  
 ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, राच्यो जम जवजूप  
 ॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ २ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! अनादि विज्ञाव योगे हुं माहरां शुद्धात्म स्वरू-  
 प्पी विमुख रही, स्वाभाविक कर्तृता, स्वाभाविक चोक्तता, स्वाभा-  
 विक ग्राहकता, स्वाभाविक व्यापकता विगेरेथी चूकीं माहराथी विप-  
 रीत, विलक्षण, रूप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल  
 द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कामी, तेने नवा नवा अनेक रूपे बनाव-  
 वानो अजिमान्नी, तेने जोगववानो ईच्छक विगेरे थइ तेमांज निरतर  
 व्यापी रह्यो, एम माहरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वजावथी, विमु-  
 खपणे वर्त्ती जरु संगते जडवत् वनी जवसमुद्रमां त्रमण करवाने निरं-  
 तर उच्युक्त थइ रह्यो ॥ २ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग  
 ॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो जी, संवर निर्जरा त्याग  
 ॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ ३ ॥

अर्थः—राग द्वेषादि विज्ञाव रहित स्वपर स्वरूपने यथार्थ प्रत्यक्ष-  
 पणे जाणवा रूप शुद्ध केवलज्ञान, निराकारोपयोग मयी केवलदर्शन,  
 स्वरूपरमण—स्वरूपस्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदि ज्ञानानु-  
 यायी पणे वर्त्तता शुद्धात्म स्वजावो के जे आ संसार समुद्रमांथी मुक्त  
 करी अव्याबाध स्वतंत्र अखूट परमानंद समूहनो निधान ठे, ते  
 शुद्धात्मधर्मने में न जाणथा, न चिंतव्या, न आदर्या पण ते शुद्धात्म-  
 धर्मने मलीन करनार—दूषवनार, मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कपाय रूप  
 मिथ्यामार्ग ( विपरित आचरण ) के जे घोर अनत दुःखनुं निदान  
 ठे तेनुं में रुचि सहित सेवन कछुं, ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव तथा  
 बंधनो कर्ता थयो मोक्षमार्ग रूप संवर निर्जराने आदरीशक्यो नहि.

आस्रव-“ निरास्रव संवित्ति, विलक्षण शुभाशुभ परिणामेन शुभाशुभ कर्मागमनं मास्रव ”-शुक्रान्त अनुचू-  
 तिथी विपरित जे शुभाशुभ परिणाम वडे ज्ञानावरणीयादि कर्मनु  
 आगमन ( आववु ) ते आस्रव ठे मिथ्यात्व अविरति कपायादि जे  
 आत्माना अशुद्ध परिणाम ते जावास्रव ठे अने ते जावास्रवना नि-  
 मित्त वके ज्ञानावरणीयादि कर्म दलनुं आववु ते उव्यास्रव ठे  
 वध-“ बंधातीत शुश्रुत्सोपलम्भ जावना च्युत जीवस्य कर्म  
 प्रदेशे सहसंश्लेषो बन्ध - मिथ्यादर्शनाऽविरति प्रमाद कषाय  
 योगा बन्ध हेतव ” मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय अने  
 योग वडे पूर्व कर्म साथे नवा कर्मनो संबंध ( उढ मलवुं ) ते बंध  
 ठे ते बंध चार प्रकारे ठे- प्रकृति, स्थिति, अनुजाग अने प्रदेशवध  
 तमां योग वडे प्रकृतिबंध तथा प्रदेशवध थाय ठे अने कषाय वके स्थिति  
 बंध तथा अनुजागवध थाय ठे

विशेष विवेचन-“ पणिणीअत्तणं निन्द्व, उवघाय पर्जस  
 अंतराएणं ॥ अच्चासायणयाए, आवरणं डुगं, जिजं जयइ ”-  
 सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञानी तथा सम्यक्-  
 दर्शनीना प्रतिकुल आचरणथी, तथा सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्-  
 दर्शनने- श्रोत्रववाथी, गुरुने दुपाववाथी तथा तेज्जो उपघात  
 करवाथी, तथा सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा तेना स्वामी  
 तथा तेना कारणो उपर छेप, मात्सर्य, ईर्ष्या करवाथी, तथा ज्ञान  
 दर्शनमा अंतराय करवाथी, ज्ञान दर्शन तथा तेना स्वामीनी आशा-  
 तना करवाथी ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मनो वध थाय ठे  
 उन्मार्गनी देशनाथी तथा सन्मार्गनो घात करवाथी ए विगेरे कार-  
 णोथी मिथ्यात्वमोहनीयनो बंध थाय ठे क्रोधादिक कषाय तथा  
 हास्यादि नोकषायना सेवनथी चारित्रमोहनो बंध थाय ठे

महा आरंज परिग्रहमां तद्धीनता, रौद्रध्यान तथा उग्रकषाय वने नर-  
कायुनो बंध थाय ठे. गूढ हृदय, मूर्खता, धूर्त्तता तथा मिथ्यात्वादि  
शक्य, वडे तिर्यच आयुनो बंध थाय ठे. श्रद्ध कषायता, दानरुचि  
तथा मध्यम गुण वने मनुष्य आयुनो बंध थाय ठे सम्यक् दृष्यादि  
श्रविरति गुण वने देवायुनो बंध थाय ठे.

वालतप, अकामनिर्जरा, सरलता, अनागारीपणुं, विगेरे गुण वडे  
शुचनामकर्मनो बंध थाय ठे एथी विपरीत आचरण वने अशुच  
नामकर्मनो बंध थाय ठे.

गुणदृष्टी, मद रहितता, तत्त्व जणवा जणाववा उपर रुचि, जिन  
शक्तिमां मग्नता विगेरे गुण वने उचगोत्रनो बंध थाय ठे. एथी विप-  
रीत आचरण वडे नीचगोत्रनो बंध थाय ठे.

गुर्वादिकनी जक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, संयम, योग, कषाय विजय,  
दान, शीलादिक धर्ममां द्रढता विगेरे गुणोश्री शातावेदनीयनो बंध  
थाय ठे. तेथी विपरीत आचरण वने अशातावेदनीयनो बंध थाय ठे—  
शंका—समकीत, तप, सयम, क्षमा विगेरेथी आस्रव बंध केम संज्ञवे ?  
उत्तर—“रत्नत्रय मिह हेतु—निर्वाणस्यैव जवति नान्यस्य ॥  
आस्रवति यत्तु पुण्यं, शुभोपयोगोऽय मपराधः ॥” रत्नत्रय  
मात्र निर्वाण हेतु ठे पण शुभाशुभ कर्मना हेतु नथी, देवादिक गतिना  
हेतु नथी. पण ज्यांसुधी संपूर्ण वीतरागता प्राप्त थइ नथी, रत्नत्रयनी  
संपूर्णता ठे त्यांसुधी सरागता वर्त्ते ठे; ते सरागता—शुभोपयोगवडे  
आस्रव थाय ठे. जेम घृतमां बालवानो स्वजाव नथी परंतु घी साथे  
हेली अग्निथी बलतां घीथी बल्यो एम बोलाय ठे. तेम रत्नत्रयथी  
॥.कर्मबंध थतो नथी तथापि ते रत्नत्रय साथे वर्त्तता शुभोपयोग  
(सारागता) वने बंध थाय ठे. भाटे चोथो गुणस्थानथी मांकी संपूर्ण

वीतराग गुणस्थान सुधी जे जे अशे रत्नत्रय होय ठे ते ते अंशे बंध नयी जेटला अंशे राग वर्त्ते ठे तेटला अंशे वध थाय ठे

एम शुद्धोपयोगथी चूकी अशुद्धोपयोगमां वर्त्तता मोक्षमार्गरूप सवर तथा निर्जरा तत्वनो अनादर कयो.

संवर—“ कर्मास्त्रव निरोध समर्थ स्व संवित्ति परिणत जीवस्य शुजाशुभकर्मागमन संवरण संवरः ” शुजाशुभ कर्मास्त्रवनो निरोध ते संवर ठे ते संवरना हेतु समिति, गुप्ति, परिसहजय, जतिधर्म, जावना तथा चारित्र ठे

निर्जरा—“ शुद्धोपयोग जावना सामर्थ्येन नीरसीभूतं कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं निर्जरा ॥ ” शुद्धोपयोग जावनाना सामर्थ्य बने नीरसीभूत कर्म पुद्गलोनु एकोदेश गलवु ते निर्जरा तेनो हेतु तप ठे “ तपसा निर्जरा च ” तथा सर्वे परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप ठे “ इच्छा निरोध स्तपः ” ते इच्छा निरोधरूप जावयुक्त तप वे प्रकारे ठे. “ अणसण मूणोअरिया, वित्ती संखेवणं रसच्चाउं । काय किल्लेसो संलीणया य वड्ढो तवो होई ॥ पायच्छिब्तं विणउं, वेयावच्चं तहेव सड्ढाउं । ज्ञाण उस्मग्गोविय, अज्जिततरउं तवो होई ॥ ” एम ठ प्रकारे धाए तथा ठ प्रकारे अज्यतर तप ठे ॥ ३ ॥

जरु चल जरु चल कर्म जे देहने हो जी, जाण्युं आत्म तत्त्व ॥ बहिरातमता बहिरातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्त्व ॥ नमिप्रज० ॥ ४ ॥

अर्थ.—जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात् क्षणजंगूर पाणीना परपोटावत् अस्थिर जे शरीर तेने में आत्म तत्त्व जाण्युं एटखे

शरीरमाज अहंबुद्धि करी शरीर तेज हुं हुं एम जाण्युं-शरीर वचन  
अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योगक्रियानुं ममत्व  
कर्युं, एम में बहिरात्मजावनुं ग्रहण कर्युं, आत्मार्थी अन्य जे अ-  
चेतन, जरु, कृणजगूर शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन,  
परिजनादिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपथी अजाण रह्यो,  
माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वजावने न जाण्वा, पुद्गलना द्रव्य  
क्षेत्र, काल, जावमां अहं ममत्व मान्युं, जे जाव माहरा अस्तिधर्ममां  
नथी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशथी बाहिरला परक्षेत्री  
जावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यथो  
रहित रह्यो. ॥ ४ ॥

केवल केवलज्ञान महोदधि हो जी, केवलदंसण बुद्ध ।  
वीरज वीरज अनंत स्वजावनो हो जी, चारित्त क्षायक  
शुद्ध ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ-पण हे नमिप्रज्ञ जगत्गुरु । आप तो बहिरात्मजावनो  
अत्यंत अज्ञाव करी सर्वे द्रव्यने तेना त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित  
एक समये-प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवु जे केवलज्ञान तेना  
महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनी पेटे अखूट निधान थया ठो, तेमज  
सामान्य सत्ता अवलोकन रूप केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले  
जरा पण हीण क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीर्य प्रगट  
कर्युं-प्राप्त कर्युं तथा क्रोधादिक सर्वे कपायोनी अत्यंत अज्ञाव करी  
क्षायक चारित्र प्राप्त कर्युं-प्रगट कर्युं, अनंत आत्मीय परमानंदना  
प्रोक्ता थया ॥-५ ॥

विश्रामी विश्रामी निज जावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ।  
परमात्म परमात्म प्रभु देखतां हो जी, जागी ज्ञानि  
अनादि ॥ नमि० ॥ ६ ॥

३४४ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि धालावबोध सहित.

अर्थः—तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्रव्येणा गुण पर्यायो-  
मायी रमण तथा आराम विश्रामनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि  
शुद्ध स्वभावमा रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान थया ठो वली  
हे जगवत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त सदा ठो अर्थात् स्यात्अस्ति  
स्वभाववत ठो, स्यात्नास्ति स्वभाववंत ठो, स्यात्एक स्वभाववत ठो,  
स्यात्अनेक स्वभाववंत ठो, स्यात्वक्तव्य स्वभाववंत ठो, स्याद्  
अवक्तव्य स्वभाववंत ठो, स्यादनित्य स्वभाववंत ठो, स्यात्अनित्य  
स्वभाववत ठो, स्यात्जव्य स्वभाववंत ठो, स्यात्अजव्य स्वभाववत  
ठो, विगेरे अन्त स्याद्वाद धर्मयुक्त आप सदाकाल विद्यमान ठो,  
तथा हे जगवंत ! आप निरंतर अप्रमादभावमा वत्तो ठो, कृणमात्र पण  
पोताना शुद्धात्मधर्मधी च्युत थता नथी, कारण के प्रमादना हेतु जे निद्रा  
विकथा विषय कपाय मद स्नेह विगेरे ठे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो  
ठे तेथी हे परमेश्वर ! आप परमात्म पदने संपूर्णपणे प्राप्त थया ठो-  
एवा आप परमात्मानु साची रीते दर्शन थता माहरी अनादिकाखनी  
अनात्मां आत्मपणानी त्रांतिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्राग्भावनी  
ईह ॥ अंतर अंतर आत्मता लही हो जी, पर परिण-  
ति निरीह ॥ नमि ॥ ७ ॥

अर्थः—एम हे परमात्म प्रभु ! केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत  
शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ रीते दर्शन थता में माहरी सत्ताने  
आप समान जाणी, सहही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म मने  
रुच्या, ते प्रगट करवानी ईछा थई, परपरिणतिथी विरागभाव उपज्यो,  
अंतर आत्मतानी प्राप्ति थई ॥ ७ ॥

प्रतिवंदे प्रतिवंदे जिनराजने हो जी, करतां साधक भाव

देवचंद्र देवचंद्र पद अनुजवे हो जी, शुशतम प्राग्जाव  
॥ नमिप्रज्ञ ० ॥ ७ ॥

अर्थः—स्तुति कर्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे ठे—हे जगवंत! आप जेम मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कपाय योगनो त्याग करी परमात्म अवस्थाने प्राप्त थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक जाव आदरुं तो हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनो आस्वाद सेनार जोगवनार थाउं, शुद्धात्म धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ वाठलदे मात मद्धार ॥ ए देशी ॥

वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश, आजहो दीसरे  
वीरजता त्रिजुवनथी घणीजी ॥ २ ॥

अर्थः—अतुह्य आत्मीय वीरपणुं ( पराक्रम ) स्फुरायमान करी, अत्यंत दुर्जय दुष्ट परिणामी मोह शत्रुनो लीला मात्रमां नाश करी पोताना नामने सार्थपणे आ जगत् त्रयमां प्रसिद्ध कर्युं ठे, एहवा हे त्रिलोकपूज्य देवाधिदेव श्री वीरसेन प्रजु । तमे ज्ञानावरणादि दुष्ट कर्मनो अत्यंत अज्ञाव करी ज्ञानादि अनंत सर्वोत्कृष्ट संपदा पोताने स्वाधीन करी ठे, तेना जोग—आस्वादमां निरंतर मग्नपणे परमानंद जोगवो ठो. एवी आपनी ज्ञानादि लक्ष्मी आपथी अनेदपणे होवाथी कोइ पण तेने नाश करी शके तेम नथी तथा मोहराजाने वश पडेला जगत्वासी जीवोमां एहवी ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीनुं स्वामित्व मथी



૩૫૬ , વિશતિ વિહરમાન જિન સ્તવનાનિ વાલાવવોધ સહિત.

તેથી આપની જગીશ અર્થાત્ સંપદા પરમ ( સર્વોત્કૃષ્ટ ) પદને વાસ્ત્વિક રીતે યોગ્ય છે.

• વલી જગત્વાસી જીવોનુ વીર્ય ક્ષાયોપશમિક જાવે હોવાથી અલ્પ છે-અપૂર્ણ છે અને વીર્યની અલ્પતા તથા ચલપણાને લીધે કર્મબંધ કરી પરાધિન થાય છે, પણ હે જગવંત ! આપે વીર્યાંતરાયનો સમૂલ ક્ષય કરી, અલ્પ, અનત, અચલ વીર્ય સંપૂર્ણ પણે પોતાને સ્વાધીન-પ્રગટ કરી લીધુ છે, તેથી આ સર્વે જગત્વાસી જીવોમા ઉત્કૃષ્ટ વીર્યવત આપજ ઠો, ઇહવા આપના દ્રઢ સ્થિર અને સતેજ વીર્ય સામે મોહ-રાજા દ્રષ્ટિ કરવાને પણ સમર્થ થઈ શકતો નથી તો નજીક આવવાની શી વાત ? માટે આપનીજ વીરજતા સર્વોપરી પદ ધરાવે છે ॥૧

અણહારી અશરીર, અક્ષય અજય અતિ ધીર ॥ આજ હો અધિનાગી અલેગી ધ્રુવ પ્રજુતા વણીજી ॥ ૨ ॥

અર્થ -શરીર તે અનત પુદ્ગલોના સમૂહ રૂપ અચેતન પદાર્થ છે, અને જીવ દ્રવ્ય પોતે એક તથા સચેતન પદાર્થ છે. તેથી જીવ દ્રવ્યથી શરીર તદન વિલક્ષણ, વસ્તુત જિન્ન પદાર્થ છે તથાપિ અનાદિ અવિદ્યા વને, જેદ વિજ્ઞાનના અજ્ઞાવે સંસારી આત્મા અનેક પ્રકારના કર્મ વાધી, તે કર્મના ઉદય વને પ્રાપ્ત થઈલા શરીરનેજ આત્મપણે જાણે છે સદ્દે છે, તેથી મનુષ્યના શરીરમા રહેલા જીવને મનુષ્ય તથા દેવના શરીરમા રહેલા જીવને દેવ વિગેરે મનાય છે, અને તેથી સંસારી આત્મા સશરીરી વને છે પણ હે જગવત ! આપ તો તે અધિ-ધ્યાનો નાશ કરી સંપૂર્ણ જેદ વિજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી, સ્વપર દ્રવ્યને તદન જિન્ન જિન્ન જાણી શરીરમાથી અહમમત્વ ઊઠાવી શરીરથી સર્વથા અતીત થયા ઠો માટે હે પ્રજુ ! આપ અશરીરી ઠો

શરીર અનત પુદ્ગલોના સયોગથી વનેલું હોવાથી સચલ તથા અસ્થિર છે, તેથી તેમાંથી કેટલાક પુદ્ગલો સ્થલાતરે જતાં બીજા

पुद्गलो आहारवानी ( खेवानी ) जरूर पडे ठे. माटे शरीरधारीने. आहारनी जरूर पडे, परंतु हे जगवत । आप तो अशरीरी ठो माटे आपने आहारनी जरूर नथी आपनुं अंग एकता धारी ठे तेथी तेमांथी कोइ पण काले रचमात्र पण घसावानो, क्षीण थवानो संजव नथी माटे निःसदेह आप अणाहारी ठो.

अनेक पुद्गलोना मलवाथो जे वस्तु वनेली होय, तेज घसाई, जागी शके, पण एक पुद्गल परमाणु आदि जे जे पदार्थमां एकत्व ठे, असंयोगी ठे, ते ते पदार्थ घसाई, जागी अथवा विर्णशी शके नहि. माटे हे जगवंत । आप असंयोगी तथा एकत्व सहित होवाथी आपना आत्म अंगमां कोइ पण काले रंचमात्र पण क्षय थवानो संजव नथी, आप अक्षय पदमां नित्य विराजमान ठो.

सर्वे ड्रव्यो पोतानी सत्ताचूमिमां पोताना गुण पर्यायोना स्वामी. पणे वर्तवाने सदा काल सत्ताधारी ठे कोइ पण अन्य ड्रव्य. तेमां प्रवेश करवानेज समर्थ नथी तो आपने जातवानी शुं वार्त ? माटे हे जगवंत । आप सदा अपराजित ( अजय ) ठो.

वली आपनुं वीर्य क्षायिकजावे होवाथी आप अत्यंत, वीर वीर ठो, जेम सूर्यना प्रताप सामे अधिकार अत्यंत अज्ञाव पामे ठे, तेम आप श्रीना क्षायिकवीर्य जन्य धीर वीरताना प्रताप्रथी, आपना कर्म शत्रुं अत्यंत अज्ञावने प्राप्त थई गया ठे.

जो के सर्वे ड्रव्यो वस्तुत. अविनश्वर ठे. तथापि अनेक पुद्गलोधी वनेला शरीरमां ज्यांसुधी अह ममत्व बुद्धि होय ठे. त्यां सुधीं ते शरीरनो नाश थतां आत्मा पोतानो नाश मानी नाशपणाना दुःखने अनुभवें ठे पण आपे पोताना आत्म अंगमां आत्मपणुं जाण्युं. स्वीकार्युं, पोताना एकत्व पिंरुना अनुभवी थया तेथी विनाशपणानो प्रसंग नाश थयो माटे आप निरंतर अविनश्वर पदमां परमानंद भोगवो ठो.

खेद्याना हेतु कषाय, योग ठे पण आप तो कषाय तेमज-योगधी सर्वथा मुक्त थया ठो माटे अलेशी ठो

बली हे जगवंत ! आपनी प्रचुता पण हवे ध्रुव ( निश्चल ) थई ठे, संसारी जीवो अज्ञान वशे पोतानी सत्तात्तूमिनी मर्यादा उलघी परक्षेत्रे परगुण पर्यायोनी प्रचुता चाहे ठे, एहवा अन्यायी पुरुषोनी कृत्रिम प्रचुता नाश पामे परंतु आप न्याय शिरोमणी होवाथी परगुण पर्याय विषे पोतानी प्रचुता स्थापन करता नथी. निरतर पोताना गुण पर्यायमा सतुष्ट छे एम आपनी प्रचुता एक क्षेत्री, अप्रथग्नूत, तथा समवाय सवधे होवाथी तेनो कोइ पण कारणे वियोग थवा संजव नथी, माटे आपनी प्रचुता खरेखर ध्रुव निश्चल ठे आपनी प्रचुताने कोइ पण स्वखना करवा समर्थ थई शके तेम नथी. जे अन्यायी पुरुष पोतानुं घर ठोनी पारके घेर चोरी करवा जाय तेनुं धन बीजा चोरो वडे पहेला लूटाइ जाय, पण जे न्यायी पुरुष बीजाना पदार्थनी आकांक्षा नहि राखता पोतानी विज्ञूतिमा सतोप पणे निरतर सचेत रहे तेनी विज्ञूति बीजो कोण छूटी शके ? ॥ २ ॥

अतींद्रिय गत कोइ, विगत माय मय लोह ॥ आज हो सोहेरे मोहे जग जनता जणीजी ॥ ३ ॥

अर्थ—हे जगवंत ! आप अतींद्रिय ठो, पांच इंद्रियोना स्पर्श, रस, गंध, रूप, अने शब्द ए पांच विषयो ठे, माटे इंद्रियोनो विषय फक्त पुद्गल ठे, परंतु आप अरूपी डव्य होवाथी इंद्रिय विषयधी तदन जिन ठो तेथी आप इंद्रियो वडे अगोचर ( अतींद्रिय ) ठो

शरीरादि परडव्यमा जेने अहं ममत्व बुद्धि होय तेने क्रोध उपजवानो सजव ठे कारण के ते शरीरादि अनित्य अने परक्षेत्री पदार्थो होवाथी कोइ तेने वगाडे विणशावे अथवा वियोग करे ते उपर तेने क्रोध उपजे ठे. पण हे जगवत ! आप तो ते शरीरादि परडव्यनुं

सर्वथा ममत्व तजी पोताना नित्य, अचेद्य, समवाय संबन्धी ज्ञानादि गुणोमां पोतानुं स्वामित्व अनुभवो ठो. तेने कोइ पण अन्य द्रव्य र्वमात्र पण हरकत करवा समर्थ नथी. तो आपना परिणाममां क्रोधने अवकाश क्यांथी ? क्कमा सरोवरमां निरंतर क्रीडा करता आप जगवंतनी पासे क्रोधाग्नि केम आवी शके ?

वली सर्प जेवी अविश्वास्य, जगत्मां फसाववाने अत्यत बलवत्तर जाल समान जे माया परिणति, तेने आपे तीक्ष्ण धारवाली आर्यव रूपी तरवार वडे ठिन्न चिन्न करी नांखी ठे.

वली जाति, लाल, कुल, विद्या, अधिकार विगेरे आठ प्रकारना मदरूप अतिशय द्रढ पर्वतने आपश्रीए मार्दवरूप वज्रदंडवडे चूरेचूर करी नांख्यो ठे.

तथा परद्रव्यादिने ग्रहण संग्रह करवाकूप मूर्ताजले जरेला अतिशय विस्तोर्ण लोच समुद्रने आप निस्पृहरूप बहाणमां आरूढ थइ सहज लीला मात्रमां तरी संतोष चूमिमां विराजमान थया ठो

एम आत्मगुणनो घात करनार तथा जवतरुना मूल रूप क्रोधादिक कषायोने आप जगवते समूल क्षय करी क्कमा, मार्दव, आर्यव, निस्पृहता, विगेरे अनुपम गुणालंकार वने आप सर्वोत्तम शोभायमान ठो, एवी आपनी निःकषाय परम शांत मुद्रा अवलोकतां जगत्वासी जी वो अत्यंत विस्मय थाय ठे. ॥ ३ ॥

अमर अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप । आज हो चिजूपे दीपे थिर समता धणीजी ॥ ४ ॥

अर्थः—इंद्रिय, बल, आयु अने श्वासोश्वास ए चार जीवना व्यवहार प्राण ठे अने ते प्राणना वियोगे मरण कहेवाय ठे. पण हे जगवंत ! आपे ते व्यवहार प्राणने पौद्गलीक पर द्रव्यथी निष्पन्न साक्षात्पणे जाणी ते प्राण उपरथी ममत्व उठावी पोताना शुद्ध

चेतना प्राणवने पोतानुं जीवन स्विकार्युं ठे, ते चेतना प्राणनो आपधी कोइ पण काले वियोग थाय तेम नथी, माटे आप सदा अमर ठो.

जे संयोगी पदार्थ होय तेमां संधि होय, अने जेमां सधि होय ते जांगी तूटी शके पण हे जगवत ! आप असंयोगी शुद्ध एक तत्व ठो, आपना अगमा सधि नथी, तेथी आप सदा अखरुं ठो

परम स्वभावने अनुयायीपणे द्रव्यना सर्वे गुणो होय ठे जीव द्रव्यनो परम गुण चेतनत्व ठे माटे जीवना सर्वे गुणो चेतनानुगत होय, ए शिवायना गुणो जीव द्रव्यमां होइ शके नहि, माटे रूप, रस, गंधादि गुणो चेतनानुगत नथी माटे रूपादिगुणोनो जीव द्रव्यमा अत्यताजाव ठे तेथी हे जगवत ! आप सदा अरूपी ठो

जगत्वासी जीवो इष्ट पुद्गलोनी प्राप्ति, प्रभुता, तथा जोगवने आनंद माने ठे, पण ते परद्रव्यना तावे होवाथी जगत्जीवोनो आनंद पराधीन, अवास्त्विक, तथा क्षण जगुर ठे. पण हे जगवंत ! आप तो मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रभुता, तथा जोगवडे आनंद मानो ठो तेथी आपनो आनंद निरूपचरित पूर्ण तथा नित्य ठे, एम हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरूप ठो

तथा हे जगवत ! आपना आत्मीय ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्वे द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथो अग्रिक ठे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वने आप निरंतर सर्वोपरी देदिप्यमान ठो आपना ज्ञान प्रकाशनु आ जगत्त्रयमा कोइ उपमान नथी

बली हे जगवंत ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत ठो इष्टानिष्ट विकल्पथी सर्वथा मुक्त ठो ते समता द्वायिक जाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो सत्त्व नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी ठो. ॥४॥

वेद रहित अरूपाय, शुद्ध सिद्ध असहाय । आज हो-  
ध्यायके नायकने ध्येय पदे ग्रह्योली ॥ ५ ॥

अर्थ-नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अने पुरुषवेद ए त्रणे वेदनो नवमे गुणस्थाने तथा सर्वे कषायनो दशमा गुणस्थानना अंतसुधीमां समूल क्षय करी दीधो ठे, तेथी हे जगवंत! आप वेद तथा कषाय रहित ठो, तथा “खय परिणामे सिद्धा” ए सूत्र प्रमाणे आपमां द्वायिक अने पारिणामिक ए वे जावज वर्त्ते ठे, सकल कर्मनो क्षय करी द्वायिकजावे पोतानुं शुद्धात्म स्वरुप सपूर्ण सिद्ध प्रगट कर्युं ठे अनंतज्ञान, दर्शन, चारित्रना स्वामी थया ठो. अने पारिणामिक जावजे अनंतकालसुधी आपना ज्ञानादि गुणो असहायपणे निरतर परिणमशे. कोऽपण काले कोऽपण आपना ज्ञानादि परिणामने स्वखना करी शकशे नहि माटे हे जगवंत । आप सादिअनंतकाल सुधी शुद्ध सिद्ध तथा असहाय ठो.

उपर वर्णवेला गुणो सहित शुद्ध सिद्ध तथा असहाय आप जगवंतने अवलोकी आप समान सिद्धपदनो कामी हु सेवक ध्याता, आप त्रिलोकपूज्य जगवतने ध्येयपदे स्थापुं तुं, आपना पदनुं प्यान करु तु ॥ ५ ॥

दान लाज निज जोग, शुद्ध स्वगुण उपजोग । आज हो अजोगी कर्ता जोकता प्रजु लहोजी ॥ ६ ॥

अर्थ:-अंतराय कर्मना क्षयवडे हे जगवंत । आपमां दानादिक बन्धित द्वायिक जावे वर्त्ते ठे

वीर्यगुणनी सहायवजे सर्वे गुणो परिणमे ठे, तेम ज्ञानगुणना उपयोग विना वीर्यगुण स्फुरायमान थड शके नहि माटे वीर्यने ज्ञानगुणनी सहायता ठे. तथा शुद्धज्ञान परिणामने चारित्रनुं सहाय ठे. वली चारित्र पराचरण रुप न परिणमे ते चारित्रने ज्ञानगुणनो उपकार ठे एम एक गुणने बीजा गुणोनी सहाय ठे, ते सहायरुप

३५२ विंशति विहरमान जिन स्तवनानि चालावबोध सहित.

दानना कर्ता हे जगवंत ! आपज ठो. वली एवुं दान आप निरंतर आप्पां करो ठो माटे आप अह्य दाता ठो. तथा ते दानना प्रजाववके सर्वे गुणो पोतानी शुद्ध परिणतिए परिणमे ठे, ते रुप लाज खेनार पण आपज ठो. एम आपमां दाता पात्र अने देयनी अजेदता ठे एम ज्ञानादि परिणाम हमेशां शुद्धपणे वसें ठे, तज्जान्य आनदना वेदनारा ठो तेथी ज्ञानादि पर्यायना आप नि प्रयास पणे हमेशां जोक्ता ठो

जे एकवारज जोगववा योग्य होय ते जोग, अने जे अनेकवार जोगववा योग्य होय ते उपजोग कहेवाय ठे माटे ज्ञानादि शुद्धगुणो सहजावी होवार्थी हमेशा आपमा कायमपणे रहेनारा ठे, माटे आपमां ते गुणोनो उपजोग ठे

वली हे जगवंत ! मन, वचन, काया तथा कोइ पण पुद्गलयोग विना आप परकर्तृत्व तथा परजोक्तृत्व निवारी स्वजावना कर्ता जोक्ता वन्या ठो, एहवा आप त्रिलोकपूज्य प्रज्जुनुं मने कोइ महत् पुण्यना पसाये आजे दर्शन मढ्युं ठे, ईंद्रिय गोचर वस्तुनुं दर्शन तो सहजे सर्वे पामी शके पण आप तो अरूपी निष्कर्म ठो. आपना दर्शननी प्राप्ति तो विरलानेज थई शके ठे. ॥ ६ ॥

दरिसण ज्ञान चरित्र, सकल प्रदेश पवित्र ॥ आज हो निर्मल निःसंगी अरिहा वंदियेजी ॥ ७ ॥

अर्थ - आपनु दर्शन थतां आपना सर्वे प्रदेश अत्यंत निर्मल ज्ञान दर्शन अने चरित्र वडे परिपूर्ण पवित्र जोइ तथा आपनेज जगत् प्रयमा निर्मल, तथा नि परिग्रही अवलोकी कर्मशत्रुनो अंत आपनार आप श्री वीरसेन प्रज्जुने कर्म ह्य निमित्ते त्रिकरण योगे वंडु तुं. ॥ ७ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज हो जिनवर  
सेवाधी चिर आनंदियेजी ॥ ७ ॥

अर्थ:-स्तुति कर्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे ठे सर्वे जिनोमां चंद्रमा  
समान वर प्रधान हे वीरसेन प्रज्जु । स्वाभाविक, निःप्रयासिक, अत्यंत  
आनंदना समूहरूप आप जिनेश्वरनी आज्ञा सेवनरूप सेवाधी हुं  
पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त थइश, शिवकमलानो  
विषासी थइश ॥ ७ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्रीमहाज्ञज्ञ जिन स्तवनम् ॥

तट यमुनानुरे अति रक्षीयामणु रे ॥ ए देशी ॥

महाज्ञज्ञ जिनराज, राज राज विराजे हो आज तुमारमोजी ।  
हायिक वीर्य अनंत, धर्म अजंगे हो तुं साहिव वमोजी ॥  
हुं बलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थ:-सर्वे जिनोमा शिरोमणी परमकल्याणना निधान हे श्री  
महाज्ञज्ञ प्रज्जु । आपनु राज्य सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति  
युक्त निर्विघ्नताए अलौकिक रीते शोजे ठे, आपनुं राज्य पराक्रम  
अक्षय, अजय तथा अपरिसीम ठे, आपे सर्वे कर्मशत्रुर्दनो सपरिवार  
नाश कर्यो ठे, निर्वंश कर्या ठे तेथी हवे कोइपण आपना राज्यमां  
विघ्न करी शके तेम नथी तथा आपनी अनंत पर्यायरूप प्रजा, अत्यंत  
सरस पंडित तथा सदाचरणी ठे, आपना धर्मरूप कायदानो जरा पण  
जग करे तेम नथी, आपना सर्वे धर्म कायदा संपूर्ण न्याय तथा देया  
युक्त होवाधी सदा सर्वत्र अजंग ठे, एम आप सर्वोत्तम राजापणे  
विराजो ठो, आपना राज्यनी बलिहारी ठे ॥ १ ॥

कर्ता ज्ञोक्ता ज्ञाव, कारक कारण हो तु स्वामी वतोजी ।  
ज्ञानानंद प्रधान, सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतोजी  
॥ हुं ० ॥ १ ॥



अर्थ—वली ते पर्यायरूप प्रजाना उत्पन्न कर्ता पण आपज ठो तथा तेना उपादान कारणरूप पण आपज ठो, तेना अधिकरणादि अन्य कारको पण आपमाज अजेदपणे शोत्रे ठे तथा ते प्रजाने सदाचरण युक्त—न्यायानुसार गमन करनार निरखी तज्ज्ञान्य राज्यानंदना जोक्ता पण आपज ठो.

ते सर्वे प्रजामा शिरोमणी, आदरणीय तथा अत्यंत वल्लभ एवा ज्ञानानंद स्वदेशी शोत्रने आपे प्रधान पदे स्थाप्यो ठे, ते ज्ञान प्रधान सर्वे प्रजाथी सपूर्ण रीते माहितगार ठे, जेना हृदयमा सर्वे प्रजाना जाव निरंतर प्रकाशित रहे ठे वली ते ज्ञानानंद प्रधान निरंतर आप समीप हाजर रहे ठे, समयमात्र पण दूर वर्त्ती नहि थतां सर्वे प्रजानुं सदैव निरक्षण तथा संरक्षण करे ठे तथा कोझे पण त्रास नहि आपता अत्यंत हर्षपूर्वक न्यायानुसार वर्त्तवि ठे, लेशमात्र पण न्यायातिक्रम थवा देतो नथी, एवो अद्भुत चातुर्य तथा निवेकवत ठे ॥ २ ॥

सम्यकदर्शन मित्त, यिर निर्धारे रे अविस्वादताजी ।  
अव्यावाधि समाधि, कोश अनश्वरे रे निज आनंदताजी  
॥ हुं० ॥ ३ ॥ देश असंख्य प्रदेश, निज निज रीते रे  
गुण संपत्ति चर्याजी । चारित्र्य डर्ग अजंग, आतम शक्ते  
हो परजय संचर्याजी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

अर्थ—अग्निग्रहादिक पाच मिथ्यात्वने समूल नाश करी जेणे पोतानु अग निर्मल करेलु ठे तथा जे सम, सवेग, निवेद, आस्ति-क्यता अने अनुकपादि लक्षणे युक्त, तथा कुशलता, तीर्थसेवा, गुरु-ज्ञप्ति, उदता तथा शासननी अनुमोदना विगरे जूपणोथी जूपित, शंका, काक्षादि सर्वे विसवाद् टाली अविस्वादताने स्थिर उदपणे पोताना हृदयमा धारण करतो महा विनयवत, आपना शासननो

प्रभावक गुणनिधान एवो "सम्यक्दर्शन" नामे महाधीर वीर  
शुभ्र आपनो मित्र ठे, जेनी साथे आपनो सम्यक्ज्ञान प्रधान पण  
पटली तिव्र मैत्री राखे ठे के क्णमात्र पण तेथी वूटो पनी शकतो  
तथी, जेठनां अंग मात्र जूदां जणाय ठे पण जीव तो जाणे एकज ठे;

एवा सम्यक्दर्शन अने सम्यक्ज्ञान वे महान् पुरुषो आपनुं  
राज्य अत्यंत चातुर्य, न्याय अने दया पूर्वक सर्व प्रजाने आनंदमां  
राखता निष्कंटकपणे चलावे ठे तथा अव्यावाध समाधिरुप अनेक  
प्रकारनां रत्नोवके आपना खजानाने सदा परिपूर्ण तथा अखूट राखे  
ठे, निरंतर तज्जन्य परमानंदमां आप विलसो ठो,

वली आप ज्यानु राज्य करो ठो ते देश असंख्योत प्रदेशवालो;  
जेनी सीमामां कोष्पण वधघट करी शके नहीं एवो ठे तथा जेना सर्वे  
प्रदेश अनंता गुणाविजागरुप संपत्तिवडे तथा पर्यायरुप प्रजावके  
वस जरेला ठे

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेमां वसती सरल  
प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा प्रधाने मली पोताना  
अत्यंत वल तथा चातुर्यवडे चारित्ररुप अत्यंत मजबूत तथा अजंग  
किल्लो वांध्यो ठे. हे जगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप स्वामी  
वन्या ठो. एहनुं अलौकिक राज्य के जे मोहराजाए अनादिथी  
पोताना कवजे करी राख्युं हतुं तेने आपे केवी रीते प्राप्त कर्युं ?— "आत्म  
शक्ते हो परजय संचर्याजी" अन्यनी मदद शिवाय मात्र  
पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी सम्यक्दर्शनमित्र, तथा सम्यक्-  
ज्ञान प्रधानने साथे राखी मोहशत्रुने पराजव करवा रणजूमिमां  
प्रवेश कर्यो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मरुमादिक सैन्य, परिणति प्रचुताहो तुज वल आक-  
रोजी । तत्त्व सकल प्राग्जाव, सादि अनंतीरे रीते  
प्रचु धर्योजी ॥ हुं० ॥ ५ ॥

३५६ विशति विहरमान जिन स्तवनानि वालावबोध सहित.

अर्थ - मोहराजाना लडकरने शीघ्रमेव नाश करनारा " द्वाति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तव, सयम, सत्य, शौच, अकिंचन, अने ब्रह्मचर्य, " एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सजा कर्या अने ते सर्वे सैन्योनी प्रचुता ( सेनाधिपति पणुं ) शुद्धोपयोगरूप महा अजीत अने निडर शुजटने आपो एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलबडे मोहराजाना लडकरनो नाश कर्यो द्वाति सैन्ये क्रोध लडकरनो, मार्दवे मान लडकरनो; आर्जवे माया लडकरनो, मुक्तिए लोच-स्पृहा लडकरनो, तपे पराकाक्षानो, सयमे हिसानो, सत्ये असत्यतानो, शौचे मलिनतानो, अकिंचने पर सग्रह बुद्धिनो अने ब्रह्मचर्ये पररमणनो, एम मोहराजाना सर्वे लडकरतो तथा परिवारनो नाश करी मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने सादिश्यनत जागे " तत्त्व सकल प्राग्जाव " पोतानो सपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

डव्य जाव अरि लेश, सकल निवारीरे साहिव अव-  
तर्योजी । सहज स्वजाव विदास, जोगी उपयोगीरे,  
ज्ञानगुणे ज्योजी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थ - डव्य तथा जाव ए बने प्रकारना शत्रुनो समूल नाश करी आप शिवक्षेत्रना राजा बन्या ठो तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र जोगना विदासी थया ठो तथा आप ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा उपयोगवृत्त अर्थात् पोताना राज्यनी सजाक्षमा निरंतर वृत्तो ठो ॥ ६ ॥

आत्मरिज उवजाय, साधक मुनिवर हो देश विरत  
धरुजी । आत्म सिद्धि अनंत, कारण रूपे रे योग  
क्षेमकरुजी ॥ हुं० ॥ ७ ॥

अर्थः—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार अने वीर्या-  
चार, ए पंचाचारमा वर्त्तनार तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार  
(जोरुनार) एहवा ठत्रीश गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपाठना  
दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्मतत्त्वने साधनार श्री  
मुनिराज, तथा पचम गुणस्थानवर्त्ती देशव्रत भारीठ, ए सर्वे आप  
महाराजनी आज्ञामां वर्त्तनार, पोताना मनवचन काययोगने संय-  
समां वर्त्तावनार होवाथी अनंत आत्म सिद्धिरूप आप समान राज्य-  
योग पामवाना कारण ठे अर्थात् तेठ अद्वयकालमां आप समान  
शिवजूमिनु राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिवजूमिनु राज्य  
प्राप्त करवामां आप नगवंत कारणरूपे अर्थात् मददगार ठे ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिनराजनाजी ।  
आतम साधन काज, सेवे पदकज हो श्री महाराजनाजी  
॥ हुं ॥ ८ ॥

अर्थः—वली चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती उपशम, ह्योपशम वा द्वायिक  
सम्यग्दृष्टि सर्वे जीवो हे जगवत । जवसमुद्रमां सेतु समान आपनी  
आज्ञाना रागी ठे, आपनी आज्ञा पालवाने उत्सुक ठे, तेठ पोतानुं  
शुद्धात्म स्वरूप प्रगट करवा माटे आप जगवतना अव्यजाव चरण-  
कमलने सन्माने ठे ॥ ८ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, जगतें राचो हो जवि आतम शुचिजी ।  
अव्यय अद्दय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी  
॥ हुं ॥ ९ ॥

अर्थ.—स्तुतिकर्ता श्रीदेवचंद्र मुनि मित्र जावनाना आवेशमां पो-  
ताना मुखकमलमांथी परम कल्याणकारी उपदेश आपे ठे के पोतानी  
शुद्धात्म सिद्धिना इच्छु हे जव्यात्माठ । शिवक्षेत्रना महाराजा श्री  
निनेजजगवाननो आणा सेववामां लीन थाठ जेथी तमारी सत्तामा

३५० विंशति विहरमान जिन स्तवनानि चालावबोध सहित.

रहेली पवित्र, अविनश्वर, अमृत, अक्षय, शुद्धात्म संपदा सहज  
प्रगट थशे ॥ ९ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ९ देशी ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विजाव लाल रे ॥  
प्रगटे शुद्ध स्वजावता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥  
देवजसा ॥ १ ॥

अर्थ—सर्वे कर्म कलंकथी रहित अत्यंत पवित्र तथा अनंत ज्ञान  
दर्शन आदि अंतातीत अच्यंततर लक्ष्मियुक्त त्रिजोकी चार निकायना  
देव तथा इंद्रादिना समूह जेनो अनुपम यशवाद बोले ठे एवाश्री देव-  
जसा प्रचुनुं हे जव्यात्माश्री ! दर्शन करो ते पूज्य जगवंतना स्वरुपनुं  
सम्यक्प्रकारे अवलोकन करो. जेथी अनादिथी वल्लगेला अज्ञान  
मिथ्यात्व मोह विगेरे छु खदायक विजाव समूल नाश पामे तथा  
जेमाथी निरतर परमानदनी कल्लोखो उठ्यां करे एवो संवर पूरे जरेलो  
पवित्र रत्ननिधान शुद्धात्म स्वजाव प्रगट थाय एवा आपना प्रत्यक्ष  
दर्शननी हे प्रचु ! मने अत्यंत अजिज्ञापा ठे परतु ॥ १ ॥

स्वामी वसो पुष्करवरे, जंबू जरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र  
विजेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे ॥  
देव ॥ २ ॥

अर्थ.—हे जगवत ! आप तो पुष्कळावर्त विजयमा विचरो ठो अने  
आपना दर्शननो अजिज्ञाथी सेवक हुं जंबुछिपना जरतक्षेत्रमा वसु  
हुं पम आपना तथा माहारा स्थानकने घणु अतर ठे तेथी आपना  
प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी मनोकामना शीरोते पूर्ण थाय ?

प्रकारांतरे—हे जगवंत ! ज्यां कर्म कलकनो रच मात्र पण प्रवेश  
 नथी एवा पवित्र ज्ञानादि लक्ष्मीना निवासरूप विदेह अर्थात् देह  
 रहित अरूपी सिद्धक्षेत्रे आप विराजमान ठो अने हुं सेवक कर्मकलंक  
 वेमलिन, अज्ञान अने मोह अंधकार वने जरपूर ससारक्षेत्रमां परि-  
 ब्रमण करुं तुं; एम आपना तथा माहरा क्षेत्रमा अत्यंत जेद (अंतर)  
 पड्यो ठे. तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी मनोकामना शीरीते  
 पूर्ण थाय ? ॥ १ ॥

होवत जो तनु पांखमी, आवत नाथ हजूर लादरे ॥  
 जो होती चित्त आंखमी, देखत नित्य प्रभु नूर लादरे ॥  
 ॥ देव ० ॥ ३ ॥

अर्थः—पण हे जगवंत ! जो माहरा शरीरे पांखो होत तो हुं ते  
 पांखो वने उनी पुष्कळावर्त विजयमां आप प्रभुना समीप आवी  
 आपनु दर्शन, वंदन करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात्  
 ज्ञान नेत्र अवधिदर्शन होत तो अहिआं रहीने पण चोत्रीश  
 अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक विभूति सहित आपना  
 तेजस्वी रूपने हमेशा निरख्या करत.

प्रकारांतरे—हे जगवंत ! जो माहरा आत्म अंगे सम्यक्चारित्र  
 रूप प्रबल पाखो होत तो ते पांखो वडे चिदाकाशमां उरतो—विहार  
 करतो आप ज्यां वसो ठो एवा विदेह—देह रहिन सिद्ध क्षेत्रमां आप  
 समीप आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी कहेता  
 केवलदर्शन होत तो आ क्षेत्रमां रहीने पण अनंत ज्ञान दर्शन आदि  
 अत्यंत अच्यंतर विभूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत  
 प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरतर निरख्यां करत पण ते  
 वने शक्तिउथी हु रहित तुं तो आपनुं दर्शन केम पासुं ? ॥ ३ ॥

शासन जक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लाखरे ॥  
 कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन वंदन थाय लाखरे ॥  
 ॥ देवजसा० ॥ ४ ॥

अर्थ -उपर प्रमाणे माहुरामा देवजसा प्रचुनु दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना जक्त हे महान् देवो ! हु आपनी सहाय चाहु तु, मस्तक नमावी विनंति करु तुं के जो आप माहुरा उपर कृपा करी जो आपना सामर्थ्य वडे देवजसा प्रजु पासे मने खेई जाउं तो ते प्रचुना दर्शन वंदननो मने लाज मले

प्रकारातरे-उपर प्रमाणे सम्यक्चारित्ररूप पाखो अथवा केवल दर्शनरूप आखो मने नहीं होवाथी देवजसा प्रचुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामा जिन शासन अर्थात् जिनेश्वरनी आज्ञानु पालन करना तथा बीजाने तेमा जोरुनारा हे सुरवरा अर्थात् महान् आचार्यों हुं आपने मस्तक नमावो अंतरग बहु सन्मान ( विनय ) युक्त आपने विनती करुं तुं के जो आप माहुरा उपर कृपा करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोडो तो हुं ते चारित्ररूप पाख वडे श्री देवजसा प्रचुनी समीप जई शकु, ते प्रचुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाज मले ॥ ४ ॥

पूतुं पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव लाल रे ॥ अवि-  
 रति मोह टले नहीं, दीठे आगम दीव लाल रे ॥ देव  
 जसा० ॥ ५ ॥

अर्थ -हे प्रजु ! आ माहुरा जीवे पूर्वे आत्मधर्मनी केवी तीव्र विराधना करी ठे के आत्म अनात्मनु स्वरूप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागमरूप दीपकनी प्राप्ति थया उता पण पचेईयना विषय जे पुजस परिणाम ते उपर रागरूप अविरति तथा स्वपर जीवना अव्यजाव प्राण हणवारुप हिंसा, तथा क्रोधादिक कपाय विगेरे आत्म ज्ञावने अत्यंत अप्रशस्त तथा डु खदायक परिणाम हजुसुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आत्म शुद्ध रवजावने, बोधन शोधन काज लाल रे ॥  
रत्नत्रयी प्राप्तितणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ देव  
जसा० ॥ ६ ॥

अर्थः—कर्म कलंक ( सर्व विजावथी ) रहित शुद्धात्म तत्त्वतुं  
स्वरूप यथार्थ पणे जे वडे जणाय तथा अनादिथी बलगेला मि-  
थ्यात्व अज्ञान कपायादि विजावनो सर्वथा अजाव थई जे वने माहरो  
आत्मा कर्म कलंकथी रहित परम पवित्र थाय ते सम्यक्ज्ञान स-  
म्यक्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयनी प्राप्ति शीरीते थाय- ते  
करुणा करी कहो ॥ ६ ॥

तुज सरिखो साहिव मित्यो, जांजे जव ज्रम टेव लावरे ॥  
पुष्टालंवन प्रजू लही, कोण करे पर सेव लावरे ॥  
देवजसा० ॥ ७ ॥

अर्थः—समस्त दूषणोथी रहित परम पवित्र अनंत गुणनो निधानं,  
लोकालोक प्रकाशक, रत्नत्रयनी प्राप्ति करावी अनादिथी लागेली  
जव ज्रमणनी टेवथी मुक्त करनार, जव समुद्रथी तारवामां पुष्टालं-  
वनरूप आप जगवंतनुं दर्शन पाम्या पठी अन्य कुदेवादिकनुं कोण  
सेवन करे ? कल्पवृक्षने त्यागी धंतूराने कोण सेवे ? ॥ ७ ॥

दीनदयाल कृपालुज, नाथ जविक आधार लावरे ॥  
देवचंड जिन सेवना, परमामृत सुखकार लावरे ॥  
देवजसा० ॥ ८ ॥

अर्थः—संसारमां ज्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञा-  
नादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो उपर अत्यंत करुणा करी  
मोक्ष मार्गे दोरनार होवाथी हे प्रजु ! आपज दीन दयाल ठो तथा



कृपालुतां कहेतां कृपाना आलय ( निधान ) ठो, दीन अनाथ जीवोना नाथ ठो, ससार समुद्रमां भूयता जव्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन ठो, सर्वे देवोमा चद्रमा समान हे देवजसा प्रभु । आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानंद दातार तथा शिव सुखनी करनार ठे ॥ ७ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतारे, मन मोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्ध विदेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारि- खोरे, मन मोहनारे लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरे, जवि बोहनारे लाल ॥ १ ॥

अर्थ - अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल क्षय करी नारयो ठे, तथा जेनु वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चल अनंत वीर्यवत, पुष्कलावर्त विदेहमा विचरता हे श्री अजितवीर्य प्रभु । जेम कमलने सुगधनु आवास जाणी त्रमर तेमा मोही रहे ठे, तेम शुद्धात्म अनुभव वके नरपूर आपनी अत्यंत शांत मुद्रा विलोकी प्रशस्त राग वडे जव्य जीवोनु चित्त आपमा मोहित रहे ठे, एवी रीते आ त्रिलोकमां आप मनमोहन ठो तथा अज्ञानरूप अंधकार वडे आवृत थएला जव्य जीवोना हृदय कमलने विकश्वर करनार ठो तथा कल्पवृक्ष तो स्थावर होवार्थी हमेशा एकज ठेकाणे रही ईदित फल आपी शके ठे तो पण ते पौन्यलीक तथा विनश्वर ठे पण आप तो अनेक स्थले विहार करी कोई पण काले नाश अथवा विरस न थाय एहवु स्वाधिन तथा सर्वे कामना जेथी पूर्ण थाय एहवुं रत्नत्रयरूप फल जव्यजीवोने निरंतर प्रदान करो ठो माटे हे नगवत । खरेखर आपज आ जगत्त्रयमा अद्वितीय कल्पवृक्ष

गे. तेथी हे जगवंत । जे प्राणीज आपना चरणकमलनी सेवामां लीन  
ठे तेउने धन्य ठे । वली धन्य ठे । तेउने के जे आ अपार चवसमु-  
जने गोपदनी पेठे सहज उलघी जनारा ठे ॥ १ ॥

जिन गुण अमृत पानथीरे, मन० । अमृत क्रिया सुपसा-  
यरे, जवि० ॥ अमृत क्रिया अनुष्ठानथीरे, मन० । आत्म  
अमृत थायरे ॥ जवि० ॥ २ ॥

अर्थ:-जिनेश्वरना ज्ञानादि शुद्ध गुणोनु सेवन बहुमानरुप अमृ-  
ततुं पान करवाथी अमृतक्रिया ( अमृतानुष्ठान ) नी प्राप्ती थाय, अने  
अमृतानुष्ठान वने सकल मोहनो क्षय थई आत्मा अजर अमर अवि-  
नश्वर शुद्ध सिद्धपदने प्राप्त थाय, अने अन्य जीवोने अमृत समान  
जव रोगथी मुक्त करवानो हेतु थाय अनुष्ठान पांच प्रकारनां ठे-  
विषानुष्ठान, गरलानुष्ठान, अनानुष्ठान, तद्धेतु अनुष्ठान, अने अमृता-  
नुष्ठान.

विषानुष्ठान-आहारोपधि पूजर्हि, प्रचृत्याशंसया कृतं, शीघ्रं  
सञ्चित्तद्वन्तृत्वा द्विषानुष्ठान मुच्यते ॥ अध्यात्मसार पा ४५६ ॥

अर्थ:-मिष्टान्न चोजननी लालचे, वस्त्रादिक उपकरणनी लालचे  
पूजानी लालचे, रिद्धिनी लालचे जे तप जपादि क्रिया करे ते क्रिया  
चित्त शुद्धिनी हणनारी ठे तेथी ते विषानुष्ठान कहेवाय ठे आ चवमां  
पौजलीक चोगोनी प्राप्ति थवानी लालचे ईष्टाए जे तपादि अनुष्ठान  
आदरवु ते विषानुष्ठान ठे.

गरलानुष्ठान-दिव्यजोगाजिलाषेण, कालांतर परिह्रयात् ।  
स्वादिष्ट फल संपूर्त्ते गर्लानुष्ठान मुच्यते ॥ यथा कुडव्य संयोग,  
जनितं गर संज्ञितं । विषं कालांतरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः ॥  
अध्यात्म सार पा० ४५७

अर्थः—परजने देव इंद्रादिकना दिव्य जोग मले एवी इच्छा, खाख-  
चवडे जे तपादि अनुष्ठान आदरवु ते गरखानुष्ठान ठे जेम वगनीचूर्ण  
प्रमुख डव्यना सयोगे प्रगट थतुं विप ते गरख नामा विप कहिए,  
ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे ठे तेम गरखानुष्ठान पण अहित  
कारी कुगति आदि आपे ठे

अन्योन्यानुष्ठान—प्रणिधानाद्य ज्ञावेन कर्मानध्यवसायिन ॥  
संमूर्तिम प्रवृत्त्याज मननुष्ठानमुच्यते ॥ उद्य संज्ञात्र सामान्यं,  
ज्ञानरूपानिवधन । लोक संज्ञा च निर्दोष, सूत्र मार्गानपक्षेणी ॥  
अध्यात्मसार पा ४५७

अर्थ—सूत्र कथित निर्दोष मार्गनी अपेक्षा विना तथा शुरु प्रणि-  
धानादिकने अज्ञावे उपयोग शून्ये समूर्तिमनी पेठे वीजाना देखादेखी  
जे क्रिया करवी ते अन्योन्यानुष्ठान जाणवु—सूत्रनी शैली रहित पणे  
गतानुगतिक पणे उद्यसज्ञाप तथा लोकसज्ञाप जे करवुं ते अन्यो-  
न्यानुष्ठान ठे ते उपयोग शून्य अर्थात् ज्ञान रहित होवायी ते वडे  
सकाम निर्जरा थइ शके नहि आ विपादि त्रणे अनुष्ठानमा अशुरु  
क्रियानो आदर उपजे ठे माटे आ त्रणे अनुष्ठान त्यागवा लायक ठे  
यद्युक्त सूत्रकृतागे—“जे अबुद्धा महाजागा, वीरा असमत्त  
दसिणो । असुद्ध तेसि परकंत, सफल होइ सच्चसो ॥”

अर्थ—व्याकण्णादिक लोकिरु अनेक शास्त्रने जाणनारा पण जैन  
सिद्धातना शुरु तत्वज्ञानथी अज्ञाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित  
होवायी अबुध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय तथा त्यागादि गुण  
वने लोकमा पूज्य गणाता होय तथापि तेउनो दान, तप, नियम आ-  
दिकने विपे उद्यम पराक्रम ते सर्व अशुरु जाणवो. कारणके तेउनुं  
तपादिक सर्वे अनुष्ठान कर्मवधना कारण विपे सफल थाय पटले

नवा कर्मबंधननुं कारण आय पण निर्जरानुं कारण थई शके नहि; कार-  
णके सकाम निर्जरा तो सम्यक्ज्ञानेज थाय—“ जेय बुद्धा महाजागा,  
वीरा सम्मत्त दंसिणो, सुद्धं तेसिं परक्कंतं, अफळं होइ सबसो;”

अर्थ:—जे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सहित ठे तेज बुध पुरुष ठे,  
जे पूज्य ठे, जे साचा शूरवीर ठे, अने तेज्जनोंज तपादिक अनुष्ठानमां  
उद्यम—पराक्रम शुद्ध जाणवो; अने तेज्जनुं अनुष्ठान नवां कर्मबंधन  
अटकावी शके ठे तथा सकाम निर्जरानो हेतु ठे.

तद्धेतु अनुष्ठान—सदनुष्ठान रागेण, तद्धेतु मार्गगामिनां । ए  
तच्च चरमावर्त्ते नो जोगादेर्विना ऋवेत् ॥ धर्मयौवनकालोयं,  
ऋवाल्ददशा परा ॥ अत्रस्यात् सत्क्रिया रागो न्यत्र  
चासत् क्रियादरः ॥

अर्थ:—चरमपुद्गल परावर्त्ते धर्मना यौवनकाले वालदशा टले थके  
मार्गानुसारी पुरुष शुद्धानुष्ठानना राग वने उपयोग सहित जे कंई  
क्रिया आदरे ते तद्धेतुअनुष्ठान जाणवु

अमृतानुष्ठान—सहजो जाव धर्मोहि, शुद्ध चंदन गंधवत् ॥  
ए तद्गर्भमनुष्ठानममृतं संप्रचक्ष्यते ॥ जैनीमाझां पुरस्कृत्य,  
प्रवृत्तं चित्त शुद्धितः संवेग गर्भमत्यंत ममृतं तद्धिदो विडः ॥

अर्थ—सहज जावधर्म ते शुद्ध चंदननी सुगंध समान ठे अने ते  
जावधर्म सहित जे अनुष्ठान ते अमृतानुष्ठान ठे अत्यंत सवेग गुण  
सहित चित्त शुद्धिए जिनेश्वरनी आज्ञामा वर्त्तवु तेने गणधरादिक  
अमृतानुष्ठान कहे ठे तेज मोहनो संपूर्ण क्षय करवा समर्थ ठे ॥ २ ॥

प्रीति ऋक्ति अनुष्ठानधीरे ॥ म० ॥ वचन असंगी सेवरे  
॥ ऋवि० ॥ कर्त्ता तन्मयता लहेरे ॥ म० ॥ प्रजु ऋक्ति  
नित्यमेवरे ॥ ऋवि० ॥ ३ ॥

अर्थ -सर्वे पुद्गल जावमाथी प्रीति उठावी मात्र एक जिनेश्वरना स्वाभाविक पवित्र ज्ञानादि गुणोमा अत्यंत प्रीति जाव करवो तेमा चित्तनी तल्लीनता करवी ते प्रीति अनुष्ठान ठे

तथा श्री जिनेश्वरने परम करुणाना निधान, जवसागरमाथी जव्य जीवोने मुक्त करनार, धर्मधुरधर, तीर्थना प्रवर्तक जाणी तेउना गुणनु बहुमान करवु, अतिशय आदर विनय पूजा सेवना विगेरे करवा ते जक्तिअनुष्ठान ठे

वली लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानवडे सर्वे तत्त्वना यथार्थ वेत्ता तथा उपदेशक परम वीतराग आत श्री जिनेश्वरना वचननी यथार्थ श्रद्धा करवी तदनुसार हर्षयुक्त आचरणमा प्रवर्तवुं ते वचनानुष्ठान ठे हे प्रभु ! ए त्रण अनुष्ठान जे जावयुक्त सेवन करे तेने सर्वे विजाविक क्रियाथी निवृत्ति तथा सहज आत्मीक परिणामीकतानी प्राप्तिरूप असंग अनुष्ठान थाय

एम ए चार अनुष्ठाननो कर्त्ता हे जगवत ! आप स्वरूपने प्राप्त थाय माटे हे प्रभु ! आपनी जक्तिमा माहकं चित्त निरंतर लीन रहे एम जावना जावुं तुं ॥ ३ ॥

परमेश्वर अवलंबनेरे ॥ मन० ॥ ध्याता ध्येय अजेदरे ॥ जवि० ॥ ध्येय समाप्ति हुवेरे ॥ मन० ॥ साध्य सिद्धि अविचेदरे ॥ जवि० ॥ ४ ॥

अर्थ -हे परमेश्वर ! आपना अवलंबनथी आपना अनुकरणवने ध्याता पुरुष पोताना शुद्ध सिद्ध समान परमात्मपदथी अजेद थाय अर्थात् पोते परमात्मा थाय एम ध्येय जे परमात्मपद तेनी समाप्ति कहेतां संपूर्ण प्राप्ति थाय, निष्कटकपणे अविनश्वर साध्यनी सिद्धि थाय ॥ ४ ॥

जिन गुण राग परागथीरे ॥ मन० ॥ वासित मुक्त परिणामरे ॥ जवि० ॥ तजगे छुष्ट विजावतारे ॥ मन० ॥ सरशे आतम कामरे ॥ जवि० ॥ ५ ॥

अर्थः—जेम मलयगिर चंदनना ससर्गवने निवादिक सुगंधमय थई जाय ठे, तेम हे जगवंत! आपना दिव्य स्तुति पात्र पवित्र गुणना आगरूप सुगंधीवडे जो माहुरुं हृदय संश्लेषित थाय तो अनेक प्रकारतां असह्य दुःख आपनार परकर्तृत्व, परजोक्तृत्व, परग्राहकत्व, परव्यापकत्व विगरे विजावनो नाश थाय अने परमात्मपद पामवानो माहरो मनोर्थ पूर्ण थाय. ॥ ५ ॥

जिन ऋक्तिरत चित्तनेरे ॥ मन० ॥ वेधकरस गुण प्रेमरे ॥ ऋवि० ॥ सेवक जिनपद पामशेरे ॥ मन० ॥ रसवेधित अय जेमरे ॥ ऋवि० ॥ ६ ॥

अर्थः—कठोर अने कुरूप एवं अय कहेता लोढु ते रस वेधित थवाथी जेम सुदर अने कोमल एहवा सुवर्णपणाने प्राप्त थई जाय ठे तेम जिनेश्वरनी ऋक्तिमां चित्त लीन थाय ते चित्तने ते जिनेश्वरना गुण आगरूप वेधकरसनो योग थाय तो ते चित्त पूर्ण निर्मलपणाने प्राप्त थाय. एम सेवक आप समान अरिहत पदने प्राप्त करे ॥ ५ ॥

नाथ ऋक्तिरस जावथीरे ॥ मन० ॥ तृण जाणुं पर देवरे ॥ ऋवि० ॥ चितामणि सुरतरु थकीरे ॥ मन० ॥ अधिकी अरिहंत सेवरे ॥ ऋवि० ॥ ७ ॥

अर्थः—आ घोर जवाटवीमां त्रमण करता अशरण प्राणीजने हे जगवंत! मात्र एक आपज शरण ठे, शिवपुरीए दोरवावाला ठे माटे आपज नाथ ठे नेथी हे प्रभु! आपनीज ऋक्तिरूप रसमां माहुरु चित्त लीन थाय ठे विषय कषाययुक्त कुदेवो तरफ तृणनी पेटे त्याग जाव उपजेठे चितामणी तथा कल्पवृक्षथी पण प्रभुनी सेवाने अत्यंत आदरणीय मानुठु आपनी सेवा आगल ते चितामणी तथा कल्पवृक्षादि अतिशय तुष्ट पदार्थ जासन थाय ठे ॥ ७ ॥

परमात्म गुण स्मृति थकीरे ॥ मन० ॥ फरउयो आत्म  
रामरे ॥ ऋवि० ॥ नियमा कंचनता लहेरे ॥ मन० ॥  
लोह जुं पारस पामरे ॥ ऋवि० ॥ ७ ॥

अर्थ—वली हे प्रभु! संपूर्ण सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चार्-  
रित्र, अनत निश्चल वीर्य विगेरे आप परमात्माना गुणोना चित्तनमां  
जो माहरो आत्म परिणाम स्पृष्ट थाय तो जेम पारसमणिना स्पर्श  
थकी लोढा जेवी कुधालु काचन थई जाय ठे, तेम विषय कपायमा परि-  
णमतो माहरो आत्मा ते पण काचन समान शुद्ध परमात्म पढने  
प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

निर्मल तत्त्व रुची थईरे ॥ मन० ॥ करजो जिनपति  
ऋक्तिरे ॥ ऋवि० ॥ देवचंद्र पद पामशोरे ॥ मन० ॥ परम  
महोदय युक्तिरे ॥ ऋवि० ॥ ८ ॥

अर्थ—जावदयाना आवेशे मित्रजावना युक्त स्तवनकर्ता श्री  
देवचंद्र मुनि जव्यजीवो प्रति सद्गुणदेश आपे ठे के आ जव परजव  
सबधी विषयजोग तथा मान पूजा विगेरे पौद्गलीक जावनी आशंसा  
तजी, मात्र एक शुद्धात्म तत्वना रुचिदान थई, उघसज्ञा तथा लोक  
सज्ञा परिहरी, विधि विवेक पूर्वक सर्वे जिनमा शिरोमणि श्री अरिहंत  
जगवतनी ऋक्तिमां आणा सेववामा लीन थजो तो सर्वे देवोमा  
चंद्रमा समान अरिहंत जगवंत सहश परमात्म पढने पामशो एज  
उत्कृष्ट स्वाधिन अविनश्वर महोदय प्राप्त करवानी युक्ति ठे. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ कळश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदोरे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन स्तवन नमन  
अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदोरे जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥

अर्थ:-विहरमान जिनेश्वरने हे जव्यो । जाव सहित वंदो, तेउना  
सद्गुणोतुं किर्तन करो, तेउनुं स्तवन करो, मार्वेव परिणामी थई तरणं  
तारण जिनेश्वरने नमो, तेउनी आझाने अनुसरो, जेथी पूर्वे बांधेलां  
अनेक प्रकारनां कर्मो निर्मूल थाय ॥ १ ॥

जंबु द्वीपे चार जिनेश्वर, धातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर  
अर्धे आठ महामुनि, सेवे चोसठ इंदोरे ॥ जिनवर ॥ २ ॥

अर्थ:-जंबुद्वीपमां चार, धातकीमां आठ अने पुष्करार्धमां आठ  
एव सर्वे मली वीश तीर्थंकर विहरमान जेने महारिद्धिना धारक एवा  
चोसठ इंद्रो पण सेवे ठे ॥ २ ॥

केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्राविका वंदो ॥  
जिन मुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदोरे ॥  
जिन ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-श्री तीर्थंकरना मुख कमलमांथी वहेता अमृत ममान वच-  
नोने अनुभवतां तेनो आस्वाद खेनां केवली गणधर साधु साधवी  
श्रावक श्राविका सम्यक्दृष्टी जीवो शुद्ध आनंदमां मग्न रह ठे ॥ ३ ॥

सिंहाचल चोमाम रद्दीने, गाथो जिनगुण वंदो ॥ जिन-  
पति चक्ति मुक्तिनो मारग, अनुपम शिवमुग्ध कंदोरे ॥  
जिन ० ॥ ४ ॥

अर्थ:-निळाचल क्षेत्रमां चोमामुं रद्दीने जिनेश्वरना पवित्र गुणोतुं  
जेमां वलाल ठे एवा वंदो (स्तवना) यनाय्या-काण्णके जिनेश्वरनी



जक्ति तेज मुक्तिनो मार्ग ठे तथा तेज अनुपम अव्याबाध स्वाज्ञा-  
विक शिवसुखनुं मूल ठे ॥ ४ ॥

खरतर गढ जिनचंद सूरिवर, पुण्य प्रधान मुणिंदो ॥  
सुमति सागर साधु रंगसु वाचक, पीधो श्रुत मकरंदोरे ॥  
जिन० ॥ ५ ॥

अर्थ.—हवे स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि पोटानी परंपरा बखाणे  
ठे. जेणे जिनप्रणित सूत्रनो शुद्ध आस्वादन लीधो ठे एवा खरतर  
गढमा श्रीजिनचंद्र सूरि चहारक नामे प्रधान आचार्य थया, तेठ  
श्रीना शिष्य प्रधान पुण्यवान मुनिशिरोमणि श्री पुण्यप्रधान नामे  
महोपाध्याय थया, तेठना शिष्य सुमतिना समुद्र जेवा श्री सुमति-  
सागर नामे उपाध्याय थया, तेठना शिष्य मुनिपणामा जेने रंग  
वाग्यो ठे एवा साधु रंगवाचक थया ॥ ५ ॥

राजसार पाठक उपकारी, ज्ञानधर्म दिणंदो ॥ दीपचंद  
सद्गुरु गुणवता, पाठक धीर गयंदोरे ॥ जिन० ॥ ६ ॥

अर्थ—ते पठी आचर्यकोड्डार प्रमुख अथना कर्त्ता सुविहित सा-  
माचारी धारक श्रीराजसारजी महोपाध्याय थया, ते पठी न्यायादिक  
ग्रथ अध्यापक सूर्यसमान तपस्वी ज्ञानधर्म उपाध्याय थया, ते पठी  
माहरा सद्गुरु ज्ञान दर्शन चारित्र गुणना धारक, पचाचारना पालक,  
उपसर्ग परिसह सामे गजेंद्री पेटे निश्चल रहेवावाला महाधीर वीर  
दीपचंद्र पाठक थया ॥ ६ ॥

देवचंद्र गणि आत्म हेते, गाथा वीश जिणंदो ॥ रिद्धि  
वृद्धि सुख संपति प्रगटे, सुजस महोदय वृद्धोरे ॥  
जिन० ॥ ७ ॥

अर्थः—तेमना शिष्य में देवचंद्र गणिए आत्म पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान श्री वीश तीर्थकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वडे आद्यादित थएली आत्मानी ज्ञानदर्शनादि अनेक रिद्धिउं प्रगटे, वृद्धिने पामे तथा तज्जन्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय थाय, सर्वत्र कढ्याण वत्ते, सर्व जीव परमानदने प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

॥ सपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ हरिगीत उंद ॥

विहरमान जिनंद मंगल कंद ज्ञान दिनंद जे,  
विकसावता नय कर समूहे जव्य उर अरविद जे;  
उपशम सुधा सागर उलासन पूर्ण अनुपम चंद जे,  
जवदंद फंद निकदि दायक शुद्ध परमानंद जे ॥ १ ॥  
मोह मदिरामां मचेला कुमति मत मातंगना,  
मठ गजवा बल जंजवा बलवान प्रभु पंचानना,  
ते तीर्थनायक तत्त्वदायक वीश जिनवर गुणमणी,  
“श्री देवचंद्र” पवित्र मतिए स्तव्या गुणमाला जणी ॥ २ ॥  
ते स्तवन वीश विपे अतिशे बोध अनुपम वरणव्यो,  
त्या चित रमण हित मुज मनोरथ अरथ लखवानो थयो;  
मधु मासमां अति मधुर स्वरथी कोकिला जे गाय रे,  
ते तो खरेखर आम्र तरुना पुष्पनोज पसाय रे ॥ ३ ॥  
तेम गुण निधि “श्री सद्गुरु मनसुख” तणो आश्रय लहो,  
“संतोष” प्रेमे अर्थ आ मे लख्यो “दोहदमां” रही;

उगणीश ठासठ साल आसो शुक्ल सातम शशि दिने,  
जिनराज जक्ति पसायथी पूरण थयो उलसित मने ॥ ४ ॥  
हे जव्य शुभ मति विनति आ मम कामायुत उरमा धरी,  
गुण क्षीर ग्रहजो हस पेठे नीर अरवगुण परिहरी,  
जरपूर सुखप्रद ग्रंथ आ शशि सूर सम शाश्वत रहो,  
वांचन मनन अनुभव करी जवि शिव रमा अनुपम लहो ॥ ५ ॥

महोपाध्याय श्री देवचड्डी कृत वीश  
स्तवन वाखावबोध सहित संपूर्ण

गांधी दलसुख नाथजी कृत ॥ पद ॥

मगन थयु मनरे ॥ ए राग ॥

प्रसन थयु मनरे, मुज शिवमग प्रेरक मलिध्या । शांतीनो  
जनम दिन आजे, दिव्यनयण खोलि निज काजे, जोई डुरित  
दोष दूर जाजे ॥ प्रसन० ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

धर्म धुरंधर सुख निधि, निकट मल्या आ वार ।  
वश प्रमाद नवि चूकिए, न्याय वाणि पोकार ॥  
तत्वागम जाव जणावे, वलि हेयादेय जचावे, प्रचु  
निपुण बुद्धि फेलावे ॥ प्रसन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

स्वपर दया तुज चित्त विषे, मृषा वचन नाहि लेश ॥  
अण आपी तृण नवि लिये, विरक्त जाव हमेश ॥  
विषयातुरता सवि त्यागी, परमति परदाग जागी, परिग्रह  
मूर्ठा नहि लागी ॥ प्रसन० ॥ ३ ॥

॥ साखी ॥

संकल्प विकल्प विकारथी, ड्रव्य जाव जीय प्राण ॥  
विषयादिक कारण वशे, न हण्णे समतावान ॥  
अरिहतादिक महंता, पूर्वाचारज मुनि सता, तस बहुमाने  
विचरता ॥ प्रसन० ॥ ४ ॥

॥ साखी ॥

वर सुमति गुप्तिधरु, वर प्रधान ।जन धर्म ॥  
सेवे तस अनुमोदतां, जाणे सुतना मर्म ॥  
मनसुख वर ज्ञानी सेवो, वचनामृत अनुभव मेवो, "दलसुख"  
कहे सौ जवि लेवो ॥ प्रसन० ॥ ५ ॥ ॥ संपूर्ण ॥

## ॥ श्री ऋषभदेव जिन स्तवन ॥

माता मरुदेवाना नंद, पूज्यपणु तुज देखी मुज मन अति लोभाणुंजी ॥  
 ज्ञाता उष्ट्रा रमण धिरता, शुद्ध बुरु निरजेदि  
 तिक्कण वीर्य शक्ति उद्धासथी, सतति योग उठेदि ॥ माता० ॥ १ ॥  
 तारक वारक धारक गुण गण, साचो शिवपुर साथ  
 निरवद्य ज्ञापानी तुज श्राणा, जीव सकलनी आथ ॥ माता० ॥ २ ॥  
 परकृत पूजा तु नवि इष्टे, साधक कारज दाव  
 शक्य रहित तुज श्राणा साधे पामे पूज्य स्वजाव ॥ माता० ॥ ३ ॥  
 उपचरित चउ निखेप सेवे, उपचरित सुख पाय  
 अनुपचरित निखेपा सेवे, नि प्रयास सुख थाय ॥ माता० ॥ ४ ॥  
 पूज्यनी पूजा अक्षय सुख दे, वलि कापे सताप  
 मूढ अपूज्यने जे जन सेवे, चूके आपही आप ॥ माता० ॥ ५ ॥  
 जिनवर प्रतिमा श्रीजिन सरिखी, कही जिनागम मांछ  
 रहस्य लखे तेहिज नर वृजे, नहितर गोता खाय ॥ माता० ॥ ६ ॥  
 पुद्गल परिणतिना हु कामी, दोष अनतनी खाण  
 खामी एहवो ठे सेवकने, हाथ जालीने ताण ॥ माता० ॥ ७ ॥  
 तुम नहि कर्ता मुज सिद्धिना, तुज कारणथी तरेश  
 दलसुख साध्य साधक परिणति ए, निज पद सिद्धि वरेश ॥ माता०॥८॥

## ॥ द्वितीय अजित जिन स्तवन ॥

धन्य धन्य वीर वाणी ॥ ए राग ॥

अजित जिनेश उपासना, डुरित नाश न एह,  
 सम्यक् दर्शन वासना, निकासन हो मिथ्यातनो नेह ॥  
 तारक श्री धन्य धन्य तुज वाणी, धन्य प्राणीरे जेणे हीयके आणी के  
 धन्य धन्य तुज वाणी ॥ ए आकणी ॥ १ ॥  
 स्वपर हितने कारणे, पूतु प्रश्न उठार,  
 छेप क्रोध मद मानथी, नवि पूतु हो पूतु श्राणा सुसार ॥ तारक० ॥२॥

विधि अविधि किम जाणिए, दाखो श्री जगवंत,  
 साध्य दृष्टि साधन क्रिया, विधि जाणो हो जवि आगम तंत ॥ तारक ॥ ३ ॥  
 योग असख्य शिव मग तणा, कहा में सुविशाल,  
 गुह्यातम अनुभव जले, योग साचो हो नहि तो सवि आल ॥ तारक ॥ ४ ॥  
 दान शील संयम क्रिया, आवश्यकतादि एम,  
 साध्य शून्य साधन सवि, अविधि जाणो हो ते नहि तुज हेम ॥ ता ॥ ५ ॥  
 क्रिया अविधे करे करावे, वलि अनुमोदे जेह,  
 विराधक खट कायनो, आवश्यक हो सूत्रे जाख्युं ठे एह ॥ तारक ॥ ६ ॥  
 अविधे क्रियामंवर चलावे, उत्सूत्र जापी तेह,  
 गुरु प्रायश्चित तेहने, परजावनो हो ठे तेहने नेह ॥ तारक ॥ ७ ॥  
 मोक्ष मार्गें लेइ जवाने, वलावीया थइ तेह,  
 लुंटे सकल जग देखतां, किहां लोको ते पोकार करेह ॥ तारक ॥ ८ ॥  
 सर्वज्ञथी अधिकी गणे, निज मति चलावे अनाण,  
 निजपरने वृत्तावता, दुर्गतिमां हो सहे दुख अमान ॥ ९ ॥  
 विधि सहित अनुष्ठान शुभ, सवि दीए शिवपुर गेह ॥  
 पुरुष प्राक्रम फोरवी, ते सेवो हो अवलवो एह ॥ १० ॥  
 मलिहारी श्रुतधरतणी, सम्यक् प्रकाशे तत्त्व ॥  
 तीर्थकर सम ते आश्रये, दास दलसुख हो पामे शुरू सत्त्व ॥ ता ॥ ११ ॥

संपूर्ण

॥ शा. वामीलाल पानाचंद कृत ॥ पद ॥

मगन थयु मनरे, खुबी कारक खुब खुशाली,  
 श्री धर्माचारज आव्या, सहु जविजन आणंद पाया,  
 महाशांति मेह वरसाया ॥ मगन ॥ १ ॥

॥ साखी ॥

जाव जीवन पुष्टिकर, त्रिजुवनमा हितकार ॥  
 आप समो नहि अवर ठे, सध सकल आधार ॥  
 जिनशासनना सुलतान, सुर करता बहु गुणगान  
 सेवे मुनिगण शुरू आण ॥ मगन० ॥ २ ॥

॥ साखी ॥

विषयाकात जधि जीवने, तुज आज्ञा हितकार ॥  
 दर्शावो प्रजु सुनयथी, लहे चेतन जवपार ॥  
 तुज आण सदा मन धरशु, निज ज्ञायक जावे विचरशु ॥  
 पूर्णानंद पद हमे वरशु ॥ मगन० ॥ ३ ॥

॥ साखी ॥

जन्म जरा मरणादिनी, टाळी सकल उपाधि ॥  
 अव्याबाध सुख अनुजवी, लहिशुं परम समाधि ॥  
 तुज गुण गणरिद्धि प्रकाशी, चित्त "वामीलाखे" विकाशी ॥  
 जोगी धरुंशु शिव वासी ॥ मगन० ॥ ४ ॥

सपूर्ण

श्रीमान् मनसुखलाजजी कृत ॥ पद ॥

कव में सावु स्वरूप धरंगा ॥ए राहू॥

द्रव्य सकल सहजे परिणामी, गुण परिणाम समय नवि चूके ॥  
 सहज स्वतंत्र स्वभावे वरते, कोइ समय निज धर्म न सूके ॥ द्रव्य ॥ २ ॥  
 पर परिणामने सहाय करे नहीं, पर परिणामने कोइ न रोके ॥  
 पर परिणाम विषे जरु रीझयो, रोष विकल्प करे अति फोके ॥ द्रव्य ॥ ३ ॥  
 ठीक अठीक करुं में माने, विविध जोग किरिया परिणामी ॥  
 कर्ता जोक्ता आपकु माने, निज अनुभव विण रह्यो परकामी ॥ द्रव्य ॥ ३ ॥

ठीक अठीक कर्तुं तेणे कल्पे, मुज इष्टीत कृत मॅज कराव्युं ॥  
जस्य विकल्प करे इम बोहोला, तव तिहां मोह अरी बल फाव्युं ॥ ४ ॥  
अष्ट करमदख एणि विध बंधे, निज निधि सहज न आप संजारी ॥  
आतम परिणामीकता धारो, मनसुख अचल वीरज शिवकारी ॥ ५ ॥

॥ रुचिरा ठंड ॥ मात्रा ३० ॥

चौदराज गत जीव ठ कायिक, खेदज्ञ तेहना थइए;  
अव्य जाव दोय जेद प्राणनी, परमदया जर थिर रहिए ॥ १ ॥  
अक्षय निज ज्ञायकता जाणी, समजावे उढता धारो;  
माहणता पद राखि रखावी, डुविधे यतना संजारो ॥ २ ॥  
छादशांग श्री, जिनशासननो, एह सार अक्षय धारो,  
ज्ञान न्याय शुध दया रहित जे, मनुष्य जन्म तस निःसारो ॥ ३ ॥  
खेदज्ञ खट्काय तणा जे, ज्ञानी न्यायी ते कहिए;  
डुविधे यतना धारी वरते, शुद्ध संयमी ते लहिए ॥ ४ ॥  
खट कायानो खेद न जाणे, आप स्वठंदे अनुसरता;  
आदि अंत ने मध्य विना ते, जव कंतारे दुःख खमता ॥ ५ ॥  
खटकायानो खेद न जाणे, ते नहि ज्ञानी नहि न्यायी;  
नहीं संयमी मूढ मती ते, मिथ्याती मानी मायी ॥ ६ ॥  
संक्षेपे ए मार्ग मोहनो, पुरुष पराक्रम करि सेवो;  
मनसुख लब्धि वीर्य निज पामी, शिव संगे चाखों मेवो ॥ ७ ॥

प्राणी एकल जावना जाव ॥ ए राग ॥

सोहम गणधरने नमो जी, ध्यावो आतमराय ।  
पर परिणामीकता तजी जी, पामो सिद्धि सदाय रे ॥ प्राणी निज ॥  
गुण पळाव सेव, लहिए सुख अहमेव रे प्राणी ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥  
परिणामीकता वस्तुनी जी, परिणमे पूर्ण सदाय ।  
सहज स्वतंत्र स्वजाव ठे जी, रुके न केम कदाय रे ॥ प्राणी ॥ २ ॥



- कोइ केना ॥ परिणामने जी, रोके न समये एक ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥
- परिणामीकता अनंतरे जी, परिणमे जाणो विवेक रे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥
- वर्णादिक, परिणमे- सदा जी, पुद्गल धर्म अनंत ।
- अणगमता गमता लखे जी, मोही मिथ्याती जंत रे ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥
- पुद्गल परिणति नव नवे जी, समय समय पलटाय ।
- आत्म ज्ञान विण मूढ त्यां जी, व्यापे मन ललचाय रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥
- पुद्गल गुण परिणामने जी, पलटी शके नहि जीव ।
- शाश्वत चाव ए ड्रव्यना जी, वरते सहज सदीवरे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥
- ज्ञानादिक निज धर्म ठे जी, निज परिणामीक शुरू ।
- पर परिणति ममता करी जी, चूढयो बाल अवुरु रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥
- पुद्गलमां बहु कल्पना जी, पुद्गलना आलाप ।
- काय क्रिया पुद्गल विपे जी, करतो हर्ष विलाप रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥
- जबलग पुद्गलमा लखे जी, सुख रिद्धि निज जोग ।
- तबलग शुरूतम तणो जी, होय न अनुभव योग रे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥
- बाधे आठे कर्मने जी, अणलहतो जिनधर्म ।
- निजपद रिद्धि अजाण ते जी, किम पामे शिव शर्म रे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥
- आतमता पुद्गल विपे जी, लखि व्यापे मिथ्यात ।
- अविरति तेथी ऊपनी जी, प्रमाद कपाय उत्पात रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥
- जोग चपलता त्या थई जी, शाति निवृत्ती न पाय ।
- हवे जिन वचन लखि करो जी, जेद ज्ञान सुवदाय रे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥
- जमें मोहे वाहियो जी, सहज निवृत्ती न थाय ।
- निज परिणामिकता लसे जी, शुभलध्यान शिव पाय रे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥
- जेदो अहंता जर्मने जी, आश्रव सघला, जाय । ॥
- हुं माहर्षु पुद्गल विपे जी, तजता सवर थाय रे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥
- संवर अवरमा वशे जी, नज प्ररण विकल्प ।
- ज्ञायकता एक आपणी जी, बीजा जूठा जल्प रे ॥ प्राणी० ॥ १५ ॥

जेम जेम पुद्गलमां लखे जी, निज कारण निज काज ।  
 तिम तिम आतम गुण विना जी, परवश होय अकाज रे ॥ प्राणी० ॥ १६ ॥  
 त्याद्वाद अमृत समा जी, वचन सुण्यानी न खोट ।  
 पण परमाद वशे रह्यो जी, चित्तमां न लागी चोट रे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥  
 कारण कारज आत्ममां जी, निश्चे सिद्ध समाधि ।  
 जाणी बुध आदर करो जी, नाशे कर्म उपाधि रे ॥ प्राणी० ॥ १८ ॥  
 तेणे विकल्प तजी सत्रे जी, थिर उपयोग अडोल ।  
 शुद्धध्यान लहि पामजो जी, मनसुख शिव रंग चोल रे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥

॥ मंगलाचरण ॥ हरिगीत ठंड ॥

जग परम सुखकर दुरित दुखहर सहज धरम शुद्धातमा,  
 विकल्प तजी थिर ध्यानमां निज-ध्याइ हो परमातमा ।  
 पंचास्तिनी जे परिणती ते सहज जावे परिणमे,  
 तस रोकवा नहीं अन्य समरथ कोइनी पण कोइ समे ॥ १ ॥  
 निज सहज परिणति धर्म अणलहि करत जूठ विकल्पना,  
 कर्तादि परमां आप माने शुद्धाशुद्ध करि जल्पना ।  
 निज साध्य शून्य एकात करणी आदरे त्रय जोगनी,  
 निज ज्ञान वीर्य अनंत चूक्यो धारि मति पर जोगनी ॥ २ ॥  
 परजोग ईहा शक्य जवलग आत्म अनुभव तिहा नहीं,  
 वलि होय मिथ्या शक्य तवलग आत्मथिरता नवि कही ।  
 नर आपना जे दोष ढांके मानी माया सालथी,  
 व्रत नियम तेहना सर्व निष्फल मलिन माया जालथी ॥ ३ ॥  
 ए कारणे जे शक्य तजशे तेहने जव जय नथी,  
 शुद्ध अज्ञावे जिन धर्म जाख्यो सूत्रमा बहु थल कथी ।  
 तत्त्वार्थमा निःशक्य विरती प्रगट वचने जाणिए,  
 जन्ममूलथी सवि शक्य ठेदी विरति रति मन आणिए ॥ ४ ॥  
 परमादथी ठे दोष सघला जाणिए समय न चूकिए,  
 सवि पुद्गलोनी राग त्यागी आत्म लक्ष न मूकिए ।

समजाव साचे जेह राचे धारि ऊदाशीनता,  
 सविकल्प ठेदी मोह जेदी शुक्ल ध्याने खीनता ॥ ५ ॥  
 जिन आण राखी समय साखी जिन सुगुणगण गाइए,  
 निज आत्म गुणमां तृप्ति राखी स्वगुण अनुभव पाइए ।  
 धरि धीरने निष्कपता त्रय जोग थिरता आदरो,  
 तजि क्षोभना शुभ ध्यान धरतां पराखंबन परिहरो ॥ ६ ॥  
 एम ठेदि आठे कर्म मर्म सुपर्म शीतलता वरो,  
 धरि चटक चितमा साचि पूरण जाव वीरज थिर करो ।  
 उमग रगे सुमति सगे करो मगल जवि जना,  
 सहजात्म परिणति साधतां निज सिद्धि पावो शिवधना ॥ ७ ॥  
 आ ग्रंथमा जे जाव दाख्या जूळ टाळी साधजो,  
 अन्यास सूत्र सिद्धांतनो करि आत्म गुण आराधजो ।  
 जग मुकुटमणि श्री सिद्ध प्रभुजी वीखसे शिव सपदा,  
 तिहा खगि रहो आ ग्रथ अचखो टाखतो जन आपदा ॥ ८ ॥  
 तीरथपतिना स्तवन अरथो आदि बहु शिव साधना,  
 दुविधे दया सहु जीवनी वलि रत्न त्रय आराधना ।  
 शिवकारी हो सवि वचन जिननां जव्यने अति वेगथी,  
 “मनसूख” शाश्वत सिद्धि पामो सहज विमल सवेगथी ॥ ९ ॥

अथ समाप्त.





